MAHANIRVANA-TANTRAM.

COMPILED BY

SREEMAN MAHESHWAR BHAGWAT

PURVA KANDAM

CORRECTED BY

PUNDIT JWALA PRASAD MISRA.

HEAD PUNDIT KAMESHWAR NATH SANSKRIT PATHSHALA

TRNSLATED BY

P. BALDEO PRASAD MISRA OF MORADABAD

Printed & Published.

BY

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

"SHRI VENKATESHWAR" PRESS.

Bombay.

1896.

॥ श्रीः ॥

महानिर्वाणतन्त्रम् ।

(सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम्)

श्रीमन्महेश्वरभगवत्प्रणीतम् ।

मुरादाबादनिवासिसुखानन्दमिश्रात्मजपण्डित-
बलदेवप्रसादमिश्रविरचितया
भाषाटीकया समलंकृतम् ।

तदेतत्
तान्त्रिकजनोपकारार्थं
मुम्बय्यां
खेमराज श्रीकृष्णदास इत्यनेन
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

शके १८१८, संवत् १९५३.

श्रीः।

महानिर्वाणतन्त्रकी भूमिका।

सनातन धर्मावलम्बी आर्यसन्तानोंमें जो धर्मशास्त्र प्रचलित हो रहेहैं, उन सबका परमउद्देश केवल ब्रह्मस्वरूपकी उपलब्धिहै। अनेक धर्मशास्त्रोक्त अनेक देवी देवताओंकी पूजा जिसप्रकार केवल ब्रह्मप्राप्तिकी कारणहै, ऐसेही सनातनधर्मशास्त्रभी केवल वेदार्थके जाननेका अनुपम उपायहै। भिन्न २ धर्मशास्त्रोंमें अथवा एक शास्त्रके भिन्न २ अंशोंमें अलग २ देवताके आराधना करनेकी विधिहै। कहींपर लिखाहै कि, महादेवजीही सर्व प्रकारसे आराध्यहैं। शिवको छोड़कर दूसरे देवताकी पूजा करनेसे पाप होताहै। कहीं लिखाहै कि बिना विष्णुजीकी उपासना किये गति नहीं होती। कहीं यह देखा जाताहै कि, शक्तिआराधनाही चारों फलकी प्राप्त करानेवाली होतीहै। इन बातोंके देखनेसे धर्मशास्त्रकी पृथकूता तो परस्पर ज्ञात होतीहै। परन्तु शैव वैष्णव या शाक्त किसी सम्प्रदायकी विधिमें कोई विरोध दिखाई नहीं देता। यदि शैव शिवकी उपासनाको छोड़कर विष्णु, शक्ति, सूर्य वा गणपतिकी पूजाकरे तो उसको पाप लगेगा इसप्रकार सबकोही अपने २ कुलदेवताकी आराधना करनी चाहिये, परन्तु किसी दूसरे देवताकी निन्दा करना कभी उचित नहींहैं। भगवद्गीतामें श्रीनाराणजीने स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहाहै कि, "श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" इसका तात्पर्य यहीहै कि, उत्तम अनुष्ठानयुक्त पराये धर्मकी अपेक्षा अपना धर्म हिंसादिदोषसे दूषित होनेपरभी श्रेयस्कर है।

हमारे देशमें अनेक लोग वंशपरम्परासे तांत्रिक उपासनामें दीक्षित होकरभी तन्त्रानभिज्ञताके हेतु तन्त्रमें कहीहुई विधिको बुरा कहतेहैं। धर्मशास्त्रका और तन्त्रका मर्म जानते होते तो यह लोग कभी ऐसा न कहते। विशेष करकै तांत्रिक अनुष्ठान फलको शीघ्रही देताहै। जो लोग दीक्षागुरू हैं वे तंत्रमें विशेष ज्ञान न रखनेके कारण शिष्यको विधिविधानसे सब कार्य नहीं बताते इसकारण मंत्र

मृतवत् और साधन निष्फल होतेहैं । किसी ज्ञानी गुरूसे उपदेश ले कि, जिस्से अंगकी विकलता न हो तब देखिये कि कैसा प्रत्यक्ष फल मिलेगा ।

तंत्रका ज्ञान हो तो किसी प्रकारसे अंगकी विकलता नहीं होसकती । इसी कारणसे हमने तंत्र शास्त्रके प्रचार करनेका विचार कियाहै ।

समस्त १९२ तंत्रहैं जो कि पृथ्वीकी क्रान्तिरेखाके अनुसार तीन सम्प्रदाओंमें बांटे गएहैं । उनमेंसे ६४ तंत्र विष्णुक्रान्तहैं जोकि गौड़राजमें प्रचालितहैं । पूज्यपाद स्वामी कृष्णानन्दजीने विष्णुक्रान्तसम्प्रदायसे संग्रह करकेही तंत्रसार नामक ग्रंथ बनायाहै ६४ तंत्र रथक्रान्तहैं नैपाल आदि देशोंमें बहुतायतसे इन ग्रंथोंका प्रचारहै । यह महानिर्वाणतंत्र, उर्ध्वाम्नाय तंत्र राधातंत्र आदि ६४ तंत्र इस सम्प्रदायके अन्तर्गतहैं । शेष ६४ तंत्र और २ स्थानोंमें प्रचलितहैं । दुरात्मा यवन लोगोंके अत्याचारसे कोई२ तंत्र तो सम्पूर्णतः लोप होगये कोई २ तंत्र अपनी २ सीमाको लांघ कर भिन्न २ अधिकारमें स्थापित होगये यही कारण है जो प्राणतोषिणी तंत्रमें समस्ततंत्रोंका मत उद्धृत हुआहै ।

तंत्रसारमें महानिर्वाणतंत्रका नाम नहीं लिखाहै । इसकारणसे कोई २ महात्मा इस ग्रंथकी प्रामाणिकतामें संशय करतेहैं । ऐसी शंका करने वालोंको उचितहै कि पद्मपुराण अग्निपुराण और शंकरविजयको पढ़कर अपने संदेहको दूरकरें ।

सामवेद और अथर्ववेदसे तंत्रशास्त्रका आविर्भाव हुआहै । ब्रह्म ज्ञानरूप मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिये तंत्रशास्त्रही प्रथम सोपानहै कुलार्णव तंत्र और इस महानिर्वाणतंत्रमें ब्रह्मोपासनाकी विधि व प्रकरण वर्त्तमानहै जिसने साकार उपासनादिसे अपने चित्तको कुछेक शुद्धकरलियाहै वह ब्राह्मण शूद्र, शैव, शाक्त, वैष्णव, गृहस्थ वा उदासीन जो कोईभी हो किसीभी देवताके मंत्रसे दीक्षित हो या अदीक्षित हो वह ब्रह्मज्ञानी गुरुके द्वारा पुनर्वार दीक्षा प्राप्त कर सकताहै यद्यपि इस ब्रह्मोपासनामें किंचित् सगुणभावहै तथापि जबतक सोहं ज्ञानसे उत्तीर्ण होकर निर्विकल्प ज्ञानमें न पहुँचेगा तबतक पूरी भाँतिसे सगुण भावको दूर नहीं किया जासकेगा । विशेष करके सगुणभावके विना ध्यान और उपासना नहीं होसकतीहै ।

यदि कोई जलमें गिरजाय तो वह जलका अवलम्ब और परिहार कर तैरता-हुआ पार जायगा.इसी भाँतिसे गुण राशिमें पतितहुए हम लोग विनागुणका अवलम्बन किये और गुणका परिहार किये उससे(गुणसे)उत्तीर्ण नहीं होसकते.

पं० जीवानन्द विद्यासागर की मूल मुद्रित पुस्तकके अतिरिक्त हमको दो प्राचीन लिखित पुस्तक भी मिलीं । जिसमें से एक पुस्तक ७५० वर्ष पूर्वकी लिखीहुई है । इसी पुस्तकसे भलीभाँति शुद्ध करके वर्त्तमान पुस्तक में पाठान्तरआदि सन्निवेशित किये हैं ।

अपने पूज्यपाद ज्येष्ठ सहोदर पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रको शतशः धन्यवाद देताहूं कि, जिन्होंने आद्यन्त पर्यन्त इस तंत्रकी लिखित कापीको देखकर मुझको उपकृत किया है । इनके अतिरिक्त लक्ष्मीवेंकटेश्वर यंत्रालय कल्याणके कर्मचारी पं० किशनलाल, बाबू उदितनारायण लाल वर्मा वकील गाजीपुर, पं० ईश्वरीप्रसाद पांडे सदरमेरठ, पं० हरिहर प्रसाद पाठक प्रोपाइटर मेडिकेल प्रेस व सत्यसिन्धु मासिक पत्र कानपुर, बाबू बलदेवसहाय माथुर सौदागर मुरादाबाद,आयुर्वेद प्रचारक सुप्रसिद्ध विद्वान् लाला शालिग्रामजी वैश्य मुरादाबाद तथा श्रीयुत ललताप्रसादजी शर्मा, दरीबा पान मुरादाबाद निवासी भी धन्यवादके पात्र हैं कि, जिन्होंने सदैव काल उत्साह देते रहकर तंत्रशास्त्रका अनुवाद प्रचलित करनेका विचार किया।

परमोदार गुणग्राही, स्वभाषाहितैषी, **श्रीवेंकटेश्वर** प्रेसाधिप **खेमराज श्रीकृष्णदासजी**कोभी वारंवार धन्यवाद दिया जाता है कि, महान् अनुग्रहसे यह ग्रंथ मुंबईमें उन्होनें स्वकीय "**श्रीवेङ्कटेश्वर**" मुद्रणालयमें मुद्रित कर आप महाशयोंके सन्मुख लाया ।

इस ग्रंथके सम्पूर्ण अधिकार भी उक्त यंत्राधीशको समर्पित हैं ।

नित्यतंत्र और गुरुतंत्रकीभी भाषाटीका मैंने कियाहै, जो कि मुद्रित होचुकी है । जिनकी इच्छा हो१) रु० मूल्य भेजकर मेरे पाससे मँगवा लें ।

Obedient
Baldev Prasad Misra.
Dindarpura
Moradabad.
N. W. P.

कृपापात्र--
सुखानंदमिश्रात्मज
बलदेवप्रसाद मिश्र.
दीनदारपुरा, मुरादाबाद.

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-बंबई.

श्रीः ।

महानिर्वाणतंत्रका-सूचीपत्र ।

भूमिका, तांत्रिकउपासना, मूलमंत्र और आध्यात्मिकतत्वादि ।

प्रथम उल्लास ।

कैलासमें भवानीजीका शिवजीसे जीवके निस्तारहोनेके उपायका प्रश्न करना, कैलास और सदाशिवका वर्णन, पार्वतीजीके प्रश्न करनेकी प्रार्थना, महादेवजीका सम्मतिदेना, भगवतीका प्रश्न करना, सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुगके आचार व्यवहारका वर्णन, कलियुगमें दिव्यभाव और पशुभावका निषेध, पशु और दिव्यभावके लक्षण, वीरसाधन और वीरसाधनके पतितहोनेकी शंका, मद्यपान दूषणीय क्योंहै । कलियुगके खोटे वृत्तिवालों मनुष्योंका उद्धार करनेके उपायका प्रश्न ॥ श्लोक ॥ ७४ ॥

दूसरा उल्लास ।

भगवतीजीका कलियुगके जीवोंके निस्तारका उपाय पूछना, पार्वतीजीके प्रश्नकी प्रशंसा, कलियुगमें दुर्मदमनुष्योंकी वेदपुराणादिके द्वारा मुक्तिकी असंभावना कहनी, कलियुगमें तंत्रही निस्तारका उपाय है । कलियुगमें शौचादिके न होनेसे वेदमंत्रकी विफलता । अनेक तंत्र और देवता व सम्प्रदायका कथन, महानिर्वाणतंत्रकी प्रशंसाका वर्णन, ब्रह्मोपासनाकी रीति । परब्रह्मकी प्रशंसा ॥ श्लोक ॥ ५४ ॥

तीसरा उल्लास ।

परब्रह्मकी उपासनाके उपदेश । ब्रह्मसाधनके प्रश्नोत्तर, ब्रह्मके लक्षण, मंत्रोद्धार, मंत्रकी प्रशंसा । मंत्रका अर्थ और चैतन्य करना । अनेक मंत्र । मंत्रोंका न्यास । प्राणायाम । ध्यान, मानसपूजा, बाहिरी पूजा, पंचरत्ननामक स्तोत्र, जगन्मंगलनामक कवच, प्रणामादिकथन,

महाप्रसादग्रहण । इसके त्यागनेके महापापका वर्णन, साधकका आचार, व्यवहार, संध्या और ब्रह्मगायत्री । प्रातक्रिया, पुरश्चरणविधि, दीक्षाः और ब्रह्ममंत्रके सिद्धकरनेकी आवश्यकता, ब्रह्ममंत्र ग्रहणकरनेके नियम और रीतिपद्धति । शाक्तवैष्णवादि सबही दुवारा ब्रह्ममंत्र ग्रहणकरनेमें अधिकारी हैं या नहीं, ब्रह्ममंत्रमें गुरुके विचारकी आवश्यकता है या नहीं।ब्रह्मके उपासकका माहात्म्य और उसके निन्दकके महापापका वर्णन ॥ श्लोक ॥ १२४ ॥

चतुर्थ उल्लास।

शक्तिउपासनाके विषयमें पार्वतीजीका प्रश्न । पराप्रकृतिका स्वरूप, कलियुगमें पशुभाव और दिव्यभावका निषेध, वीरसाधनकी सफलता । ब्रह्मज्ञानके लिये शुद्धाशुद्धका समज्ञान, शक्तिसे सृष्टि, स्थिति और संहारका कथन, महाकाल और आदिकालिकाके नामका माहात्म्य, कौलप्रशंसा, प्रबलकलिके लक्षण, सुरापानमें कौलका अधिकार क्योंहै, कौलकी पवित्रता, संकल्पसिद्धिकथन, कलिकिंकरवर्णन, सत्यनिष्ठाकी प्रशंसा, कुलाचारकी आवश्यकता, कलिमें जातकर्मादिकी संज्ञा । और नित्यनैमित्तिकक्रियाकर्मादिका तंत्रके अनुसार करनेका विधान । तंत्रके विरुद्धकर्म करनेका दोष। तंत्रसम्मत समस्त नित्य और नैमित्तिककार्योंका अनुष्ठानही आद्यासाधन है ॥ श्लोक ॥ १०९ ॥

पंचमोल्लास।

आद्याके मंत्रका उद्धार । मंत्रसाधनप्रशंसा । मंत्रके भेद । शक्तिपूजाके पंचतत्व और पंचतत्वके विना पूजाकी निष्फलताकथन।प्रातःक्रिया, स्नानसंध्यावन्दनादि नित्यकर्म, गुरुका ध्यान, गुरुका प्रणाम,इष्टदेवताको प्रणाम, स्नानविधि, शिखाबंधन, तिलक और त्रिपुंडधारण, तांत्रिकसंध्या, गायत्रीध्यान, तर्पण, देवताको अर्घ्यदेना, मूलपूजाका पूर्वकृत्य, यज्ञमंडपमें जाना, हाथ पांव धोना, साधारण अर्घ्यका स्थापित करना। द्वारदेवताकी पूजा । विघ्ननिवारण । आसनस्थापन, विजयाशोधन,

विजयासे तर्पण, विजयाग्रहण, पूजाद्रव्यको उचितस्थानमें रखना, अग्नि, प्राकारका ध्यान, करशोधन, दिग्बंधन, भूतशुद्धि, जीवन्यास, मातृकान्यास, सरस्वतीका ध्यान, अन्तर्मातृकान्यास, बाह्यमातृकान्यास, प्राणायाम-ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अंगन्यास, पीठन्यास, आठ भैरव और आठ नायकाओंके नाम, आद्याका मूलध्यान । मानसपूजाका कथन । विशेष-अर्घ्यके संस्कारकी विधि, आदिकालिकोंके यंत्र बनानेकी रीति, पीठदेवता-पूजापद्धति, सुधाघटस्थापन, और तत्वसंस्कारका कथन, घटनिर्माण-करनेकी विधि, और व्यवस्था । घटविशेषमें फल, सुराशोधन । ब्रह्मशाप व कृष्णशापके छूटनेकी विधि । आनंद और भैरवचक्र, भैरवीका मंत्र, मांसशोधन । मत्स्यशोधन, और मुद्राशोधन ॥ श्लोक ॥ १२५ ॥

षष्ठ उल्लास ।

पंचतत्वादिकथन । पूजाके भेद, मांसके प्रकारभेद, बलिपशुनिरूपण, मत्स्य और मुद्राभेदकथन । शुद्धितात्पर्य, सुरापाननिषेध, शक्तिग्रहण-विधि, शक्तिशोधनविधि, श्रीपात्रस्थापनविधि, नवपात्र और अन्यान्य पात्र-स्थापनविधि, तर्पण और बलिप्रकरण । बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल, गणेश और सर्वभूतोंकी और शिवाबलिकी रीति । मलपूजा, आवरणपूजा, और पशुबलि । आदिकालिकाका दूसरा ध्यान, आद्याका आवाहन, प्राणप्रति-ष्ठा और जीवन्यासविधि, देवताशोधन, षोडशोपचार, उपचार देनेके मंत्रादि । गुरुशक्तिकी पूजा और तर्पणविधि, आवरणदेवताकी पूजा-पद्धति, बलि । होम, मंडलसंस्कारविधि, अग्निजलानेका मंत्र, पूर्णाहुतिकी क्रिया, जप, स्तोत्र, कवचपाठादि, जपपद्धति, मालाकी पूजा और तर्पण, जपसमर्पण, स्तोत्र, कवच, पाठ, प्रदक्षिणा, आत्मसमर्पण, विसर्जनविधि, निर्मा-ल्यवासिनीकी पूजा, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादिकी पूजा । चक्रानुष्ठान, पानपात्रनिर्माणविधि, पानपात्र और शुद्धिपात्रस्थापनके नियम, परिवेशनके नियम, सुधापानकी व्यवस्था, कुलस्त्री और गृहस्थसाधकके सुरापानके नियम चक्रका प्रसाद भोजन करनेमें झूठका विचार दूषणीयहै ॥ श्लोक ॥२६०॥

सप्तमोल्लास ।

आद्याशक्तिका शतनामस्तोत्र । भगवतीका प्रश्न और तिसका उत्तर । स्तवमाहात्म्य, स्तवके ऋष्यादि मंत्र । पुनर्वारककारकूटस्तवमाहात्म्य-कीर्त्तन । आदिकालिकाका कवच, त्रैलोक्यविजयके ऋष्यादि मंत्र, त्रैलोक्य-विजयकवच, त्रैलोक्यविजयकवचमाहात्म्य, आद्यामंत्रकी पुरश्चरणविधि । संक्षेपपूजा और संक्षेपपुरश्चरणपद्धति । कालीमंत्रकी प्रशंसाका कहना, कुल, कुलाचार और पंचतत्वनिरूपणकथन । प्रथम तत्व, द्वितीयतत्व, तृतीयतत्व, चतुर्थतत्व, पंचमतत्व और पंचतत्वके लक्षणकथन ॥ श्लोक ॥ १११ ॥

अष्टमोल्लास ।

वर्णाश्रमविधि । वर्णाश्रममें भगवतीका प्रश्न और तिसका उत्तर, कलिमें पंचवर्ण और दो प्रकारके आश्रमोंका निर्देश, गृहस्थाश्रम, भिक्षु-काश्रम, कलियुगमें संन्यासकी व्यवस्था, दोनोंमें सबके अधिकारिव्यवस्था, गृहस्थाश्रम और संन्यासका कालनिरूपण, गृहस्थका कर्तव्यकर्म और आचार व्यवहारकथन, गृहीका नित्यकर्म, पितामाताके प्रति व्यवहार, पत्नीके प्रति व्यवहार, पुत्र और कन्याके प्रति व्यवहार, भ्राताआदि बंधुओंके प्रति व्यवहार, सामाजिकव्यवहार, आन्तरिक और बाह्यिक शौचाशौचनिरूपणविधि, संध्याकालविधि, वैदिकसंध्याके अनुष्ठानमें भगवतीका संशय, वैदिकसंध्या करनेकी आवश्यकताका वर्णन, स्वाध्याय और गृहकर्मके अनुष्ठानमें नियतकालातिपातकर्तव्य । कलिमें उपवास और दानविधि, पुण्यकाल, पुण्यतीर्थकथन, पितामाताकी सेवा छोडकर तीर्थमें जानेसे नरकका निर्णय । नारीधर्म और उसका कर्तव्य । यौवनमें स्त्री स्वामीके वश रहे । अभक्ष्यमांसनिर्णय, और निरामिष-भोजनविधि । ब्राह्मणादि पांच वर्णोंकी वृत्ति । ब्राह्मणोंके कर्म । क्षत्रिय और राजाके कर्म । वैश्य और शूद्रके कर्म । भैरवीचक्र और उसकी विधि । घटस्थापन और संक्षेपपूजाकथन, आनंदभैरवी और आनंद-भैरवकी ध्यान । गृहस्थको सुरापानका निषेध । गृहस्थको परशक्ति

संगमनिषेध । शैवविवाह । चक्रके स्थापनका माहात्म्य । चक्रमें साधकका कर्तव्य । कलियुगमें कुलधर्म छिपानेका दोष । तत्वचक्रवर्णन । तत्वचक्रमें अधिकारिता । तत्वचक्रमें तत्वशोधनमंत्र । तत्वचक्रकी अनुष्ठानविधि । संन्यासधर्मकथन । संन्यास ग्रहणकरनेका काल । वृद्ध पिता माता पतिव्रताःस्त्री और छोटे २ बालबच्चोंको छोडकर संन्यास ग्रहणकरनेका निषेध । सबजातिके पुरुषोंका संन्यासमें अधिकारहै । संन्यासग्रहण करनेके समय कर्तव्यकर्म । संन्यास ग्रहणकरनेमें गुरुका आश्रय लेना । तीन ऋण (देवऋण ऋषिऋण पितृऋण) का छूटना । अपना श्राद्ध । अग्निस्थापन, शाकल्यहोम, व्याहृतिहोम, प्राणहोम, तत्वहोम, यज्ञोपवीतहोम । शिखा काटना, आहुति देना । महावाक्यका उपदेश, शिष्यको अपनारूप समझकर गुरुको प्रणाम, ब्रह्ममंत्रोपासकका संन्यास । संन्यासीके आचार व्यवहार । संन्यासीके मृतक होनेपर उसकी देहको भस्मकरना निषेधहै, चित्तशुद्धिके लिये उपासनादिकथन, कुलावधूत और यतिका माहात्म्य कहना॥श्लोक॥२८९॥

नवम उल्लास ।

दशविधिसंस्कारकी आवश्यकता और कुशंडिका । कलियुगमें मंत्र प्रयोगकी पृथकूता । कुशंडिकाके लिये वेदी बनाना, अग्निका स्थापन, अग्निका ध्यान, अग्निके सात जीवोंका वर्णन, अग्निस्थापनक्रिया, यज्ञकी सामग्रीका संस्कार । धाराहोम । यथार्थकर्मका होम । स्विष्टकृत्होम । व्याहृतिहोम । पूर्णाहुति, शान्तिकर्म, अग्निके निकट प्रार्थना और अग्निविसर्जन । दक्षिणादान, होमान्ततिलक, पुष्पधारण । मस्तकमें पुष्पधारण, चरुकर्म, जान होम, दशविधिसंस्कार । ऋतुसंस्कार, गर्भाधान, पुंसवन, पंचामृतदान । सीमंतोन्नयन । जातकर्म, नामकरण, वाहिरी, मुंडन, कर्णवेध, उपनयन, ब्रह्मचर्यप्रदान, गायत्रीका अर्थ, गृहस्थाश्रमग्रहण, विवाह, कन्यादान, विवाहांग कुशांडिका, बिना स्त्रीकी अनुमतिके दुवारा ब्राह्मविवाहका निषेध, शैवविवाहकथन, ब्राह्मविवाहकी संतानके

रहिते शैवविवाहकी संतानका धनाधिकारनिषेध, रोटी कपड़ेकी व्यवस्था शैवविवाहके भेद और शैवविवाहकी रीति, अनुलोमज और विलोमज शैवसन्तानकी जातिका निर्णय, शैवविवाहका हेतुवादकथन॥ श्लोक॥ २८४॥

दशम उल्लास ।

आभ्युदयिक, पार्वण, एकोद्दिष्ट, अन्त्येष्टि और प्रेतश्राद्धादि । वृद्धिश्राद्धमें प्रश्न, वृद्धिश्राद्धादिव्यवस्था और उसके प्रतिनिधिका निरूपण, वृद्धि-श्राद्धप्रयोग, पार्वणश्राद्धव्यवस्था । श्राद्धमें विधान, एकोद्दिष्टश्राद्ध-व्यवस्था, प्रेतश्राद्धव्यवस्था, आशौचव्यवस्था, शवदाहव्यवस्था । सह-मरणव्यवस्था, अन्त्येष्टिक्रियाकी व्यवस्था । आद्यश्राद्धके अधिकारीका निरूपण, तिलकांचनउत्सर्गव्यवस्था, सस्यादिदानव्यवस्था, वृषोत्सर्ग । कौलपूजाप्रशंसाकथन, शुभकर्मका दिननिरूपण, गृहप्रवेशनियम और संक्षेपसे यात्राका वर्णन, दुर्गोत्सवादिमें कौलका कर्तव्य । कौलमाहात्म्य-वर्णन । पूर्णाभिषेक और उसकी व्यवस्था। पूर्णाभिषेकका योग्य अधिकारी। गुरुका आश्रय ग्रहणकरना । गणेशपूजा । ध्यान, पीठशक्ति और आवरण-पूजा, अधिवास, तिलकांचन, कौलभोज्यदान, षोड़शमातृकापूजा । वसुधारा और वृद्धिश्राद्ध, पूर्णाभिषेकके लिये गुरुके पास जायकर प्रार्थना । पूर्णाभिषेकका संकल्प, गुरुवरण, यज्ञमंडपका संस्कार, घटस्थापन। पात्रस्थापन और तर्पणविषयकयवस्था । पूजा और शक्तिसा-धककी पूजा, शक्तिसाधकसे गुरुकी प्रार्थना । शक्तिसाधककी पूर्णाभिषेकमें सम्मति, पूर्णाभिषेकमंत्रकथन, पशुको दियाहुआ मंत्र फिर ग्रहण करना, शिष्यका नामकरणव्यवस्था, गुरुदक्षिणा, शक्तिसाधककी पूजा और अमृतकी प्रार्थना करना । अमृतदानमें गुरुकी प्रार्थना करना, शक्तिसाधककी सम्मति । कौललोगोंकी अनुमति लेकर शिष्यको अमृतका दान करना, प्रसादका परसना, चक्रका अनुष्ठान करना, पूर्णाभिषेकमें नवरात्रादि कल्पभेद और व्यवस्थाकथन, शाक्ताभिषिक्तकी चक्रेश्वरताका निषेध करना, कुलद्रव्य और कुलसाधककी निन्दाका दोष कहना, ब्रह्मनिष्ठकौलके

लिये कर्मत्याग करना; अथवा कर्मानुष्ठानकरनेमें तुल्यताका कथन, सर्वत्र ब्रह्मकी पूजाकी व्यवस्था, सत्कौलका लक्षणकथन ॥ श्लोक ॥२१२॥

एकादश उल्लास ।

शान्तिरक्षा, प्रायश्चित्तव्यवस्था, द्विविधपापका लक्षण, राजा प्रजा-के पापका दंड; धर्माधर्म, प्रश्नोत्तर, व्यभिचार, बलात्कारमें पाप और उसका दंड, पराइ स्त्रीको पापकी दृष्टिसे देखनेका पाप, नर-हत्या, कर्तव्यपालनमें अस्वीकार, धर्मपत्नीमें अन्यान्यका व्यवहार, वंचक, विश्वासघातक, चोर, झूंठी गवाही देनेवाला, जालकरनेवालेको दण्ड, धर्मशाला और विचारपद्धति, हिन्दुआईनका (कानून) सार तात्पर्य, महारोगादिका प्रायश्चित्त, व्रतभंगका महापाप, गोवधका महापाप, इत्यादि विविध प्रसंग ॥ श्लोक ॥ १७० ॥

द्वादश उल्लास ।

सदाशिवके द्वारा सनातन व्यवहारविषयक कथन । सम्बंधकथन, राजा प्रजा व्यवहारकथन, विवाह धनाधिकारव्यवस्था, पिंडदानव्यवस्था, शौचाशौचकथन, प्रकारभेदसे विवाह, क्रीतद्रव्यादिका मोल, ऋण, इत्यादि ॥ श्लोक ॥ १२९ ॥

त्रयोदश उल्लास ।

महाकालीरूप, साधन, भजन, ध्यान, धारणा, देव देवीकी प्रतिष्ठा-का कारण, नियमव्यवस्था, दानके नियम, दाताका भाव, निष्काम और कामनाका भाव, पशुयज्ञादिविधि, पूजाध्यानादिका प्रकरण, गृहपूजा और नियम, नवग्रहका रूप, ध्यानपूजापद्धति, विविध बीजमंत्र, जला-शयप्रतिष्ठा, सत्कर्मक्रियाकथन, वास्तुप्रतिष्ठाका क्रम और पूजा । संसारके विविध कार्य, दशसंस्कारव्यवस्था ॥ श्लोक ॥ ३१० ॥

चतुर्दश उल्लास ।

शिवपूजाका प्रश्न । समस्तशिवपूजाओंके पीछे फिर अचलशिव-पूजाका कथन, शिवलिंग क्याहै, उसकी पूजा, ध्यान, विश्वरूप क्योंहै, पूजनीय क्योंहै, आसन, उपचार, पूजा, ध्यान, धारणा, फलविधि, अर्च्च-नाविधि इत्यादि । मुक्ति क्याहै ? मुक्तिकी आवश्यकता, मुक्तपुरुष कौ-न है, मुक्तिका उपाय ज्ञान और कर्मकथन, ज्ञान और मुक्तिका संबंध, साधुके लक्षण, चारप्रकार अवधूतोंके लक्षण, सर्वधर्मनिर्णयसार, इत्यादि ॥ श्लोक ॥ २११ ॥

महानिर्वाणतंत्रका सूचीपत्र समाप्त ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना–बंबई.

श्रीः ।

अथ महानिर्वाणतंत्रकी अनुक्रमणिका-प्रारंभः ।

इति महानिर्वाणतंत्रकी अनुक्रमणिंका समाप्ता।

श्रीः ।

वातजात्मनेनमः । श्रीगणेशायनमः ।

महानिर्वाणतंत्रम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।

प्रथम उल्लासः ।

गिरीन्द्रशिखरेरम्येनानारत्नोपशोभिते ।
नानावृक्षलताकीर्णेनानापक्षिरवैर्युते ॥ १ ॥

ज्योति जागती जगतमें, जननि जयाजयकार ।
कालीकरधरकर उवर, भक्तपरचौमँझधार ॥ १ ॥

अर्थ-कैलास पर्वतका एक रमणीक शिखर है, यह अनेक प्रकारके रत्नोंसे विभूषित, अनेक प्रकारके वृक्षलताओंसे युक्त और बहुतसे पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान है ॥ १ ॥

सर्वर्त्तुकुसुमामोदमोदितेसुमनोहरे ।
शैत्यसौगन्ध्यमान्द्याढ्येमरुद्भिरुपवीजिते ॥ २ ॥

अर्थ-इस मनोहर स्थानमें सब ऋतु सबसमयमें उदित होकर अनेक प्रकारका कुसुम सौरभ फैलाती हैं, सदैव शीतल, मंद, सुगंध पवन चला करता है ॥ २ ॥

अप्सरोगणसङ्गीतकलध्वानिनिनादिते ।
स्थिरच्छायद्रुमच्छायाच्छादितेस्निग्धमञ्जुले ॥ ३ ॥

अर्थ-अप्सराओंके मधुर गानेका शब्द सदा गुंजारता रहता है। वहांके झांदेदार वृक्षगण स्थिर भावसे छाया देते हैं, यह स्थान अत्यन्त स्निग्ध और मनोहर है ॥ ३ ॥

मत्तकोकिलसन्दोहसङ्घुष्टविपिनान्तरे ।
सर्वदास्वगणैः सार्धमृतुराजनिषेविते ॥ ४ ॥

अर्थ-दूसरे वनोंमें मधुर रवसे कोयले शब्द कररही हैं । तहां सदा ऋतुराज वसंत अपने सहकारियोंके साथ विराजमान है ॥४॥

सिद्धचारणगन्धर्वगाणपत्यगणैर्वृते ।
तत्रमौनधरंदेवंचराचरजगद्गुरुम् ॥ ५ ॥

अर्थ-सिद्ध, चारण, गंधर्व और विनायकोंसे यह स्थान सदा घिरा रहता है । इस शिखरपर चराचर जगत्के गुरुरूप महादेवजी मौन होकर विराजमान हैं ॥ ५ ॥

सदाशिवंसदानन्दंकरुणामृतसागरम् ।
कर्पूरकुन्दधवलंशुद्धसत्त्वमयंविभुम् ॥ ६ ॥

अर्थ-वे सदा कल्याणके देनेवाले, सदानंद करुणास्वरूप अमृतके समुद्र हैं । उनका आकार कपूर और बबूलेके फूलकी समान श्वेत है, शुद्धसत्वमय और अनुपम विभु हैं ॥ ६ ॥

दिगम्बरं दीननाथंयोगीन्द्रंयोगिवल्लभम् ।
गङ्गाशीकरसंसिक्तजटामण्डलमण्डितम् ॥ ७ ॥

अर्थ-वे दिगंबर-अर्थात् मायारहित हैं, दीननाथ, योगियोंमें इंद्र और योगियोंके प्यारे हैं, उनके जटाजूट गंगाशीकरसे संयुक्त होरहे हैं ॥ ७ ॥

विभूतिभूषितंशान्तंव्यालमालंकपालिनम् ।
त्रिलोचनंत्रिलोकेशंत्रिशूलवरधारिणम् ॥ ८ ॥

अर्थ-उनके सब शरीरमें विभूति लगी हुई है, मूर्ति अत्यन्त शान्त है, वे नरकपाल और सर्पोंकी मालासे शोभायमान हैं, उन त्रिलोकीके नाथ और त्रिनेत्रके हाथमें त्रिशूल है ॥ ८ ॥

आशुतोषंज्ञानमयंकैवल्यफलदायकम् ।
निर्विकल्पंनिरातङ्कंनिर्विशेषंनिरञ्जनम् ॥ ९ ॥

अर्थ-वे आशुतोष-अर्थात् शीघ्रही प्रसन्न होनेवाले, ज्ञानमय और कैवल्य फल देनेवाले हैं, वे सुखदुःखरहित, तीनों तापोंसे हीन, भेदहीन और निरंजन-अर्थात् ज्ञानीसे अगम्य हैं ॥ ९ ॥

सर्व्वेषांहितकर्त्तारंदेवदेवंनिरामयम् ।
प्रसन्नवदनंवीक्ष्यलोकानांहितकाम्यया ।
विनयावनतादेवीपार्वतीशिवमब्रवीत् ॥ १० ॥

अर्थ-वे निरामय, देवदेव और सबके हितकारी हैं, उनका प्रसन्न वदन देखकर देवी पार्वतीने एकदिन लोकके हितार्थ अवनत हो विनीत वचन कहकर पूछा ॥ १० ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

देवदेव ! जगन्नाथ ! मन्नाथ ! करुणानिधे ! ।
त्वदधीनास्मिदेवेश ! तवाज्ञाकारिणीसदा ॥ ११ ॥

अर्थ-पार्वतीजी बोलीं-हे देवदेव! हे जगन्निवास!आप मेरे नाथ और दयाके समुद्र हैं । हे देवताओंके ईश्वर ! मैं आपके आधीन हूं सदा आपकी आज्ञाके अनुसार वर्तनेवाली हूं ॥ ११ ॥

विनाज्ञयामयाकिञ्चिद्भाषितुंनैवशक्यते !
कृपावलेशोमयिचेत्स्नेहोऽस्तियदिमांप्रति ॥ १२ ॥

अर्थ-विना आपकी अनुमतिके प्राप्त हुए मैं आपसे कुछभी नहीं कह सक्ती यदि मेरे प्रति आपके कृपाकण प्रकाशितहों और जो आपका स्नेह मेरे ऊपर हो ॥ १२ ॥

तदानिवेद्यते किञ्चिन्मनसायद्विचारितम् ।
त्वदन्यःसंशयस्यास्यकास्त्रिलोक्यांमहेश्वर ! ।
छेत्ताभवितुमर्होवासर्वज्ञःसर्वशास्त्रवित् ॥ १३ ॥

अर्थ–तो मैं अपने मनकी वासना आपके निकट प्रकाशकर सक्ती हूं, हे महेश्वर ! आपके सिवाय और कौन मेरे संदेहको भंजन कर सक्ता है और कौन सर्वशास्त्रका जाननेवाला सर्वज्ञ है ॥ १३ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

किमुच्यतेमहाप्राज्ञेकथ्यतांप्राणवल्लभे ।
यदकथ्यंगणेशेऽपिस्कन्देसेनापतावपि ॥ १४ ॥

अर्थ–सदाशिवने कहाः–हे प्राणवल्लभे ! तुम अत्यन्त बुद्धिमती हो, कहो कि तुम क्या जाननेकी इच्छा करती हो, जो बात गणेश या कार्त्तिकसे प्रकाशित नहीं की उस बातको तुह्मारे निकट कहते हुए मुझको कुछ बाधा नहीं है ॥ १४ ॥

तवाग्रेकथयिष्यामिसुगोप्यमपियद्भवेत् ।
किमस्तित्रिषुलोकेषुगोपनीयंतवाग्रतः ॥ १५ ॥

अर्थ–जो विशेष गुप्त करने योग्य भी हो तो भी मैं उसको तुमसे कहूंगा, (अधिक क्या कहूं) त्रिलोकीमें ऐसा कोई विषय नहीं है जो तुमसे छिपा हुआ रहसके ॥ १५ ॥

ममरूपासिदेवित्वंनभेदोऽस्तित्वयामम ।
सर्वज्ञाकिंनजानासित्वनभिज्ञेवपृच्छसि ॥ १६ ॥

अर्थ–हे देवि! तुम हमाराही स्वरूपहो, तुममें और हममें कुछ भेद नहीं है तुम सर्वज्ञ होकर भी अनभिज्ञकी नांई हमसे क्या पूछती हो ॥ १६ ॥

इतिदेववचःश्रुत्वापार्वतीहृष्टमानसा ।

विनयावनतासाध्वीपरिपप्रच्छशङ्करम् ॥ १७ ॥

अर्थ-तब पार्वतीजी, परमेश्वरके मुखारविंदसे यह वचन सुनकर चित्तमें अत्यन्त हर्षित हुई और विनयद्वारा नम्र हुए वचनोंकरके महादेवजीसे कहने लगीं ॥ १७ ॥

श्रीआद्योवाच ।

भगवन्! सर्वभूतेश! सर्वधर्मविदांवर ।
कृपावताभगवताब्रह्मान्तर्यामिणापुरा ॥ १८ ॥

अर्थ-आदिशक्तिने कहा-हे भगवन्! आप सर्व प्राणियोंके ईश्वर और सर्व धर्म जाननेवालोंमें प्रथम गिननेके योग्य हैं ॥ १८ ॥

प्रकाशिताश्चतुर्वेदाःसर्वधर्मोपबृंहिताः ।
वर्णाश्रमादिनियमायत्रचैवप्रतिष्ठिताः ॥ १९ ॥

अर्थ-आपने कृपाके वश होकर सर्वधर्मयुक्त चार वेद प्रगट किये हैं इन दोनोंमें सब वर्ण और आश्रमोंकी विधिकी व्यवस्था की गई है ॥ १९ ॥

त्वदुक्तयोगयज्ञाद्यैःकर्मभिर्भुविमानवाः ।
देवान्पितॄन्प्रीणयन्तःपुण्यशीलाःकृतेयुगे ॥ २० ॥

अर्थ-आपके वचनानुसार योग व यज्ञादि सिद्ध करके सत्ययुगके पुण्यवान मनुष्यगण देवता और पितृगणोंको तृप्त करते हैं ॥ २० ॥

स्वाध्यायध्यानतपसादयादानैर्जितेन्द्रियाः ।
महाबलामहावीर्य्यामहासत्वपराक्रमाः ॥ २१ ॥

अर्थ-तिस कालके लोक इंद्रियोंको जीतकर वेदका पढ़ना, परमार्थकी चिन्ता, तप, दया और दानशीलताके द्वारा, महाबलवान, महावीर्ययुक्त और अत्यंत पराक्रमी होतेथे ॥ २१ ॥

देवायतनगामर्त्यादेवकल्पादृढव्रताः ।
सत्यधर्मपराःसर्वेसाधवःसत्यवादिनः ॥ २२ ॥

अर्थ–वे लोग दृढव्रत, देवताओंकी समान, मर्त्य–अर्थात् मरण शील होकरभी देवलोकमें जासक्तेथे, उस समयमें सबही सत्य बोलनेवाले, साधू और श्रेष्ठ मार्गमें चलने वालेथे ॥ २२ ॥

राजानःसत्यसङ्कल्पाःप्रजापालनतत्पराः ।
मातृवत्परयोषित्सुपुत्रवत्परसूनुषु ॥ २३ ॥

अर्थ–उस कालमें राजालोग सत्यसंकल्प और प्रजापालन-परायण थे, वोह पराई स्त्रीको माताकी समान और पराए पुत्रको पुत्रकी समान देखते थे ॥ २३ ॥

लोष्ट्रवत्परवित्तेषुपश्यन्तोमानवास्तदा ।
आसन्स्वधर्मनिरताःसदासन्मार्गवर्त्तिनः ॥ २४ ॥

अर्थ–उस समयके लोग पराये धनको मट्टीके ढेलेकी समान देखतेथे (अधिक क्या कहा जाय) सबही अपने धर्ममें निरत और श्रेष्ठमार्गके अवलम्बीथे ॥ २४ ॥

नमिथ्याभाषिणःकेचिन्नप्रमादरताःक्वचित् ।
नचौरानपरद्रोहकारकानदुराशयाः ॥ २५ ॥

अर्थ–कोईभी मिथ्यावादी, प्रमादी, चोर, पराई बुराई करने-वाला और बुरे आशयवाला न था ॥ २५ ॥

नमत्सरानातिरुष्टानातिलुब्धानकामुकाः ।
सदन्तःकरणाःसर्वेसर्वदानन्दमानसाः ॥ २६ ॥

अर्थ–वोह मत्सरता–अर्थात् शुभ मनुष्योंके साथ द्वेष करना क्रोध, लोभ वा कामुकताके हाथमें नहीं गिरे, सबहीका अन्तःकरण सत् और आनंदमय था ॥ २६ ॥

भूमयःसर्वशस्याढ्याःपर्ज्जन्याःकालवर्षिणः ।
गावोऽपिदुग्धसम्पन्नाःपादपाःफलशालिनः ॥ २७ ॥

अर्थ–पृथ्वी तिसकालमें अनेक प्रकारके धान्योंसे पूर्णथी, अवसरपर मेघ जल वर्षातेथे, गायें दूधके भारसे झुकी रहतींथीं, और वृक्ष फलोंके भारसे पूर्णथे ॥ २७ ॥

नाकालमृत्युस्तत्रासीन्नदुर्भिक्षंनवारुजः ।
हृष्टाःपुष्टाःसदारोग्यास्तेजोरूपगुणान्विताः[1] ॥ २८ ॥

अर्थ–उस समयमें अकालमृत्यु, दुर्भिक्ष, वा रोगभय नहीं था, सबही हृष्ट, पुष्ट, रोगरहित, तेजस्वी और रूपगुणसे युक्तथे ॥२८॥

स्त्रियोनव्यभिचारिण्यःपतिभक्तिपरायणाः ।
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राःस्वाचारवर्तिनः ॥२९॥

अर्थ–स्त्रियें व्यभिचारिणी नहींथीं सबहि पतिमें भक्ति करतींथीं। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सबही नियमित आचार व्यवहारके अनुसार चलतेथे ॥ २९ ॥

स्वैःस्वैर्धर्मैर्यजन्तस्तेनिस्तारपदवींगताः ।
कृतेव्यतीतेत्रेतायांदृष्ट्वाधर्मव्यतिक्रमम् ॥ ३० ॥

अर्थ–वह अपने २ जातीय धर्मका अनुष्ठान करके निस्तारके मार्गको प्राप्त हुएहैं, सतयुगके अन्त– अर्थात् त्रेताके आगमनमें आपने धर्मकी कुछ एक अंग हीनता देखी ॥ ३० ॥

वेदोक्तकर्मभिर्मर्त्यानशक्ताःस्वेष्टसाधने ।
बहुक्लेशकरंकर्म्मवैदिकंभूरिसाधनम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–क्यों कि उस समय मनुष्यगण वेदोक्त कर्मके द्वारा अपना

---

१ तेजोरूपसमान्विता इति वा पाठः ।

इष्ट सिद्ध करनेमें असमर्थ हुए, उन्होंने जानाकि वैदिक कार्योंके सिद्ध करनेको अत्यन्त साधना करनी चाहिये और वोह कार्य बहुतसे क्लेशोंसे सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥

कर्त्तुंनयोग्यामनुजाश्चिन्ताव्याकुलमानसाः ।
त्यक्तुं कर्त्तुंनचार्हंतिसदाकातरचेतसः ॥ ३२ ॥

अर्थ–जब मनुष्य वैदिक कार्योंके सिद्ध करनेको असमर्थ हुए तब उनके अन्तःकरण चिन्तासे व्याकुलहो उठे, वह न तो वेदोक्त कार्योंकोही सिद्ध करसके और न उनको त्यागही करनेमें समर्थ हुए इस कारण खेद करने लगे ॥ ३२ ॥

वेदार्थयुक्तशास्त्राणिस्मृतिरूपाणिभूतले ।
तदात्वंप्रकटीकृत्यतपःस्वाध्यायदुर्बलान् ॥ ३३ ॥

अर्थ–तिस कालमें आपने वेदार्थमय स्मृतिशास्त्र पृथ्वीपर प्रगट करके तप करने और वेद पढ़नेमें असमर्थ ॥ ३३ ॥

लोकानतारयःपापाद्दुःखशोकामयप्रदात् ।
त्वांविनाकोऽस्तिजीवानांघोरसंसारसागरे ॥ ३४ ॥

अर्थ–लोगोंको दुःख, शोक और पीडादायक पापसे उद्धार कियाथा, आपके सिवाय इस संसाररूपी घोर समुद्रसे और कौन जीवोंकी रक्षा कर सक्ता है ॥ ३४ ॥

भर्त्तापातासमुद्धर्त्तापितृवत्प्रियकृत्प्रभुः ।
ततोऽपिद्वापरेप्राप्तेस्मृत्युक्तसुकृतोज्झिते ॥ ३५ ॥

अर्थ–जिस प्रकार पिता अपने पुत्रको पालता हैं वैसेही आप अधम जीवके पालन करनेवाले हैं. भरण, पोषण करनेवाले और उद्धार करनेवाले आपहीहैं ॥ आप सबके स्वामी और कल्यान विधाता हैं ॥ इस उपरांत जब द्वापरयुग आया तब स्मृतिसम्मत क्रियादिका हास होने लगा ॥ ३५ ॥

धर्मार्द्धलोपेमनुजेआधिव्याधिसमाकुले ।
संहिताद्युपदेशेनत्वयैवोद्धारितानराः ॥ ३६ ॥

अर्थ-तिस कालमें आधा धर्म्म लोप होगया, इसकारण मनुष्यगण अनेक प्रकारकी आधिव्याधियोंसे पूर्ण हुए, इस समयमें आपने संहिताशास्त्रका उपदेश देकर मनुष्योंका उद्धार किया ॥ ३६ ॥

आयातेपापिनिकलौसर्वधर्मविलोपिनि ।
दुराचारेदुष्प्रपञ्चेदुष्टकर्मप्रवर्तके ॥ ३७ ॥

अर्थ-इस समयमें सर्व धर्मका लोप करनेवाले, दुष्टकर्मको करानेवाले, दुराचारी, खोटे प्रपंचको करानेवाले कलियुगको अधिकार हुआ ॥ ३७ ॥

नवेदाःप्रभवस्तंत्र[1]स्मृतीनांस्मरणंकुतः ।
नानेतिहासयुक्तानांनानामार्गप्रदर्शिनाम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-इस कालमें वेदका प्रभाव खर्व होगया स्मृतियेंभी विस्मृतिके समुद्रमें डूबगई । इस समयमें अनेक प्रकारके इतिहासोंसे पूर्ण अनेक प्रकारके मार्गोंको दिखानेवाले ॥ ३८ ॥

बहुलानांपुराणानांविनाशोभविताविभो ।
तदालोकाभविष्यन्तिधर्मकर्मबहिर्मुखाः ॥ ३९ ॥

अर्थ-बहुतसे पुराणोंका नामतक प्रकाशित नहीं रहैगा।हे विभो! इस कारण सबही धर्मकर्मसे विमुख होजांयगे ॥ ३९ ॥

उच्छृङ्खलामदोन्मत्ताःपापकर्मरताःसदा ।
कामुकालोलुपाःक्रूरानिष्ठुरादुर्मुखाःशठाः ॥ ४० ॥

अर्थ-कलिके जीवगण शृंखलारहित (अर्थात् वेदादिरूप बेडियां

---

१ प्रभवन्त्यत्र इति वा पाठः ।

जिनकी कटगई हैं) । मदोन्मत्त सर्वदा पापमें लिप्त, कामी, धनके लालचि, क्रूर, निठुर, अप्रियभाषी और शठ होजांयगे ॥ ४० ॥

स्वल्पायुर्मन्दमतयोरोगशोकसमाकुलाः ।
निःश्रीकानिर्बलानीचानीचाचारपरायणाः ॥ ४१ ॥

अर्थ—इस कालके लोग, अल्पायु, मन्दमति, रोगशोकसे युक्त, श्रीहीन, बलहीन, नीच होकर नीचकार्योंकूं करैंगे ॥ ४१ ॥

नीचसंसर्गनिरताःपरवित्तापहारकाः ।
परनिन्दापरद्रोहपरिवादपराःखलाः ॥ ४२ ॥

अर्थ—इस कालमें सबही नीचोंका संग करैंगे, पराये चित्तको हरण करनेवाले, परनिंदा, परद्रोही, पराई ग्लानिमें तत्पर और खल होजांयगे ॥ ४२ ॥

परस्त्रीहरणेपापशङ्काभयविवर्जिताः[1] ।
निर्धनामलिनादीनादरिद्राश्चिररोगिणः ॥ ४३ ॥

अर्थ—पराई स्त्रीके हरण करनेमें यह लोग पापकी शंका या भय नहीं करेंगे यह लोग निर्धन,मलीन,दीन और सदा रोगी रहकर समय बितावेंगे ॥ ४३ ॥

विप्राःशूद्रसमाचाराःसन्ध्यावन्दनवर्जिताः ।
अयाज्ययाजकालुब्धा[2]दुर्वृत्ताःपापकारिणः ॥ ४४ ॥

अर्थ—ब्राह्मण संध्यावंदनादि हीनहो शूद्रकी समान आचारकरेंगे वे लोभके वश होकर अयाज्य याजन-अर्थात् जिस पुरुषकी पुरोहताई करनेसे अधर्म होता है उसके पुरोहित बनकर यज्ञ करावेंगे और दुरात्मा होकर पापकार्य करेंगे ॥ ४४ ॥

---

१ पापाः शङ्काभयविवर्जिताः इति पाठान्तरम् । २ अयाज्ययाजकामूका इत्यपि क्वचित् पाठः ।

असत्यभाषिणोमूर्खादाम्भिकादुष्प्रपञ्चकाः ।
कन्याविक्रयिणोव्रात्यास्तपोव्रतपराङ्मुखाः॥४५॥

अर्थ–यह झूंठ बोलनेवाले,मूर्ख, दंभी और घोर प्रपंचक (धोखेबाज) होंगे कन्याको वेचेंगे पतित और तपोव्रत भ्रष्ट होकर समय बितावेंगे ॥ ४५ ॥

लोकप्रतारणार्थायजपपूजापरायणाः ॥
पाषण्डाःपण्डितम्मन्याःश्रद्धाभक्तिविवर्जिताः॥ ४६ ॥

अर्थ–कलियुगके ब्राह्मणलोग लोगोंको छलनेके अभिप्रायसे जप और पूजा करेंगे; परंतु इनके अन्तरमें श्रद्धा भक्ति कुछभी नहीं रहेगी यह घोर पाखंडी और पतितकी समान कार्य करकेभी अपनी पंडिताईका परिचय देंगे ॥ ४६ ॥

कदाहाराःकदाचाराधूर्तकाःशूद्रसेवकाः।
शूद्रान्नभोजिनःक्रूरावृषलीरतिकामुकाः ॥४७॥

अर्थ–इनका आहार निंदित होगा, आचार अधम होगा, यह शूद्रके सेवक होकर शूद्रका अन्न ग्रहण करेंगे और शूद्रकी स्त्रीका संग करनेमें लोलुप होंगे ॥ ४७ ॥

दास्यन्तिधनलोभेनस्वदारान्नीचजातिषु।
ब्राह्मण्यचिह्नमेतावत्केवलंसूत्रधारणम् ॥ ४८॥

अर्थ–अधिक कहांतक कहा जाय यह धनके लोभसे नीच जातिके पुरुषको अपनी स्त्री दे देंगे । यह लोग केवल चिह्नके लिये गलेमें डोरा डाल रक्खेंगे ॥ ४८ ॥

नैवपानादिनियमोभक्ष्याभक्ष्यविवेचनम् ।
धर्मशास्त्रसदानिन्दासाधुद्रोहोनिरन्तरम् ॥ ४९ ॥

---

१ कदाचाराद्दनका इति वा पाठः ।

अर्थ-इनके भक्ष्याभक्ष्यका विचार या पानादिका नियम नहीं रहैगा यह सदा धर्मशास्त्रकी निंदा और साधुओंका द्रोह करेंगे॥४९॥

सत्कथालापमात्रञ्चनतेषांमनसिक्वचित् ।
त्वयाकृतानितन्त्राणिजीवोद्धारणहेतवे ॥ ५० ॥

अर्थ-इनके मनमें सत्कथाका आलाप कभी स्थानको प्राप्त नहीं होगा, (जो हो) जीवोंका उद्धार करनेके लिये आपने तंत्रशास्त्र बनाया है ॥ ५० ॥

निगमागमजातानिभुक्तिमुक्तिकराणिच ।
देवीनांयत्रदेवानांमन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-और भोग अपवर्गविधायक बहुतसे आगम व नियम प्रकाशित कियेहैं; तिनमें देव देवियोंके मंत्र और यंत्रादिके सिद्ध करनेके उपाय हैं ॥ ५१ ॥

कथिताबहवोन्यासाःसृष्टिस्थित्यादिलक्षणाः ।
बद्धपद्मासनादीनिगदितान्यपिभूरिशः ॥ ५२ ॥

अर्थ-आपने सृष्टि, स्थिति आदिके लक्षण और प्रकार न्यासकी कथा कहीहै आपने बद्धपद्मासन और मुक्तपद्मासनादि बहूतसे आसनोंकाभी विषय कहा है ॥ ५२ ॥

पशुवीरदिव्यभावादेवतामन्त्रसिद्धिदाः[1] ।
सवासनंचितारोहोमुण्डसाधनमेवच ॥ ५३ ॥

अर्थ-जिनसे देवताओंका मंत्र सिद्ध होजावे आपने तैसे पशु वीर और दिव्यभाव प्रकाशित कियेहैं । इनके सिवाय शवासन चितारोहण और मुंडसाधनभी कहाहै ॥ ५३ ॥

---

१ देवता यंत्रसिद्धिदाः इति वा पठनीयम् ।

लतासाधनकर्माणित्वयोक्तानिसहस्रशः ।
पशुभावदिव्यभावौस्वयमेवनिवारितौ ॥ ५४ ॥

अर्थ-आपने लतासाधनादि अगणित अनुष्ठानोंका वर्णन किया है किन्तु आपने पशु व दिव्यभाव सम्बंधमें निषेध किया है ॥५४॥

कलौनपशुभावोऽस्तिदिव्यभावःकुतोभवेत् ।
पत्रंपुष्पंफलंतोयंस्वयमेवाहरेत्पशुः ॥ ५५ ॥

अर्थ-तात्पर्य यह है कि-अब कलियुगमें पशुभाव होनेकी संभावना नहीं तब दिव्यभावकी संभावना कैसे संभव होसक्ती है, पत्ते, फल, फूल और जल इनका लाना पशुभावके अवलंबन करनेका काम है ॥ ५५ ॥

नशूद्रदर्शनंकुर्य्यान्मनसानास्त्रियंस्मरेत् ।
दिव्यश्चदेवताप्रायःशुद्धान्तःकरणःसदा ॥ ५६ ॥

अर्थ-शूद्रका देखना और मन मनमेंहि स्त्रीकी मूर्त्तिका देखना कर्तव्य नहींहै; दिव्यभाव अवलंबन करने लिये देवताओंकी समान निर्मल अन्तःकरण होना उचित है ॥ ५६ ॥

द्वन्द्वातीतोवीतरागःसर्वभूतसमःक्षमी ।
कलिकल्मषयुक्तानांसर्वदाऽस्थिरचेतसाम् ॥ ५७ ॥

अर्थ-इसके सिवाय सुख दुःखको समान भोगकरना, रागद्वेषसे रहित होकर चलना, सब प्राणियोंको एकसा देखना और क्षमाशील होना पड़ेगा, विशेष विचारकरनेसे जाना जाता है कि यह कलिकाल अत्यंत भयानक है, इस कालके जीवगण सदा पापमें आसक्त और चंचलचित्तवाले रहते हैं ॥ ५७ ॥

निद्रालस्यप्रसक्तानांभावशुद्धिःकथंभवेत् ।
वीरसाधनकर्माणिपञ्चतत्वोदितानिच ॥ ५८ ॥

अर्थ–जो लोग निद्रा और आलस्यसे युक्त हैं उनके भावकी शुद्धिका होना कैसे किसप्रकारसे संभव है, हेशंकर! आपने वीरसाधन विषयमें पंचतत्वका विषय कहा है ॥ ५८ ॥

मद्यंमांसंतथामत्स्यमुद्रामैथुनमेवच ।
एतानिपञ्चतत्वानित्वयाप्रोक्तानिशंकर ! ॥ ५९ ॥

अर्थ–आपने मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पांचतत्वोंको सविशेष कहा है ॥ ५९ ॥

कलिजामानवालुब्धाःशिश्नोदरपरायणाः ।
लोभात्तत्रपतिष्यन्तिनकरिष्यंतिसाधनम् ॥ ६० ॥

अर्थ–परंतु (दुःखकी बात है कि) कलियुगके जीवगण शिश्नोदरपरायण (केवल आहार विहारसेही मनको कृतार्थ समझनेवाले) होंगे वह साधनाको छोड़ लोभसे बाध्य हो इन पांच तत्वोंमें गिरेंगे ॥ ६० ॥

इन्द्रियाणांसुखार्थायपीत्वाचबहुलंमधु ।
भविष्यन्तिमदोन्मत्ताहिताहितविवर्जिताः ॥ ६१ ॥

अर्थ– वह मदमाते हो हिताहितके विचारको पानी देंगे, और इन्द्रियोंके सुखके लिये बहुतसा मधु पीवेंगे ॥ ६१ ॥

परस्त्रीधर्षकाःकेचिद्दस्यवोबहवोमुदि ।
नकरिष्यन्तितेमत्ताःपापयोनिविचारणम् ॥ ६२ ॥

अर्थ–वह परनारियोंके सतीत्वका नाश करेंगे और चोरोंकी वृत्तिसे दिन बितावेंगे । वह पापाचारी पुरुष मत्त होकर योनिविचार नहीं करेंगे ॥ ६२ ॥

---

१ पापायोनिविचारणम् । इति वा पाठचम् ।

अतिपानादिदोषेणरोगिणोबहवःक्षितौ ।
शक्तिहीनाबुद्धिहीनाभूत्वाचविकलेन्द्रियाः ॥ ६३ ॥

अर्थ-वह अत्यंत पानदोषसे इस पृथ्वीपर सदा रोगी रहेंगे, शक्तिहीन, बुद्धिहीन और विकलेंद्रिय हो जांयगे ॥ ६३ ॥

ह्रदेगर्त्ते प्रान्तरेचप्रासादात्पर्वतादपि ।
पतिष्यन्तिमरिष्यन्तिमनुजामदविह्वलाः ॥ ६४ ॥

अर्थ-वह मतवाले हो ह्द (अगाध जलाशय) गर्त (करविल) प्रान्तर (दुर्गममार्ग) प्रासाद (बडी अटारी) या पर्वतके शिखरसे गिरकर मरेंगे ॥ ६४ ॥

केचिद्विवादयिष्यंति गुरुभिः स्वजनैरपि ।
केचिन्मौनामृतप्रायाअपरेबहुजल्पकाः ॥ ६५ ॥

अर्थ-कोई २ पुरुष मतवाले हो बडे बूढे और स्वजनोंके साथ लडाई, झगडा करेंगे, कोई मृतकतुल्य और मौनी होकर रहेंगे, कोई २ बडी भारी जल्पना (पराये मतको खण्डन करके अपना मत जनाने) में लगे रहेंगे ॥ ६५ ॥

अकार्य्यकारिणःक्रूराधर्म्ममार्गविलोपकाः ॥
हितायया निकर्म्माणिकथितानि त्वयाप्रभो ! ॥ ६६ ॥
मन्येतानिमहादेव ! विपरीतानिमानवे ॥
केवायोगंकरिष्यन्तिन्यासजातानिकेऽपि वा ॥ ६७ ॥

अर्थ-यह बुरी क्रियाओंके करनेवाले, क्रूर और धर्ममार्गका लोप करनेवाले होंगे । हे प्रभो! आपने प्राणियोंके मंगलार्थ जिन कार्योंका उपदेश दियाहै मैं जानती हूं कि कलियुगमें वह कार्य मनुष्योंके लिये विपरीत हो जांयगे, कोई योगाभ्यासमें रत होगा कोई न्यासादि कार्य करेगा ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

स्तोत्रपाठंयन्त्रलिपिं पुरश्चर्य्यांजगत्पते ! ।
युगधर्मप्रभावेणस्वभावेनकलौनराः ॥ ६८ ॥

अर्थ–हे जगन्नाथ ! कौन पुरुष स्तोत्र पढ़कर यंत्रलिपी और पुरश्चरण करेगा, युगधर्मके प्रभावसे स्वभावसेही कालियुगी मनुष्य ॥ ६८ ॥

भविष्यन्त्यतिदुर्वृत्ताःसर्वथापापकारिणः ।
तेषामुपायंदीनेश ! कृपयाकथयप्रभो ! ॥ ६९ ॥

अर्थ–अत्यंत दुर्वृत्त और पाप करनेवाले होंगे । हे प्रभो ! हे देवेश ! हे दीनेश ! उनका क्या उपाय होगा सो आप कृपा करके मुझसे कहें ॥ ६९ ॥

आयुरारोग्यवर्चस्यंबलवीर्य्यविवर्धनम् ।
विद्याबुद्धिप्रदंनृणामप्रयत्नशुभङ्करम्[2] ॥ ७० ॥

अर्थ–किस उपाय करनेसे मनुष्योंकी आयु आरोग्य, तेज, बल और वीर्य बढे किस उपायसे मनुष्यकी विद्या, बुद्धि, तेज हो और विनाही यंत्र किये मंगल प्राप्त हो जाय ॥ ७० ॥

येनलोकाभविष्यन्तिमहाबलपराक्रमाः ।
शुद्धचित्ताःपरहितामातापित्रोःप्रियङ्कराः ॥ ७१ ॥

अर्थ–जिससे मनुष्य महाबलवान, पराक्रमी, विशुद्धचित्त पराया हित करनेमें रत और उस कार्यका जो माता पिताको प्याराहो करनेवालाहो ॥ ७१ ॥

स्वदारनिष्ठाःपुरुषाःपरस्त्रीषुपराङ्मुखाः ।
देवतागुरुभक्ताश्चपुत्रस्वजनपोषकाः ॥ ७२ ॥

---

१ यंत्रलिप्तिम् इतिपाठान्तरम् । २ अयत्नशुभगङ्करम् इत्यन्ये पठन्ति ।

अर्थ-जिस प्रकारसे मनुष्य, अपनी स्त्रीमें रत, परस्त्रीविमुख देवता व गुरुभक्त और पुत्र व स्वजनोंका प्रतिपालक होवे ॥७२॥

ब्रह्मज्ञाब्रह्मविद्याश्चब्रह्मचिन्तनमानसाः ।
सिद्धयर्थंलोकयात्रायाःकथयस्वहिताययत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-पुरुष जिस प्रकारसे ब्रह्मज्ञानसंपन्न और ब्रह्मपरायण हो,उस उपायको आप लोकयात्राकी सिद्धि और सबका हित करनेकेलिये वर्णन करें ॥ ७३ ॥

कर्त्तव्यंयदकर्त्तव्यंवर्णाश्रमविभेदतः ।
विनात्वांसर्वलोकानांकस्त्राता भुवनत्रये ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नो नाम प्रथमउल्लासः ॥ १ ॥

अर्थ-वर्णाश्रमके विभागानुसार जो कुछ कर्तव्य और जो अकर्तव्यहै वह सब आप प्रगट करें, आपके अतिरिक्त सबका उद्धार करनेवाला इस त्रिलोकमंडलमें और कौन है ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां जीवनिस्तारोपायप्रश्नोनामप्रथमउल्लासः ॥ १ ॥

द्वितीयउल्लासः ॥ २ ॥

इतिदेव्यावचःश्रुत्वाशङ्करोलोकशङ्करः ।
कथयामासतत्वेनमहाकारुण्यवारिधिः ॥ १ ॥

अर्थ-इसके उपरांत करुणासागर लोकमंगलकारी महादेवजी, इस प्रकार देवी पार्वतीजीकी उक्ति सुनकर यथार्थ तत्वके कहनेका आरंभ करते हुए ॥ १ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

साधु पृष्टंमहाभागे ! जगतांहितकारिणि ! ।
एतादृशःशुभःप्रश्नोनकेनापिकृतःपुरा ॥ २ ॥

अर्थ–श्रीसदाशिव बोले–हे महाभागे तुम जगतका हित करनेवाली हो, तुमने अत्यंत सुन्दर बात पूछी है, पहले किसीने कभी ऐसा प्रश्न नहीं किया ॥ २ ॥

धन्याासिसुकृतज्ञासि हितासिकलिजन्मनाम् ।
यद्यदुक्तंत्वयाभद्रे ! सत्यंसत्यंयथार्थतः ॥ ३ ॥

अर्थ–तुम धन्य और सुकृतज्ञहो, वास्तवमें तुमही कलियुगके जीवोंका हित करनेवालीहो, हे भद्रे ! तुमने जो कुछ मेरे प्रति कहा सो सब सत्य है ॥ ३ ॥

सर्वज्ञात्वंत्रिकालज्ञाधर्मज्ञापरमेश्वरि ! ।
भूतंभवद्भविष्यञ्चधर्म्मयुक्तंत्वयाप्रिये ! ॥ ४ ॥

अर्थ–हे परमेश्वरि ! तुम सर्वज्ञ और त्रिकालकी जाननेवाली हो; तुमने भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान विषयमें जो धर्मानुगत बातें कहीं ॥ ४ ॥

यथातत्त्वंयथान्यायंयथायोग्यंनसंशयः ।
कलिकल्मषदीनानांद्विजादीनांसुरेश्वरि ! ॥ ५ ॥

अर्थ–इसमें कोई संदेह नहीं कि वह वास्तवमें न्यायानुसार सत्य हैं, हे सुरेश्वरि ! कलिकल्मषसे ग्रसित, दीनभावको प्राप्त हुए द्विजादियोंको ॥ ५ ॥

मेध्यामेध्याविचाराणांनशुद्धिःश्रौतकर्मणा ।
नसंहिताद्यैःस्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणांभवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–पवित्र अपवित्रका विचार नहीं रहैगा, इसकारण वह

लोग श्रुति,स्मृति और संहितामें कहे कर्म संपादन करके किस प्रकारसे शुद्ध होंगे ॥ ६ ॥

सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यंसत्यंमयोच्यते ।
विनाह्यागममार्गेणकलौनास्तिगतिःप्रिये ! ॥ ७ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! मैं सत्य सत्य और फिर सत्य करके सत्यही कहताहूं कि, कलिकालमें आगमपंथके सिवाय जीवके छुटकारेकी और दूसरी गति नहीं है ॥ ७ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणादौमयैवोक्तंपुराशिवे ! ।
आगमोक्तविधानेनकलौदेवान्यजेत्सुधीः ॥ ८ ॥

अर्थ-हे शिवे ! मैंने पहले श्रुतिस्मृति और पुराणादिमें कहाहै की कलियुगमें तान्त्रिकविधानसे पंडित लोग देवताओंकी पूजा करेंगे८॥

कलावागममुल्लङ्घ्ययोऽन्यमार्गेप्रवर्त्तते ।
नतस्यगतिरस्तीतिसत्यंसत्यंनसंशयः ॥ ९ ॥

अर्थ-इस कालमें जो पुरुष आगमके मार्गको लांघकर, और मार्गमें दौडताहै उसको सद्गति नहीं मिलती यह सम्पूर्ण सत्य है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ९ ॥

सर्ववेदैःपुराणैश्चस्मृतिभिःसंहितादिभिः ।
प्रतिपाद्योऽस्मिनान्योऽस्तिप्रभुर्जगतिमांविना ॥ १० ॥

अर्थ-समस्तवेदशास्त्रोंसे, समस्त पुराणोंसे, समस्त स्मृतियोंसे, और समस्त संहिताओंसे केवल मैंही प्रतिपाद्य हुआ हूं (वास्तविक) इस संसारमें मेरे सिवाय और कोई प्रभु नहीं है ॥ १० ॥

आमनन्तिचतेसर्वेमत्पदंलोकपावनम् ।
मन्मार्गविमुखालोकाःपाषण्डाब्रह्मघातिनः ॥ ११ ॥

१ सन्मार्गविमुखा इति पाठान्तरम् ।

अर्थ-वेदादि समस्त ग्रंथ मेरे पदको लोकपावन कहकर कीर्तन किया करते हैं, जो लोग मुझसे विमुख हैं वह ब्रह्महत्याके पापमें लिप्त और घोर पाखंडी हैं ॥ ११ ॥

अतोमन्मतमुत्सृज्ययोयत्कर्म्मसमाचरेत् ।
निष्फलंतद्भवेद्देवि ! कर्त्तापिनारकीभवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ-हे देवि! मेरे मतको लंघन करके जो पुरुष कर्मका अनुसरण करता है। उसका वह कर्म निष्फल हो जाता है और कर्म कर्ताभी नरकमें पडता है ॥ १२ ॥

मूढोमन्मतमुत्सृज्ययोऽन्यन्मतमुपाश्रयेत् ।
ब्रह्महापितृहास्त्रीघ्नःसभवेन्नात्रसंशयः ॥ १३ ॥

अर्थ-जो मूढ़ मनुष्य मेरे मतको छोडकर और मतका आश्रय ग्रहण करता है, इसमें कोई संदेह नहीं कि वह पुरुष ब्रह्मघाती और स्त्रीहत्याकारी होता है ॥ १३ ॥

कलौतन्त्रोदितामन्त्राःसिद्धास्तूर्णफलप्रदाः ।
शस्ताःकर्म्मसुसर्वेषुजपयज्ञक्रियादिषु ॥ १४ ॥

अर्थ-कलिकालके मध्य तंत्रमें कहे हुए समस्त मंत्र सिद्ध और शीघ्र सिद्धिके देनेवाले होते हैं यह समस्तमंत्र, समस्तकर्म और जप यज्ञादिमें श्रेष्ठ हैं ॥ १४ ॥

निर्व्वीर्य्याःश्रौतजातीयाविषहीनोरगाइव ।
सत्यादौसफलाआसन्कलौतेमृतकाइव ॥ १५ ॥

अर्थ-जिसप्रकार विषहीन सर्पकी अवस्था हो जाती है, वैसेही इस समय वैदिकमंत्रादि वीर्यरहित और मृतकतुल्य हो रहे हैं, वह मंत्र सत्ययुग, त्रेता और द्वापर युगके अधिकारमें थे ॥ १५ ॥

पाञ्चालिकायथाभित्तौसर्व्वेन्द्रियसमन्विताः ।

अमूरशक्ताःकार्य्येषुतथान्येमन्त्रराशयः ॥ १६ ॥

अर्थ–जिस प्रकार गृहकी भीतमें खिंचीहुई चित्र पुतली इन्द्रियोंसे युक्त होनेपरभी कार्यके सिद्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं रहती, वैसेही अवस्था मंत्रोंकी है ॥ १६ ॥

अन्यमंत्रैःकृतंकर्म्मवन्ध्यास्त्रीसङ्गमोयथा ।
नतत्रफलसिद्धिःस्याच्छ्रमएवाहिकेवलम् ॥ १७ ॥

अर्थ–जिसप्रकार वांझका संग करनेसे पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती, वैसेही और मंत्रोंकी सहायताके द्वारा कर्म करनेसे क्रिया सिद्ध नहीं होती, वरन श्रम निरर्थक होता है ॥ १७ ॥

कलावन्योदितैर्म्मार्गैःसिद्धिमिच्छतियोनरः ।
तृषितोजाह्नवीतीरेकूपंखनातिदुर्म्मतिः ॥ १८ ॥

अर्थ–जो पुरुष कलिकालके विषय और शास्त्रोंमें कहे हुए उपायोंसे सिद्ध होना चाहता है, वोह मूढ प्यासा होकर गंगाजीके किनारे कुआ खोदता है ॥ १८ ॥

मद्वक्त्रादुदितंधर्म्मंहित्वान्यद्धर्म्ममीहते ।
अमृतंस्वगृहेत्यक्त्वाक्षीरमार्कंसवाञ्छति ॥ १९ ॥

अर्थ–जो मनुष्य मेरे मुखसे निकले हुए धर्मकी अवहेला करके और धर्मको ग्रहण करता है वोह पुरुष अपने घरमें रक्खे हुए अमृतको छोडकर आकके सारभागको चाहता हैं ॥ १९ ॥

नान्यःपन्थामुक्तिहेतुरिहामुत्रसुखाप्तये ।
यथातन्त्रोदितोमार्गोमोक्षायचसुखायच ॥ २० ॥

अर्थ–जिसप्रकार तंत्रमें कहा हुआ मार्ग मोक्ष और सुखके लिये उपयोगी है, वैसा मुक्तिदायक और सुखविधायक दूसरा पंथ दृष्ट नहीं आता ॥ २० ॥

तन्त्राणिबहुधोक्तानिनानाख्यानान्वितानिच ।
सिद्धानांसाधकानाञ्चविधानानिचभूरिशः ॥ २१ ॥

अर्थ–हमने अनेक प्रकारके आख्यानोंसे युक्त अनेक प्रकारके तंत्र प्रकाशित कियेहैं, उनमें साधक व सिद्धोंके अर्थ नानाविधकी व्यवस्था लिखी है ॥ २१ ॥

अधिकारिविभेदेनपशुबाहुल्यतःप्रिये ! ।
कुलाचारोदितंधर्म्मंगुप्तार्थंकथितंक्वचित् ॥ २२ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! अधिकारीभेदमें पशुभावकी अधिकता होनेके कारण रक्षाकेलिये कुलाचारगत धर्मके गुप्त अर्थ प्रगट किये हैं॥२२॥

जीवप्रवृत्तिकारीणिकानिचित्कथितान्यपि ।
देवानानाविधाःप्रोक्तादेव्योऽपिबहुधाप्रिये ! ॥ २३ ॥

अर्थ–किसीकिसी स्थलमें जीवोंकी प्रवृत्तिकेलिये अनुरूप व्यवस्था करीहै, हे प्रिये ! हमने अनेक प्रकारके देव और अनेक प्रकारकी देवियोंका तत्व प्रगट किया है ॥ २३ ॥

भैरवाश्चैववेतालबटुकानायिकागणाः ।
शाक्ताःशैवावैष्णवाश्चसौरंगाणपतादयः ॥ २४ ॥

अर्थ–भैरव, वेताल, बटुक, नायिका, शाक्त, शैव, वैष्णव सौर और गाणपत्यगणोंका विषयभी वर्णन किया है ॥ २४ ॥

नानामन्त्राश्चयन्त्राणिसिद्धोपायान्यनेकशः ।
भूरिप्रयाससाध्यानियथोक्तफलदानिच ॥ २५ ॥

अर्थ–(इसके अतिरिक्त)अनेक प्रकारके मंत्र यंत्र और यथोक्त-फलदायक, बहुतसे श्रमसे सिद्ध होनेवाली अनेक प्रकारकी सिद्धि-योंका उपायभी कहा है ॥ २५ ॥

---

१ सौरागाणपतादय इति वा पठनीयम् ।

यथायथाकृताःप्रश्नायेनयेनयदायदा ।
तदातस्योपकारायतथैवोक्तंमयाप्रिये ! ॥ २६ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! जिसनें जिस२समय जैसाजैसा प्रश्न किया है, मैंनें उसी समय उन लोगोंके मंगलार्थ वैसाही उत्तरभी दिया है ॥२६॥

सर्वलोकोपकारायसर्व्वप्राणिहितायच ।
युगधर्मानुसारेणयाथातथ्येनपार्वति ! ॥ २७ ॥

अर्थ–हे पार्वति ! मैंने युगधर्मके अनुसार सर्वलोक और प्राणियोंके मंगलार्थ यथार्थ स्वरूपसे यह धर्म कीर्तन किया है ॥ २७ ॥

त्वयायादृक्कृताःप्रश्नानकेनापिपुराकृताः ।
तवस्नेहेनवक्ष्यामिसारात्सारंपरात्परम् ॥ २८ ॥

अर्थ–इस समय जो प्रश्न तुमने किया पहला ऐसा प्रश्न कभीं किसीने नहीं किया इस क्षणमें तुम्हारे स्नेहके वश हो, उस तत्वका जो कि परेसेभी परे और सारकाभी सार है–वर्णन करताहूं ॥ २८ ॥

वेदानामागमानाञ्चतन्त्राणाञ्चविशेषतः ।
सारमुद्धृत्यदेवेशि ! तवाग्रेकथ्यते मया ॥ २९ ॥

अर्थ–हे देवि ! समस्त वेद, आगम और विशेष करके तंत्रोंके सारको उद्धृत करके मैं तुम्हारे आगे कहताहूं ॥ २९ ॥

यथानरेषुतन्त्रज्ञा[१]ःसरितांजाह्नवीयथा ।
यथाहंत्रिदिवेशानामागमानामिदंतथा ॥ ३० ॥

अर्थ–जिस प्रकार मनुष्योंमें तांत्रिक पुरुष श्रेठ है, जैसे नदियोंमें गंगाजी बड़ी हैं, जिस प्रकार देवताओंके मध्य मैं देवताधिपति हूं वैसेही तंत्रोंमें यह महानिर्वाणतंत्र श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

---

१ यथानरेषु यंत्रज्ञा इति पा० ।

किंवेदैःकिंपुराणैश्चकिंशास्त्रैर्बहुभिःशिवे ! ।
विज्ञातेऽस्मिन्महातन्त्रेसर्व्वसिद्धीश्वरोभवेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—वेद, पुराण और बहुतसे शास्त्रोंका अनुशीलन करनेसे क्या फल लाभ हुआ करता है, हे देवि ! जो यह महातंत्र जाना हुआ हो तो समस्त सिद्धियोंके प्राप्त करनेमें बाधा नहीं रहती ॥ ३१ ॥

यतोजगन्मङ्गलायत्वयाहंविनियोजितः ।
अतस्तेकथयिष्यामियद्विश्वहितकृद्भवेत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—(देवि) जब कि तुमने जगत्के हितार्थ मुझको नियोजित किया है, तब जिससे जगत्का हित हो, उस विषयको मैं तुमसे कहताहूं ॥ ३२ ॥

कृतेविश्वहितेदेवि ! विश्वेशःपरमेश्वरि ! ।
प्रीतोभवतिविश्वात्मायतोविश्वंतदाश्रितम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—हे देवि! हे परमेश्वरि! जगत्का हित होनेपर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं कारण कि वह विश्वके आत्मास्वरूपहैं और विश्व (संसार) उनके आश्रयमें स्थिर हो रहाहै ॥ ३३ ॥

सएकएवसद्रूपःसत्योऽद्वैतःपरात्परः ।
स्वंप्रकाशःसदापूर्णःसच्चिदानन्दलक्षणः ॥ ३४ ॥

अर्थ—वह एक अद्वितीय, सत्य, नित्य, परात्पर, ब्रह्मादि देवताओंसे भी परे हैं और स्वयंप्रकाश—अर्थात् उनको चंद्र सूर्यादिके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं है, वह सतत पूर्ण और सच्चिदानन्द हैं ॥ ३४ ॥

निर्विकारोनिराधारोनिर्विशेषोनिराकुलः ।
गुणातीतःसर्वसाक्षीसर्वात्मासर्वदृग्विभुः ॥ ३५ ॥

---

१ सुप्रकाश इतिपाठान्तरम् ।

अर्थ-वोह निर्विकार, निराधार (आश्रयशून्य), निर्विशेष (स्वगत भेदरहित), निराकुल (आकुलता शून्य), गुणातीत (शीत उष्ण सुखदुःखादिसत्वादिवा इनसेभी परे) सर्वसाक्षी (सबके शुभाशुभ-कर्मोंको साक्षात् देखनेवाला), सर्वात्मा (सबके स्वरूप) और सर्वद्रष्टा (सब पदार्थोंके देखनेवाले जो कि लोकमें हैं) हैं ॥३५॥

गूढःसर्वेषुभूतेषुसर्वव्यापीसनातनः ।
सर्वेन्द्रियगुणाभासःसर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ ३६ ॥

अर्थ-वोह गूढ भावसे सर्वप्राणियोंमें विराजमान रहते हैं, वह सर्वव्यापि और सनातन (आदिअन्तशून्य हैं) उन्होंने समस्त इन्द्रियोंको और उनकी शक्तिको प्रकाशित किया तो है; परंतु उनके इन्द्रियां नहीं हैं ॥ ३६ ॥

लोकातीतोलोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः ।
सवेत्तिविश्वंसर्वज्ञस्तंनजानातिकश्चन ॥ ३७ ॥

अर्थ-वह लोकोंसे परे हैं, और सबलोकोंके कारण हैं, वोह मन और वाणीसे नहीं जानेजाते, वह सर्वज्ञ पुरुष सबही जान सक्ते हैं; परंतु उनको नहीं कोई जानसक्ता ॥ ३७ ॥

तदधीनंजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ।
तदालम्बनतास्तिष्ठेदवितर्क्यमिदंजगत् ॥ ३८ ॥

अर्थ-चराचरसहित यह त्रिलोकमंडल उनके अवलंबनसे स्थित हो रहाहै । यह अप्रतर्क्य जगत् उसकी अधीनताका नहीं छोड़ सक्ता ॥ ३८ ॥

तत्सत्यतामुपाश्रित्यसद्वद्भाति[1]पृथक्पृथक् ।
तेनैवहेतुभूतेनवयंजातामहेश्वरि ! ॥ ३९ ॥

---

१ समुद्भातीति वा पाठः ।

अर्थ-यह अनित्य जगत् उनकी सत्यताके आश्रयसे सत्यकी समान पृथग्भावसे प्रकाशितहो रहा है; उनहींके हेतुभूत होनेसे हम उनसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥

कारणंसर्वभूतानांसएकःपरमेश्वरः ।
लोकेषुसृष्टिकरणात्स्रष्टाब्रह्मेतिगीयते ॥ ४० ॥

अर्थ-वही एक परमेश्वर सर्वभूतोंका कारण है, उसने सृष्टि की है, इसकारण उसका नाम सृष्टिकर्ता और बृहत् होनेसे उसका नाम ब्रह्मा है ॥ ४० ॥

विष्णुःपालयितादेवि ! संहर्त्ताहंतदिच्छया ।
इन्द्रादयोलोकपालाःसर्वेतद्वशवर्त्तिनः ॥ ४१ ॥

अर्थ-हे देवि! विष्णुजी उनकी इच्छासे पालन करते हैं, मैंभी संहार कार्यमें नियुक्तहो रहा हूं। इंद्रादि लोकपालगणभी उनकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं ॥ ४१ ॥

स्वेस्वेऽधिकारेनिरतास्तेशासन्तितदाज्ञया[1] ।
त्वंपराप्रकृतिस्तस्यपूज्यासिभुवनत्रये ॥ ४२ ॥

अर्थ-उनकी आज्ञासे वे अपने २ अधिकारमें नियुक्त रह कर इस जगत्का शासन करते हैं, तुम प्रधान प्रकृतिहो इस कारण तुम त्रिलोकीमें पूजित हुई हो ॥ ४२ ॥

तेनान्तर्यामिरूपेणतत्तद्विषययोजिताः ।
स्वस्वकर्म्मप्रकुर्व्वन्तिनस्वतन्त्राःकदाचन ॥ ४३ ॥

अर्थ-सर्वान्तर्यामी उस ईश्वरके नियोगसे जीवगण अपना अपना कर्म किया करते हैं, कोई कभी स्वाधीन भावसे नहीं चल सक्ता ॥ ४३ ॥

---

१ वसन्तीति पाठः ।

यद्भयाद्वातिवातोऽपिसूर्य्यस्तपतियद्भयात् ।
वर्षन्तितोयदाःकालेपुष्पन्तितरवोवने ॥ ४४ ॥

अर्थ–जिसके भयसे वायु प्रवाहितहो रही है, सूर्य भगवान किरणोंको फैला रहे हैं, मेघ समयपर जल वर्षाते हैं और वनमें वनवृक्ष फूलते हैं ॥ ४४ ॥

कालंकालयतेकालेमृत्योर्मृत्युर्भियोभयम् ।
वेदान्तवेद्योभगवान्यत्तच्छब्दोपलक्षितः ॥ ४५ ॥

अर्थ–जो प्रलयमें निमेषादि कालकोभी ग्रास करतेहैं, जो मृत्यु और भयकेभी भय स्वरूप हैं, जो वेदान्तवेद्य यत् तत् शब्दसे उपलक्षित हैं, जो भगवान हैं ॥ ४५ ॥

सर्वैर्देवाश्चदेव्यश्चतन्मयाः सुरवन्दिते ।
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तंतन्मयंसकलंजगत् ॥ ४६ ॥

अर्थ–हे देववंदिते ! समस्त देवदेवीगण और ब्रह्मसे आरंभ करके स्तम्ब (तृणादिक तृणका अग्रभाग पर्यंत समस्त) जगत् तन्मय है ॥ ४६ ॥

तस्मिंस्तुष्टेजगत्तुष्टंप्रीणितेप्रीणितंजगत् ।
तदाराधनतोदेवि ! सर्व्वेषांप्रीणनंभवेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ–उन सर्वेश्वरके परितुष्ट करनेसे जगत् परितुष्ट रहता है और प्रसन्न होनेसे जगत् प्रसन्न होताहै, हे देवि ! उनकी आराधनासे सबको प्रीति प्राप्त हो जाती है ॥ ४७ ॥

तरोर्मूलाभिषेकेणयथातद्भुजपल्लवाः ।
तृप्यन्तितदनुष्ठानात्तथासर्व्वेमरादयः ॥ ४८ ॥

अर्थ–जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखा व पत्र

बढ़ते हैं, वैसेही उन परमेश्वरकी आराधनासे समस्त देवता तृप्तिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४८ ॥

यथातवार्चनाद्ध्यानात्पूजनाज्जपनात्प्रिये ! ।
भवन्तितुष्टाःसुन्दर्य्यस्तथाजानीहिसुव्रते ! ॥ ४९ ॥

अर्थ–हे सुव्रते ! हे प्रिये ! तुम्हारी अर्चना करनेसे तुम्हारा ध्यान करनेसे, तुम्हारी पूजा करनेसे और तुम्हारा जप करनेसे मातृगण संतुष्ट हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

यथागच्छन्तिसरितोऽवशेनापिसरित्पतिम् ।
तथार्चादीनिकर्म्माणितदुद्देश्यानिपार्व्वति ! ॥ ५० ॥

अर्थ–हे पार्वति ! जिस प्रकार नदियें, अवश होकर समुद्रमें प्रवेश करती हैं, वैसेही पूजाध्यानादि समस्त कर्म केवल उस एक ईश्वरमें पहुंच जाते हैं ॥ ५० ॥

योयोयान्यान्यजेद्देवाञ्छ्रद्धयायद्यदाप्तये ।
तत्तद्ददातिसोऽध्यक्षस्तैस्तैर्द्देवगणैःशिवे ! ॥ ५१ ॥

अर्थ–जो जो पुरुष जिस २ वस्तुको पानेके अभिप्रायसे श्रद्धा सहित जिस २ देवताकी अर्चना करते हैं. परमेश्वर अध्यक्ष स्वरूपसे उन देवताओंके द्वारा उन उन आदमियोंको वैसाही फलदान कराताहै ॥ ५१ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनतवाग्रेकथ्यतेप्रिये ! ।
ध्येयःपूज्यःसुखाराध्यस्तंविनानास्तिमुक्तये ॥ ५२ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! और अधिक तुमसे क्या कहूं, संक्षेपसे केवल यही कहताहूं कि उस परमेश्वरकोही ध्यान चाहिये वही पूज्य है वही सुखाराध्य है उसके अतिरिक्त जीवकी मुक्तिका दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५२ ॥

नायासोनोपवासश्चकायक्लेशोनविद्यते ।
नैवाचारादिनियमोनोपचाराश्चभूरिशः ॥ ५३ ॥

अर्थ–ईश्वरकी आराधना करनेमें परिश्रम उपवास, व आचार विचारादिका प्रयोजन नहीं है और ऐसे (बहुत) आचारकी भी आवश्यकता नहीं ॥ ५३ ॥

नदिक्कालविचारोऽस्तिनमुद्रान्यासंसंहतिः ।
यत्साधनेकुलेशानितंविनाकोऽन्यमाश्रयेत् ॥ ५४॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपाय
प्रश्नोत्तरे ब्रह्मोपासनक्रमो नाम द्वितीयउल्लासः ॥ २ ॥

अर्थ–इनकी साधनामें दिक् वा कालके विचारका प्रयोजन नहीं है, मुद्रा वा न्यासकीभी आवश्यकता नहीं है अतएव हे कुलेशानि ! उन परमेश्वरके सिवाय किसी दूसरेका आश्रय और कौन ग्रहण करेगा ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमेसर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां जीवनिस्तारो-
पायप्रश्नोत्तरे ब्रह्मोपासनक्रमोनाम द्वितीयउल्लासः ॥ २ ॥

तृतीयउल्लासः ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

देवदेवमहादेव!देवतानांगुरोर्गुरो ।
वक्तात्वंसर्वशास्त्राणांमन्त्राणांसाधनस्यच ॥ १ ॥

अर्थ–श्रीदेवीजी बोली–हे देव ! महादेव ! देवताओंके जो गुरु हैं, आप उनकेभी गुरु हैं, आप समस्तशास्त्र, मंत्र और साधनके वक्ता हैं ॥ १ ॥

कथितंयत्परंब्रह्मपरमेशंपरात्परम् ।
यस्योपासनतोमर्त्त्योभुक्तिमुक्तिञ्चविन्दति ॥ २ ॥

अर्थ-आपने जिन परात्पर परमेश्वर परब्रह्मका वर्णन किया और जिनकी उपासना करनेमें मनुष्य भोग और मोक्षको प्राप्त करसक्ते हैं ॥ २ ॥

केनोपायेनभगवन्!परमात्माप्रसीदति ।
किंतस्यसाधनंदेव ! मन्त्रःकोवाप्रकीर्त्तितः ॥ ३ ॥

अर्थ-हे भगवन् ! किस उपायसे वह परमात्मा प्रसन्न होते हैं हे देव ! उनका साधन वा मंत्र किस प्रकारसे है ॥ ३ ॥

किंध्यानंकिंविधानञ्चपरेशस्य[1]महात्मनः ।
तत्त्वेनश्रोतुमिच्छामिकृपयाकथयप्रभो! ॥ ४ ॥

अर्थ-उन परमात्मा परमेश्वरका ध्यान क्या है और विधि कैसी है, हे प्रभो ! मैं उसका यथार्थ तत्व श्रवण करनेके लिये उत्सुक हुई हूं अत एव कृपा करके मुझसे कहिये ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

अतिगुह्यंपरंतत्त्वंशृणुमत्प्राणवल्लभे ! ।
रहस्यमेतत्कल्याणि!नकुत्रापिप्रकाशितम् ॥ ५ ॥

अर्थ-श्रीमहादेवजी बोले-हे प्राणवल्लभे ! तुम मुझसे यह अतिगुप्त ब्रह्मतत्व श्रवणकरो, मैंने इस रहस्यको कहीं नहीं प्रकाशित किया है ॥ ५ ॥

तवस्नेहेनवक्ष्यामिममप्राणाधिकंपरम् ।
ज्ञेयंभवतितद्ब्रह्मसच्चिद्विश्वमयंपरम् ॥ ६ ॥

अर्थ-यह गुप्त विषय मुझको प्राणोंसेभी अधिक प्यारा पदार्थ है, तुह्मारे प्रति स्नेह होनेसे मैं तुमसे कहताहूं उन सच्चित् विश्वात्मा परब्रह्मको किस प्रकारसे जाना जासक्ता है ॥ ६ ॥

---

१ परेतस्य परात्मनः इति वा पाठः ।

यथातत्त्वस्वरूपेणलक्षणैर्वामहेश्वरि! ।
सत्तामात्रंनिर्व्विशेषमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ७ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! जो सत्यासत्य निर्विशेष और वचन व मनके अगोचर हैं उनको यथातथ्य स्वरूपमें वा लक्षणके द्वारा किस प्रकारसे जान लिया जासक्ता है ॥ ७ ॥

असत्त्रिलोकीसद्भानंस्वरूपंब्रह्मणःस्मृतम् ।
समाधियोगैस्तद्वेद्यंसर्व्वत्रसमदृष्टिभिः ।
द्वन्द्वातीतैर्निर्व्विकल्पैर्देहात्माध्यासवर्ज्जितैः ॥ ८ ॥

अर्थ-जो अनित्य जगन्मंडलमें स्वस्वरूपसे प्रतिभात होरहे हैं, जो ब्रह्मस्वरूप सर्वत्र समदृष्टि, समाधिकी सहायतासे जिनको जाना जासक्ता है, जो द्वंद्वसे परे निर्विकल्प और शरीरमें अहंता ज्ञानसे रहितहै ॥ ८ ॥

यतोविश्वंसमुद्भूतंयेनजातञ्चतिष्ठति ।
यस्मिन्सर्व्वाणिलीयन्तेज्ञेयंतद्ब्रह्मलक्षणैः ॥ ९ ॥

अर्थ-जिनसे विश्वसंसार उत्पन्न हुआ है और जिनसे उत्पन्न होकर सारा संसार अवस्थिति करता है जिसमें सब संसार लयको प्राप्त होजाता है, ऐसे लक्षणोंसे ब्रह्मको जाना जासक्ता है ॥ ९ ॥

स्वरूपबुद्ध्यायद्वेद्यंतदेवलक्षणैःशिवे! ।
लक्षणैराप्तुमिच्छूनांविहितंतत्रसाधनम् ॥ १० ॥

अर्थ-हे शिवे ! स्वरूपलक्षणोंसे जो ब्रह्मपदार्थ उपलब्ध होता है, तटस्थ लक्षणोंको सहायतासेभी उस ब्रह्मको जाना जासक्ता है१०॥

तत्साधनंप्रवक्ष्यामिशृणुष्वावहिताप्रिये ! ।
तत्रादौकथयाम्याद्ये!मन्त्रोद्धारंमहेशितुः ॥ ११ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! तटस्थलक्षणोंकी सहायतासे जो ब्रह्मको पानेके

अभिलाषी हैं, उनको आगे लिखाहुआ साधन करना चाहिये, मैं उस साधनतत्वको कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ ११ ॥

प्रणवंपूर्व्वमुद्धृत्यसच्चित्पदमुदाहरेत् ।
एकंपदान्तेब्रह्मेतिमन्त्रोद्धारःप्रकीर्त्तितः ॥ १२ ॥

अर्थ-पहले तुमसे मंत्रोद्धार वर्णन करताहूं प्रथम "प्रणव" कीर्तन करके फिर "सच्चित्" पद उच्चारण करना चाहिये फिर "एकम्" पदकेपीछे "ब्रह्म" पद कीर्तन करनेसे "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" मंत्रका उद्धार होगा ॥ १२ ॥

सन्धिक्रमेणमिलितःसप्तार्णोऽयंमनुर्मतः ।
तारहीनेनदेवेशि! षड्वर्णोऽयंमनुर्भवेत्[1] ॥ १३ ॥

अर्थ-यह मंत्र संधिक्रमके अनुसार मिलकर सप्तवर्ण होगा, हे देवि! ओंकार अलग करके उच्चारण करनेसे यह षडक्षर होगा। १३॥

सर्व्वमन्त्रोत्तमःसाक्षाद्धर्म्मार्थकाममोक्षदः ।
नात्रसिद्धाद्यपेक्षास्तिनारिमित्रादिदूषणम् ॥ १४ ॥

अर्थ-समस्त मंत्रोंसे यह मंत्र श्रेष्ठ है, यह धर्म अर्थ काम और मोक्षका देनेवाला है, इसमें सिद्ध व असिद्ध व अरिमित्र दोषकी संभावना नहीं है ॥ १४ ॥

नतिथिर्नचनक्षत्रंनराशिगणनन्तथा ।
कुलाकुलादिनियमो[2]नसंस्कारोऽत्रविद्यते ।
सर्व्वथासिद्धमन्त्रोऽयंनात्रकार्य्याविचारणा ॥ १५ ॥

अर्थ-इसमें तिथि, नक्षत्र, राशिगण, कुलाकुलादिके नियम या संस्कारकी आवश्यकता नहीं है। यह मंत्र सर्वथा सिद्ध होजाता है । इसमें कार्यका विचार नहीं है ॥ १५ ॥

---

१ षड्वर्णोयो मनुर्मत इति पठ्यते । २ कुलाकुलानां नियमः इत्यन्ये पठन्ति ।

बहुजन्मार्ज्जितैःपुण्यैःसद्गुरुर्यदिलभ्यते ।
तदातद्वक्रतोज्ञांत्वाजन्मसाफल्यमाप्नुयात् ॥ १६ ॥

अर्थ-जो जन्मान्तरकी सुकृतिके फलसे सद्गुरु प्राप्त होजाय तो उसके मुखसे मंत्र श्रवण करके शिष्यगण जन्म सफल कर सक्ते हैं ॥ १६ ॥

चतुर्व्वर्गकरेकृत्वापरत्रेहचमोदते ॥ १७ ॥

अर्थ-(तब) मनुष्य चतुर्वर्गको प्राप्त करके यहां और परलोकमें आनंद भोग करसक्ता है ॥ १७ ॥

सधन्यःसकृतार्थश्चसकृतीसचधार्म्मिकः ।
सस्नातःसर्व्वतीर्थेषुसर्व्वयज्ञेषुर्दीक्षितः ॥ १८ ॥

अर्थ-वही धन्य है,वही कृतार्थ है, वही कृती है,वोही धार्मिक है, उसने ही सब तीर्थोंमें स्नान किया है और सब यज्ञोंमें दीक्षित हुआ है ॥ १८ ॥

सर्व्वशास्त्रेषुनिष्णातःसर्व्वलोकप्रतिष्ठितः ।
यस्यकर्णपथोपान्तप्राप्तो[2]मन्त्रमहामणिः ॥ १९ ॥

अर्थ-वह सर्व शास्त्रोंका वेत्ता है (अधिक क्या कहैं) उसकी सब लोकोंमें प्रतिष्ठा है कि जिसके कर्णकुहरमें ब्रह्ममंत्ररूप महा-मणिनें स्थान पाया है ॥ १९ ॥

धन्यामातापितातस्यपवित्रंतत्कुलंशिवे ।
पितरस्तस्यसन्तुष्टामोदन्तेत्रिदशैःसह ।
गायन्तिगायनींगाथांपुलकाञ्चितविग्रहाः ॥ २० ॥

अर्थ-हे शिवे ! उसके माता पिता धन्य होजाते हैं कुल पवित्र

---

१ लब्ध्वा इतिवापठन्ति । २ कर्णपथोपान्ते प्राप्त इत्यपि पठ्यते ।

होजाता है उसके पितृलोग संतुष्ट होकर देवताओंके साथ आनंद भोगते हुए इस गाथाको गाया करते हैं कि ॥ २० ॥

अस्मत्कुलेकुलश्रेष्ठोजातोब्रह्मोपदेशिकः ।
किमस्माकंगयापिण्डैःकिंतीर्थैःश्राद्धतर्पणैः ॥ २१ ॥

अर्थ–हमारे वंशमें उत्पन्न हुए पुत्रने ब्रह्ममंत्रसे दीक्षित हो कुलको पवित्र किया है । हमारे निमित्त गया वा तीर्थ क्षेत्रमें पिंड देने या श्राद्धादि करनेसे क्या प्रयोजन है ॥ २१ ॥

किंदानैःकिंजपैर्होमैःकिमन्यैर्बहुसाधनैः ।
वयमक्षयतृप्ताःस्मःसत्पुत्रस्यास्यसाधनात् ॥ २२ ॥

अर्थ–जब कि हमारे कुलमें सत्पुत्र उत्पन्न होकर ब्रह्मसाधनासे सिद्ध हुआ है तब हमारे लिये दान, जप, होम, वा और साधनओंसे क्या प्रयोजन है (अधिक क्या कहैं) हमने अक्षय तृप्तिको प्राप्त किया है ॥ २२ ॥

शृणुदेवि ! जगद्वन्द्ये ! सत्यंसत्यंमयोच्यते ।
परब्रह्मोपासकानांकिमन्यैःसाधनान्तरैः ॥ २३ ॥

अर्थ–हे देवि ! तुम जगत्पूज्य हो मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं कि जो लोग परब्रह्मके उपासक हैं उनको और किसी साधनाका प्रयोजन नहीं है ॥ २३ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेणदेहीब्रह्ममयोभवेत् ।
ब्रह्मभूतस्यदेवेशि ! किमवाप्यंजगत्त्रये ॥ २४ ॥

अर्थ–हे देवेशि ! ब्रह्ममंत्रको श्रवण करतेही देही ब्रह्ममय होजाता है, जो ब्रह्ममय होजाता है और जो ब्रह्ममय होसक्ता है, उसके लिये इस जगमें कोनसी वस्तु दुर्लभ है ॥ २४ ॥

किंकुर्वन्तिग्रहारुष्टावेतालाश्चेटकादयः ।

पिशाचागुह्यकाभूताडाकिन्योमातृकादयः ।
तस्यदर्शनमात्रेणपलायन्तेपराङ्मुखाः ॥ २५ ॥

अर्थ-ग्रह, वेताल, चेटकादिपिशाच गण, गुह्यक, भूत, डाकिनी और मातृकादिगण रूठकर उसका क्या करसक्ती हैं ॥ २५ ॥

रक्षितोब्रह्ममन्त्रेणप्रावृतोब्रह्मतेजसा ।
किंबिभेतिग्रहादिभ्योमार्त्तण्डइवचापरः ॥ २६ ॥

अर्थ-जो ब्रह्ममंत्रसे भलीभांति रक्षित है और ब्रह्मतेजसे भलीभांति ढका हुआ है वोह दूसरे सूर्यकी समान है वह ग्रहादिसे क्या भय पासक्ता है ॥ २६ ॥

तंदृष्ट्वातेभयापन्नाःसिंहंदृष्ट्वायथागजाः ।
विद्रवन्तिचनश्यन्तिपतङ्गाइवपावके ॥ २७ ॥

अर्थ-सिंहको देखकर जैसी अवस्था हाथियोंकी होजाती है वैसे ही उसको देखकर ग्रहादि भाग जाते हैं. अग्निमें पंतगोंकी जैसी दशा होजाती है वैसेही ग्रहगण उसके तेजसे नष्ट होजाते हैं ॥ २७ ॥

नतस्यदुरितंकिञ्चिद्ब्रह्मनिष्ठस्यदेहिनः ।
सत्यपूतस्यशुद्धस्यसर्वप्राणिहितस्यच ।
कोवोपद्रवमन्विच्छेदात्मावघातकंविना ॥२८॥

अर्थ-सत्यपूत सबका उपकार करनेवाला और परिशुद्ध (निर्मल अंतःकरणवाले) ब्रह्मनिष्ठ पुरुष सदा रहैं, इसकारण कोई पाप भी उसपर आक्रमण नहीं करसक्ता. आत्मघातीके सिवाय और कौन पुरुष ऐसे महात्माके प्रति उपद्रव करनेकी इच्छा करता है ॥ २८ ॥

ये द्रुह्यन्तिखलाःपापाःपरब्रह्मोपदेशिने[1] ।
स्वद्रोहंतेप्रकुर्वन्तिनातिरिक्तायतःसतः ॥२९॥

---

१ परब्रह्मोपदेशिन इति वा पठ्यते ।

अर्थ-जो खलमतियुक्त पापाचारी पुरुष परब्रह्मोपासकके साथ विरुद्ध व्यवहार करते हैं, वह अपने आपही आपना बुरा करते हैं परब्रह्मका उपासक और ब्रह्म एकही है, अलग या दूसरा नहीं है ॥ २९ ॥

सतुसर्वहितःसाधुःसर्वेषांप्रियकारकः ।
तस्यानिष्टेकृतेदेवि ! कोवास्यान्निरुपद्रवः ॥ ३० ॥

अर्थ-हे देवि ! ब्रह्मोपासक पुरुष सबका हितकारी और साधू होता है, बस ऐसे महात्माका अनिष्ट करनेसे कौन पुरुष निरुपद्रव रहसक्ता है ॥ ३० ॥

मन्त्रार्थंमन्त्रचैतन्यंयोनजानातिसाधकः ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपितस्यमन्त्रोनसिद्ध्यति ॥३१॥

अर्थ-जो साधक मंत्रका अर्थ और उसकी चैतन्य शक्तिको नहीं जानता,वह शतलक्ष जप करनेसेभी सिद्ध नहीं होसक्ता॥३१॥

अतोऽस्यार्थञ्चचैतन्यंकथयामिशृणुप्रिये ! ।
अकारेणजगत्पातासंहर्त्तास्यादुकारतः ।
मकारेणजगत्स्रष्टाप्रणवार्थउदाहृतः॥ ३२ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! इसकारणसे मैं इस मंत्रके अर्थको और उसकी चैतन्य शक्तिको कहताहूं तुम श्रवण करो "अ" कारका अर्थ है जगत्पाता "उ" कारका अर्थ है संहारकर्ता, और "म"कारका अर्थ जगत्की सृष्टि करनेवाला है; प्रणव (ओं)का अर्थ ऐसा है ॥ ३२ ॥

सच्छब्देनसदास्थायिचिच्चैतन्यंप्रकीर्तितम् ॥३३॥

अर्थ-" सत्"शब्दका अर्थ सदा स्थाई और"चित्" शब्दका अर्थ चैतन्य है ॥ ३३ ॥

एकमद्वैतमीशानिबृहत्त्वाद्ब्रह्मगीयते ।
मन्त्रार्थःकथितोदेविसाधकाभीष्टसिद्धिदः ॥ ३४ ॥

अर्थ-हे देवि ! " एक " शब्दका अर्थ द्वैतभाववर्जितहै. बृहत् शब्दमें " ब्रह्म " अर्थप्रयुक्त होता है, मैंने साधुओंके अभीष्टका देनेवाला इसमंत्रका अर्थ तुमसे कहा ॥ ३४ ॥

मन्त्रचैतन्यमेतत्तुतदधिष्ठातृदेवता ।
तज्ज्ञानंपरमेशानि ! भक्तानांसिद्धिदायकम् ॥ ३५ ॥

अर्थ-इसके अधिष्ठातृ देवताके ज्ञान होनेका नामही मंत्रचैतन्य है, हे परमेश्वरि ! मंत्रके अधिष्ठाता देवताके ज्ञानके द्वारा सिद्धि प्राप्त होजाती है ॥ ३५ ॥

अस्या[1]धिष्ठातृदेवेशि ! सर्वव्यापिसनातनम् ।
अवितर्क्यंनिराकारं[2]वाचातीतंनिरञ्जनम् ॥३६ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! जो अवितर्क्य सर्वव्यापी, सनातन, निराकार और निरंजन है वही इस मंत्रके प्रतिपाद्य देवता है ॥ ३६ ॥

वाङ्मायाकमलाद्येनताररहीनेनपार्वति ! ।
दीयतेविविधाविद्यामायाश्रीःसर्वतोमुखी ॥ ३७ ॥

अर्थ-हे पार्वति! यह मंत्र प्रणव(ओं) रहित होके "ह्रीं" "श्रीं"को प्रणवस्थानमें प्राप्तकर विविध विद्या, माया और सर्वतोमुखी लक्ष्मी देताहै (१) ॥ ३७ ॥

१तस्याधिष्ठातृ इति पाठान्तरम् । २ अवितर्क्यं निरातङ्कमिति पाठस्तु नास्मभ्यं रोचते ।

(१) जिस प्रकार ऐं सच्चिदेकं ब्रह्म, इस मंत्रके द्वारा विद्या, ह्रींसच्चिदेकं ब्रह्म, इस मंत्रसे माया, श्रींसच्चिदेकं ब्रह्म, इस मंत्रसे लक्ष्मीकी आराधना की जाती है ॥

तारेणतारहीनेनप्रत्येकंसकलंपदम् ।
युग्मायुग्मक्रमेणापिमन्त्रोऽयंविविधोभवेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ–इसमंत्रके प्रत्येक पदमें अथवा समस्तपदोंमें प्रणवयुक्त अथवा रहित करनेसे किंवा इसके दो २ पदोंमें प्रणवयुक्त अथवा अलग करनेसे अनेक प्रकारके मंत्र उत्पन्न होतेहैं (१) ॥ ३८ ॥

ऋषिःसदाशिवोह्यस्यछन्दोनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवतापरमंब्रह्मसर्वान्तर्यामिनिर्गुणम् ॥ ३९ ॥

अर्थ–इस मंत्रके ऋषि सदाशिव हैं, छंद अनुष्टुप्‌है, देवता सर्वान्तर्यामि निर्गुण परब्रह्म है ॥ ३९ ॥

चतुर्वर्गफलावाप्त्यैविनियोगःप्रकीर्त्तितः ।
अङ्गन्यासकरन्यासौकथयामिशृणुप्रिये ॥ ४० ॥

अर्थ–चतुर्वर्ग फलप्राप्तिको विनियोग करना होताहै, हे प्रिये ! अङ्गन्यास और करन्यासका वर्णन करताहूं श्रवण करो,(२) ॥४०॥

तारंसच्चिदेकमितिब्रह्मेतिसकलंततः ।
अङ्गुष्ठतर्जनीमध्यानामिकासुमहेश्वरि ॥ ४१ ॥

---

(१) प्रत्येक पदमें प्रणव मिलाकर यथाः–ओंसत्, ओंचित्, ओम् एकम्, ओंब्रह्म । प्रणवरहित करके यथाः–सत् चित् एकं ब्रह्म । समस्तपदमें प्रणव मिलाकर यथाः–ओंसच्चिदेकं ब्रह्म । प्रणवरहित यथाः–सच्चिदेकं ब्रह्म । दो दो पदमें प्रणव मिलाकर यथाः–ओं सद् ब्रह्म, ओंचित् ब्रह्म, ओं एकं ब्रह्म, ओंसच्चित्, ओंचिदेकम् । प्रणवरहित करके यथाः–सद् ब्रह्म, चिद् ब्रह्म, एकं ब्रह्म, सच्चित्, चिदेकम् ॥ ३८ ॥

(२) चतुर्वर्गफल प्राप्तिके लिये विनियोगकीर्तन करना होगा ।

प्रयोगो यथाः–शिरसि, सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि सर्वान्तर्यामिनिर्गुणपरमब्रह्मणेदेवतायैनमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये विनियोगः । इस मंत्रसे ऋषिन्यास करके फिर अंगन्यास करन्यास करे ।

कनिष्ठयोःकरतलपृष्ठयोःसुरवन्दिते ! ।
नमःस्वाहावषट्हुंवौषट् फडन्तैर्यथाक्रमम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–प्रथम करन्यासमें "ओं सत्, चित्, ब्रह्म, एकं, ओं सच्चिदेकं ब्रह्म, यथाक्रमसे इन कई शब्दोंको उच्चारण करके अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा इन उंगलियोंमें और दोनों करतलपृष्ठमें अन्ते "नमः" "स्वाहा" "वषट्" "हुं" "वौषट्" और "फट्" यथा क्रमसे उच्चारणकरे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

न्यसेन्न्यासोक्तविधिनासाधकःसुसमाहितः ।
हृदादिकरपर्य्यन्तमेवमेवविधीयते (१) ॥ ४३ ॥

अर्थ–साधक इस प्रकार सावधान मनसे न्यासोक्तविधिके अनुसार करन्यास करे, क्रमसे हृदयादिसे लेकर करतक अंगन्यास करे ॥ ४३ ॥

प्राणायामंततःकुर्य्यान्मूलेनप्रणवेनवा ।
मध्यमानामिकाभ्याञ्चदक्षहस्तस्यपार्वति ॥ ४४ ॥

अर्थ–इसके उपरांत "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" इस मूल मंत्र अथवा प्रणवके द्वारा प्राणायाम करना चाहिये हे पार्वति ! दांये हाथकी मध्यमा और अनामिका अंगुलिसे ॥ ४४ ॥

---

१ नमः स्वाहावषट् वौषट् फडन्तैश्चयथाक्रमम् इति पाठस्तु प्रमाणादविजृम्भितः । २ हृदादिकरपर्यन्तमेवमेवं विधीयते इति पाठस्तु न समीचीनः किन्तु हृदादिपाद इति समीचीनतरः ।

(१) करन्यास प्रयोग, यथाः–ओं अङ्गुष्ठाभ्यांनमः । सत् तर्जनीभ्यां स्वाहा । चिन्मध्यमाभ्यां वषट् । एकमनामिकाभ्यां हुम् । ब्रह्म कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ओंसच्चिदेकं ब्रह्म करतलपृष्ठाभ्यां फट् ।

अंगन्यासप्रयोग, यथाः–ओंहृदयाय नमः । सच्छिरसे स्वाहा । चिच्छिखायै वषट् । एकं कवचाय हुम् । ब्रह्म नेत्रत्रयाय वौषट् । ओंसच्चिदेकं ब्रह्म करतलपृष्ठाभ्यां फट् ।

वामनासापुटंधृत्वादक्षनासापुटेनच[1] ।
पूरयेत्पवनंमन्त्रीमूलमष्टमितंजपन् ॥ ४५ ॥

अर्थ—वामनासापुट धारण करके दक्षिण नासापुटके द्वार, वायुको खैंचकर आठवार मूलमंत्र जपै, या प्रणवका ऊच्चारणकरे ॥ ४५ ॥

अंगुष्ठेनदक्षनासांधृत्वाकुंभकयोगतः ।
जपेद्द्वात्रिंशतावृत्त्याततोदाक्षिणनासया ॥ ४६ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त अंगुष्ठसे दक्षिण " नासा " धारण करके श्वासको रोके और बत्तीसवार मूलमंत्रका जप करे ॥ ४६ ॥

शनैःशनैस्त्यजेद्वायुंजपन्षोडशधामनुम् ।
वामनासापुटेऽप्येवंपूरकुम्भकरेचकम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—क्रम २ से श्वास छोडते२ सोलहवार मूलमंत्रको जपकर, फिर इस प्रकार वामनासापुटसे रेचक, पूरक और कुंभक करे ॥ ४७

पुनर्दक्षिणतःकुर्य्यात्पूर्ववत्सुरपूजिते ! ।
प्राणायामविधिःप्रोक्तोब्रह्ममन्त्रस्यसाधने ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे सुरवंदिते ! फिर दक्षिणनासासे आरंभ करके वामवासापर क्रमानुसार पहले की समान रेचक, पूरक और कुंभक करे मैंनें ब्रह्मसाधनसंबंधमें यह प्राणायामकी विधि तुमसे कही ॥ ४८ ॥

ततोध्यानंप्रकुर्व्वीतसाधकाभीष्टसाधनम् ॥ ४९ ॥

अर्थ— इसके उपरांत साधक अपने अभीष्टके सिद्ध करनेवाले ध्यानको करता है ॥ ४९ ॥

हृदयकमलमध्येनिर्व्विशेषंनिरीहम् ।
हरिहरविधिवेद्यंयोगिभिर्ध्यानगम्यम् ॥

---

१ दक्षनासापुटेनसः इति पुस्तकान्तरस्थः पाठः ।

जननमरणभीतिभ्रंशिसच्चित्स्वरूपम् ।
सकलभुवनबीजंब्रह्मचैतन्यमीड़े ॥ ५० ॥

अर्थ-जो निर्विशेष अनेक प्रकारके भेदोंसे रहित हैं, और चेष्टा-रहित हैं, जो हरिहर और ब्रह्मके जानने योग्य वस्तु हैं, जो योगीन्द्रोंके ध्यानमेंभी आते हैं, जिनके प्राप्त होनेसे जन्म मृत्युका भय दूर हो जाता है, जो समस्त भुवनके बीजस्वरूप हैं, मैं उन्हीं ब्रह्मका हृदयकमलमें ध्यान करताहूं ॥ ५० ॥

ध्यात्वैवंपरमंब्रह्ममानसैरुपचारकैः ।
पूजयेत्परयाभक्त्याब्रह्मसायुज्यहेतवे ॥ ५१ ॥

अर्थ-ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्तिके अर्थ साधक इस प्रकार ध्यान करके अत्यन्त भक्तिभावसे मानसोपचारके द्वारा परब्रह्मकी अर्च्चना करे ॥ ५१ ॥

गन्धंदद्यान्महीतत्त्वंपुष्पमाकाशमेवच ।
धूपंदद्याद्वायुतत्त्वंदीपंतेजःसमर्पयेत्[1] ॥
नैवेद्यंतोयतत्त्वेनप्रदद्यात्परमात्मने ॥ ५२ ॥

अर्थ-इस पूजामें भूतत्वको गंधरूपमें कल्पना करके ब्रह्ममें समर्पण करे, (इसी भांति) आकाशको पुष्प, वायुतत्वको धूप, तेजको दीप और जलराशिको नैवेद्य कल्पना करके परमात्माको समर्पण करे ॥ ५२ ॥

ततोजप्त्वामहामन्त्रंमनसासाधकोत्तमः ।
समर्प्यब्रह्मणेपश्चाद्बहिःपूजांसमारभेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ-इसके उपरांत मनही मनमें " ओं सच्चिदेकं ब्रह्म " महामंत्र जप करता रहे, ब्रह्ममें सबको समर्पण करके फिर बाहिरी पूजामें मनको लगाना चाहिये ॥ ५३ ॥

---

१ दीपं तैजसमर्पयेत् इति पाठान्तरम् ।

उपस्थितानिद्रव्याणिगन्धपुष्पादिकानि च ।
वस्त्रालङ्करणादीनिभक्ष्यपेयानियानि च ॥ ५४ ॥

अर्थ–उपस्थित गंध, फूल, वस्त्र, अलङ्कार, पान, भोजन करनेके पदार्थ अर्पण करे ॥ ५४ ॥

मन्त्रेणानेनसंशोध्यध्यात्वाब्रह्मसनातनम् ।
निमील्यनेत्रेमातिमानर्पयेत्परमात्मने ॥ ५५ ॥

अर्थ–इन द्रव्योंको आगे लिखे हुये मंत्रसे संशोधन करके दोनों नेत्र मूंद ब्रह्मका ध्यान करनेके उपरांत उनको प्रदान करे ॥ ५५॥

ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैवतेनगन्तव्यंब्रह्मकर्म्मसमाधिना ॥ ५६ ॥

अर्थ–संशोधनका मंत्र–यज्ञपात्रही ब्रह्महै, हव्यभी ब्रह्महै, अग्निभी ब्रह्म है, यज्ञ करनेवालाभी ब्रह्म है, (अधिक क्या कहैं) जो एकाग्र होकर ब्रह्ममें चित्त लगाते हैं, वह ब्रह्म कर्मको समाधी करके ब्रह्म मार्गमें चले जाते हैं ॥ ५६ ॥

ततोनेत्रेसमुन्मील्यजप्त्वामूलंस्वशक्तितः ।
तज्जपंब्रह्मसात्कृत्वास्तोत्रञ्चकवचंपठेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ–इसके उपरांत दोनों नेत्र खोलकर यथाशक्ति " ॐ सच्चिदेकं ब्रह्म " इस मूलमंत्रका जप करना उचित है, यह जप ब्रह्ममें समर्पण करके स्तोत्र और कवचका पाठ करना चाहिये५७॥

स्तोत्रंशृणुमहेशानि ! ब्रह्मणःपरमात्मनः ।
यच्छ्रुत्वासाधकोदेवि ! ब्रह्मसायुज्यमश्नुते ॥ ५८ ॥

अर्थ–हे देवि! परमात्माका स्तोत्र वर्णन करताहूं, श्रवण करो इसके श्रवण करनेसे साधक ब्रह्मसायुज्यमुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥

ओंनमस्तेसतेसर्वलोकाश्रयाय ।
नमस्तेचितेविश्वरूपात्मकाय ॥
नमोऽद्वैततत्वायमुक्तिप्रदाय ।
नमोब्रह्मणेव्यापिनेनिर्गुणाय ॥ ५९ ॥

अर्थ–तुम सर्व लोकके आश्रयस्वरूपहो, तुम सत्हो, तुमको नमस्कार है, तुम चैतन्यमय विश्वके आत्मा स्वरूपहो, तुम्हें नमस्कार है, तुम अद्वैत तत्व और मुक्तिके देनेवालेहो, तुम्हें नमस्कार है, तुम सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्महो तुमको नमस्कारहै ॥ ५९ ॥

त्वमेकंशरण्यंत्वमेकंवरेण्यम् ।
त्वमेकंजगत्कारणंविश्वरूपम् ॥
त्वमेकंजगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ ।
त्वमेकंपरंनिश्चलंनिर्विकल्पम् ॥ ६० ॥

अर्थ–केवल एक तुम्ही शरण देनेवाले हो, तुमही एक वरेण्यहो, केवल एक तुमही जगत्के कारणहो, पाता और संहारकर्ता तुमहो, तुम निश्चलहो, निर्विकल्प अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे शून्य और अद्वितीय पुरुषहो ॥ ६० ॥

भयानांभयंभीषणंभीषणानाम् ।
गतिःप्राणिनांपावनंपावनानाम् ॥
महोच्चैःपदानांनियन्तृत्वमेकम् ।
परेषांपरंरक्षकंरक्षकाणाम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–तुम भयकेभी भयहो, भीषणकेभी भीषणहो, तुम्ही प्राणियोंकी गतिहो, तुम प्रधानसेभी प्रधानहो और रक्षकोंकेभी रक्षकहो ॥ ६१ ॥

परेशप्रभो ! सर्वरूपाप्रकाशिन्[1] ! ।
अनिर्देश्य ! सर्वेन्द्रियागम्य ! सत्य ॥
अचिन्त्याक्षर ! व्यापकाव्यक्ततत्व ! ।
जगद्भासकाधीश ! पायादपायात् ॥ ६२ ॥

अर्थ–हे प्रभो ! तुम सर्वरूपहो; परंतु कोईभी तुमको नहीं देख-सक्ता, तुम अविनाशीहो, अनिर्देश्यहो, इन्द्रियोंसे अगम्यहो, अचि-न्त्यहो, अक्षय, अव्यक्त और सत्यरूपहो, तुम जगत्के भास-कहो, तुम हमारी भक्तिविश्लेषणादि अपार विपदसे रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तदेकंस्मरामस्तदेकंजपाम-
स्तदेकंजगत्साक्षिरूपंनमामः ॥
सदेकंनिधानंनिरालंबमीशम् ।
भवांभोधिपोतंशरण्यंव्रजामः ॥ ६३ ॥

अर्थ–मैं उस अद्वितीयब्रह्मका स्मरण करताहूं जगत्में एक मात्र साक्षी और जगत्का केवल एकही पोत होनेसे मैं तुम्हारी शरण हुआ ॥ ६३ ॥

पञ्चरत्नमिदंस्तोत्रंब्रह्मणःपरमात्मनः[2] ।
यःपठेत्प्रयतोभूत्वाब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

अर्थ–परमात्मा ब्रह्मका पंचरत्ननामक यह स्तोत्र जो भक्तिके सहित पाठ करेंगे उनको ब्रह्मसायुज्य प्राप्त हो जायगा ॥ ६४ ॥

प्रदोषेऽदःपठेन्नित्यंसोमवारेविशेषतः ।
श्रावयेद्बोधयेत्प्राज्ञोब्रह्मनिष्ठान्स्वबान्धवान् ॥ ६५ ॥

---

१ सर्व्वरूपाविनाशिंन्निति मुद्रितःपाठः । २ सर्वदात्मनः इति केचित्पठन्ति ।

अर्थ-प्रदोषके समय यह स्तोत्र प्रतिदिन पाठ करना चाहिये, विशेष करके ज्ञानीपुरुषको उचित है कि अपने बंधुबांधवोंको सोमवारके दिन यह श्रवण करादें और भलीभांतिसे समझदें॥६५

इतितेकथितंदेवि ! पञ्चरत्नंमहेशितुः ।
कवचंशृणुचार्व्वङ्गि ! जगन्मङ्गलनामकम् ।
पठनाद्धारणाद्यस्यब्रह्मज्ञोजायतेध्रुवम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैंने तुमसे महेश्वरका पंचरत्ननामक स्तोत्र कहा अब जगन्मंगल नाम 'कवच' को कहता हूं तुम श्रवणकरो. इसके श्रवण करने और धारण करनेसे निश्चयही ब्रह्मज्ञ हो सक्ता है ॥६६

परमात्माशिरःपातुहृदयंपरमेश्वरः ।
कण्ठंपातुजगत्पातावदनंसर्वदृग्विभुः ॥ ६७ ॥
करौमेपातुविश्वात्मापादौरक्षतुचिन्मयः ।
सर्व्वाङ्गंसर्वदापातुपरंब्रह्मसनातनम् ॥ ६८ ॥

अर्थ-कवच यह है-परमात्मा मेरे शिरकी रक्षाकरें,परमेश्वर हृदयकी रक्षाकरें, जगत्पाता कंठकी रक्षा करें, चिन्मय मेरे दोनों चरणोंकी रक्षाकरें, सनातन परब्रह्म मेरे सब शरीरकी रक्षा करें६७।६८

श्रीजगन्मङ्गलस्यास्यकवचस्यसदाशिवः ।
ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुबितिपरमब्रह्मदेवता ।
चतुर्व्वर्गफलावाप्त्यैविनियोगःप्रकीर्त्तितः ॥ ६९ ॥

अर्थ-सदाशिव इस जगन्मंगल कवचके ऋषी हैं, छंद अनुष्टुप् है, परब्रह्म देवता, चतुर्वर्ग प्राप्तिके लिये विनियोग कीर्तन करना होता है (१) ॥ ६९ ॥

---

(१) ऋषिन्यास यथाः-अस्य श्रीजगन्मङ्गलनामककवचस्य सदाशिवऋषिरनुष्टुप् छन्दः परमब्रह्म देवता, धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये श्रीजगन्मंगलाख्यकवचपाठे विनियोगः । शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदि परमब्रह्मणे देवतायै नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये श्रीजगन्मंगलाख्यकवचपाठे विनि योगः ।

यःपठेद्ब्रह्मकवचमृषिन्यासपुरःसरम् ।
सब्रह्मज्ञानमासाद्यसाक्षाद्ब्रह्ममयोभवेत् ॥ ७० ॥

अर्थ-जो ऋषी न्यासको करके इस ब्रह्मकवचका पाठ करते हैं, वोह ब्रह्मज्ञान पायकर ब्रह्ममय होजाते हैं ॥ ७० ॥

भूर्ज्जेविलिख्यगुटिकांस्वर्णस्थांधारयेद्यदि ।
कण्ठेवादक्षिणेबाहौसर्वसिद्धीश्वरोभवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ-यदि कोई भोजपत्रपर लिखकर इस कवचको सुवर्णके तावीजमें रखके कंठ वा दाहिने हाथमें धारण करता है, उसके समस्त कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ७१ ॥

इत्येतत्परमब्रह्मकवचन्तेप्रकाशितम् ।
दद्यात्प्रियायशिष्यायगुरुभक्तायधीमते ॥ ७२ ॥

अर्थ-मैंने तुमसे यह परब्रह्म कवच प्रकाशित किया, इसको गुरु, भक्त प्रियशिष्यको देना चाहिये ॥ ७२ ॥

पठित्वास्तोत्रकवचंप्रणमेत्साधकाग्रणीः ॥ ७३ ॥

अर्थ-साधकोंमें अग्रगण्य इस स्तोत्र कवचको पढ़कर प्रणाम करें ॥ ७३ ॥

ओंनमस्तेपरमंब्रह्मनमस्तेपरमात्मने ।
निर्गुणायनमस्तुभ्यंसद्रूपायनमोनमः ॥ ७४ ॥

अर्थ-तुम परमात्मा परब्रह्महो,तुमको नमस्कार है,तुम गुणातीत और सत्स्वरूपहो तुमको नमस्कार है ॥ ७४ ॥

वाचिकंकायिकंवापिमानसंवायथामति ।
आराधनेपरेशस्यभावशुद्धिर्विधीयते ॥ ७५ ॥

अर्थ-परमब्रह्मकी आराधनामें कायिक, वाचिक और मानसिक इन तीन प्रकारमें जैसी इच्छा हो वैसा नमस्कार किया जासक्ता है; परंतु चित्तकी शुद्धिका विशेष प्रयोजन है ॥ ७५ ॥

एवंसंपूज्यमतिमान्स्वजनैर्बान्धवैःसह ।
महाप्रसादंस्वीकुर्य्याद्ब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ ७६ ॥

अर्थ–बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार ब्रह्मकी अर्च्चना करके आत्मीय अन्तरंगोंके साथ महाप्रसाद को ग्रहण करे ॥ ७६ ॥

पूजनेपरमेशस्यनावाहनविसर्ज्जने ।
सर्व्वत्रसर्व्वकालेषुसाधयेद्ब्रह्मसाधनम् ॥ ७७ ॥

अर्थ–परमेश्वरकी पूजाका काल, आवाहन और विसर्जन नहीं है ब्रह्मसाधनके लिये सब समय ठीक है ॥ ७७ ॥

आस्नातोवाकृतस्नानोभुक्तोवापिबुभुक्षितः[1] ।
पूजयेत्परमात्मानंसदानिर्म्मलमानसः ॥ ७८ ॥

अर्थ–स्नान किये हुए या विना स्नान किये हुए भुक्त या अभुक्त जिस अवस्थामें और जिस कालमें हो विशुद्धचित्त होकर परमेश्वरकी उपासना करना योग्य है ॥ ७८ ॥

अनेनंब्रह्ममन्त्रेणभक्ष्यपेयादिकञ्चयत् ।
दीयतेपरमेशायतदेवपावनंमहत् ॥ ७९ ॥

अर्थ–इस ब्रह्ममंत्रके द्वारा जो कोई भी खाने पीनेकी वस्तु ब्रह्ममें समर्पण की जाती है ॥ ७९ ॥

गङ्गातोयेशिलादौचस्पृष्टदोषोऽपिवर्त्तते ।
परब्रह्मार्पितेद्रव्येस्पृष्टास्पृष्टंनविद्यते ॥ ८० ॥

अर्थ–गंगाजल और शालिग्रामशिलादिमें दोष लग सक्ता है; परंतु परब्रह्ममें जो वस्तु अर्पण की जाती है, उसमें किसी दोषके लगनेकी संभावना नहीं ॥ ८० ॥

पक्कंवापिनपक्कंवामन्त्रेणानेनमन्त्रितम् ।

---

१ भुक्त्वा वापि बुभुक्षितः इति हस्तलिखितपुस्तकानां पाठः ।

साधकोब्रह्मसात्कृत्वाभुञ्जीयात्स्वजनैःसह ॥ ८१ ॥

अर्थ-द्रव्य हुआ हो या बे पका हो ब्रह्ममंत्रके बलसे जब वोह द्रव्य ब्रह्ममें अर्पण किया जाय, तब साधकको उचित है कि अपने स्वजनोंके साथ उसको भोजन करे ॥ ८१ ॥

नात्रवर्णविचारोऽस्तिनोच्छिष्टादिविवेचनम् ।
नकालनियमोऽप्यत्रशौचाशौचंतथैवच ॥ ८२ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिवेदित सामग्रीके भोजन करनेमें जातिका विचार वा जूठका विचार नहीं है । इसमें कालाकाल या शौचाशौचके विचारकी भी आवश्यकता नहीं है ॥ ८२ ॥

यथाकालेयथादेशेयथायोगेनलभ्यते ।
ब्रह्मसात्कृतनैवेद्यमश्नीयादविचारयन् ॥ ८३ ॥

अर्थ-हे देवि ! तौभी वह अतिशय पवित्र है और देवताओंकोभी दुर्लभ है ॥ ८३ ॥

आनीतंश्वपचेनापिश्वमुखादपिनिःसृतम् ।
तदन्नंपावनंदेवि ! देवानामपिदुर्लभम् ॥ ८४ ॥

अर्थ-जिस समयमें जिस देशमें जैसी ब्रह्मनिवेदित नैवेद्य प्राप्त होजाय उसको विना विचारे भोजन कर लेना चाहिये ॥ ८४ ॥

किंपुनर्म्मनुजादीनांवक्तव्यंदेववन्दिते ! ।
परमेशस्यनैवेद्यसेवनाद्यत्फलंभवेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ-हे देववंदिते ! जब ऐसा अन्न देवताओंकोभी दुर्लभ है, फिर मनुष्योंकी तो बातही क्या है ॥ ८५ ॥

महापातकयुक्तोवायुक्तोवाप्यन्यपातकैः ।
सकृत्प्रसादग्रहणान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ८६ ॥

अर्थ-जो पुरुष महापातकी हो वा जिसने और पातक किये

हो वहभी यदि केवल एकही वार ब्रह्मका प्रसाद पावै, तो वोह सब पापोंसे छुटजाता है इसमें कोईभी संदेह नहीं है ॥ ८६ ॥

सार्धत्रिकोटितीर्थेषुस्नानदानेनयत्फलम् ।
तत्फलंलभतेमर्त्त्योब्रह्मार्पितानिषेवणात् ॥ ८७ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिवेदित वस्तु ग्रहण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, साडेतीन करोड तीर्थोंमें स्नान दान करनेसे फल होता है, ब्रह्मार्पित वस्तु ग्रहण करनेसेभी मनुष्यको वहीं फल प्राप्त होता है॥८७॥

अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वायत्फलमश्नुते ।
भक्षितेब्रह्मनैवेद्येतस्मात्कोटिगुणंलभेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ-अश्वमेधादि यज्ञ करनेसे जो फल प्राप्त होता है, ब्रह्मनिवेदित वस्तुके भक्षण करनेसे उससै करोडगुण फल मिलता है॥८८

जिह्वाकोटिसहस्रैस्तुवक्त्रकोटिशतैरपि ।
महाप्रसादमाहात्म्यंवर्णितुंनैवशक्यते ॥ ८९ ॥

अर्थ-यदि सहस्र करोड जीभ हो जांय और शतकरोड मुख हो जांय तोभी ब्रह्मप्रसादका माहात्म्य वर्णन नहीं किया जा सक्ता ॥ ८९ ॥

यत्रकुत्रस्थितोवापिप्राप्यब्रह्मार्पितामृतम् ।
गृहीत्वाकीकशोवापिब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ९० ॥

अर्थ-यदि चांडालभी किसी स्थानमें ब्रह्मप्रसाद प्राप्त करके उसको भोजन करले तो उसको ब्रह्मसायुज्य प्राप्त होता है ॥९०॥

यदिस्यान्नीचजातीयमन्नंब्रह्मणिभावितम् ।
तदन्नंब्राह्मणैर्ग्राह्यमपिवेदान्तपारगैः ॥ ९१ ॥

अर्थ-यदि नीच जातिका अन्न ब्रह्ममें समर्पण किया जाय तो वेदान्तपारग ब्राह्मणभी उस अन्नको ग्रहणकर सक्ते हैं ॥ ९१ ॥

४

जातिभेदोनकर्त्तव्यःप्रसादेपरमात्मनः ।
योऽशुद्धबुद्धिंकुरुतेसमहापातकीभवेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ–परमात्माके प्रसादको ग्रहण करनेमें जातिभेदका विचार करना कर्तव्य नहीं है । जो पुरुष इसको अपवित्र समझता है वोह महापातकमें लिप्त होता है ॥ ९२ ॥

वरंपापशतंकुर्य्याद्वरंविप्रवधंप्रिये ।
परब्रह्मार्पितेह्यन्नेनकुर्य्यादवहेलनम् ॥ ९३ ॥

अर्थ–हे प्रिये! बरन लोक शतशत पापकार्य कर सक्ता है, बरन ब्रह्महत्या कर्तव्यकर्मके बीचमें गिनी जा सक्ती है तथापि ब्रह्मके अन्नका अवहेला करना कर्तव्य नहीं है ॥ ९३ ॥

येत्यजन्तिनरामूढामहामन्त्रेणसंस्कृतम् ।
अन्नतोयादिकंभद्रे ! पितॄंस्तेपातयन्त्यधः ॥ ९४ ॥

अर्थ–हे भद्रे ! जो मूढ़लोग महामंत्र पढ़ेहुए इस सुसंस्कृत अन्न जलादिको त्याग करते हैं, उनके पितृपुरुष अधोलोकमें रहते हैं ॥ ९४ ॥

स्वयमप्यन्धतामिस्रेपतन्त्याहूतसंप्लवम्[1] ।
ब्रह्मसात्कृतनैवेद्यद्वेष्टॄणांनास्तिनिष्कृतिः ॥ ९५ ॥

अर्थ–वह लोगभी प्रलयकालतक अंधतामिस्रनामक नरकमें वास करते हैं । जो ब्रह्मसात् कृतनैवेद्यादिसे द्वेष करते हैं उनका किसी प्रकारसे छुटकारा नहीं ॥ ९५ ॥

पुण्यायन्तेक्रियाःसर्वाःसुषुप्तिः[2]सुकृतायते ।
स्वेच्छाचारोऽत्रविहितोमहामन्त्रस्यसाधने ॥ ९६ ॥

---

१ पतन्त्याभूतसंप्लवम् इतिबहुपुस्तकानां पाठः । २ सुकृतिः सुकृतायते इति क्वचित्पाठः ।

अर्थ–जो लोग ब्रह्म मंत्रको साधन करते हैं, उनके अपवित्र कर्मभी पवित्र होजाते हैं सुषुप्ति पुण्यकर्म होजाती है, और अवैध स्वेच्छाचार अनुष्ठान शास्त्रोक्तकर्ममें गिना जाता है ॥९६॥

किंतस्यवैदिकाचारैस्तांत्रिकैर्वापितस्याकिम्।
ब्रह्मनिष्ठस्यविदुषःस्वेच्छाचारोविधिःस्मृतः ॥ ९७ ॥

अर्थ–जो ब्रह्मनिष्ठ और ज्ञानवान है उसके लिये वैदिक या तांत्रिक क्रियाका प्रयोजन क्या है उसका स्वेच्छाचारही विधिरूप होकर आदृत कियाजाता है ॥ ९७ ॥

कृतेनास्यफलंनास्तिनाकृतेनापिकिल्बिषम्।
निर्विघ्नःप्रत्यवायोऽस्यब्रह्ममन्त्रस्यसाधनात् ॥ ९८ ॥

अर्थ–ब्रह्मनिष्ठ पुरुष कोई भी वैधकार्य करके उसके फलको प्राप्त नहीं होता और वैध कर्म न करनेपरभी उसका प्रत्यवाय नहीं होता विचार करनेसे जाना जाता है कि ब्रह्ममंत्र साधन करनेमें किसीप्रकारके विघ्न या प्रत्यवायकी सम्भावना नहीं है ॥ ९८ ॥

अस्मिन्धर्म्मे[1]महेशि ! स्यात्सत्यवादीजितेन्द्रियः।
परोपकारनिरतोनिर्विकारःसदाशयः ॥ ९९ ॥

अर्थ–हे महेश्वरि ! इस धर्मका अनुष्ठान करनेमें सत्यवादी, जितेन्द्रिय, परोपकारी, निर्विकार और सदाशय होना चाहिये॥९९

मात्सर्य्यहीनोऽदम्भीचदयावाञ्छुद्धमानसः।
मातापित्रोःप्रीतिकारीतयोःसेवनतत्परः ॥ १०० ॥

अर्थ–ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको मात्सर्य व दंभहीन दयावान शुद्धचित्त पितामाताका प्रियकारी और उनकी सेवामें परायण होना चाहिये॥

ब्रह्मश्रोताब्रह्ममन्ताब्रह्मान्वेषणमानसः।

---

१ तास्मिन् धर्मे इति पाठान्तरम्।

यतात्माद्दढबुद्धिःस्यात्साक्षाद्ब्रह्मेतिभावयन् ॥ १०१ ॥

अर्थ–जो ब्रह्म प्रतिपाद्य विषयको श्रवण करते हैं, ब्रह्म चिन्तन और ब्रह्मानुसंधान करते हैं वही संय्यतचित्त स्थिरबुद्धिसे ब्रह्मको साक्षात् कर सक्ते हैं ॥ १०१ ॥

नमिथ्याभाषणंकुर्य्यान्नापरानिष्टचिन्तनम् ।
परस्त्रीगमनञ्चैवब्रह्ममन्त्रीविवर्ज्जयेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ–हे देवि ! ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको मिथ्या कहना पराया बुरा चेतना या पराई स्त्रीका हरण करना कर्तव्य नहीं है ॥ १०२ ॥

तत्सदितिवदेद्देवि ! प्रारम्भेसर्वकर्म्मणाम् ।
ब्रह्मार्पणमस्तुवाक्यंपानभोजनकर्म्मणोः ॥ १०३ ॥

अर्थ–ब्रह्मनिष्ठ पुरुष सब कार्योंके आरंभमें "तत् सत्" वाक्य उच्चारण करे और पान भोजनादि कार्यमें "ब्रह्मार्पणमस्तु" कहकर ब्रह्मको अर्पण करे ॥ १०३ ॥

येनोपायेनमर्त्त्यानांलोकयात्राप्रसिद्धयति ।
तदेवकार्य्यंब्रह्मज्ञैरिदंधर्म्मंसनातनम् ॥ १०४ ॥

अर्थ–जिससे भलीभांति संसारयात्राका निर्वाह हुए जाय, वही कार्य ब्रह्मज्ञको करना उचित है यही ब्रह्मज्ञानियोंका सनातन धर्म है ।

अथसन्ध्याविधिंवक्ष्येब्रह्ममन्त्रस्यशाम्भवि ! ॥
यांकृत्वाब्रह्मसम्पत्तिंलभन्तेभुविमानवाः ॥ १०५ ॥

अर्थ–हे शाम्भवि ! अब मैं तुमसे ब्रह्मसंध्याविधि कहताहूं, ब्रह्मनिष्ठलोग इस संध्याविधिको समाप्त करके ब्रह्मस्वरूपसम्पत्ति प्राप्तकर सकेंगे ॥ १०५ ॥

प्रातर्मध्याह्नसायाह्नेयथादेशेयथासने ।
पूर्ववत्परमब्रह्मध्यात्वासाधकसत्तमः ॥ १०६ ॥

---

१ इदं कार्य्यंसमापनम् इति वा पाठः ।

अर्थ–श्रेष्ठ साधकको प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, और संध्या-समय, यथोक्त स्थानमैं कहे हुए आसनपर पहलेकी समान बैठकर परब्रह्मका ध्यान करना उचित है ॥ १०६ ॥

अष्टोत्तरशतंदेवि ! गायत्रीजपमाचरेत् ।
जपंसमर्प्यविधिवत्पूर्ववत्प्रणमेत्सुधीः ॥ १०७ ॥

अर्थ–हे देवि! इसके उपरांत ज्ञानी पुरुष एकशत आठबार गायत्रीका जप कर विधिविधानसे उसके समाप्त होनेपर प्रणाम करे (१)॥ १०७ ॥

एषासन्ध्यामयाप्रोक्तासर्वथाब्रह्मसाधने ।
यदनुष्ठानतोमन्त्रीशुद्धान्तःकरणोभवेत् ॥ १०८ ॥

अर्थ–हे पार्वती ! मैंने तुमसे ब्रह्ममंत्रके सिद्ध करनेकी संध्याको कहा, इसका अनुष्ठान करनेसे साधकका अंतःकरण शुद्धहो जाता है ॥ १०८ ॥

गायत्रींशृणुचार्वङ्गि ! सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
परमेश्वरंङेऽन्तमुक्त्वाविद्महेतदनन्तरम् ॥ १०९ ॥

अर्थ–हे सुन्दरी ! इस समय सब पापोंकी नाश करनेवाली गायत्रीको कहताहूं श्रवणकरो, प्रथम परमेश्वरशब्दमें चतुर्थी विभक्तिका एकवचन मिलाकर फिर " विद्महे " उच्चारण करना चाहिये ॥ १०९ ॥

परतत्वायपदतोधीमहीतिवदेत्प्रिये ! ।
तदनन्तरमीशानि ! तन्नोब्रह्मप्रचोदयात् ॥ ११० ॥

अर्थ–हे प्रिये! इसके उपरांत "परतत्वाय" उच्चारणकरनेके पीछे "धीमहि" पदका उच्चारण करना चाहिये फिर " तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्" पदको उच्चारण करे (२)॥ ११० ॥

---

१ गायत्रीः–ओं परमेश्वराय विद्महे परतत्वाय धीमहि ॥ तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ॥

२ हम परमेश्वरका सदा ध्यान करते हैं । हम परतत्व अर्थात् ब्रह्मतत्वका सदा ध्यान करतेहैं । वह ब्रह्म हमको धर्म अर्थ, काम, और मोक्षमें लगावें ॥

इयंश्रीब्रह्मगायत्रीचतुर्वर्गप्रदायिनी ।
पूजनंयजनञ्चैवस्नानंपानञ्चभोजनम् ॥१११॥
यद्यत्कर्म्मप्रकुर्वीतब्रह्ममन्त्रेणसाधयेत् ।
ब्राह्मेमुहूर्तेचोत्थायप्रणम्यब्रह्मदंगुरुम् ॥ ११२ ॥

अर्थ–यह ब्रह्मगायत्री चतुर्वर्गको दान करतीहै, पूजन, यज्ञ करना, स्नान, पान, भोजनादि जो जो कर्म करने होतेहैं ब्रह्ममंत्र-द्वारा उनको सिद्ध करना चाहिये, ब्राह्ममुहूर्तमें बिस्तरेको त्याग कर ब्रह्मदाता गुरुको प्रणाम करना चाहिये ॥१११॥ ११२ ॥

ध्यात्वाचपरमंब्रह्मयथाशक्तिमनुंस्मरेत् ।
पूर्ववत्प्रणमेद्ब्रह्मप्रातःकृत्यमिदंस्मृतम् ॥ ११३ ॥

अर्थ–अनंतर ब्रह्मका ध्यानकरके यथाशक्ति मंत्रको उच्चारण-करे, फिर ब्रह्मको नमस्कार करे, बस येही ब्रह्मनिष्ठलोगोंका प्रातः-कृत्य है ॥ ११३ ॥

द्वात्रिंशतासहस्रेणजपेनास्यपुरस्क्रिया ।
तद्दशांशेनहवनंतर्पणंतद्दशांशतः ॥ ११४ ॥

अर्थ–यदि ब्रह्ममंत्रका पुरश्चरण करना होतो बत्तीसहजार जप करना चाहिये, जपका दशांश होम और होमका दशमांश तर्पण करना उचित है ॥ ११४ ॥

सेचनंतद्दशांशेनतद्दशांशेनसुन्दरि! ।
ब्राह्मणान्भोजयेन्मन्त्रीपुरश्चरणकर्म्मणि ॥ ११५ ॥

अर्थ–हे सुन्दरि ! तर्पणका दशमांश अभिषेक करना उचित है, जो पुरुष मंत्रसाधक है, उसको पुरश्चरण करनेके समय अभिषेकका दशमांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये ॥ ११५ ॥

भक्ष्याभक्ष्यविचारोऽत्रत्याज्यंग्राह्यंनविद्यते ।

नकालशुद्धिनियमोनवास्थाननिरूपणम् ॥ ११६ ॥

अर्थ-ब्रह्मपुरश्चरणमें भक्ष्याभक्ष्यका विचार या त्याज्याऽत्याज्यका विचार और काल व स्थानका स्थिर करना कुछभी नहीं है ॥ ११६ ॥

अभुक्तोवापिभुक्तोवास्नातोवास्नातएववा ।
साधयेत्परमंमन्त्रंस्वेच्छाचारेणसाधकः ॥ ११७ ॥

अर्थ-ब्रह्मनिष्ठपुरुष ऐसे कार्यमें स्नातहो, अस्नातहो, भुक्तहो, अभुक्तहो जिस अवस्थामें भी हो इच्छानुसार इस परममंत्रका साधन करसक्ता है ॥ ११७ ॥

विनायासंविनाक्लेशंस्तोत्रञ्चकवचंविना ।
विनान्यासंविनामुद्रांविनासेतुंवरानने! ॥ ११८ ॥

अर्थ-हे वरवर्णिनि ! ब्रह्मके साधन करनेमें क्लेश,श्रम नहीं करना पड़ता, स्तोत्र या कवचभी नहीं पढना होता, इसमें न्यास, मुद्रा और सेतुकीभी आवश्यकता नहीं है ॥ ११८ ॥

विनाचौरगणेशादिजपञ्चकुल्लुकांविना ।
अकस्मात्परमब्रह्मसाक्षात्कारोभवेद्ध्रुवम् ॥ ११९ ॥

अर्थ-इस कार्यमें चौर गणेशादिकी पूजा, वा कुल्लुकाभी नहीं करनी होती, इन सब अनुष्ठानोंके किये विनाभी अल्पकालमें निश्चयही परमब्रह्मसे साक्षात् होसक्ता है ॥ ११९ ॥

संकल्पोऽस्मिन्महामन्त्रेमानसःपरिकीर्त्तितः ।
साधनेब्रह्ममन्त्रस्यभावशुद्धिर्विधीयते ॥ १२० ॥

अर्थ-इस महामंत्रका साधनकरनेमें मानसिक संकल्पकाही प्रयोजन है और भावशुद्धिकीभी आवश्यकता है ॥ १२० ॥

सर्वंब्रह्ममयंदेवि ! भावयेद्ब्रह्मसाधकः ।

नचास्यप्रत्यवायोऽस्तिनाङ्गवैगुण्यमेवच ।
महामनोःसाधनेतुव्यङ्गंसाङ्गायतेध्रुवम् ॥ १२१ ॥

अर्थ-हे देवि ! समस्त पदार्थोंको ही ब्रह्ममय जानकर विचार करना ब्रह्मसाधकको उचित है, इस कार्यमें कोई कसर वा अंगहीनता प्रगट नहीं हो और प्रत्यवायभी नहो। यदि कार्यकी गतिसे कोई अंगहीनता हो तोभी वह साङ्ग होजाता है ॥ १२१ ॥

कलौपापयुगेघोरेतपोहीनेऽतिदुस्तरे ।
निस्तारबीजमेतावद्ब्रह्ममन्त्रस्यसाधनम् ॥ १२२ ॥

अर्थ-इस कलियुगमें दुःसाध्य तपस्याका प्रभाव क्षीण होगया है, पापकी घोर धार बह रहीहै, बस इस समय ब्रह्मसाधनही केवल जीवके निस्तार होनेका मार्गहै ॥ १२२ ॥

साधनानिबहूक्तानिनानातन्त्रागमादिषु।
कलौदुर्बलजीवानामसाध्यानिमहेश्वरि ! ॥ १२३ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! यद्यपि मैंने अनेक प्रकारके मंत्र अनेक प्रकारके आगम और अनेक प्रकारके साधन कहेहैं; परंतु कलियुगके दुर्बल जीवोंके लिये वह सब अतिशय दुःसाध्य है ॥ १२३ ॥

अल्पायुषःस्वल्पवृत्ता[1]अन्नाधीनासवःप्रिये ।
लुब्धाधनार्जनेव्यग्राःसदाचञ्चलमानसाः ॥ १२४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! कलियुगके लोग अल्पायु और अन्नगतप्राण होंगे वह अनुष्ठान करनेमें यत्न नहीं कर सकेंगे विशेषकरके वह लोभी और धनके पैदा करनेमें व्यग्रहो अत्यन्त चपलमति होंगे ॥ १२४ ॥

---

१ स्वल्पवित्ता इति वा पाठः ।

समाधावस्थिराधियोयोगक्लेशासहिष्णवः ।
तेषांहितायमोक्षायब्रह्ममार्गोयमीरितः ॥ १२५ ॥

अर्थ-वह योगमें क्लेश करने या समाधिके विषे स्थिर रहनेमें समर्थ नहीं होंगे इस कारण उनका हित करने और उनके मोक्षके लिये मैंने ब्रह्मोपासनाका मार्ग स्वच्छ करदिया ॥ १२५ ॥

कलौनास्त्येवनास्त्येवसत्यंसत्यंमयोच्यते ।
ब्रह्मदीक्षांविनादेवि ! कैवल्यायसुखायच ॥ १२६ ॥

अर्थ-मैं सत्यही कहताहूं कि ब्रह्मदीक्षाके सिवाय कलियुगमें सुख और मुक्तिविधायी और कोई साधन नहींहै ॥ १२६ ॥

प्रातःकृत्यंप्रातरेवसंध्यांकुर्यात्रिकालतः ।
मध्याह्नेपूजनंकुर्य्यात्सर्वतन्त्रेष्वयंविधिः ।
परब्रह्मोपासनेतुसाधकेच्छाविधिःशिवे ! ॥ १२७ ॥

अर्थ-सर्व तंत्रोंकी व्यवस्था यहीहै कि प्रातःकालमें प्रातःकृत्य समाप्त करके त्रिकालीन संध्या करे और मध्यान्ह समयमें पूजा करे, हे शिवे ! परमब्रह्मकी उपासनामें साधककी इच्छाही विधि गिनी जाती है ॥ १२७ ॥

विधयःकिङ्करायत्रनिषेधाःप्रभवोपिन ।
स्वेच्छाचारेणेष्टसिद्धिस्तद्विनाकोऽन्यमाश्रयेत्॥१२८॥

अर्थ-जिस कार्यमें विधि किंकरस्वरूप है और सब निषेधभी स्वामीपनसे विमुख हैं, ब्रह्मसाधनमें स्वेच्छाचार होनेसे इष्ट सिद्धि होतीहै तिसके सिवाय और किसका आश्रय लिया जा सक्ता है ॥ १२८ ॥

ब्रह्मज्ञानीगुरुंप्राप्यशान्तंनिश्चलमानसम् ।
धृत्वातच्चरणांभोजंप्रार्थयेद्भक्तिभावतः ॥ १२९ ॥

अर्थ–ब्रह्मनिष्ठपुरुष, स्थिरमति, शान्त, ब्रह्मज्ञानी, गुरुको प्राप्त करकै उसके चरणकमलमें भक्तिसे भरकर यह प्रार्थना करै॥ १२९॥

करुणामय ! दीनेश ! तवाहंशरणागतः ।
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायांदेहिमूर्ध्नियशोधन ! ॥ १३० ॥

अर्थ–हे दयामय, दीनेश ! मैं तुह्मारी शरण हुआ, हे यशोधन ! तुम मेरे मस्तकपर चरणकमलकी छाया करो ॥ १३० ॥

इतिप्रार्थ्यगुरुंपश्चात्पूजयित्वास्वशक्तितः ।
कृताञ्जलिपुटोभूत्वातूष्णींतिष्ठेद्गुरोःपुरः ॥ १३१ ॥

अर्थ–गुरूसे ऐसी प्रार्थना करके शिष्य यथाशक्ति गुरुकी अर्चना करै, तिसके उपरान्त उसके निकट हाथ जोड़कर मौन भावसे रहै ॥ १३१ ॥

गुरुर्विचार्य्यविधिवद्यथोक्तंशिष्यलक्षणम् ।
आहूयकृपयादद्यात्सच्छिष्यायमहामनुम् ॥ १३२ ॥

अर्थ–गुरुभी यथा विधान वा यथा रीतिसे लक्षणकी परीक्षा करके शिष्यको बुलायकर दयायुक्त हृदयसे महामंत्र दे ॥ १३२॥

उपविश्यासनेज्ञानीप्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ।
स्ववामेशिष्यमानीयकारुण्येनावलोकयेत् ॥ १३३ ॥

अर्थ–इसके उपरान्त वह ज्ञानवान पुरुष पूर्वमुख वा उत्तर-मुखहो आसनपर बैठ शिष्यको अपनी बांई ओर बैठाय उसके प्रति करुणाकी दृष्टिसे देखे ॥ १३३ ॥

ततःशिष्यस्यशिरसिऋषिन्यासपुरःसरम् ।
जपेदष्टशतंमंत्रंसाधकस्येष्टसिद्धये ॥ १३४ ॥

अर्थ–इसके उपरान्त साधककी इष्टसिद्धिके लिये ऋषिन्यास करकै शिष्यके मस्तकपर एकसौ आठ मंत्रजप करे ॥ १३४ ॥

दक्षकर्णेब्राह्मणानामितरेषाञ्चवामतः ।
सप्तधाश्रावयेन्मत्रंसद्गुरुःकरुणानिधिः ॥ १३५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त करुणामय सद्गुरु ब्राह्मण शिष्यके दाहिने कानमें और दूसरे जातिवाले शिष्यके बांये कानमें सातवार मंत्रको सुनावै ॥ १३५ ॥

उपदेशविधिःप्रोक्तोब्रह्ममन्त्रस्यकालिके ! ।
नात्रपूजाद्यपेक्षास्तिसंकल्पंमानसञ्चरेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ-हे कालिके ! तुमसे ब्रह्ममंत्रको कहा इसमें पूजादिकी अपेक्षा नहीं है, केवल मानसिक संकल्प करना होता है ॥ १३६ ॥

ततःश्रीगुरुपादाब्जेदण्डवत्पतितंशिशुम् ।
उत्थापयेद्गुरुःस्नेहादिमंमन्त्रमुदीरयन् ॥ १३७ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त जब शिष्य गुरुके चरणकमलमें दण्डवत् करे तब गुरुको उचित है कि यह मंत्रपाठ कराकर शिष्यको उठावै ॥ १३७ ॥

उत्तिष्ठवत्स ! मुक्तोऽसिब्रह्मज्ञानपरोभव[1] ।
जितेन्द्रियःसत्यवादीबलारोग्यंसदास्तुते ॥ १३८ ॥

अर्थ-हे बेटा ! तुम उठो । इस समय तुम मुक्त हुए हो, तुम जितेन्द्रिय, सत्यवादी और ब्रह्मज्ञानी हो तुह्मारा बल और आरोग्य सदा प्रकाशित होता हैं ॥ १३८ ॥

ततउत्थायगुरवेयथाशक्त्यनुसारतः ।
दक्षिणांस्वंफलंवापिदद्यात्साधकसत्तमः ।
गुरोराज्ञावशीभूत्वाविहरेद्देववद्भुवि ॥ १३९ ॥

---

१ ब्रह्मज्ञानयुतोभव इति वा पाठः ।

अर्थ-इसके उपरान्त साधक उठै और दक्षिणामें शक्तिके अनुसार धन वा फल गुरूको देवै, फिर गुरूजीकी आज्ञाके अनुसार शिष्य पृथ्वी पर देवताकी समान विहार करता रहै ॥ १३९ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेणतदात्मातन्मयोभवेत् ।
ब्रह्मभूतस्यदेवेशि ! किमन्यैर्बहुसाधनैः ।
इतिसंक्षेपतोब्रह्मदीक्षातेकथिताप्रिये ! ॥ १४० ॥

अर्थ-ब्रह्ममंत्रग्रहण करनेपर जीवकी आत्मा ब्रह्ममय होजाती है, जो ब्रह्ममय होता है, उसको और साधनका क्या प्रयोजन है । हे प्रिये ! तुमसे संक्षेप करके ब्रह्मदी क्षाको कहा ॥ १४० ॥

गुरुकारुण्यमात्रेणब्रह्मदीक्षांसमाचरेत् ॥ १४१ ॥

अर्थ-जब गुरुकी कृपा प्रकाशित होती है तब ब्रह्ममंत्रमें दीक्षित होना शिष्यका कर्तव्य है ॥ १४१ ॥

शाक्ताःशैवावैष्णवाश्चसौरागाणपतास्तथा ।
विप्राविप्रेतराश्चैवसर्व्वेऽप्यत्राधिकारिणः ॥ १४२ ॥

अर्थ-शाक्त, शैव, वैष्णव, सौर वा गाणपत्य चाहे जोनसा उपासक हो ब्राह्मण हो या किसी और वर्णका हो सबहीको ब्रह्ममंत्रका अधिकार है ॥ १४२ ॥

अहंमृत्युञ्जयोदेवि ! देवदेवोजगद्गुरुः ।
स्वेच्छाचारीनिर्विकल्पोमन्त्रस्यास्यप्रसादतः ॥ १४३ ॥

अर्थ-हे देवि ! इसमंत्रके प्रसादसे मैं मृत्युञ्जय देवदेव और जगद्गुरु हुआहूं मैं स्वेच्छाचारी और निर्विकल्पहूं ॥ १४३ ॥

अमुमेवब्रह्ममन्त्रंमत्तःपूर्व्वमुपासिताः ।
ब्रह्माब्रह्मर्षयश्चापिदेवादेवर्षयस्तथा ॥ १४४ ॥

अर्थ-पहले मेरे निकटसे यह मंत्र पायकर ब्रह्मा भृगु आदि महर्षियोंने इन्द्रादि देवताओंने और नारदादि देवर्षियोंने ब्रह्मकी उपासना की थी ॥ १४४ ॥

देवर्षिवक्त्रान्मुनयस्तेभ्योराजर्षयःप्रिये ।
उपासिताब्रह्मभूताःपरमात्मप्रसादतः ॥ १४५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! देवर्षियोंसे मुनि और मुनियोंसे राजर्षिलोग यह मंत्र पायकर परमात्माके प्रसादसे ब्रह्ममय हुए हैं ॥ १४५ ॥

ब्राह्मेमनौमहेशानिविचारोनास्तिकुत्रचित् ।
स्वीयमन्त्रंगुरुर्दद्याच्छिष्येभ्योह्यविचारयन् ॥ १४६ ॥

अर्थ-हेशिवे ! किसी विषयमें ब्रह्ममंत्रका विचार नहीं है. गुरु निःसन्देहमनसे शिष्यको यह मंत्र देसक्ता है ॥ १४६ ॥

पितापिदीक्षयेत्पुत्रान्भ्राताभ्रातॄन्पतिःस्त्रियम् ।
मातुलोभागिनेयांश्चनप्तॄन्मातामहोऽपिच ॥ १४७ ॥

अर्थ-पिता पुत्रको, भ्राता भ्राताको, पति पत्नीको ,मामा भानजेको और नाना धेवतेको यह मंत्र देसक्ता है ॥ १४७ ॥

स्वमन्त्रदानेयोदोषस्तथापित्रादिदीक्षया ।
सिद्धेब्रह्ममहामन्त्रेतद्दोषोनैवविद्यते ॥ १४८ ॥

अर्थ-अपने आप यह मंत्र दूसरेको देनेसे या पित्रादिद्वारा दीक्षा होनेसे जो दोष होता है इस महामंत्रके देनेमें उन दोषोंकी सम्भावना नहीं है ॥ १४८ ॥

ब्रह्मज्ञानिमुखाच्छ्रुत्वायेनकेनाविधानतः ।
ब्रह्मभूतोनरःपूतःपुण्यपापैर्नलिप्यते ॥ १४९ ॥

अर्थ-चाहै जिस विधानसेहो ब्रह्मज्ञानी गुरूके मुखसे ब्रह्म-

मंत्रके श्रवण करनेसे मनुष्य ब्रह्मस्वरूप और पवित्र होता है फिर वह पापपुण्यसे नहीं जकडा जाता ॥ १४९ ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासितायेगृहस्थाब्राह्मणादयः ।
स्वस्ववर्णोत्तमास्तेतुपूज्यामान्याविशेषतः ॥ १५० ॥

अर्थ–जितने ब्राह्मण वा और जातिके दनुष्य ब्रह्ममंत्रके उपासक हैं वह अपनी २ जातिमें पूज्य और मान्य हैं ॥ १५० ॥

ब्राह्मणायतयःसाक्षादितरेब्राह्मणैःसमाः ।
तस्मात्सर्वैपूजयेयुर्ब्रह्मज्ञान्ब्रह्मदीक्षितान् ॥ १५१ ॥

अर्थ–ब्रह्मोपासक ब्राह्मण साक्षात् यतिके तुल्य हैं और जातिके मनुष्य ब्राह्मणकी समान हैं, इसकारण ब्रह्ममंत्रसे दीक्षित ब्रह्मज्ञानीपुरुषकी पूजा करना सबको कर्तव्य है ॥ १५१ ॥

येचतानवमन्यन्तेतेनराब्रह्मघातिनः ।
पतन्तिघोरनरकेयावद्भास्करतारकम् ॥ १५२ ॥

अर्थ–ब्रह्मज्ञानीका अपमान करनेवाले ब्रह्मघाती हैं जबतक सूर्य और तारे दिखाई देते रहैंगे तबतक उनको घोर नरकमें वास करना पडेगा ॥ १५२ ॥

यत्पापंस्त्रीवधेप्रोक्तंयत्पापंभ्रूणघातने ।
तस्मात्कोटिगुणंपापंब्रह्मोपासकनिन्दनात् ॥ १५३ ॥

अर्थ–स्त्रीहत्या और भ्रूणहत्यासे जो पाप होता है ब्रह्मोपासक की निन्दा करनेंसे तिस्से कोटिगुण पाप होता है ॥ १५३ ॥

यथाब्रह्मोपदेशेनाविमुक्ताःसर्वपातकैः ।
गच्छन्तिब्रह्मसायुज्यंतथैवतवसाधनात् ॥ १५४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे परब्रह्मोपदेशकथनं नाम तृतीय उल्लासः ॥३॥

अर्थ-जिसप्रकार मनुष्य ब्रह्मोपदेशके प्राप्तकरनेसे सर्व प्रकारके पापोंसे छूट ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होजाता है वैसेही तुह्मारी साधना करनेसे जीवकी वही गति होती है ॥ १५४ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां जीवनिस्तारोपायप्रश्नोत्तरे परब्रह्मोपदेशकथनं नाम तृतीय उल्लासः ॥ ३ ॥

चतुर्थ उल्लासः ॥ ४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

श्रुत्वासम्यक्परब्रह्मोपासनंपरमेश्वरि ।
परमानन्दसम्पन्नाशङ्करंपरिपृच्छति ॥ १ ॥

अर्थ-परमेश्वरी परमेश्वरके मुखसे परब्रह्मकी उपासनाको भलीभांति सुनकर आनन्दितहो श्रीमहादेवजीसे पूछती हुई ॥ १ ॥

कथितंयत्त्वयानाथब्रह्मोपासनमुत्तमम् ।
सर्वलोकप्रियकरंसाक्षाद्ब्रह्मपदप्रदम् ॥ २ ॥

अर्थ-देवीजी बोली-हे नाथ ! आपने जो सर्वलोकोंकी प्यारी साक्षात् ब्रह्मपदको देनेवाली ब्रह्मोपासनाका वर्णन किया ॥ २ ॥

तेजोबुद्धिबलैश्वर्य्यदायकंसुखसाधनम् ।
तृप्तास्मिजगदीशान ! तववाक्यामृतप्लुता ॥ ३ ॥

अर्थ-इसके द्वारा तेज,बुद्धि, बल और ऐश्वर्य्य बढता है, यह सब सुखौंकी निदानरूप है, हे जगदीश्वर ! आपके वचनामृतको पान कर मैं तृप्त हुई हूं ॥ ३ ॥

यदुक्तंकरुणासिन्धो ! यथाब्रह्मनिषेवणात् ।
गच्छन्तिब्रह्मसायुज्यंतथैवममसाधनात् ॥ ४ ॥

अर्थ–हे दयासमुद्र ! आपने कहा है कि, ब्रह्मोपासनासे जैसे ब्रह्मसायुज्य मिलता है ॥ ४ ॥

एतद्वेदितुमिच्छामिमदीयंसाधनंपरम् ।
ब्रह्मसायुज्यजननंयत्त्वयाकथितंप्रभो ! ॥ ५ ॥

अर्थ–हे प्रभो ! आपके कहनेके अनुसार ब्रह्मसायुज्यसे उत्पन्न होनेवाले अपनी साधनाके फलको मैं जाननेकी इच्छा करती हूं॥५

विधानंकीदृशंतस्यसाधनंकेनवर्त्मना ।
मन्त्रःकोवात्रविहितोध्यानपूजादिकञ्चकिम् ॥ ६ ॥

अर्थ–इस साधनकी विधि क्या है ? और किस मार्गका अवलम्बन करनेसे साधन होसक्ता है? इसका मंत्र वा ध्यान क्या है ? पूजा किस प्रकारकी है ? ॥ ६ ॥

सविशेषंसावशेषमामूलाद्वक्तुमर्हसि ।
ममप्रीतिकरंदेवलोकानांहितकारकम् ।
कोह्यन्यस्त्वामृतेशम्भो ! भवव्याधिभिषग्गुरुः ॥ ७ ॥

अर्थ–हे देव ! मुझको प्रसन्न करनेवाला और लोकोंका हितकारी इस उपासनाका क्रम विशेषतासे सम्पूर्णही आदिसे अन्ततक वर्णन कीजिये.हे शम्भो! आपके विना और कौन पुरुष संसारी व्याधिकी चिकित्सा करनेंका गुरु होसक्ता है ॥ ७ ॥

इतिदेव्यावचःश्रुत्वादेवदेवोमहेश्वरः ।
उवाचपरयाप्रीत्यापार्व्वतींपार्व्वतीपतिः ॥ ८ ॥

अर्थ–देवदेव महादेवजी, देवीजीके इस प्रकार वचन सुन परम प्रसन्न हो उनसे कहनें लगे ॥ ८ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

शृणुदेवि ! महाभागेतवाराधनकारणम् ।
तवसाधनतोयेनब्रह्मसायुज्यमश्नुते ॥ ९ ॥

अर्थ-सदाशिव बोले;- हेदेवि ! मनुष्य तुह्मारी साधनासे ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करसक्ता है, इस कारण मैं तुह्मारी उपासनाका वर्णन करताहूं ॥ ९ ॥

त्वंपराप्रकृतिःसाक्षाद्ब्रह्मणःपरमात्मनः ।
त्वत्तोजातंजगत्सर्वंत्वंजगज्जननीशिवे! ॥ १० ॥

अर्थ-तुमही परम ब्रह्मकी साक्षात्, प्रकृतिहो, हे शिवे! तुमसे जगत्की उत्पत्ति हुई है, तुम जगत्की माताहो ॥ १० ॥

महदाद्यणुपर्य्यन्तंयदेतत्सचराचरम् ।
त्वयैवोत्पादितंभद्रे ! त्वदधीनमिदंजगत् ॥ ११ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! महत्तत्त्वसे लेकर परमाणुतक और समस्त चराचरसहित यह जगत् तुमसेही उत्पन्न हुआ है और समस्त जगत् तुम्हारीही आधीनतामें बँधाहुआ है ॥ ११ ॥

त्वमाद्यासर्वविद्यानामस्माकमपिजन्मभूः ।
त्वंजानासिजगत्सर्वंनत्वांजानातिकश्चन ॥ १२ ॥

अर्थ-तुमही समस्त विद्याओंकी आदिभूत हो और हमारे जन्मभूमिहो, तुम सारे संसारको जानतीहो; परन्तु तुमको कोई नहीं जानसक्ता ॥ १२ ॥

त्वंकालीतारिणीदुर्गाषोडशीभुवनेश्वरी ।
धूमावतीत्वंबगलाभैरवीछिन्नमस्तका ॥ १३ ॥
त्वमन्नपूर्णावाग्देवीत्वंदेवि ! कमलालया ।

सर्वशक्तिस्वरूपात्वंसर्वदेवमयीतनुः ॥ १४ ॥

अर्थ-तुम काली, दुर्गा, तारिणी, षोडशी, भुवनेश्वरी, धूमावती, बगला, भैरवी और छिन्नमस्ताहो, सर्वशाक्तिस्वरूपिणीहो, तुम सर्वदेवमयी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी हो ॥ १३ ॥ १४ ॥

त्वमेवसूक्ष्मास्थूलात्वंव्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
निराकारापिसाकाराकस्त्वांवेदितुमर्हति ॥ १५ ॥

अर्थ-तुमही स्थूल, तुमही सूक्ष्म, तुमहीं व्यक्त और अव्यक्तस्वरूपिणीहो, तुम निराकार होकर साकारहो, तुम्हारे यथार्थ तत्वको कोईभी नहीं जानता है ॥ १५ ॥

उपासकानांकार्य्यार्थंश्रेयसेजगतामपि ।
दानवानांविनाशायधत्सेनानाविधास्तनूः ॥ १६ ॥

अर्थ-तुम उपासक जनोंका कार्य करनेके लिये, जगत्का मंगल करनेके लिये और दानवोंको दलनेके लिये अनेक प्रकारकी मूर्ति धारण करती हो ॥ १६ ॥

चतुर्भुजात्वंद्विभुजाषड्भुजाष्टभुजातथा ।
त्वमेवविश्वरक्षार्थंनानाशस्त्रास्त्रधारिणी ॥ १७ ॥

अर्थ-तुम संसारकी रक्षा करनेके लिये कभी द्विभुज, कभी चतुर्भुज, कभी षडभुज और कभी अष्टभुज मूर्ति धारण करकै अनेक भांतिके अस्त्रशस्त्र लिये रहती हो ॥ १७ ॥

तत्तद्रूपविभेदेनमन्त्रयन्त्रादिसाधनम् ।
कथितंसर्वतन्त्रेषुभावाश्चकथितास्त्रयः ॥ १८ ॥

अर्थ-सब तंत्रोंमें तुम्हारे अनेक प्रकारसे रूपभेद, यंत्रभेद और मंत्रभेदका वर्णन लिखा है और तुम्हारी त्रिविध भावमय उपासनाकीभी वर्णन है ॥ १८ ॥

पशुभावःकलौनास्तिदिव्यभावोऽपिदुर्लभः ।
वीरसाधनकर्म्माणिप्रत्यक्षाणिकलौयुगे ॥ १९ ॥

अर्थ–कलियुगमें पशुभावभी दुर्लभ है इस युगमें वीरसाधनका अनुष्ठान प्रत्यक्ष फल देनेवाला है ॥ १९ ॥

कुलाचारंविनादेवि!कलौसिद्धिर्नजायते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसाधयेत्कुलसाधनम् ॥ २० ॥

अर्थ–हे देवि ! कुलाचारके सिवाय कलियुगमें सिद्ध होनेका उपाय नहीं है, इस कारण सब यत्नोंकरके सबको कुलधारण करना चाहिये ॥ २० ॥

कुलाचारेणदेवेशि ! ब्रह्मज्ञानंप्रजायते ।
ब्रह्मज्ञानयुतोमर्त्योजीवन्मुक्तोनसंशयः ॥ २१ ॥

अर्थ–हे देवि ! कुलाचारसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है जो पुरुष ब्रह्मज्ञानवाला है वह निःसंदेह जीवन्मुक्त है ॥ २१ ॥

ज्ञानेनमेध्यमखिलममेध्यंज्ञानतोभवेत् ।
ब्रह्मज्ञानेसमुत्पन्नेमेध्यामेध्यंनविद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ–ज्ञानके प्रभावसे समस्त वस्तु पवित्र और अपवित्र समझी जाती हैं; परन्तु ब्रह्मज्ञानके प्रकाशित होनेसे किसी पवित्र वा अपवित्रका विचार नहीं रहता ॥ २२ ॥

योजानातिपरंब्रह्मसर्वव्यापिसनातनम् ।
किमस्त्यमेध्यंतस्याग्रेसर्वंब्रह्मेतिजानतः ॥ २३ ॥

अर्थ–जो पुरुष सर्वव्यापी सनातन परब्रह्मको जान सक्ता है, सबको ब्रह्ममय जाननेसे उसके लिये कौनसी वस्तु अपवित्र रह सक्ती है ॥ २३ ॥

त्वंसर्वरूपिणीदेवीसर्वेषांजननीपरा ।
तुष्टायांत्वयिदेवेशि ! सर्वेषांतोषणंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ–हे देवि! तुम सर्वस्वरूपिणी और सबकी प्रधान जननी हो तुम्हारे संतुष्ट होनेसे सब संतुष्ट होजाते हैं ॥ २४ ॥

सृष्टेरादौत्वमेकासीत्तमोरूपमगोचरम् ।
त्वत्तोजातंजगत्सर्वंपरब्रह्मसिसृक्षया ॥ २५ ॥

अर्थ–तुम सृष्टिकी आदिमें तमरूपसे अदृश्यहो विराजमानथीं तुमही परब्रह्मकी सृष्टि करनेंको इच्छारूपिणी हो, तुमसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है (१) ॥ २५ ॥

महत्तत्त्वादिभूतान्तंत्वयासृष्टमिदंजगत् ।
निमित्तमात्रंतद्ब्रह्मसर्वकारणकारणम् ॥ २६ ॥

अर्थ–महत्तत्वसे लेकर 'महाभूत' तक समस्तसंसार तुमसे ही उत्पन्न हुआ है; सब कारणका कारण परब्रम्ह केवल निमित्त मात्र है ॥ २६ ॥

सद्रूपंसर्वतोव्यापिसर्वमावृत्यतिष्ठति ।
सदैकरूपंचिन्मात्रंनिर्लिप्तंसर्ववस्तुषु ॥ २७ ॥

अर्थ–ब्रह्मसत्वरूप और सर्वव्यापी है उसने सब संसारको ढ़क रक्खा है वह सदा एक भावसे रहता है, वह चिन्मय है और सब वस्तुओंसे अलग है ॥ २७ ॥

---

(१) (तुम पर ब्रह्मकी सिसृक्षास्वरूपा–अर्थात् सृष्टि करनेकी इच्छा स्वरूपाहो) परब्रह्मकी इच्छा शक्ति भगवती पार्वतीजीहैं। गोरक्षसंहितामें कहाहै । " इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी तु वैष्णवी । त्रिधा शक्तिः स्थिता लोके तत्परंज्योतिरोमिति " । परमब्रह्मकी शक्तिके तीन भागहैं इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति । इच्छाशक्ति गौरी, क्रियाशक्ति ब्राह्मी, ज्ञानशक्ति वैष्णवी । यह तीन शक्तियां प्रणवकी प्रतिपाद्यहैं ।

नकरोतिनचाश्नातिनगच्छतिनातिष्ठति ।
सत्यंज्ञानमनाद्यन्तमवाङ्मनसगोचरम् ॥ २८ ॥

अर्थ–वह कुछ नहीं करता, भोजन नहीं करता, गमन नहीं करता और स्थिति नहीं करता वह सत्य और ज्ञानस्वरूप आदि अन्तरहित वचन मनसे अगोचर है ॥ २८ ॥

तस्येच्छामात्रमालम्ब्यत्वंमहायोगिनीपरा ।
करोषिपासिहंस्यन्तेजगदेतच्चराचरम् ॥ २९ ॥

अर्थ–तुम परात्परा महायोगिनी हो, केवल तुम उस ब्रह्मकी इच्छाका सहारा लेकर इस चराचर जगत्को उत्पन्न और पालन संहार करती हो ॥ २९ ॥

तवरूपंमहाकालोजगत्संहारकारकः ।
महासंहारसमयेकालः सर्वंग्रसिष्यति ॥ ३० ॥

अर्थ–जगत्का संहार करनेवाला काल, तुम्हारा एक रूप है. यह महाकाल महाप्रलयमें समस्त पदार्थोंको ग्रहण करेगा ॥ ३० ॥

कलनात्सर्व्वभूतानांमहाकालःप्रकीर्त्तितः ।
महाकालस्यकलनात्त्वमाद्याकालिकापरा ॥ ३१ ॥

अर्थ–सर्व भूतोंको ग्रास करता है इस कारण उसका नाम महाकाल है; तुम महाकालको ग्रास करती हो. इसकारणसे तुम्हारा नाम कालिका है ॥ ३१ ॥

कालसंग्रसनात्कालीसर्वेषामादिरूपिणी ।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्याकालीतिगीयते ॥ ३२ ॥

अर्थ–तुम कालको ग्रास करती हो इस कारण तुम्हारा नाम काली है सबकी आदिकालत्व और आदिभूतत्व होनेसे लोग तुमको आद्या काली कहते हैं ॥ ३२ ॥

पुनःस्वरूपमासाद्यतमोरूपंनिराकृतिः ।
वाचातीतंमनोगम्यंत्वमेकैवावशिष्यसे ॥ ३३ ॥

अर्थ-तुम प्रलयके समयमें वाक्यके अतीत, मनके अगोचर, निराकारस्वरूप तममयरूप धारण कर अकेली विद्यमान रहती हो ॥ ३३ ॥

साकारापिनिराकारामाययाबहुरूपिणी ।
त्वंसर्व्वादिरनादिस्त्वंकर्त्रीहर्त्रीचपालिका ॥ ३४ ॥

अर्थ-तुम साकार होकरभी निराकारहो; परन्तु मायाका आश्रय ग्रहण करके अनेक रूप धारण करतीहो, तुम सबकी आदिहो; परन्तु तुम्हारा आदि कोईभी नहीं है, तुम सृष्टि उत्पन्न करनेवाली, पालन करनेवाली और संहार करनेवाली हो ॥ ३४ ॥

अतस्तेकथितंभद्रे ! ब्रह्ममंत्रेणदीक्षितः ।
यत्फलंसमवाप्नोतितत्फलंतवसाधनात् ॥ ३५ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! मैने इसीकारणसे कहा कि ब्रह्मदीक्षित पुरुष जो फल पाता है तुम्हारी साधनासे भी वह फल पाया जा सक्ता है॥ ३५॥

नानाचारेणभावेनदेशकालाधिकारिणाम् ।
विभेदात्कथितंदेवि ! कुत्राचिद्गुप्तसाधनम्[1] ॥ ३६ ॥

अर्थ-मैंने देशभेदसे, कालभेदसे अनेक प्रकारके आचार और अनेक प्रकारके भाव प्रकाशित किये हैं, किसी २ तंत्रमें गुप्त साधनकी कथाभी कही है ॥ ३६ ॥

येयत्राधिकृतामर्त्यास्तेतत्रफलभागिनः ।
भविष्यन्तितरिष्यन्तिमानुषागतकिल्बिषाः ॥ ३७ ॥

---

१ तदत्रगुप्तसाधनमिति वा पाठः ।

अर्थ-जो मनुष्य जैसे आचार जैसे भाव और जैसे साधनका अधिकारी है, तैसाही अनुष्ठान करनेसे फलभागी होताहै और साधना करनेसे पापरहित हो संसारसमुद्रके पार हो जाता है॥३७॥

बहुजन्मार्ज्जितैःपुण्यैःकुलाचारेमतिर्लभेत् ।
कुलाचारेणपूतात्मासाक्षाच्छिवमयोभवेत्[1] ॥ ३८ ॥

अर्थ-जन्म २ में उपार्जित किये हुए पुण्यके प्रभावसे कुलाचारमें जिनकी वासना होती है वह लोग कुलाचारके अवलम्बनसे आत्माको मग्नकरके साक्षात् शिवमय हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

यत्रास्तिभोगबाहुल्यंतत्रयोगस्यकाकथा ।
योगेऽपिभोगविरहःकौलस्तूभयमश्नुते ॥ ३९ ॥

अर्थ-जहांपर भोगोंकी बहुतायत है, वहां योगकी संभावना कैसी? जहांपर योग है, वहींपर भोगका अभाव है; परन्तु कुलाचारमें प्रवृत्त होनेपर भोग वा योग दोनोंही प्राप्त होजाते हैं॥३९॥

एकश्चेत्कुलतत्त्वज्ञःपूजितोयेनसुव्रते ! ।
सर्व्वेदेवाश्चदेव्यश्चपूजितानात्रसंशयः ॥ ४० ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! कुलतत्वका जाननेवाला पुरुष यदि एककी ही अर्चना करे तो समस्त देवदेवियोंकी पूजा होजाती है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ४० ॥

पृथिवींहेमसम्पूर्णांदत्त्वायत्फलमाप्नुयात् ।
तस्मात्कोटिगुणंपुण्यंलभतेकौलिकार्चनात् ॥ ४१ ॥

अर्थ-सुवर्णपरिपूर्ण पृथ्वीके दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है कुलाचारसम्मत अर्चना करनेपर तिस्से करोड गुणा फल मिलता है ॥ ४१ ॥

---

१ साक्षाच्छिवमयो हि स इति च पाठान्तरम् ।

श्वपचोऽपिकुलज्ञानीब्राह्मणादतिरिच्यते ।
कुलाचारविहीनस्तुब्राह्मणःश्वपचाधमः ॥ ४२ ॥

अर्थ-यदि चाण्डालजाती कुलाचारपरायण हो, तौ वह ब्राह्मणसेभी श्रेष्ठहैं यदि ब्राह्मण कुलाचारसे रहित होवै तौ वह चाण्डालसेभी अधम होता है ॥ ४२ ॥

कौलधर्म्मात्परोधर्म्मोनास्तिज्ञानेतुमामके ।
यस्यानुष्ठानमात्रेणब्रह्मज्ञानीनरोभवेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-मुझको जाननेके लिये कौलधर्मसे अधिक कोई धर्म श्रेष्ठतर नहीं है; इसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य ब्रह्मज्ञानी होजाता है४३

सत्यंब्रवीमितेदेवि ! हृदिकृत्वावधारय ।
सर्वधर्म्मोत्तमात्कौलात्परोधर्म्मोनविद्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ--हे देवि ! मैं तुमसे सत्यही कहताहूं कि तुम हृदयमें इसको स्थिर करो सब धर्मोंमें उत्तम कौलधर्मसे अधिक उत्तम धर्म और नहीं है ॥ ४४ ॥

अयन्तुपरमोमार्गोगुप्तोऽस्तिपशुसङ्कटे ।
व्यक्तीभविष्यत्यचिरात्संवृत्तेप्रबलेकलौ ॥ ४५ ॥

अर्थ--यह परममार्ग पशुसंकटसे ढका हुआ है जब प्रबल कलियुग आवेगा, तब यह प्रकाशित होगा ॥ ४५ ॥

कलिकालेप्रवृद्धेतुसत्यंसत्यंमयोच्यते ।
नस्थास्यतिविनाकौलात्पशवोमानवाभुवि ॥ ४६ ॥

अर्थ-मैं सत्यही सत्य कहता हूं की कलिकी प्रबलता होनेपर कौलाचारी मनुष्यके सिवाय पशुभावालम्बी मनुष्य पृथ्वीपर नहीं रहेगा ॥ ४६ ॥

यदातुवैदिकीदीक्षादीक्षापौराणिकीतथा ।
नस्थास्यातिवरारोहे ! तदैवप्रबलःकलिः ॥४७॥

अर्थ-हे वरारोहे ! जब कलि प्रबल होजायगा, तब वैदिक पौराणिकदीक्षा पृथ्वीपर नहीं रहैगी ॥ ४७ ॥

यदातुपुण्यपापानांपरीक्षावेदसम्भवा ।
नस्थास्यातिशिवे ! शान्ते ! तदैवप्रबलःकलिः ॥ ४८ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जिस संसारमें पापपुण्यकी वैदोक्त परीक्षाकी शक्ति न रहैगी तबही जानलेना कि अजीत कलियुग आगया॥४८॥

क्वचिच्छिन्नाक्वचिद्भिन्नायदासुरतरङ्गिणी ।
भविष्यतिकुलेशानि!तदैवप्रबलःकलिः ॥४९॥

अर्थ-हे कुलेश्वरी ! जब तुम देखोगी कि सुरतरङ्गिणी गंगाजी स्थान२में छिन्न भिन्न होगई है, तबही जानलेना कि प्रबल कलियुगकी अबाई हुई ॥ ४९ ॥

यदातुम्लेच्छजातीयाराजानोधनलोलुपाः ।
भविष्यन्तिमहाप्राज्ञे ! तदैवप्रबलःकलिः ॥ ५० ॥

अर्थ-हे महाप्राज्ञे ! जब तुम देखोगी की म्लेच्छजातीके राजालोग धनके अत्यन्त लोभी हुए हैं तबही कलियुगकी प्रबलता जान सकोगी ॥ ५० ॥

यदास्त्रियोऽतिदुर्दान्ताःकर्कशाःकलहेरताः ।
गर्हिष्यन्तिचभर्तारंतदैवप्रबलःकलिः ॥ ५१ ॥

अर्थ-जिससमय स्त्रियें बहुतही ढीठ होजांयगी कर्कश और क्लेशप्रिय होकर पतिकी निंदा करने लगेगी तबही जान लेनाकि प्रबल कलियुगकी आबाई होगई ॥ ५१ ॥

यदातुमानवाभूमौस्त्रीजिताःकामकिङ्कराः ।
द्रुह्यन्तिगुरुमित्रादींस्तदैवप्रबलःकलिः ॥ ५२ ॥

अर्थ–जिसकालमें मनुष्य कामके चेले और स्त्रैण होकर बन्धु-बान्धवोंके साथ विरुद्ध व्यवहार करेंगे उस समय घोर कलियुगका आगमन समझियो ॥ ५२ ॥

यदाक्षोणीस्वल्पफलातोयदाःस्तोकवर्षिणः ।
असम्यक्फलिनोवृक्षास्तदैवप्रबलःकलिः ॥५३॥

अर्थ–जिसकालमें पृथ्वीपर थोडे फल होनेंलगेंगे, मेघ थोडा जल वर्षावेंगे, वृक्ष साधारण फलवान होंगे तब जान लेनाकि कलि-युगकी घोर स्वामिता होगई ॥ ५३ ॥

भ्रातरःस्वजनामात्यायदाधनकणेहया ।
मिथःसम्प्रहरिष्यन्तितदैवप्रबलःकलिः ॥५४॥

अर्थ–जिसकालमें धनके लोभसे अन्धे हो माता, बन्धुबान्धव, मंत्रिगण परस्पर क्लेश और झगडा करेंगे तब जान लेना कि घोर कलियुग आगया ॥ ५४ ॥

प्रकटेमद्यमांसादौनिन्दादण्डविवर्जिते ।
गूढपानंचरिष्यन्तितदैवप्रबलःकलिः ॥ ५५ ॥

अर्थ–जिस समय प्रगट भावसे मद्य, मांस भोजन करनेपरभी कोई निन्दा नहीं करेगा, कोई दण्ड नहीं देगा बरन सर्व साधारण गुप्त भावसे शराब पीने लगेंगे तब जान लेना कि बहुतायतसे कलि-युगकी आबाई हुई ॥ ५५ ॥

सत्यत्रेताद्वापरेषुयथामद्यादिसेवनम् ।
कलावपितथाकुर्यात्कुलधर्म्मानुसारतः ॥५६॥

१ कुलवर्त्मानुसारतः इत्यपि पाठः ।

अर्थ-सत्य, त्रेता और द्वापर युगमें कुलधर्मके अनुसार जिस प्रकार सुरापानका नियम था, कलियुगमेंभी यह नियम अन्यथा नहीं होगा ॥ ५६ ॥

येकुर्वन्तिकुलाचारंसत्यपूताजितेन्द्रियाः ।
व्यक्ताचारादयाशीलानहितान्बाधतेकलिः ॥ ५७ ॥

अर्थ-सत्यकी महिमासे जो लोग पवित्र और जितेन्द्रिय हो कुलाचारकी मर्यादाकी रक्षा करेंगे उनके आचार सर्वत्र प्रकाशित होजांयगे सर्व प्राणियोंमें दया करनेका जिनको अभ्यास है उनके लिये विरुद्ध हो कलियुग कुछ नहीं कर सकेगा ॥ ५७ ॥

गुरुशुश्रूषणेयुक्ताभक्तामातृपदाम्बुजे ।
अनुरक्ताःस्वदारेषुनहितान्बाधतेकलिः ॥ ५८ ॥

अर्थ-जो लोग गुरुकी सेवा करतेहैं, पिता माताके चरणोंमें भक्ति करते हैं, अपनी स्त्रीमें अनुरागी हैं । उनपर कलियुग अपना प्रभाव प्रगट नहीं कर सकेगा ॥ ५८ ॥

सत्यव्रताःसत्यनिष्ठाःसत्यधर्म्मपरायणाः ।
कुलसाधनसत्यायेनहितान्बाधतेकलिः ॥ ५९ ॥

अर्थ-जो लोग सत्यव्रत, सत्यनिष्ठ, सत्यधर्मपरायण और कुलसाधनमें रत हैं उनके विरुद्ध कलियुग आचरण नहीं कर सकेगा ५९

कुलमार्गेणतत्त्वानिशोधितानिचयोगिने ।
येदद्युःसत्यवचसेनहितान्बाधतेकलिः ॥ ६० ॥

अर्थ--जो लोग कुलधर्मके अनुसार शोधित मत्स्यमांसादि, सत्यवादी योगीको देते हैं उनपर कलियुग आक्रमण नहीं करसक्ता ॥ ६० ॥

हिंसामात्सर्य्यरहितादम्भद्वेषविवर्जिताः ।

कुलधर्म्मेषुनिष्ठायेनहितान्बाधतेकलिः ॥ ६१ ॥

अर्थ--जो लोग हिंसा, दम्भ, द्वेष, व मात्सर्य हीन हैं और जिनकी निष्ठा कुलधर्ममें है उनके विरुद्ध कलियुग आचरण नहीं कर सक्ता ॥ ६१ ॥

कौलिकैःसहसंसर्गंवसतिंकुलसाधुषु ।
कुर्वन्तिकौलसेवांयेनहितान्बाधतेकलिः ॥ ६२ ॥

अर्थ--जो लोग कौलिकोंके साथ रहते हैं, उनके निकट वसते हैं और उनकी सेवा करते हैं, उनके प्रति कलियुग अपनी सामर्थ्य प्रकाशित नहीं करेगा ॥ ६२ ॥

नानावेषधराःकौलाःकुलाचारेषुनिश्चलाः ।
सेवन्तेत्वांकुलाचारैर्न्नहितान्बाधतेकलिः ॥ ६३ ॥

अर्थ--जो कुलाचारपरायण मनुष्य कुलमें रहकर अनेक वेश धारण करके कुलाचारसे तुह्मारी पूजा करते हैं कलियुग उनके विरुद्ध आचरण नहीं करसक्ता ॥ ६३ ॥

स्नानंदानंतपस्तीर्थंव्रतंतर्पणमेवच ।
येकुर्वन्तिकुलाचारैर्न्नहितान्बाधतेकलिः ॥ ६४ ॥

अर्थ--जो लोग कुलाचारके मतसे, दान, तप, तीर्थ, दर्शन, व्रत और तर्पणादि करते हैं उनपर कलियुग अपना आचरण नहीं करसक्ता ॥ ६४ ॥

जीवसेकादिसंस्काराःपितृश्राद्धादिकाःक्रियाः ।
येकुर्वन्तिकुलाचारैर्न्नहितान्बाधतेकलिः ॥ ६५ ॥

अर्थ--जो लोग कुलाचारके मतसे गर्भाधानादि संस्कार और पितृश्राद्धादि करते हैं, उनका कलियुग कुछ नहीं कर सक्ता ॥ ६५ ॥

कुलतत्त्वंकुलद्रव्यंकुलयोगिनमेवच ।
नमस्कुर्वन्तियेभक्त्यानहितान्बाधतेकलिः ॥ ६६ ॥

अर्थ--जो लोग भक्तिभावसे कुलद्रव्य कुलतत्वऔर कुलयोगीकी पूजा करते हैं उनपर कलियुग चढाई नहीं कर सक्ता ॥ ६६ ॥

कौटिल्यानृतहीनानांस्वच्छानांकुलमार्गिणाम् ।
परोपकारव्रतिनांसाधूनांकिङ्करःकलिः ॥ ६७ ॥

अर्थ–जो लोग कुटिलता और मिथ्याचारसे रहित हैं, जो लोग परोपकार करते हैं, साधू हैं, जो लोग निर्मल स्वभाव हैं और कुलधर्मका अनुष्ठान करनेवाले हैं कलियुग उनका किङ्कर होजाता है ॥ ६७ ॥

कलेर्दोषसमूहस्यमहानेकोगुणःप्रिये ! ।
सत्यप्रतिज्ञकौलानांश्रेयःसङ्कल्पमात्रतः ॥ ६८ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! यद्यपि कलियुग समस्तदोषोंका आकर है; परन्तु इसमें विशेष एक गुण यह है कि जो लोग सत्यप्रतिज्ञ और कुलाचारपरायण हैं, वह लोग संकल्पमात्रसेही मंगल लाभ करसक्ते हैं ॥ ६८ ॥

अपरेतुयुगेदेवि!पुण्यंपापञ्चमानसम् ।
नृणामासीत्कलौपुण्यंकेवलंनतुदुष्कृतम् ॥ ६९ ॥

अर्थ–हे देवि ! दूसरे युगोंमें पापपुण्य मनके संकल्पसेही होताथा; परन्तु इस युगमें संकल्प करनेसे पुण्यही प्रकाशित होता है पाप नहीं ॥ ६९ ॥

कुलाचारैर्विहीनायेसततासत्यभाषिणः ।
परद्रोहपरायेचतेनराःकलिकिंकराः ॥ ७० ॥

अर्थ-जो लोग मिथ्यावादी कुलाचाररहित और पराया अनिष्ट करनेवाले हैं वहीं कलियुगकें किंकर हैं॥ ७० ॥

कुलवर्त्मस्वभक्तायेपरयोषित्सुकामुकाः ।
द्वेष्टारःकुलनिष्ठानांतेज्ञेयाःकलिकिंकराः॥७१॥

अर्थ-जो लोग कुलमार्गसे घृणा करते हैं जो लोग पराई स्त्रीके हरण करनेमें लोलुप हैं जो लोग कुलाचारपरायण मनुष्योंसे द्वेष करते हैं वहीं कलियुगके किंकर कहलाते हैं॥ ७१ ॥

युगाचारप्रसंगेनकलेःप्राबल्यलक्षणम् ।
संक्षेपात्कथितंभद्रे ! प्रीतयेतवपार्वति! ॥ ७२ ॥

अर्थ-हे पार्वति! मैंने युगाचारके प्रसंगसे तुम्हारी प्रीतिके लिये संक्षेपसे कलियुगकी प्रबलताके लक्षण वर्णन किये॥ ७२॥

प्रकटेऽत्रकलौदेवि ! सर्वेधर्म्माश्चदुर्बलाः ।
स्थास्यत्येकंसत्यमात्रंतस्मात्सत्यमयोभवेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-हेदेवि ! कलियुगके आनेपर समस्त धर्म दुर्बल होजायंगे उस कालमें केवल एक सत्यही रहेगा इस कारण सबको सत्यमय होना चाहिये॥ ७३ ॥

सत्यधर्म्मंसमाश्रित्ययत्कर्म्मकुरुतेनरः।
तदेवसफलंकर्म्मसत्यंजानीहिसुव्रते ! ॥ ७४ ॥

अर्थ-हे सुव्रते! मनुष्यगण इसकालमें सत्यधर्मके आश्रयसे जो कर्म करेंगे वह अवश्य सिद्ध होंगे॥ ७४ ॥

नहिसत्यात्परोधर्मोनपापमनृतात्परम् ।
तस्मात्सर्व्वात्मनामर्त्यःसत्यमेकंसमाश्रयेत् ॥७५॥

अर्थ-सत्यकी समान श्रेष्ठधर्म और मिथ्याकी समान कोई

पाप नहीं है इस कारण सत्यका अवलम्बन करना सब मनुष्योंका कर्तव्य है ॥ ७५ ॥

सत्यहीनावृथापूजासत्यहीनोवृथाजपः ।
सत्यहीनंतपोव्यर्थमूषरेवपनंयथा ॥ ७६ ॥

अर्थ–सत्यरहित पूजा वृथा है, सत्यहीन जप वृथा है, सत्यहीन, तपभी ऊषरमें बीज बोनेकी समान व्यर्थ है ॥ ७६ ॥

सत्यरूपंपरंब्रह्मसत्यंहिपरमंतपः ।
सत्यमूलाःक्रियाःसर्वाःसत्यात्परतरोनहि ॥७७॥

अर्थ--सत्यही परमब्रह्म है और सत्यही प्रधान तपस्या है समस्त क्रिया सत्यमूलक हैं सत्यसे अधिक कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है ॥ ७७ ॥

अतएवमयाप्रोक्तंदुष्कृतेप्रबलेकलौ ।
कुलाचारोऽपिसत्येनकर्त्तव्योव्यक्तभावतः ॥ ७८ ॥

अर्थ--मैं इसी कारण तुमसे कहताहूं कि अजीत कलियुगके अधिकारमें सत्यका अनुगमनकर कुलाचरणका अनुष्ठान करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है ॥ ७८ ॥

गोपनाद्धीयतेसत्यंनगुप्तिरनृतंविना ।
तस्मात्प्रकाशतःकुर्य्यात्कौलिकःकुलसाधनम् ॥ ७९ ॥

अर्थ–छिपानेसे सत्यकाभी अपलाप होजाता है, मिथ्याचारके सिवाय किसी बातका छिपाना सम्भव नहीं है अतएव कौललोगोंको चाहिये कि वह प्रगट भावसे कुलसाधन करैं ॥ ७९ ॥

कुलधर्म्मस्यगुप्त्यर्थंनानृतंस्याज्जुगुप्सितम् ।
यदुक्तंकुलतन्त्रेषुनशस्तंप्रबलेकलौ ॥ ८० ॥

अर्थ–मैंने कुलतंत्रमें लिखा है कि कुलधर्मकी रक्षाके लिये तिसको छिपानेके लिये झूठ बोलना मिथ्या आचार नहीं होता,

ऐसा होने परभी प्रबल कलियुगके अधिकारमें यह उपदेश ठीक नहीं है ॥ ८० ॥

कृतेधर्म्मश्चतुष्पादस्त्रेतायांपादहीनकः ।
द्विपादोद्वापरेदेवि ! पादमात्रंकलौयुगे ॥ ८१ ॥

अर्थ–सत्युगमें धर्मके चार चरण थे,त्रेतामें एक चरण हीन हुआ हे देवि ! द्वापरमें केवल धर्मके दो चरण बचे रहते हैं कलियुगमें धर्मका केवल एक चरण है ॥ ८१ ॥

तत्रापिसत्यंबलवत्तपःखञ्जंदयापिच ।
सत्यपादेकृतेलोपेधर्म्मलोपःप्रजायते ॥ ८२ ॥

अर्थ–(आश्चर्यहै) उस एक चरण धर्ममेंसेभी तपस्या और दयाका अंश लंगडा होगया है, इस समय केवल सत्यही बलवान है,यदि यह सत्यरूप चरण तोड दिया जाय तौ फिर धर्मका चिह्नभी नरहै ॥८२

तस्मात्सत्यंसमाश्रित्यसर्वकर्म्माणिसाधयेत् ।
कुलाचारंविनायत्रनास्त्युपायःकुलेश्वरि ! ॥ ८३ ॥

अर्थ–हे कुलेश्वरि ! मैं इसी लिये कहताहूं कि सत्यका आश्रय ग्रहण करकै सब कर्मोंको साधन करना चाहिये कलियुगमें कुलाचारके सिवाय और कुछभी नहीं है ॥ ८३ ॥

तत्रानृतप्रवेशश्चेत्कुतोनिःश्रेयसंभवेत् ।
सर्वथासत्यपूतात्मामन्मुखेरितवर्त्मना ॥ ८४ ॥
सर्वकर्म्मनरःकुर्य्यात्स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।
दीक्षांपूजांजपंहोमंपुरश्चरणतर्पणम् ॥ ८५ ॥

अर्थ–जो इसमेंभी मिथ्याभाव प्रवेशकर जाय तो फिर किस प्रकारसे मोक्ष हो सक्ति है ? इस कारण सदा सत्यके आश्रयसे पवित्र आत्मा होकर मेरे कहनेके अनुसार अपने २ वर्णाश्रमके योग्य

दीक्षा, पूजा, जप, होम, पुरश्चरण और तर्पण करना सबको उचित है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

व्रतोद्वाहौपुंसवनंसीमन्तोन्नयनन्तथा ।
जातकर्म्मतथानामचूड़ाकरणमेवच ॥ ८६ ॥

अर्थ-विशेषकरके व्रत, विवाह, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण ॥ ८६ ॥

मृतक्रियांपितृश्राद्धंकुर्य्यादागमसम्मतम् ।
तीर्थश्राद्धंवृषोत्सर्गंशारदोत्सवमेवच ॥ ८७ ॥

अर्थ-अन्त्येष्टि, पितृश्राद्ध, आगमसम्मत तीर्थश्राद्ध, वृषोत्सर्ग, शारदीया पूजा ॥ ८७ ॥

यात्रागृहप्रवेशश्चनववस्त्रादिधारणम् ।
वापीकूपतड़ागानांसंस्कारंतीर्थकर्म्मच ॥ ८८ ॥

अर्थ-यात्रा, गृहप्रवेश, नववस्त्रधारण, वापी, कूप और तडागादिका खोदना व संस्कार तीर्थकृत्य ॥ ८८ ॥

गृहारंभप्रतिष्ठाञ्चदेवानांस्थापनन्तथा ।
दिवाकृत्यंनिशाकृत्यंपर्वकृत्यंतथैवच ॥ ८९ ॥
ऋतुमासवर्षकृत्यंनित्यंनैमित्तिकञ्चयत् ।
कर्त्तव्यंयदकर्त्तव्यंत्याज्यंग्राह्यञ्चयद्भवेत् ॥ ९० ॥
मयोक्तेनाविधानेनतत्सर्वंसाधयेन्नरः ॥ ९१ ॥

अर्थ-गृहारम्भ और प्रतिष्ठा, दिनरातके कर्तव्य, पर्वकृत्य, ऋतुकृत्य, मासकृत्य, वर्षकृत्य, नित्यनैमित्तिक जो कुछ करना चाहिये, विचारके अनुसार विधिके क्रमसे तिन सबको साधन करना और न करना कर्तव्य है ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

नकुर्य्याद्यदिमोहेनदुर्म्मत्याश्रद्धयापिवा ।
विनष्टःसर्वकर्म्मभ्योविष्ठायांसभवेत्कृमिः ॥ ९२ ॥

अर्थ–यदि मोह दुर्बुद्धि वा अश्रद्धासे कोई इस साधनाको न करै तो उसको सर्व कर्मोंके बाहरहो विनष्ट और विष्ठाके कुण्डमें कीडा बन कर रहना पडेगा ॥ ९२ ॥

यदिमन्मतमुत्सृज्यमहेशि ! प्रबलेकलौ ।
यदायत्क्रियतेकर्मविपरीतायतद्भवेत् ॥ ९३ ॥

अर्थ–हे महेश्वरि ! कलियुगके प्रबल अधिकार कालमें यदि कोई मेरे मतकी उपेक्षा करके और मतको ग्रहण करके कोई कार्य करेगा, तो वह विपरीत हो जायगा ॥ ९३ ॥

मन्मतासम्मतादीक्षासाधकप्राणघातिनी ।
पूजापिविफलादेवि ! हुतंभस्मार्पणंयथा ॥ ९४ ॥

अर्थ–जो दीक्षा मेरे मतका विरोध करती है, उसके ग्रहण करनेंसे साधकका प्राण नष्ट हो जाता है । हे देवि ! भस्ममें आहुति देनेंकी समान उसकी वह पूजाभी विफलहो जाती है ॥ ९४ ॥

देवताकुपितातस्यविघ्नस्तस्यपदेपदे ॥ ९५ ॥

अर्थ–(अधिक क्या कहा जांय) देवता उसके ऊपर कोपहो जाते हैं और पग २ पर उसको विघ्न होता है ॥ ९५ ॥

कलिकालेप्रवृद्धेतुज्ञात्वामच्छास्त्रमम्बिके ! ।
योऽन्यमार्गैःक्रियांकुर्य्यात्समहापातकीभवेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ–हे अम्बिके! प्रबल कलियुगके आनेपर मेरे कहे हुए शास्त्रको जानकरभी जो पुरुष और किसी मार्गका अवलम्बन करके क्रिया सिद्ध करैगा वह पुरुष महापातकी होगा ॥ ९६ ॥

व्रतोद्वाहौ प्रकुर्व्वाणोयोऽन्यमार्गेणमानवः ।

सयातिनरकंघोरंयावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ९७ ॥

अर्थ–जो और मार्गका अवलम्बन करके कृत्य या विवाह करेगा तौ जबतक सूर्यचंद्रमा रहैंगे; तबतक उसका वास नरकमें होगा ॥ ९७ ॥

व्रतेब्रह्मवधःप्रोक्तोव्रात्योमाणवकोभवेत् ।
केवलंसूत्रवाहोऽसौचाण्डालादधमोऽपिसः ॥ ९८ ॥

अर्थ–मेरामत छोड मतान्तरसे व्रत करनेपर ब्रह्महत्याका पाप होगा, इसप्रकार उपनयन करनेंवालाभी पतित होगा वह केवल सूत्रधारी होकर चाण्डालसेभी अधिक नीच होगा ॥ ९८ ॥

उद्वाहितापियानारीजानीयात्सातुगर्हिता ।
उद्वोढापिभवेत्पापीसंसर्गात्कुलनायिके ! ॥ ९९ ॥

अर्थ–हे कुलनायिके ! यदि कोई स्त्री दूसरे नियमसे व्याही जायगी तौ उसको निन्दनीय समझना । उसका संगकरनेसे पातकी होना पडैगा ॥ ९९ ॥

वेश्यागमनजंपापंतस्यपुंसोदिनेदिने ।
तद्धस्त[1]दत्ततोयादि नैवगृह्णन्तिदेवताः ॥ १०० ॥

अर्थ–वेश्यागमन करनेसे जो पाप होता है उस पातकिनीके संगसे भी वही पाप होता है; यदि यह नारी अपने हाथसे अन्न और जलादि दे तो उसको देवतालोक ग्रहण नहीं करते ॥ १००॥

पितरोऽपिनचाश्नन्तियतस्तन्मलपूयवत् ।
तयोरपत्यंकानीनःसर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ १०१ ॥

अर्थ–पितृलोग मल व राद समझकर उसको नहीं छूते, यदि

---

१ तद्धस्तादन्नतोयादि पाठोयमपि समीचीनः ।

ऐसीके गर्भसे पुत्र होवै तौ वह कानीन और सर्वधर्मोंके बाहेर होगा ॥ १०१ ॥

दैवेपैत्रेकुलाचारेनाधिकारोऽस्यजायते ।
अशाम्भवेनमार्गेणदेवतास्थापनञ्चरेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ—जो पुरुष शिवके नियतकिये हुए मार्गको छोडकर और मतसे देवता स्थापन करता है उसका अधिकार देवकर्म, पितृकार्य और कुलाचारमें नहीं रहेगा ॥ १०२ ॥

नसान्निध्यंभवेत्तत्रदेवतायाःकथञ्चन ।
इहामुत्रफलंनास्तिकायक्लेशोधनक्षयः ॥ १०३ ॥

अर्थ—उसकी करीहुई देवप्रतिष्ठामें देवताकी स्थिति नहीं होगी और उसको इसलोक व परलोकमें किसी प्रकारका फल नहीं होगा।उसको केवल काया क्लेश होगा या वृथा धन खर्चहोगा१०३

आगमोक्तविधिंहित्वायःश्राद्धंकुरुतेनरः ।
श्राद्धंतद्विफलंसोऽपिपितृभिर्नरकंव्रजेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ—जो पुरुष आगमकी कही हुई विधिको छोडकर श्राद्ध करता है, तिसका वह श्राद्ध निष्फल होजाता है और श्राद्धकर्ता भी पितृपुरुषोंके साथ नरकगामी होता है ॥ १०४ ॥

तत्तोयंशोणितसमंपिण्डोमलमयोभवेत् ।
तस्मान्मर्त्यःप्रयत्नेनशाङ्करंमतमाश्रयेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ—उसका दिया हुआ जल रुधिरकी समान और पिण्ड-मलमय हो जाता है. इसकारण सर्व यत्नोंसे महादेवजीके मतको अनुसरण करना मनुष्यका कर्तव्य है ॥ १०५ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनसत्यंसत्यंमयोच्यते ।

१ सत्यंसत्यंमयोदितमिति वा पाठः ।

अशाम्भवंकृतंकर्मसर्वंदेवि ! निरर्थकम् ॥ १०६ ॥

अर्थ-मैं अधिक न कहकर सत्य २ ही कहता हूं हे देवि ! जो लोक शम्भुकी शक्तिकी अवहेला करके कार्य करते हैं उनका वह कार्य निष्फलहो जाता है ॥ १०६ ॥

अस्तुतावत्परोधर्मःपूर्वधर्म्मोऽपिनश्यति ।
शाम्भवाचारहीनस्यनरकान्नैवनिष्कृतिः ॥ १०७ ॥

अर्थ-दूसरे मतमें धर्मका संचयतो दूर रहै, बरन संचित धर्म भी नाशको प्राप्त हो जाता है, जो पुरुष शैवाचारसे हीन है उसके लिये नरकसे निकलनेका कोई उपाय नहीं है ॥ १०७ ॥

मदुदीरितमार्गेणनित्यनैमित्तकर्मणाम् ।
साधनंयन्महेशानि ! तदेवतवसाधनम् ॥ १०८ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! मैं जिस मार्गका वर्णन किया है, उसके अनुसार नित्यनैमित्तिक कर्मका साधन करनेंसे वह तुम्हाराही साधन होता है ॥ १०८ ॥

विशेषाराधनंतत्रमंत्रयंत्रादिसंयुतम् ।
भेषजंकलिरोगाणांश्रूयताङ्गदतोमम ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहानिर्व्वाणतन्त्रे सर्व्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्व्वधर्म्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्ने पराप्रकृतिसाधनोपक्रमो नाम चतुर्थउल्लासः ॥ ४ ॥

अर्थ-जो आराधना कलिरोगके लिये महौषधिकी समान है जिसमें बहुतसे मंत्रयंत्रादिकोंका विधान है तुम मुझसे उस श्रेष्ठ आराधनाकी कथाको श्रवण करो ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमेसर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्याशिवसंवादे जीवनिस्तारोपायप्रश्ने पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां पराप्रकृतिसाधनोपक्रमोनाम चतुर्थउल्लासः ॥ ४ ॥

पंचमउल्लासः ॥ ५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

त्वमाद्यापरमाशक्तिःसर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
तवशक्त्यावयंशक्ताःसृष्टिस्थितिलयादिषु ॥ १ ॥

अर्थ-सदाशिवजी बोले कि तुम आद्य परमाशक्ति हो व सर्व-शक्तिस्वरूपिणी हो तुम्हारी शक्तिकी सहायतासे हम सृष्टि, स्थिति और लय कार्यमें समर्थ होते हैं ॥ १ ॥

तवरूपाण्यनन्तानिनानावर्णाकृतीनिच ।
नानाप्रयाससाध्यानिवर्णितुंकेनशक्यते ॥ २ ॥

अर्थ-तुम्हारा रूप अनन्त है और वर्ण व आकार अनेक हैं सब रूपोंकी साधनाभी बहुत श्रमसे होती है कौन पुरुष इसके विशेष वर्णन करनेकी सामर्थ्य रखता है ॥ २ ॥

तवकारुण्यलेशेनकुलतन्त्रागमादिषु ।
तेषामर्चासाधनानिकथितानियथामति ॥ ३ ॥

अर्थ-तौ भी तुम्हारे करुणाप्रभावसे कुलतंत्र व दूसरे आगमोंमें तुम्हारे समस्त रूप और पूजा साधनादिका यथासाध्य वर्णन किया है ॥ ३ ॥

गुप्तसाधनमेतत्तुनकुत्रापिप्रकाशितम् ।
अस्यप्रसादात्कल्याणि ! मयितेकरुणेदृशी ॥ ४ ॥

अर्थ-मैनें किसीस्थानमेंभी गुप्त साधन विषयको प्रकाशित नहीं किया । हे कल्याणि ! इस साधनके प्रसादसे मेरेप्रति तुम्हारी ऐसी करुणा है ॥ ४ ॥

त्वयापृष्टमिदानींतन्नाहंगोपयितुंक्षमः ।
कथयामितवप्रीत्यैममप्राणाधिकंप्रिये ! ॥ ५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! इससमय तुम मुझसे पूछती हो इसकारण तुमसे यह गुप्त साधन मैं छिपा नहीं सक्ता यह मुझको प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है, तुम्हारी प्रीतिके लिये कहता हूं ॥ ५ ॥

सर्वदुःखप्रशमनंसर्व्वापद्विनिवारकम् ।
त्वत्प्राप्तिमूलमचिरात्तवसन्तोषकारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ-इसके द्वारा सब दुःख निवारित होजाते हैं; सब आपत्तियें दब जाती हैं । यह तुम्हारे संतोषका मूलहै और इसकी ही सहायतासे तुमको पाया जासक्ता है ॥ ६ ॥

कलिकल्मषहीनानांनृणांस्वल्पायुषांप्रिये ! ।
बहुप्रयासासक्तानामेतदेवपरंधनम् ॥ ७ ॥

अर्थ-हे प्रिये! कलिकालके जीव पापके भारसे दबने और दीन-भावसे युक्त हो अत्यन्त अल्पायु होंगे, उनपर बहुतसा परिश्रम नहोसकेगा बस उनके लिये यह साधनही परम विधि है ॥ ७ ॥

नचात्रन्यासबाहुल्यंनोपवासादिसंयमः ।
सुखसाध्यमबाहुल्यंभक्तानांफलदंमहत् ॥ ८ ॥

अर्थ-इसमें बहुतसे न्यास वा उपासनादिकी संयम विधि नहींहै यह अतिशय संक्षिप्त और श्रमसाध्य है विशेषकरके यह साधन भक्तोंको बहुतसा फल देनेवाला है ॥ ८ ॥

तत्रादौशृणुदेवेशि ! मन्त्रोद्धारक्रमंशिवे ! ।
यस्यश्रवणमात्रेणजीवन्मुक्तःप्रजायते ॥ ९ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! प्रथम इसके मंत्रोद्धारका क्रम बतलाताहूं श्रवण करो इसके सुन्तेही जीव जीवन्मुक्त होजाता है ॥ ९ ॥

प्राणेशस्तैजसारूढोभेरुण्डाव्योमबिन्दुमान् ।
बीजमेतत्समुद्धृत्यद्वितीयमुद्धरेत्प्रिये! ॥ १० ॥

सन्ध्यारक्तसमारूढावामनेत्रेन्दुसंहिता ।
तृतीयंशृणुकल्याणि! दीपसंस्थःप्रजापतिः ॥ ११ ॥

अर्थ-प्राणेश (ह) तेजस (र) में आरोहण करनेसे तिसमें भेरुण्डा (ई) मिलाय व्योम बिन्दु (०) मिलावै । हे प्रिये ! इस प्रकार " ह्रीं " बीजोद्धार करके सन्ध्या (श) रक्तके (र) के ऊपर आरोहण करके तिसमें वामनेत्र (ई) बिन्दु अनुस्वार मिलानेसे दूसरा मंत्र " श्रीं " होगा हे कल्याणि ! अब तीसरा मंत्र कहताहूं श्रवण करो । प्रजापति अर्थात् " क " दीप अर्थात् " र " ऊपर है ॥ १० ॥ ११ ॥

गोविन्दबिन्दुसंयुक्तःसाधकानांसुखावहः ।
बीजत्रयन्तेपरमेश्वरि ! सम्बोधनंपदम् ॥ १२

अर्थ-इसमें गोविन्द अर्थात् "ई" और अनुस्वारमें संयोग करे यह "क्रीं" बीज साधकोंके लिये सुखदाई है इनतीन बीजोंके पीछे "परमेश्वरि" पदका प्रयोग करे ॥ १२ ॥

वह्निकान्तावधिःप्रोक्तोदशार्णोऽयंमनुःशिवे ! ।
सर्वविद्यामयीदेवीविद्येयंपरमेश्वरि ! ॥ १३ ॥

अर्थ-इस मंत्रके अन्तमें " वह्निकान्ता " अर्थात् " स्वाहा " पद बोला जायगा हे शिवे ! इस्से " ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा" यह दशाक्षर मंत्र होगा, यही सर्वविद्यामयी देवी परमेश्वरी विद्या है ॥ १३ ॥

आद्यत्रयाणांबीजानांप्रत्येकंत्र्यमेववा ।
प्रजपेत्साधकाधीशःसर्वकामार्थसिद्धये ॥ १४ ॥

अर्थ-साधकोंमें उत्तम सर्व कामनासिद्धिके लिये प्रथमके तीन बीजोंके मध्यमें सबका या एकका जप करता रहै ॥ १४ ॥

बीजमाद्यत्रयंहित्वासप्तार्णापिदशाक्षरी।
कामवाग्भवताराद्यासप्तार्णाष्टाक्षरीत्रिधा॥ १५॥

अर्थ–दशाक्षर मंत्रके "ह्रीं श्रीं क्रीं" यह तीन प्रथम बीज छोडे देनेसे "परमेश्वरि स्वाहा" यह सप्ताक्षर मंत्र होता है इसके पहले "क्लीं" कामबीज "ऐं" वाग्बीज और प्रणवयुक्त करनेसे "क्लीं परमेश्वरि स्वाहा" "ऐं परमेश्वरि स्वाहा" "ओं परमेश्वरि स्वाहा" यह अष्टाक्षरयुक्त तीन मंत्र होते हैं॥ १५॥

दशार्णमन्त्रणपदात्कालिकेपदमुच्चरेत्।
पुनराद्यत्रयंबीजंवह्निजायांततोवदेत्॥ १६॥

अर्थ–दशाक्षर मंत्रके सम्बोधन पदके अन्तमें "कालिके" पद उच्चारण करना चाहिये फिर "ह्रीं श्रीं क्रीं" यह प्रथमके तीन आदि बीज उच्चारण करके वह्निवधू अर्थात् "स्वाहा" पद उच्चारण करे॥ १६॥

षोड़शीयंसमाख्यातासर्वतन्त्रेषुगोपिता।
वध्वाद्याप्रणवाद्याचेदेषासप्तदशीद्विधा॥ १७॥

अर्थ–तब "ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा" यह षोडशाक्षर मंत्र हो जायगा, यह सब तंत्रोंमें गुप्त है मैंने तुमसे कहा। यदि इस मंत्रके प्रथममें "श्रीं" प्रणव "ओं" मिल जाय तो दो सप्तदशाक्षर मंत्र होजायगे॥ १७॥

तवमन्त्राह्यसंख्याताःकोटिकोट्यर्बुदास्तथा।
संक्षेपादत्रकथितामन्त्राणांद्वादशाप्रिये!॥ १८॥

अर्थ–हे देवि! तुह्मारे कोटि २ अर्बुद २ अथवा असंख्य मंत्र हैं, संक्षेपसे यहांपर बारह मंत्रोंका वर्णन किया॥ १८॥

येषुयेषुचतन्त्रेषुयेयेमन्त्राःप्रकीर्त्तिताः।
तेसर्वेतवमन्त्राःस्युस्त्वमाद्याप्रकृतिर्यतः॥ १९॥

अर्थ-जिस २ तंत्रमें जिस २ मंत्रका वर्णन है, वह सबही तुह्मारे मंत्र हैं क्योंकि तुम आद्या प्रकृतिहो ॥ १९ ॥

एतेषांसर्वमन्त्राणामेकमेवहिसाधनम् ।
कथयामितवप्रीत्यैतथालोकाहितायच ॥ २० ॥

अर्थ-सब मंत्रोंकी साधना इस प्रकारसे है मैं लोकके हितार्थ और तुह्मारी प्रीतिके लिये उस साधनाका वर्णन करता हूं ॥ २० ॥

कुलाचारंविनादेवि ! शक्तिमन्त्रोनसिद्धिदः ।
तस्मात्कुलाचारतोवैसाधयेच्छक्तिसाधनम् ॥ २१ ॥

अर्थ-हे देवि!कुलाचारके विना शक्तिमंत्र सिद्धिदायक नहीं होता। इस कुलाचारमें रत रहकर शक्तिका साधन करना चाहिये॥ २१ ॥

मद्यंमांसंतथामत्स्यंमुद्रामैथुनमेवच ।
शक्तिपूजाविधावाद्येपञ्चतत्त्वंप्रकीर्त्तितम् ॥ २२ ॥

अर्थ-हे आद्ये शक्तिपूजाप्रकरणमें मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, और मैथुन यह पांच तत्व साधनरूपमें कहे जाते हैं ॥ २२ ॥

पञ्चतत्वंविनापूजाअभिचारायकल्पते ।
शिलायांशस्यवापेचयथानैवांकुरोभवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-विना पंचतत्वके पूजा करनेसे पूजा प्राणनाशकारिणी होती है इससे साधकका अभीष्ट सिद्ध होना तौ दूर रहै वरन उस को पग २ पर भयानक विघ्न होते हैं ॥ २३ ॥

पञ्चतत्वविहीनायांपूजायांनफलोद्भवः ।
प्रातःकृत्यंविनादेवि!नाधिकारीतुकर्म्मसु ॥ २४ ॥

अर्थ-जिसप्रकार शिलापर बीज बोनेसे अंकुर नहीं निकलता, वैसेही पंचतत्वके विना पूजासे कोई फल नहीं निकलता ॥ २४॥

---

१ तव मन्त्राणाम् इति क्वचित् पाठः ।

तस्मादादौप्रवक्ष्यामिप्रातःकृत्यंयथोचितम् ।
रजनीशेषयामस्यशेषार्द्धमरुणोदयः ॥ २५ ॥

अर्थ-हे देवि! विना प्रातःकृत्य किये कार्यका अधिकार नहीं होता इस कारण प्रथम यथोचित प्रातःकृत्यकी विधि कहताहूं॥२५

तदासाधकउत्थायमुक्तस्वापःकृतासनः ।
ध्यायेच्छिरसिशुक्लाब्जेद्विनेत्रंद्विभुजंगुरुम् ॥ २६ ॥

अर्थ-रातके पिछले पहरके शेषार्द्धकालमें अरुणोदयके समय निद्रा त्यागकर उठै । आसनपर बैठ मस्तकपर श्वेतकमलमें द्विभुज द्विनेत्र गुरू बैठे हैं, ऐसा ध्यान शिष्यको चाहिये ॥ २६ ॥

श्वेताम्बरपरीधानंश्वेतमाल्यानुलेपनम् ।
वराभयकरंशान्तकरुणामयविग्रहम् ॥२७॥

अर्थ-वह श्वेतवस्त्र पहिरे हैं, शरीर श्वेतमाला और श्वेत चन्दनसे चर्चित है, वह शास्त्र और करुणाके आधार हैं,हाथमें वर और अभय है ॥ २७ ॥

वामेनोत्पलधारिण्याशक्त्यालिंगितविग्रहम् ।
स्मेराननंसुप्रसन्नंसाधकाभीष्टदायकम् ॥ २८ ॥

अर्थ-वामभागमें कमलफूल धारण किये, शक्ति उनको आलिंगन करती है । उनका मुखमंडल मुसकानयुक्त और प्रसन्नतासे परिपूर्ण है वह साधकके अभीष्टदायक हैं ॥ २८ ॥

एवंध्यात्वाकुलेशानि ! मानसैरुपचारकैः ।
पूजयित्वाजपेन्मन्त्रीवाग्भवंबीजमुत्तमम् ॥ २९ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! मंत्रका जान्नेवाला पुरुष इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचारसे अर्चना करके (ऐं) दिव्यमंत्रका जप करै॥२९॥

यथाशक्तिजपंकृत्वासमर्प्यदक्षिणेकरे ।
ततस्तुप्रणमेद्धीमान्मंत्रेणानेनसद्गुरुम् ॥ ३० ॥

अर्थ-इसके उपरान्त यथाशक्ति जपकर देवीजीके दाहिने हाथमें जप समर्पण कर वक्ष्यमाण मंत्रसे सद्गुरूके चरणमें प्रणाम करै ॥ ३० ॥

भवपाशविनाशायज्ञानदृष्टिप्रदर्शिने ।
नमःसद्गुरवेतुभ्यंभुक्तिमुक्तिप्रदायिने ! ॥ ३१ ॥

अर्थ-हे गुरुदेव ! आप सबके फंदोंका नाश करनेवाले हैं आप ज्ञानदृष्टिके दिखलानेवाले हैं । आपसे भोग मोक्ष प्राप्त होती है, इस कारण आपको नमस्कारहै ॥ ३१ ॥

नराकृतिपरब्रह्मरूपायाज्ञानहारिणे ! ।
कुलधर्मप्रकाशायतस्मैश्रीगुरवेनमः ॥ ३२ ॥

अर्थ-आप नरदेहधारी हैं, परन्तु अज्ञानहारी परब्रह्ममूर्ति हैं । आपसे कुल धर्ममें प्रकाश पायाहै इस कारण हे श्रीगुरुदेव ! आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

प्रणम्यैवंगुरुंतत्रचिन्तयेन्निजदेवताम् ।
पूर्ववत्पूजयित्वातांमूलमंत्रजपञ्चरेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ-गुरूजीको इस प्रकारसे नमस्कार करके फिर अपने इष्ट देवताका ध्यान करै पहलेकी समान पूजा करके तिस पूजाके अन्तमें फिर मूलमंत्रका जपकरे ॥ ३३ ॥

यथाशक्तिजपंकृत्वादेव्यावामकरेऽर्पयेत् ।
मंत्रेणानेनमतिमान्प्रणमेदिष्टदेवताम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-यथाशक्ति जप पूराकर देवीके बांयें हाथमें उसको अर्पणका वक्ष्यमाण मंत्रसे इष्टदेवताको प्रणाम करै ॥ ३४ ॥

नमःसर्वस्वरूपिण्यैजगद्धात्र्यैनमोनमः ।
आद्यायैकालिकायैतेकत्र्यैंहत्र्यैंनमोनमः[1] ॥ ३५ ॥

अर्थ-आप सर्व स्वरूपिणी जगद्धात्री आदिशक्ति और कालिका हैं आप जगत्को उत्पन्न करती पालन करती हैं, आपको वारंवार नमस्कार है ॥ ३५ ॥

नमस्कृत्यबहिर्गच्छेद्वामपादपुरःसरम् ।
त्यक्त्वामूत्रपुरीषश्चदन्तधावनमाचरेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ-नमस्कारके अन्तमें आगे बांया पांव रखके बाहर आवै फिर मलमूत्र त्यागकर दतौंन करै ॥ ३६ ॥

ततोगत्वाजलाभ्याशेस्नानंकृत्वायथाविधि[2] ।
आदावपउपस्पृश्यप्रविशेत्सलिलेततः ॥३७॥

अर्थ-फिर जलाशय अर्थात् वापी कूप तडागादिके निकट जाय यथाविधिसे स्नान करै, पहले आचमन करके फिर स्नान करै ॥ ३७ ॥

नाभिमात्रजलेस्थित्वामलानामपनुत्तये ।
सकृत्स्नात्वातथोन्मज्ज्यमान्त्रमाचमनञ्चरेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त नाभितक जलमें खडाहो शरीरके मैलको दूरकर केवल एक वार स्नान करै फिर गोता लगाय तांत्रिक मतसे आचमन करै ॥ ३८ ॥

आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैःस्वाहान्तैःसाधकाग्रणीः ।
त्रिःप्राश्यापोद्विरुन्मृज्ज्यत्वाचमेत्कुलसाधकः ॥ ३९ ॥

अर्थ-कुलसाधकको चाहिये कि वह आत्मतत्व, विद्यातत्व, और शिवतत्वाय स्वाहा इस मंत्रको उच्चारण करके तीन वार जल-

---

१ कत्र्यैं हत्र्यैं नमोस्तुतेइति पाठान्तरम् । २ स्नानंकुर्याद्यथा-वीधि इति वा पाठः ।

पान करै फिर दोवार आचमनकरनेके उपरान्त आचमन करना उचित है ॥ ३९ ॥

कुलयंत्रंमन्त्रगर्भंविलिख्यसलिलेसुधीः ।
मूलमन्त्रंद्वादशधातस्योपरिजपेत्प्रिये! ॥ ४० ॥

अर्थ-इसके अनन्तर ज्ञानी पुरुष जलके ऊपरीभागमें कुल-यंत्र लिखकर तिसमें मूलमंत्र लिखै । हे प्रिये ! तिसके ऊपर बारह अक्षरवाला मूलमंत्र जप करना चाहिये ॥ ४० ॥

तेजोरूपंजलंध्यात्वासूर्य्यमुद्दिश्यदेशिकः ।
तत्तोयैरुध्यञ्जलीन्दत्त्वातेनैवपाथसात्रिधा ।
अभिषिच्यस्वमूर्द्धानंसप्तच्छिद्राणिरोधयेत् ॥ ४१ ॥

अर्थ-फिर साधकको चाहिये कि उस जलको तेजरूप समझ कर सूर्यके लिये तीन अंजलि जलदे उस जलको तीनवार अपने मस्तकपर छिड़के और मुख, नासिका, कान, व नेत्र इन सात छिद्रोंको रोकै ॥ ४१ ॥

ततस्तुदेवताप्रीत्यैत्रिर्निमज्ज्यजलान्तरे ।
उत्थायगात्रंसम्मार्ज्यपिदध्याच्छुद्धवाससी ॥ ४२ ॥

अर्थ-फिर देवताकी प्रसन्नताके लिये जलमें तीन वार गोता मारै फिर उठकर शरीर मार्जन करनेके अन्तमें शुद्धवस्त्र पहरे ॥ ४२ ॥

मृत्स्नयाभस्मनावापित्रिपुण्ड्रंबिन्दुसंयुतम्[1] ।
ललाटेतिलकंकुर्य्याद्गायत्र्याबद्धकुन्तलः ॥ ४३ ॥

अर्थ-अनन्तर गायत्री पढ केशबांध सुद्ध मट्टी अथवा भस्मका माथेपर बिन्दुयुक्त तिलक लगावै और त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥४३॥

---

१ त्रिपुण्ड्रं भस्मसंयुतमिति पाठान्तरम् ।

वैदिकींतान्त्रिकींश्चैवयथानुक्रमयोगतः ।
सन्ध्यांसमाचरेन्मन्त्रीतान्त्रिकींशृणुकथ्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ-फिर क्रमानुसार वैदिकी और तांत्रिकी संध्याका अनुष्ठान करे अब मैं तांत्रिकी संध्याविधि कहताहूं श्रवण करो ॥ ४४ ॥

आचम्यपूर्ववत्तोयैस्तीर्थान्यावाहयेच्छिवे ! ॥ ४५ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जलग्रहण कर पहिली कहीहुई विधिके अनुसार तीर्थादिमें स्नान करै ॥ ४५ ॥

गङ्गे ! चयमुने ! चैवगोदावरि ! सरस्वति ! ।
नर्म्मदे ! सिन्धु!कावेरि!जलेऽस्मिन्सन्निधिंकुरु ॥ ४६ ॥

अर्थ-साधक प्रार्थना करे कि गंगे ! यमुने ! गोदावरि ! सरस्वति ! नर्मदे ! सिन्धु! कावेरि ! तुम इस जलमें अधिष्ठान करो॥ ४६॥

मन्त्रेणानेनमतिमान्मुद्रयाङ्कुशसंज्ञया ।
आवाह्यतीर्थसलिलेमूलंद्वादशधाजपेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-ज्ञानी पुरुष इस मंत्रको पढकर अंकुश मुद्रासे जलमें सब तीर्थोंका आवाहन करके उसके ऊपर वारंवार मूलमंत्र जपै ॥ ४७॥

ततस्तत्तोयतोबिन्दूंस्त्रिधाभूमौविनिक्षिपेत् ।
मध्यमानामिकायोगान्मूलोच्चारणपूर्वकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-फिर मध्यमाके साथ अनामिका अंगुलीको मिलाय मूलमंत्रका उच्चारण कर इस जलसे लेकर तीन वार थोडा २ जल पृथ्वीपर छोडै ॥ ४८ ॥

सप्तवारंस्वमूर्द्धानमभिषिच्यततोजलम् ।
वामहस्तेसमादायछादयेद्दक्षपाणिना ॥ ४९ ॥
ईशानवायुवरुणवह्नीन्द्रबीजपञ्चकम् ।

प्रजप्यवेदधातोयंदक्षहस्तेसमानयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ–मूलमंत्र उच्चारण करनेके समय ऐसैही इन दोनों उंगलियोंके संयोगसे इस जलकी बून्दैं सातवार अपने मस्तकपर छिडकै फिर बांये हाथमें कुछ जल ग्रहणकर दांये हाथसे उसको ढ़क चारवार ईशान, वायु, वरुण, वह्नि और इन्द्र बीज जपकर दाहिनें हाथमें ग्रहण करै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वीक्ष्यतेजोमयंध्यात्वाचेडयाकृष्यसाधकः ।
देहान्तःकलुषंतेनरेचयेत्पिङ्गलाख्यया ॥ ५१ ॥

अर्थ–इसके उपरान्त इस जलकी ओर निहार उसको तेजयुक्त रूप विचार इडानामक नाडीसे आकर्षण करके तिस्से शरीरके पापको धोय तिस पापको कृष्णवर्ण विचार पिंगला नाड़ीके द्वारा त्याग करदे ॥ ५१ ॥

निष्कृष्य पुरतो वज्रशिलायामस्त्रमुच्चरन्[1] ।
त्रिवारं ताडयन्मन्त्री हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः ॥ ५२ ॥
आचम्योक्तेन मन्त्रेण सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ–अनन्तर (फट्) मंत्रको उच्चारण कर सन्मुख स्थित हुई कल्पित वज्रशिलाके ऊपरके भागमें उस जलको तीनवार मारे और हाथ धो आचमन करके वक्ष्यमाण मंत्रसे सूर्य भगवानको अर्घ्य दे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

तारमायाहंस इति घृणिसूर्य्य! ततःपरम् ।
इदमर्घ्यं तुभ्यमुक्त्वा दद्यात्स्वाहेत्युदीरयन् ॥ ५४ ॥

अर्थ–सूर्य भगवानको अर्घ्य देनेका यह मंत्र है "ओं ह्रीं हंस घृणि सूर्य इदमर्घ्यं तुभ्यं स्वाहा " ॥ ५४ ॥

---

१ वज्रशिलायां मन्त्रमुच्चरन् इति वा पाठः ।

ततो ध्यायेन्महादेवीं गायत्रीं परदेवताम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने त्रिरूपां गुणभेदतः ॥ ५५ ॥

अर्थ-फिर प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और संध्याकालमें गुणभेदके अनुसार परमदेवता गायत्रीकी त्रिविध मूर्तिका ध्यान करना उचित है ॥ ५५ ॥

प्रातर्ब्राह्मीं रक्तवर्णां द्विभुजाञ्च कुमारिकाम् ।
कमण्डलुं तीर्थपूर्णमच्छमालाञ्च बिभ्रतीम् ।
कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां शुचिस्मिताम् ॥ ५६ ॥

अर्थ-प्रातःकालही ब्रह्मशक्तिका ध्यान करना चाहिये; यह रक्तवर्ण, दो भुजा और कुमारी हैं, इनके हाथमें तीर्थके जलसे भरा हुआ कमण्डलु है, निर्मल माला शोभायमान है, कृष्ण वस्त्र पहिर रक्खे हैं, यह हंसपर सवार हैं, पवित्र मुसकानयुक्त मुख है ॥ ५६॥

मध्याह्ने तां श्यामवर्णां वैष्णवीञ्च चतुर्भुजाम् ।
शंखचक्रगदापद्मधारिणीं गरुडासनाम् ॥ ५७॥

अर्थ-मध्याह्नकालमें सूर्यमण्डलमें स्थित हुई वैष्णवी शक्ति गायत्रीका ध्यान करना उचित है यह शक्ति श्यामा और चतुर्भुजा है, गरुड़के आसनपर बैठी हुई हाथमें शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए हैं ॥ ५७ ॥

पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वां वनमालाविभूषिताम् ।
युवतिं सततं ध्यायेन्मध्येमार्त्तण्डमण्डले ॥ ५८ ॥

अर्थ-यह वनमालासे शोभायमान है इनका वक्षस्थल (पीन) उठेहुए कुचोंसे शोभित है, यह शक्ति यौवनशालिनीहै सूर्यभगवानके मध्यभागमें आनेपर सदा इस प्रकार युवतीका ध्यान करै॥५८॥

सायाह्नेवरदांदेवींगायत्रींसंस्मरेद्यतिः ।

शुक्लांशुक्लाम्बरधरांवृषासनकृताश्रयाम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-यतीके लिये गायत्रीकी सायाह्न मूर्तिका ध्यान करना चाहिये यह शक्ति वरको देनेवाली, शुक्लवर्ण, श्वेतवस्त्रको धारण करनेवाली और वृषभपर सवार है ॥ ५९ ॥

त्रिनेत्रांवरदांपाशंशूलञ्चनृकरोटिकाम् ।
बिभ्रतींकरपद्मैश्चवृद्धांगलितयौवनाम् ॥ ६० ॥

अर्थ-इनके तीन नेत्र हैं, करकमलमें पाश है, शूल और नरकपाल है यह गलितयौवना और वृद्धा हैं ॥ ६० ॥

एवंध्यात्वामहादेव्यैजलानामञ्जलित्रयम् ।
दत्त्वाजपेत्तुगायत्रींदशधाशतधापिवा ॥ ६१ ॥

अर्थ-इसप्रकार ध्यान करनेके अन्तमें महादेवीको तीन वार जलकी अञ्जलि देकर सातवार या दशवार गायत्रीका जप करै ॥ ६१ ॥

गायत्रींशृणुदेवेशि ! वदामितवभावतः ।
आद्यायैपदमुच्चार्य्यविद्महेतदनन्तरम् ॥ ६२ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये गायत्री कहताहूं तुम श्रवण करो पहले "आद्यायै" यह उच्चारण करके अन्तमें "विद्महे" पद उच्चारण करैं ॥ ६२ ॥

परमेश्वर्य्यैधीमहितन्नःकालीप्रचोदयात् ।
एषातुतवगायत्रीमहापापप्रणाशिनी[1] ॥ ६३ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त "परमेश्वर्य्यै धीमहि तन्नः काली प्रचोदयात्" यह पद उच्चारण करेः-यही गायत्री है। "आद्यायै विद्महे परमेश्वर्य्यै धीमहि । तन्नः काली प्रचोदयात्" । यह गायत्री महापापका नाश करनेवाली है ॥ ६३ ॥

---

१ महापापविनाशिनी इति पाठान्तरम् ।

त्रिसन्ध्यमेतांप्रजपन्सन्ध्यायाःफलमाप्नुयात् ।
ततस्तुतर्पयेद्भद्रेदेवर्षिपितृदेवताः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो त्रिसन्ध्यामें इस गायत्रीका जप करतेहैं वह अनुरूप फल पाते हैं हे भद्रे ! इसके उपरान्त देवता ऋषि और पितृगणोंका तर्पण करै ॥ ६४ ॥

प्रणवंसाद्द्वितीयाख्यांतर्पयामिनमःपदम् ।
शक्तौतुप्रणवेमायांनमःस्थानेद्विठंवदेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ—प्रथमही प्रणवका उच्चारण कर शेषमें " तर्पयामि नमः " इस पदका उच्चारण करना चाहिये, शक्तिकी साधनामें प्रणवके स्थानपर माया बीज लगाय, नमः स्थानमें द्विठ अर्थात् स्वाहा लगावै ॥ ६५ ॥

मूलान्तेसर्वभूतान्तेनिवासिन्यैपदंवदेत् ।
सर्वस्वरूपांङेयुक्तांसायुधापितथा पठेत् ॥ ६६ ॥

अर्थ—प्रथम मूलमंत्र पढकर फिर " सर्वभूत " पदके पीछे " निवासिन्यै " पद उच्चारण करै, फिर " सर्वस्वरूपायै " पदका उच्चारण करके अन्तमें " सायुधायै " पदको पढना चाहिये ॥ ६६ ॥

सावरणांसचतुर्थींतद्वद्देवपरात्पराम् ।
आद्यायैकालिकायैचइदमर्घ्यंततोद्विठः ॥ ६७ ॥

अर्थ—इसके उपरान्त " सावरणायै परात्परायै, आद्यायै, कालिकायै " उच्चारण करके " इदमर्घ्यं स्वाहा " पद पाठ करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अनेनार्घ्यंमहादेव्यैदत्त्वामूलंजपेत्सुधीः ।

---

१ ततस्तुतर्पयेद्देवि इति वा पाठः। २आद्यायैकालिकायैते इत्यपि समीचीनः।

यथाशक्तिजपंकृत्वादेव्यावामकरेऽर्पयेत् ॥६८॥

अर्थ–ज्ञानी पुरुष महादेवीको अर्घ्य देकर यथाशक्ति मूलमंत्र जप करके देवीके वामकरमें समर्पण करै ॥ ६८ ॥

प्रणम्यदेवींपूजार्थजलमादायसाधकः ।
नत्वातीर्थंपठन्स्तोत्रंदेवताध्यानतत्परः ॥ ६९ ॥

अर्थ–इसके उपरान्त देवीको प्रणाम करके पूजाके लिये जल ले तीर्थको नमस्कार करे फिर स्तोत्र पढकर देवताकी आराधना करनेलगे ॥ ६९ ॥

यागमण्डपमागत्यपाणिपादौविशोधयेत् ।
ततोद्वारस्यपुरतःसामान्यार्घ्यंप्रकल्पयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ–यज्ञस्थलमें आयकर साधकको चाहिये कि, हाथ पांव धो डाले और द्वारके संमुखभागमें साधारण अर्घ्य स्थापित करे ॥ ७० ॥

त्रिकोणवृत्तभूबिम्बंमण्डलंरचयेत्सुधीः ।
आधारशक्तिसम्पूज्यतत्राधारंनियोजयेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ–फिर एक त्रिकोण वृत्त खैंचें तिसके बाहर गोलाकार तिसके बाहर चौकोन मण्डल बनायकर आधारशक्तिकी पूजा करता हुआ आधारमें स्थापित करै ॥ ७१ ॥

अस्त्रेणपात्रंप्रक्षाल्यहृन्मन्त्रेणप्रपूज्यच ।
निक्षिप्यगन्धंपुष्पञ्चतीर्थान्यावाहयेत्ततः ॥ ७२ ॥

अर्थ–पीछे "अस्त्रायफट्" इस मंत्रसे पात्रको उसमें जल भरे, फिर उसमें गंध पुष्प देकर तीर्थादिका आवाहन करै ॥ ७२ ॥

आधारपात्रतोयेषुवह्न्यर्कशशिमण्डलम् ।
पूजयित्वातद्दशधामायाबीजेनमन्त्रयेत् ॥७३॥

अर्थ-इसके उपरान्त आधारमें वह्नि, पात्रमें सूर्यमंडल और जलमें चंद्रमंडलकी पूजाकर "ह्रीं" शब्दसे उस जलको अभिमंत्रित करै ॥ ७३ ॥

प्रदर्शयेद्धेनुयोनिंसामान्यार्घ्यमिदंस्मृतम्।
ततस्तज्जलपुष्पैश्चपूजयेद्वारदेवताः ॥ ७४ ॥

अर्थ-फिर उसके ऊपर "धेनु" व योनिमुद्रा दिखावै। पश्चात् उस जल और उन फूलोंसे द्वारदेवताकी पूजा करै(१)॥७४॥

गणेशंक्षेत्रपालञ्चबटुकंयोगिनींतथा।
गङ्गाञ्चयमुनाञ्चैवलक्ष्मींवाणींततोयजेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ-गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक, योगिनी, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वतीकी पूजा करै ॥ ७५ ॥

किञ्चित्स्पृशन्वामशाखांवामपादपुरःसरम्।
स्मरन्देव्याःपदाम्भोजंमण्डपंप्रविशेत्सुधीः ॥ ७६ ॥

अर्थ-फिर बांया पांव आगे बढाय बांई शाखा स्पर्शकर देवीके चरणकमलका स्मरण करे तब मण्डपमें प्रवेश करे ॥ ७६ ॥

नैर्ऋत्यांदिशिवास्त्वीशंब्रह्माणञ्चसमर्च्चयन्।
सामान्यार्घ्यस्यतोयेनप्रोक्षयेद्यागमन्दिनम् ॥ ७७ ॥

---

(१) धेनुमुद्रा यथाः—अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टा कनिष्ठानामिकापुनः। तथाच तर्जनी मध्या धेनुमुद्रामृतप्रदा ॥ अर्थात्—दाहिने हाथकी कनिष्ठाके अग्रभागसे बायें हाथकी अनामिकाका अग्रभाग मिलावै। ऐसेही बायें हाथकी कनिष्ठाके अग्रभागसे दाहिने हाथकी अनामिकाका अग्रभाग मिलावै। दाहिने हाथकी तर्ज्जनीके अग्रभागसे बायें हाथकी मध्यमाका अग्रभाग मिलावे। ऐसेही बायें हाथकी तर्ज्जनीके अग्रभागसे दाहिने हाथकी मध्यमाके अग्रभागको मिलावै। अनामिकामूलके साथ अनामिकामूल और मध्यमामूलके साथ मध्यमाका मूल, व अँगूठेके साथ अँगूठा मिलावेः—इसका नाम धेनुमुद्राहै।

अर्थ-नैर्ऋतकोणमें वास्तुपुरुष और ब्रह्माकी अर्चना करके कहे हुये अर्घ्य जलको छिडककर यज्ञमंदिरको प्रोक्षित करै ॥ ७७ ॥

अनन्तरं साधकेंद्रो दिव्यदृष्ट्यवलोकनैः ।
दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्राद्भिश्चान्तरिक्षगान् ॥७८॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधकचूडामणि दिव्यदृष्टिसे दर्शनकर सब दिव्य विघ्नोंको दूर करता हुआ जल छिडककर अंतरिक्षके सब विघ्नोंको दूर करै ॥ ७८ ॥

पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमानितिविघ्नान्निवारयेत् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरैर्यागमण्डपम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त तीनवार पांवके आघातसे भूमिके विघ्नोंको दूरकर चन्दन अगर कस्तूरी और कपूरसे यागमण्डपको गन्धयुक्त करै ॥ ७९ ॥

धूपयेत्स्वोपवेशार्थं चतुरस्रं त्रिकोणकम् ।
विलिख्य पूजयेत्तत्र कामरूपाय हन्मनुः ॥ ८० ॥

अर्थ-तदनन्तर अपने बैठनेके लिये बाहिरी चबूतरमें त्रिकोणाकार मण्डल खैंच अधिष्ठात्री देवता कामरूपाकी पूजा करै ॥ ८० ॥

तत्रासनं समास्तीर्य्य काममाधारशक्तितः ।
कमलासनाय नमो मन्त्रेणैवासनं यजेत् ॥ ८१ ॥

अर्थ-फिर मण्डलके ऊपर आसन फैलाय कामबीज "क्लीं" उच्चारण करके "आधारशक्तये कमलासनाय नमः" इस मंत्रसे आसनकी पूजा करै ॥ ८१ ॥

उपविश्यासने विद्वान् प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
बद्धवीरासनो मन्त्री विजयां परिशोधयेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त विद्वान् साधक पूर्वको या उत्तरको मुखकर वीरासनपर बैठ विजयाका शोधन करै ॥ ८२ ॥

तारं मायां समुच्चार्य्य अमृते ! अमृतोद्भवे ।
अमृतवर्षिणि ! ततोऽमृतमाकर्षयद्द्विधा ॥ ८३ ॥
सिद्धिं देहि ततो ब्रूयात् कालिकां मे ततः परम् ।
वशमानय ठद्वन्द्वं संविदाशोधने मनुः ॥ ८४ ॥

अर्थ-प्रथम " प्रणव " और " माया " बीज उच्चारण करके तिसके अन्तमें " ओंह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं देहि कालिकां मे वशमानय स्वाहा" इस मंत्रसे शोधन करै ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मूलमन्त्रं सप्तवारं प्रजप्य विजयोपरि ।
आवाहन्यादिमुद्राश्च धेनुयोनिं प्रदर्शयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त विजयाके ऊपर सातवार मूलमंत्र जपकर आवाहनी, स्थापनी, संनिधापनी, संन्निरोधिनी धेनु व योनिमुद्रा दिखावै (१) ॥ ८५ ॥

---

(१) दक्षिणामूर्तिसंहितामें कहाहै:-पुटाञ्जलिमधः कुर्यादियमावाहनी भवेत् । इयन्तु विपरीतेन तदा वै स्थापनी भवेत् । ऊर्द्धाङ्गुष्ठकमुष्टिभ्यां तदेवं सन्निधापनी । अन्ताङ्गुष्ठकमुष्टिभ्यां तदेयं सन्निरोधिनी । इसका अर्थः-अञ्जलिपुट ऊंचे नीचेमें मिलाकर रखनेसे आवाहनी मुद्रा होगी । यह मुद्रा विपरीत होनेमें अर्थात् ऊपर संश्लिष्ट और नीचे विश्लिष्ट होनेसे स्थापनी मुद्रा होगी । दोनों हाथके अंगूठोंको ऊपर उठाय बँधी हुई मुट्ठी मिलानेसे सन्निधापनी मुद्रा होगी । दोनों अंगूठेके बीचमें रखकर ऐसेही दोनों हाथोंकी मुट्ठी बांधनेसे सन्निरोधिनी मुद्रा होगी । दोनों अंगूठेंको मिलाकर दोनों मध्यमाओंके साथ दोनों तर्ज्जनियोंके मिलानेसे और दोनों अनामिकाओंके साथ दोनों कन अंगुलियोंके मिलानेसे धेनुमुद्रा होगी । अञ्जलिपुटके ऊपर विश्लिष्ट और नीचे संक्षिप्त करके दोनों हाथोंकी अनामिकाके साथ तर्ज्जनियोंको परस्परमिलाय दोनों मध्यम अंगूलियोंके अग्रभागसे मिलानेपर योनिमुद्रा होगी । दहिने हाथकी अनामिकाके साथ वृद्धाङ्गुष्ठको मिलानेसे तत्वमुद्रा होगी ।

गुरुं पद्मे सहस्रारे याथ सङ्केतमुद्रया ।
त्रिधैव तर्पयेद्देवीं हृदि मूलं समुच्चरन् ॥ ८६ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त तत्वमुद्राकी सहायतासे सहस्रदलकमलमें विजयाके द्वारा गुरूके लिये तीन वार तर्पण करै अनन्तर हृदयमें मूलमंत्र जपै ॥ ८६ ॥

वाग्भवंवदयुग्मञ्चवाग्वादिनि ! पदंततः ।
ममजिह्वाग्रेस्थिरीभवसर्वसत्त्ववशङ्करि ! ।
स्वाहान्तेनैवमनुनाजुहुयात्कुण्डलीमुखे ॥ ८७ ॥

अर्थ-तत्पश्चात् प्रथम 'ऐं' उच्चारणकर "वद" शब्दको दोवार उच्चारण करना चाहिये,पीछे वाग्वादिनि पद उच्चारण करकै "मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्ववशङ्करि स्वाहा" इस मंत्रका उच्चारण करे इस मंत्रसे कुण्डलीके मुखमें विजयाके द्वारा आहुति देवै ॥८७

स्वीकृत्यसंविदांवामकर्णोर्द्धेश्रीगुरुंनमेत् ।
दक्षिणेचगणेशानमाद्यांमध्येसनातनीम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-इसप्रकार भंगका सेवनकर बांएं कानके ऊपर "श्रीगुरवे नमः" कह मंत्रपढ गुरूको नमस्कार करै; दायें कानके ऊपर "गणेशायनमः"कह गणेशजीको नमस्कारकर ललाटमें सनातनी कालिकाको नमस्कार करै ॥ ८८ ॥

कृताञ्जलिपुटोभूत्वादेवीध्यानपरायणः ।
पूजाद्रव्याणिसर्वाणिदक्षिणेस्थापयेत्सुधीः ।
वामेसुवासितंतोयंकुलद्रव्याणियानिच ॥ ८९ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानीपुरुष दाहिनीओर समस्त पूजाकी सामग्री रखकर बांईओर सुगन्धित जल व कुल सामग्री रखकर हाथ जोड देवीका ध्यान करै ॥ ८९ ॥

अस्त्रान्तमूलमन्त्रेणसामान्यार्घ्योदकेनच ।
सम्प्रोक्ष्यसर्ववस्तूनिवेष्टयेज्जलधारया ।
वह्निबीजेनदेवेशि ! वह्नेःप्राकारमाचरेत् ॥ ९० ॥

अर्थ–इसके उपरान्त मूलमंत्रके अन्तमें "फट्" संयोगकर द्रव्यादिपर अर्घ्यका जल छिडकै और उनको जलसे वेष्टित करै फिर वह्निबीज "रं" से वह्निको आवरण करै ॥ ९० ॥

पुष्पंचन्दनसंयुक्तमादायकरयोर्द्वयोः ।
अस्त्रेणघर्षयित्वातत्प्रक्षिपेत्करशुद्धये ॥ ९१ ॥

अर्थ–पश्चात् करशुद्धिके लिये चन्दन व कुसुम ग्रहण करकै मूलमंत्रका उच्चारण करनेके पीछे हाथोंको रगडकर धोडालै ॥ ९१ ॥

तर्ज्जनीमध्यमाभ्याञ्चवामपाणितलेशिवे ! ।
ऊर्ध्वोर्ध्वतालत्रितयंदत्त्वादिग्बन्धनंततः ।
अस्त्रेणछोटिकाभिश्चभूतशुद्धिमथाचरेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ–फिर दाहिने हाथकी तर्ज्जनी और मध्यमासे "फट्" मंत्रके द्वारा बांए करतलसे ऊंचेसे ऊंचे पर तीन तालियां बजाय दिग्बन्धन करै ॥ ९२ ॥

स्वांकेनिधायचकरावुत्तानौसाधकोत्तमः ।
मनोनिवेश्यमूलेचहुङ्कारेणैवकुण्डलीम् ॥ ९३ ॥
उत्थाप्यहंसमन्त्रेणपृथिव्यासहितान्तुताम् ।
स्वाधिष्ठानंसमानीयतत्त्वंतत्त्वेनियोजयेत् ॥ ९४ ॥

अर्थ–फिर भूतशुद्धि करै । साधकश्रेष्ठको चाहियें कि अपनी गोदमें उठे हुए दोनों हाथ स्थापित कर हुंकारसे कुण्डलिनीको उठावै और मनकी रक्षा मूलाधारचक्रमें कर "हंस" इस मंत्रसे

पृथ्वीके सहित उस कुण्डलिनीको अपने अधिष्ठानमें स्थापित कर पृथिव्यादि समस्त तत्वोंको जलादि तत्वमें लीन करै ॥ ९३॥९४॥

गन्धादिघ्राणसंयुक्तांपृथिवीमप्सुसंहरेत् ।
रसादिजिह्वयासार्द्धंजलमग्नौविलापयेत् ॥ ९५॥

अर्थ–गन्धादि घ्राणके साथ समस्त पृथ्वीको जलमें लीन करै फिर रसनाके साथ रस जल अग्निमें लीन करै ॥ ९५ ॥

रूपादिचक्षुषासार्द्धमग्निंवायौविलाप्यच ।
स्पर्शादित्वग्युतंवायुमाकाशेप्रविलापयेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ–फिर रूपादि और दर्शनेन्द्रियोंके साथ अग्निको वायुमें लीन करै फिर त्वागिन्द्रियके साथ स्पर्शादि–वायुको आकाशमें लीन करै ॥ ९६ ॥

अहंकारेहरेद्व्योमसशब्दंतन्महत्यपि ।
महत्तत्वञ्चप्रकृतौतांब्रह्मणिविलापयेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ–फिर शब्द आकाशको अहंकार तत्वमें लीन करके उसको बुद्धितत्वमें लीन करै फिर बुद्धितत्व और प्रकृतिमें लय करके ब्रह्ममें प्रकृतिका लय करै ॥ ९७ ॥

इत्थंविलाप्यमतिमान्वामकुक्षौविचिन्तयेत् ।
पुरुषंकृष्णवर्णञ्चरक्तश्मश्रुविलोचनम् ॥ ९८ ॥

अर्थ–ज्ञानी पुरुष इस प्रकार चौवीस तत्वका लय करके चिन्ता करै कि बाईं कुक्षिमें लाल नेत्र लाल श्मश्रु कृष्ण वर्ण एक पुरुष अवस्थान करता है ॥ ९८ ॥

रक्तं[1]चर्म्मधरंक्रुद्धमंगुष्ठपरिमाणकम् ।
सर्वपापस्वरूपञ्चसर्वदाधोमुखस्थितम् ॥ ९९ ॥

---

१ खड्गचर्मधरम् इति मुद्रितः पाठः ।

अर्थ–इस पुरुषके हाथमें लाल चर्म है स्वभाव अत्यन्त कुपित है, आकार अंगुष्ठकी समान है, यह पापस्वरूप और सदा नीचेको मुख कियेहै ॥ ९९ ॥

ततस्तुवामनासायांयंबीजंधूम्रवर्णकम् ।
सञ्चिन्त्यपूरयेत्तेनवायुंषोडशमात्रया ॥
तेनपापात्मकंदेहंशोधयेत्साधकाग्रणीः ॥ १०० ॥

अर्थ–इसके उपरान्त वामनासिकामें " यं " इस धूमवर्ण बीजका ध्यान करके उसको सोलह बार जपै और बांई नासिकासे पवन खैंचे फिर साधकको चाहिये कि इस वायुसे पापात्मक शरीरको शुद्ध करै ॥ १०० ॥

नाभौरंरक्तवर्णञ्चध्यात्वातज्जातवह्निना ।
चतुःषष्ट्याकुम्भकेनदहेत्पापरतान्तनुम् ॥ १०१ ॥

अर्थ–इसके उपरान्त नाभिमें रक्तवर्ण वह्निकेबीज (रं) का ध्यान कर कुम्भक करकै चौंसठवार जप करते २ तिससे उत्पन्न अग्निमें अपने पापमय शरीरको दग्ध करै ॥ १०१ ॥

ललाटेवारुणंबीजंशुक्लवर्णंविचिन्त्यच ।
द्वात्रिंशतारेचकेनप्लावयेदमृताम्भसा ॥ १०२ ॥

अर्थ–फिर ललाटमें शुक्लवर्ण वरुणबीजकी चिन्ता करकै श्वासको छोड बत्तीस वार जपकर वरुणबीजसे उत्पन्नहुए अमृत वारिसे दग्धदेहको आप्लावित करै ॥ १०२ ॥

आपादशीर्षपर्य्यन्तमाप्लाव्यतदनन्तरम् ।
उत्पन्नंभावयेद्देहंनवीनंदेवतामयम् ॥ १०३ ॥

अर्थ–इसप्रकार चरणसे लेकर मस्तकतक अमृतवारिसे

छिड़ककर ऐसी चिन्ताकरै कि नूतन देवतामयशरीर उत्पन्न हुआ है ॥ १०३ ॥

पृथ्वीबीजंपीतवर्णंमूलाधारेविचिन्तयन् ।
तेनादिव्यावलोकेनदृढीकुर्य्यान्निजान्तनूम् ॥ १०४ ॥

अर्थ–फिर मूलाधारमें पीतवर्ण पृथ्वीबीज "लं" यह चिन्ताकरके दिव्यदृष्टिसे अपनी देहको दृढ़करै ॥ १०४ ॥

हृदयेहस्तमादायआंह्रींक्रोंहंसमुच्चरन् ।
सोऽहंमन्त्रेणतद्देहेदेव्याःप्राणान्निधापयेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ–इसके उपरान्त हृदयमें हाथकी रक्षाकर " आं ह्रीं क्रों हं सः सो हं" यह मंत्र पढ़कर अपने शरीरमें देवीके प्राणकी प्रतिष्ठा करे ॥ १०५ ॥

भूतशुद्धिंविधायेत्थंदेवीभावपरायणः ।
समाहितमनाःकुर्य्यान्मातृकान्यासमम्बिके! ॥ १०६ ॥

अर्थ–हे अम्बिके ! इसप्रकार भूतशुद्धि समाप्त करके देवीभावका आश्रय करके मातृकान्यास करै ॥ १०६ ॥

मातृकायाऋषिर्ब्रह्मागायत्रीच्छन्दईरितम् ।
देवतामातृकादेवीबीजंव्यञ्जनसंज्ञकम् ॥ १०७ ॥

अर्थ–मातृकाका, ऋषिका ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता, मातृका सरस्वती, व्यञ्जन, वर्ण, बीज (१) ॥ १०७ ॥

---

(१) मातृकान्यासके ऋष्यादिप्रयोग यथाः–अस्याः मातृकायाः ब्रह्माऋषिर्गायत्री च्छन्दो मातृका सरस्वतीदेवी देवता, हलो बीजं, स्वराः शक्तयः, विसर्गःकीलकं, धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः । शिरासि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदये मातृकायै सरस्वत्यै देव्यै देवतायै नमः । गुह्ये व्यञ्जनाय बीजायनमः । पादयोः स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः । सर्वाङ्गेषु विसर्गाय कीलकाय नमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये लिपिन्यासे विनियोगः ॥

स्वराश्चशक्तयःसर्गःकीलकंपरिकीर्त्तितम्।
लिपिन्यासेमहादेवि! विनियोगप्रयोगिता।
ऋषिन्यासंविधायैवंकराङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १०८ ॥

अर्थ–स्वर, वर्णशक्ति, विसर्गकीलक लिपिन्याससे विनियोग कीर्तन करै महादेवी! इसप्रकारसे ऋषिन्यास समाप्त करके कराङ्गन्यास करै ॥ १०८ ॥

अंआंमध्येकवर्गश्चइंईं मध्येचवर्गकम्।
उंऊंमध्येटवर्गन्तुएंऐं-मध्येतवर्गकम्॥ १०९ ॥
ओंऔं मध्येपवर्गन्तुयादिक्षान्तंवरानने!।
बिन्दुसर्गान्तरालेचषडङ्गमन्त्रईरितः॥ ११० ॥

अर्थ–हे सुन्दरि! तिसके बाद अं आं इन दोनों वर्णोंके मध्यमें कवर्ग, "इं ईं" इन दोवर्णोंके मध्यमें चवर्ग, 'उं ऊं" इन वर्णोंके बीचमें टवर्ग, "एं ऐं" इन दोवर्णोंमें तवर्ग "ओं औं" इन दोवर्णोंमें पवर्ग, बिन्दु और विसर्गके बीचमें 'य' से लेकर 'क्ष' तक इन कई वर्णोंका षडङ्गमें विन्यास करै (१)॥१०९॥ ११०॥

---

(१)प्रयोगःयथाः–अं कं खं गं घं ङं० आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम्। ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्। अंगन्यासः यथाः– अं कं खं गं घं ङं आं हृदयायनमः। इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसेस्वाहा। उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्। एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुं। ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्। अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।

विन्यस्यन्न्यासविधिनाध्यायेन्मातृसरस्वतीम् ॥ १११॥

अर्थ-इस प्रकारसे न्यासविधि समाप्तकर मातृकासरस्वती देवीका ध्यानकरै ॥ १११ ॥

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलाम्
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणंसुधाढ्यकलशंविद्याञ्चहस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणांविशदप्रभांत्रिनयनांवाग्देवतामाश्रये ॥११२॥

अर्थ-मातृकाका ध्यान यह है-जिसके हस्त, पद, मुख और छाती पचास वर्णोंमें विभक्त है, तिसके मस्तकपर चन्द्रकला विराजित रहकर शोभा पारही है, जिसके दोनों स्तन पीन और अति ऊंचे हैं, जिसके चारों हाथोंमें मुद्रा, अक्षमाला, सुधापूर्ण कलश और विद्या शोभायमान हो रही है ॥ ११२ ॥

ध्यात्वैवंमातृकांदेवींषट्सुचक्रेषुविन्यसेत् ।
हक्षौभ्रूमध्यगेपद्मेकण्ठेचषोड़शस्वरान् ॥ ११३ ॥

अर्थ-इसप्रकार मातृकादेवीका ध्यान करके षट्चक्रमें मातृका-न्यास करे; तिनमें प्रथमही भहौंके बीचमें, द्विदलमें "ह" और "क्ष" इन दोनों वर्णोंका न्यासकरके कण्ठमें स्थित हुए षोडशदलमें स्वरवर्ण न्यास करे ॥ ११३ ॥

हृदम्बुजेकादिठान्तान्विन्यस्यकुलसाधकः ।
डादिफान्तान्नाभिदेशेबादिलान्तांश्चलिङ्गके ॥ ११४॥

अर्थ-फिर हृदयस्थित द्वादशदलमें "क" से लेकर "ठ" तक द्वादश वर्णविन्यास करे और नाभिदेशमें स्थित हुए दश-दलमें "ड" से लेकर "फ" तक दशवर्ण विन्यास करके लिङ्ग-

मूलमें षड्दलके मध्ये "ब" से लेकर "ल" तक छयवर्णविन्यास करे ॥ ११४ ॥

मूलाधारेचतुःपत्रेवादिसान्तान्प्रविन्यसेत् ।
इत्यन्तर्मनसान्यस्यमातृकार्णान्बहिर्न्यसेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त मूलाधारमें चतुर्दलके मध्ये "व" से लेकर "स" तक चार वर्णविन्यास करे, फिर मनहीमनमें मातृका वर्णन्यास करके बहिर्न्यास करे (१) ॥ ११५ ॥

ललाटमुखवृत्ताक्षिश्रुतिघ्राणेषुगण्डयोः ।
ओष्ठदन्तोत्तमाङ्गस्यदोःपत्सन्ध्यग्रगेषुच ॥ ११६ ॥
पार्श्वयोःपृष्ठतोनाभौजठरेहृदयांसयोः ।
ककुद्यंसेचहृत्पूर्वंपाणिपादयुगेततः ॥ ११७ ॥
जठराननयोर्न्यस्येन्मातृकार्णान्यथाक्रमम् ।
इत्थंलिपिंप्रविन्यस्यप्राणायामंसमाचरेत् ॥ ११८ ॥

---

(१) षट्चक्रमें मातृकान्यासका क्रम यथाः-भ्रूके बीच दो दल पद्ममें हंनमः । क्षंनमः । कंठस्थित आज्ञाख्य सोलहदलवाले कमलके सोलह दलोंमें अंनमः । आंनमः । इंनमः । ईंनमः । उंनमः । ऊंनमः । ऋंनमः । ॠंनमः । ऌंनमः । । ॡंनमः । एंनमः ॥ ऐंनमः । ओंनमः । औंनमः । अंनमः । अःनमः । हृदयके अनाहत नामक बारह दलवाले पद्मके बारह दलमें कंनमः । खंनमः । गंनमः । घंनमः । ङंनमः । चंनमः । छंनमः । जंनमः । झंनमः । ञंनमः । टंनमः । ठंनमः । फिर नाभिके मणिपूर नामक पद्मके दशदलमें डंनमः । ढंनमः । णंनमः । तंनमः । थंनमः । दंनमः । धंनमः । नंनमः । पंनमः । फंनमः । लिंगमूलमें स्थित स्वाधिष्ठाननामक छैः दलवाले पद्मके प्रत्येक दलमें बंनमः । भंनमः । मंनमः । यंनमः । रंनमः । लंनमः । फिर मूलाधारमें स्थित चार दलवाले पद्मके चार दलमें वंनमः । शंनमः । षंनमः । संनमः । इस प्रकार षट्चक्रमें मातृका· वर्णका न्यास करे ।

अर्थ-माथा, मुख, नेत्र, कान, नासिका, गाल, अधर, दांत, उत्तमांग, मुखविवर, बाहोंके जोड और अग्रभागमें पांवकी संधि और अग्रस्थान, बगल, पृष्ठ, नाभि, जठर, हृदय, दांया और बांया कन्धा, ककुद, हृदयसे आरम्भ करके बांयां दांयां हाथ पांव इस प्रकार जठर और मुखपर क्रमानुसार समस्त मातृका षर्णोंपर न्यास करे, इस प्रकार लिपिन्यास करके प्राणायाम करे११६।११७।११८॥

(१)मातृकान्यासका प्रयोग यथाः-अनामिका और मध्यमाङ्गुलिसे ललाटमें अंनमः। अनामिकातर्ज्जनी और मध्यमांगुलिसे मुखविवरमें चारोंओर आंनमः । अनामिका और अँगूठेको मिलाकर दांहिने नेत्रमें इंनमः । ऐसेही वामनेत्रमें ईंनमः। अंगूठेकी पीठसे दांहिने कानमें उंनमः । ऐसेही बायें कानमें ऊंनमः । कन उंगली और अंगूठेको मिलाकर दांही नासिकामें ऋंनमः । ऐसेही वामनासिकामें। ॠंनमः । तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिकासे दक्षिणगालमें ऌंनमः । ऐसेही बायें गालमें ॡंनमः । मध्यमासे होठमें एंनमः । ऐसेही अधरमें ऐंनमः । ऐसेही अनामिकासे ऊपरके दांतोंकी पंक्तिमें ओंनमः । ऐसेही अधरदन्तपंक्तिमें औंनमः। मध्यम उंगलीसे उत्तमाङ्गमें अंनमः।अनामिकासे मुखविवरमें अःनमः। मुष्टी बांधकर मध्यमांगुलिसे बाहोंके मूलसे तीनों सन्धियोंमें कंनमः । खंनमः । गंनमः । ऐसेही उंगलीके मूलमें और उंगलीके अग्रभागमें घंनमः। ङंनमः । ऐसेही बायें हाथके चार स्थानोंमें और उंगलीके अग्रभागमें चंनमः । छंनमः । जंनमः । झंनमः। ञंनमः । ऐसेही दांये पांवकी तीन सन्धियोंमें उंगालियोंकी जडमें और उंगलियोंके पोरओंमें टंनमः । ठंनमः । डंनमः । ढंनमः । णंनमः । ऐसेही बायें पांवमें तंनमः । थंनमः । दंनमः । धंनमः । दांहिने पार्श्वमें मध्यमा, अनामिका और कनउंगलीसे पंनमः । ऐसेही वामपार्श्वमें फंनमः । ऐसेही पीठमें बंनमः । नाभिमें अंगूठे और कनको मिलाकर भंनमः । जठरमें सब उंगलियोंको मिलाकर मंनमः । हृदयमें, हथेलीसे यं त्वगात्मनेनमः । दांये कंधमें कन और अंगूठेको मिलाकर रं असृगात्मनेनमः । ऐसेही ककुदमें लं मेदआत्मनेनमः। ऐसेही वामकन्धेमें वं मांसात्मनेनमः । हथेली करके हृदयसे लगाकर दांहिने हाथतक, शं अस्थ्यात्मनेनमः। ऐसेही हृदयसे बायें हाथतक षं मज्जात्मनेनमः । हृदयसे लेकर दांहिनें चरणतक ऐसेही सं शुक्रात्मनेनमः । हृदयसे लेकर बांये पांवतक ऐसेही हं प्राणात्मनेनमः। हृदयसे उत्तरतक ळं जीवात्मनेनमः । हृदयसे मुखतक ऐसेही क्षं परमात्मनेनमः । इसप्रकार सब मातृकावर्णोंका बहिर्न्यास करे । जो इस मुद्राके करनेमें असमर्थ हो तो फूलोंसे भी इन सब स्थानोंमें मातृकान्यास हो सक्ता है ॥

मायाबीजंषोडशधाजप्त्वावामेनवायुना ।
पूरयेदात्मनोदेहंचतुःषष्ट्याचतुकुम्भयेत् ॥ ११९ ॥

अर्थ—इस प्रकार मायाबीजका सोलहवार जप करते २ बांई नासिकामें खैंच कर अपनी देहको पूर्ण करै, फिर चौंसठवार जप करते२कुम्भक करै ॥ ११९ ॥

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्धृत्वानासाद्वयंसुधीः ।
द्वात्रिंशताजपन्बीजंवायुंदक्षेणरेचयेत् ॥ १२० ॥

अर्थ—फिर अंगुष्ठद्वारा दक्षिणनासिका अवरोध कर बत्तीसवार मायाबीजका जप करके क्रमसे वायु छोडै इस प्रकार दक्षिण नासिकामेंभी पूरक, कुम्भक और रेचक करै ॥ १२० ॥

पुनःपुनस्त्रिरावृत्त्याप्राणायामइतिस्मृतः[1] ।
प्राणायामंविधायेत्थमृषिन्यासंसमाचरेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ—बार २ तीन वार ऐसा करै इसकाही नाम प्राणायाम है । प्राणायामके अन्तमें ऋषिन्यास करै ॥ १२१ ॥

अस्यमन्त्रस्यऋषयोब्रह्माब्रह्मर्षयस्तथा ।
गायत्र्यादीनिछन्दांसिआद्याकालीतुदेवता ॥ १२२ ॥

अर्थ—इसमंत्रके ऋषि ब्रह्मा और समस्तब्रह्मर्षि हैं गायत्री इत्यादि इसके—छन्द हैं आद्या काली इसकी देवता है ॥ १२२ ॥

आद्याबीजंबीजमितिशक्तिर्मायाप्रकीर्त्तिता ।
कमलाकीलकंप्रोक्तंस्थानेष्वेतेषुवैन्यसेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादसर्व्वाङ्गकेषुच ॥ १२३ ॥

---

१ पुनः पुनस्त्रिराचम्य इति वा पाठः ।

अर्थ-इसका बीज "क्रीं" शक्ति " ह्रीं " कीलक "श्रीं" इनमंत्रोंसे शिरपर मुखसे हृदयमें गुह्य, चरण और सर्वाङ्गमें न्यास करै(१)१२३

मूलमन्त्रेणहस्ताभ्यामापादमस्तकावधि ।
मस्तकात्पादपर्य्यन्तंसप्तधावात्रिधान्यसेत् ।
अयन्तुव्यापकन्यासोयथोक्तफलसिद्धिदः ॥ १२४ ॥

अर्थ-तिसके उपरान्त मूलमंत्र पढ़कर दोनों हाथोंसे चरणोंसे मस्तक और मस्तकसे, चरणतक सात या तीन वार जैसा फल चाहै वैसा न्यास करै ॥ १२४ ॥

यद्बीजाद्याभवेद्विद्यातद्बीजेनाङ्गकल्पना ।
अथवामूलमन्त्रेणषड्दीर्घेणविनाप्रिये ! ॥ १२५ ॥
अङ्गुष्ठाभ्यांतर्जनीभ्यांमध्यमाभ्यांतथैवच ।
अनामिकाभ्यांकनिष्ठाभ्यांकरयोस्तलपृष्ठयोः ।
नमःस्वाहावषट्हूंवौषट्फट्क्रमशःसुधीः ॥ १२६ ॥

अर्थ-हे प्रिये! जिस मूलमंत्रके आदि अक्षरमें जो बीज होगा तिसमें क्रमानुसार छैः दीर्घ स्वरमें । मिलायकर अथवा तिनके सिवाय दो अंगुष्ठ दो तर्जनी, दो मध्यमा, दो अनामिका, दो कनिष्ठा और करतलपृष्ठमें यथाक्रमसे "नमः" "स्वाहा" " वषट् "

---

(१)ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, इस मंत्रका ऋष्यादि न्यासप्रयोग यथाः-"अस्य मंत्रस्य ब्रह्मा ब्रह्मर्षयश्च ऋषयः, गायत्र्यादीनि च्छंदांसि, आद्या काली देवता क्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः श्रीं कीलकं धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये ऋषिन्यासे विनियोगः । शिरसिब्रह्मणे ब्रह्मर्षिभ्यश्च ऋषिभ्योनमः । मुखे गायत्र्यादिभ्यः छन्दोभ्योनमः । हृदये आद्यायै काल्यै देवतायैनमः । गुह्ये क्रीं बीजायनमः । पादयोः ह्रीं शक्तयेनमः । सर्वाङ्गेषु श्रीं कीलकायनमः । धर्मार्थकाममोक्षावाप्तये जपे विनियोगः ॥

"हूं" "वौषट्" "फट्" इसमंत्रसे करन्यास करै (१) १२५ ॥ १२६ ॥

हृदयायनमःपूर्वंमस्तकेवह्निवल्लभा ।
शिखायैवषडित्युक्तंकवचायहुमीरितम् ॥ १२७ ॥
नेत्रत्रयायवौषट्चअस्त्रायफडितिक्रमात् ।
षडङ्गानिविधायेत्थंपीठन्यासंसमाचरेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ–इसके उपरान्त "हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् "और" "कवचाय हूं, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट्" इसप्रकार षडङ्गन्यास करके पीठन्यास करे (२)॥१२७॥१२८॥

आधारशक्तिंकूर्म्मंञ्चशेषंपृथ्वींतथैवच ।
सुधाम्बुधिंमणिद्वीपंपारिजाततरुंततः ॥ १२९ ॥
चिन्तामणिगृहञ्चैवमणिमाणिक्यवेदिकाम् ।
तत्रपद्मासनंवीरोविन्यसेद्धृदयाम्बुजे ॥ १३० ॥

अर्थ–इसके उपरान्त वीर हृदयपद्ममें आधारशक्ति, कूर्म, शेष, पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणिद्वीप, पारिजातवृक्ष, चिन्तामणि गृह, मणिमाणिक्यवेदि और पद्मासनका न्यास करे(३) ॥१२९॥ १३०॥

---

(१)करन्यासका प्रयोग यथाः–ह्रीं अंगुष्ठाभ्यांनमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रैं अनामिकाभ्यांहूं । ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट् । अंगुष्ठ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यांनमः । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा तर्जनीभ्यांस्वाहा । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अनामिकाभ्यां हूं । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । करतलपृष्ठाभ्यां फट् ।

(२) षडङ्गन्यासप्रयोगो यथाः–ह्रांहृदयायनमः । ह्रींशिरसेस्वाहा । ह्रूं शिखायैवषट् ह्रैंकवचायहूं । ह्रौंनेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रःअस्त्राय फट् । अथवा ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हृदयायनमः । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरिस्वाहा शिरसेस्वाहा । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा शिखायै वषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा कवचायहूं । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अस्त्राय फट् । इसप्रकार षडङ्गन्यास करे ।

(३) प्रयोगः यथाः–हृदयाम्बुजे आधारशक्त्यैनमः । कूर्मायनमः । शेषायनमः । पृथ्व्यैनमः । सुधाम्बुधयेनमः । मणिद्वीपायनमः । पारिजाततरवेनमः । चिन्तामणिगृहायनमः । मणिमाणिक्यवेदिकायैनमः । पद्मासनायनमः ।

दक्षवामांसयोर्वामकटीदक्षकटीतथा ।
धर्म्मंज्ञानंतथैश्वर्य्यंवैराग्यंक्रमतोन्यसेत् ॥ १३१ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त दक्षिणस्कंधमें, वामस्कन्धमें, वामकटि और दक्षिणकटिमें धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य्य और वैराग्यका क्रमशः न्यास करे ॥ १३१ ॥

मुखपार्श्वेनाभिदक्षपार्श्वेसाधकसत्तमः ।
नञ्पूर्व्वाणिचतान्येवधर्म्मादीनियथाक्रमम् ॥ १३२ ॥

अर्थ-फिर साधकश्रेष्ठ मुख, वामपार्श्व, नाभि और दक्षिणपार्श्वमें यथाक्रमसे नञ्पूर्वक इस सबका न्यास करे(१)॥ १३२ ॥

आनन्दकन्दंहृदयेसूर्य्यंसोमंहुताशनम् ।
सत्वंरजस्तमश्चैवबिन्दुयुक्तादिमाक्षरैः ।
केसरान्कार्णिकाञ्चैवपत्रेषुपीठनायिकाः ॥ १३३ ॥

अर्थ-फिर हृदयमें आनन्दकन्द, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वर्णमें अनुस्वार मिलाकर सत, रज और तम व केसर कर्णिका और समस्त पत्रोंमें पीठनायिकाओंका न्यास करे (२)॥ १३३ ॥

मङ्गलाविजयाभद्राजयन्तीचापराजिता ।
नन्दिनीनारसिंहीचवैष्णवीत्यष्टनायिकाः ॥ १३४

अर्थ-अष्टनायिका-मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नन्दिनी, नारसिंही और वैष्णवी (३) ॥ १३४ ॥

---

(१) प्रयोगः यथाः-दक्षस्कन्धे धर्मायनमः । वामस्कन्धेज्ञानायनमः । वामकटौऐश्वर्यायनमः । दक्षकटौवैराग्यायनमः । मुखेअधर्मायनमः । वामपार्श्वेअज्ञानायनमः । नाभौअनैश्वर्यायनमः । दक्षपार्श्वे अवैराग्यायनमः ।

(२) प्रयोगः यथाः-हृदये आनन्दकन्दायनमः । सूर्यायनमः । सोमायनमः । अग्नयेनमः । संसत्वायनमः । रंरजसेनमः । तंतमसेनमः केसरेभ्योनमः । कर्णिकायैनमः ।

(३) प्रयोगः यथाः-पीठपद्मके पत्रोंमें क्रमानुसार मङ्गलायैनमः। विजयायैनमः। भद्रायैनमः । जयन्त्यैनमः । अपराजितायैनमः । नन्दिन्यैनमः । नारसिंह्यैनमः । वैष्णव्यैनमः ।

असिताङ्गोरुरुश्चण्डःक्रोधोन्मत्तोभयंकरः ।
कपालीभीषणश्चैवसंहारीत्यष्टभैरवाः ।
दलाग्रेषुन्यसेदेतान्प्राणायामंततश्चरेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त अष्टदलके आगे असिताङ्ग, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण और संहारी इन आठ भैरवोंका न्यास करे, फिर प्राणायाम विधि करे (१) ॥ १३५ ॥

गन्धपुष्पेसमादायकरकच्छपमुद्रया ।
हृदिहस्तौसमाधायध्यायेद्देवींसनातनीम् ॥ १३६ ॥

अर्थ-तत्पश्चात् गन्ध पुष्प ग्रहण करके कच्छपमुद्रामें धारण करके उसका हाथ हृदयमें स्थापन करके सनातनी देवीका ध्यान करे (२) ॥ १३६ ॥

ध्यानन्तुद्विविधंप्रोक्तंसरूपारूपभेदतः ।
अरूपंतवयद्ध्यानमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १३७ ॥

अर्थ-ध्यान यह है । ध्यान साकार और निराकार दो प्रकारका है तिसमें निराकारका ध्यान वाक्य और मनके अगोचर है ॥ १३७ ॥

अव्यक्तंसर्वतोव्याप्तमिदमित्थंविवर्जितम् ।
अगम्यंयोगिभिर्गम्यंकृच्छ्रैर्बहुसमाधिभिः ॥ २३८ ॥

---

१ क्रोधोन्मत्ताख्यकस्तथा इति प्रमादविजृम्भितोमुद्रितःपाठः ।

(१) प्रयोगः यथाः-अष्टपद्मपत्रके अग्रभागमें क्रमानुसारअसिताङ्गायभैरवायनमः।रुरवे भैरवायनमः । चण्डायभैरवायनमः । क्रोधोन्मत्तायभैरवायनमः । भयङ्करायभैरवाय नमः । कपालिनेभैरवायनमः । भीषणायभैरवायनमः । संहारिणेभैरवायनमः । इस प्रकार पीठन्यासकरके प्राणायाम करे ।

(२) कच्छपमुद्रा यथाः-बांये करतलके ऊपर दायां हाथ स्थापितकरके बांये हाथके अंगूठेके साथ-दांये हाथकी तर्ज्जनीको मिलाय, बांये हाथकी तर्ज्जनीके साथ दांये हाथकी कनिष्ठाको मिलाय, बाकी सब उंगलियें दोनों करतलोंके बीचमें बंधी हुई मुठ्ठीकी समान रोके रहै ॥

अर्थ–यह अव्यक्त और सर्वव्यापि है, यह ऐसा ऐसा नहीं कहा जाता साधारणको वह अगम्यहै; परन्तु योगी लोग दीर्घ कालतक समाधिका आश्रय करके बहुतसे कष्टसे इसको हृदयमें लाते हैं ॥ १३८ ॥

मनसोधारणार्थायशीघ्रंस्वाभीष्टसिद्धये ।
सूक्ष्मध्यानप्रबोधायस्थूलध्यानंवदामिते ॥ १३९ ॥

अर्थ–इस समय मनकी धारण शीघ्र अभीष्ट सिद्धि होनेको और सूक्ष्म ध्यानका बोध होनेको तुमसे स्थूल ध्यानका तत्व कहताहूं। १३९

अरूपायाःकालिकायाःकालमातुर्महाद्युतेः ॥
गुणक्रियानुसारेणाक्रियतेरूपकल्पना ॥ १४० ॥

अर्थ–अरूपा और कालमाता महाप्रकाशवती कालिका देवीके गुण और क्रियाके अनुसार रूपकी कल्पना करते हैं ॥ ४० ॥

मेघाङ्गींशशिशेखरांत्रिनयनांरक्ताम्बरांबिभ्रतीम् ॥
पाणिभ्यामभयंवरञ्चविलसद्रक्तारविन्दास्थिताम् ॥
नृत्यन्तंपुरतोनिपीयमधुरंमाध्वीकमद्यंमहा-
कालंवीक्ष्यविकासिताननवरामाद्यांभजेकालिकाम् ४१

अर्थ–जिनका वर्ण मेघतुल्य है, माथेपर चन्द्रमाकी रेखा जगमगा रही है, तीन नेत्रहैं, लाल वस्त्र पहिरेहैं, जिनके दो हाथोंमें वर और अभय है, जो फूले हुये कमलपर बैठीहैं, जिनके सामने माध्वीक फूलसे उत्पन्न हुआ मधुर मदपान कर महाकाल नृत्य करता है इस महाकालको दर्शन कर जिनका मुखकमल विकसित हुआहै, ऐसी आदिकालिका का भजन करताहूं ॥ १४१ ॥

एवंध्यात्वास्वशिरसिपुष्पंदत्वातुसाधकः ।
पूजयेत्परयाभक्त्यामानसैरुपचारकैः ॥ ४२ ॥

अर्थ-साधक अपने मस्तकपर फूल चढाय इस प्रकार ध्यान कर परम भक्तीके सहित मानसोपचारसे पूजा करे ॥ ४२ ॥

हृत्पद्ममासनंदद्यात्सहस्रारच्युतामृतैः ।
पाद्यंचरणयोर्दद्यान्मनस्त्वर्घ्यंनिवेदयेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-(मानस पूजामें) हृदयरूपी पद्मका आसन देवै सहस्रार-च्युत अमृतसे देवीके दौनों चरणोंमें पाद्य देवे मनको अर्घ्य स्वरूपमें निवेदन करे ॥ १४३ ॥

तेनामृतेनाचमनंस्नानीयमपिकल्पयेत् ।
आकाशतत्त्वंवसनंगन्धन्तुगन्धतत्त्वकम् ॥ ४४ ॥

अर्थ-पहले कहे हुए सहस्रारच्युत अमृतसेही आचमनीय और स्नानीय जल कल्पित होगा । आकाशतत्व वस्त्र और गंधतत्व गंध रूपमें दिया जायगा ॥ ४४ ॥

चित्तंप्रकल्पयेत्पुष्पंधूपंप्राणान्प्रकल्पयेत् ।
तेजस्तत्त्वन्तुदीपार्थेनैवेद्यञ्चसुधाम्बुधिम् ॥ ४५ ॥

अर्थ-मनको पुष्प और प्राणको धूप बनाये तेजतत्वको दीप और सुधांबुधिको नैवेद्यार्थ देवै ॥ ४५ ॥

अनाहतध्वनिंघण्टांवायुतत्त्वञ्चचामरम् ।
नृत्यमिन्द्रियकर्म्माणिचाञ्चल्यंमनसस्तथा ॥ ४६ ॥

अर्थ-हृदयमध्यकी अनाहत ध्वनिको घंटा और वायुतत्वको चामर कल्पित करे, फिर इन्द्रियोंके समस्त कार्य और मनकी चंचलताको नृत्य कल्पना करे ॥ ४६ ॥

पुष्पंनानाविधंदद्यादात्मनोभावसिद्धये ।
अमायमनहंकारमरागममदन्तथा ॥ ४७ ॥
अमोहकमदम्भंचअद्वेषाक्षोभकेतथा ।

अमात्सर्य्यमलोभञ्चदशपुष्पंप्रकीर्तितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-अपनी भावशुद्धके लिये अनेक प्रकारके फूल देवे । अमायिकता, निरहंकार, रोषशून्यता, मदशून्यता, दंभशून्यता, द्वेषहीनता, क्षोभरहितता, मत्सरहीनता और निर्लोभता मानसपूजाके लिये यह दश प्रकारके फूल अच्छे हैं ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अहिंसापरमंपुष्पंपुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
दयाक्षमाज्ञानपुष्पंपञ्चपुष्पंततःपरम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-फिर अंहिसा स्वरूप परम पुष्प, दयारूप पुष्प, इन्द्रियनिग्रह, क्षमा और ज्ञान यह पंच पुष्प देवै ॥ ४९ ॥

इतिपञ्चदशैःपुष्पैर्भावरूपैःप्रपूजयेत् ।
सुधाम्बुधिंमांसशैलंभर्जितंमीनपर्वतम् ॥ १५० ॥
मुद्राराशिंसुभक्तञ्चघृताक्तंपायसंतथा ।
कुलामृतञ्चतत्पुष्पंपीठक्षालनवारिच ॥ ५१ ॥

अर्थ-इस प्रकार पंद्रह प्रकारके भावरूपी फूलोंसे पूजा करके फिर मनमें सुधासमुद्र मांसशैल भर्जितमत्स्यपर्वत मुद्राराशि सुन्दर घृतकी पायस, कुलामृत, कुलपुष्प, पीठक्षालन वारि यह समस्त देवीको देवे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

कामक्रोधौविघ्नकृतौबलिंदत्वाजपंचरेत् ।
मालावर्णमयीप्रोक्ताकुण्डलीसूत्रयन्त्रिता ॥ ५२ ॥

अर्थ-फिर विघ्नकर्ता काम और क्रोधको बलि देकर जप करना आरंभ करे इस प्रकार कुण्डलीसूत्रमें गुंथीहुई वर्णमालाही श्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥

सबिन्दुंमन्त्रमुच्चार्य्यमूलमन्त्रंसमुच्चरेत् ।
अकारादिळकारान्तमनुलोमइतिस्मृतः ॥ ५३ ॥

पुनर्ळकारमारभ्यश्रीकण्ठान्तंमनुंजपेत् ।
विलोमइतिविख्यातःक्षकारोमेरुरुच्यते ॥ ५४ ॥

अर्थ–पहले बिन्दुके सहित अकारादिसे उच्चारण करके, तिसके पीछे मूलमंत्र उच्चारण करे इस प्रकार ककारसे आरंभ करके अन्त्य "ळ" कारतक अनुलोम क्रमसे जप करके पुनर्वार "ळ" से "क" तक विलोमक्रमसे जप करे "क्ष" इसका मेरु होगा ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अष्टवर्गान्तिमैर्वर्णैःसहमूलमथाष्टकम् ।
एवमष्टोत्तरशतंजप्त्वानेनसमर्पयेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ–तिसके पीछे आठवर्गके आठ संख्यक शेष वर्णके सहित मूलमंत्र मिलाय साकल्यमें १०८ एकसौ आठ जप करे, इस नियमसे एकशत आठवार जप करके देवीके हाथमें समर्पण करे (१) ॥ ५५ ॥

सर्वान्तरात्मनिलयेस्वान्तर्ज्योतिःस्वरूपिणि ।
गृहाणान्तर्जपंमातराद्ये ! कालि ! नमोऽस्तुते ॥ ५६ ॥

अर्थ–जप समर्पण करनेका मंत्र यह है–हे आद्यकालिके ! तुम

---

(१) वर्णमयी माला यथाः–अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं ॡं एं ऐंओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं (क्षं) ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं अनुलोम और विलोम इस एक शत वर्णरूप मालामें एक शतवार जप करके फिर अष्टवर्गके आठ पिछले अक्षरोंमें आठ वार जपकरे। अष्ट अक्षर यथाः– अं ङं ञं णं नं मं वं लं । इस सारी वर्णमालाके प्रत्येक वर्णके सहित बीजमंत्रका जप करना चाहिये । यथाः–अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इत्यादि वर्णमयी मालामें विना अनूस्वार मिलाए भी काम चल सक्ता है ।

सबकी आत्मामें विराजमानहो, तुम अन्तरात्माकी जननीस्वरूपहो, हे जननि ! हमारा यह जप ग्रहण करो ॥ ५६ ॥

समर्प्यजपमेतेनसाष्टाङ्गंप्रणमेद्धिया ।
इत्यन्तर्यजनंकृत्वाबाहिःपूजांसमारभेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ-इस प्रकार देवीके हस्तमें जप समर्पण करनेके मानससे साष्टाङ्ग प्रणाम करे इस प्रकार मानस पूजा करके बाहरी पूजा आरंभ करे ॥ ५७ ॥

विशेषार्घस्यसंस्कारस्तत्रादौकथ्यतेशृणु ।
यस्यस्थापनमात्रेणदेवतासुप्रसीदति ॥ ५८ ॥

अर्थ-प्रथम तो विशेष प्रकारसे अर्घ्यका संस्कार कहता हूं सो तुम श्रवण करो, इसके स्थापित करतेही देवता गण प्रसन्नहो जाते हैं ॥ ५८ ॥

दृष्ट्वार्घ्यपात्रंयोगिन्योब्रह्माद्यादेवतागणाः ।
भैरवाअपिनृत्यन्तिप्रीत्यासिद्धिंददत्यपि ॥ ५९ ॥

अर्थ-ब्रह्मादि देवगण और योगिनी व भैरवगण अर्घ्यका पात्र देखकर नृत्य करते हैं और प्रसन्नहो सिद्धि देते हैं ॥ ५९ ॥

स्ववामेपुरतोभूमौसामान्यार्घ्यस्यवारिणा ।
मायागर्भंत्रिकोणञ्चवृत्तञ्चचतुरस्रकम् ॥ १६० ॥

अर्थ-इसके उपरांत अपनी बांई ओर सामनेकी भूमिमें अर्घ्यके जलसे एक गोलाकर मंडप बनावे, तिसके बाहर एक चौकोंन मण्डल लिखे ॥ १६० ॥

विलिख्यपूजयेत्तत्रमायाबीजपुरःसरम् ।
ङेन्तामाधारशक्तिञ्चनमःशब्दावसानिकाम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-तिसमें "ह्रीं आधारशक्तये नमः" इस मंत्रसे आधारशक्तिकी पूजा करे ॥ ६१ ॥

ततःप्रक्षालिताधारंविन्यस्यमण्डलोपरि ।
मंवह्निमण्डलंङेन्तंदशकलात्मनेततः ॥ ६२ ॥

अर्थ-फिर उस मण्डलके ऊपर प्रक्षालित पात्र स्थापन करके तिसमें 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' ॥ ६२ ॥

नमोन्तेनचसम्पूज्यक्षालयेदर्घ्यपात्रकम् ।
अस्त्रेणस्थापयेत्तत्रआधारोपरिसाधकः ॥ ६३ ॥

अर्थ-इसमंत्रसे वह्निमण्डलकी पूजा करके फट्मंत्रका उच्चारण करके अर्घ्यपात्र प्रक्षालित करे फिर आधारपर धरे ॥ ६३ ॥

अमर्कमण्डलायोक्त्वाद्वादशान्तकलात्मने ।
नमोऽन्तेनयजेत्पात्रंमूलेनैवप्रपूरयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ-फिर 'अं अर्कमण्डलायनमः' । इस मंत्रसे अर्कमण्डलकी अर्चना करके मूलमंत्रके उच्चारणसे अर्घ्यपात्र पूर्ण करे ॥ ६४ ॥

त्रिभागमलिनापूर्य्यशेषंतोयेनसाधकः ।
गन्धपुष्पेतत्रदत्त्वापूजयेदमुनांबिके ! ॥ ६५ ॥

अर्थ-इस समय साधक तीन भाग मद्य और एक भाग जल देकर तिनमें गंधपुष्प दान करे. हे अम्बिके ! वक्ष्यमाणमंत्रसे तिसमें पूजा करे ॥ ६५ ॥

षष्ठस्वरंबिन्दुयुक्तंङेन्तंवैचन्द्रमण्डलम् ।
षोडशांतकलाशब्दादात्मनेनमइत्यपि ॥ ६६ ॥

अर्थ-षष्ठस्वर 'उ' में बिन्दु मिलाय "षोडशकलात्मनेनमः" इस मंत्रसे पूजा करे ॥ ६६ ॥

ततस्तुश्रैफलेपत्रेरक्तचंदनचर्चितम् ।
दूर्वापुष्पंसाक्षतञ्चकृत्वातत्रनिधापयेत् ॥ ६७ ॥

अर्थ–फिर बेलपत्र लालचंदन दूर्वादल अक्षत इन सबको अर्घ्यके विशेष भागमें स्थापित करे ॥ ६७ ॥

मूलेनतीर्थमावाह्यतत्रदेवींविभाव्यच ।
पूजयेद्गन्धपुष्पाभ्यांमूलंद्वादशधाजपेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ–फिर मूलमंत्रके द्वारा तीर्थ आवाहन करके तिसमें देवीका ध्यान करे और गंधपुष्पद्वारा पूजा करके बारहवार मूलमंत्र जपे ॥ ६८ ॥

धेनुयोनीदर्शयित्वाधूपदीपौप्रदर्शयेत् ।
तदम्बुप्रोक्षणीपात्रेकिञ्चिन्निक्षिप्यसाधकः ॥ ६९ ॥

अर्थ–फिर अर्घ्यविशेषके ऊपर धेनु व योनिमुद्रा दिखाय धूप दीप दिखावे ॥ ६९ ॥

आत्मानंदेयवस्तूनिप्रोक्षयेत्तेनमंत्रवित् ।
पूजासमाप्तिपर्य्यंतमर्घ्यपात्रंनचालयेत् ॥७०॥

अर्थ–इसके उपरांत मंत्रका जपनेवाला साधक अर्घ्यविशेषका थोडासा जल प्रोक्षणीपात्रमें डालकर उस जलसे अपनेको और पूजाके समस्त द्रव्यको प्रोक्षित करे । जबतक पूजा समाप्त न हो एक साथ अर्घ्यविशेषको दूसरे स्थानपर न ले-जाय ॥ ७० ॥

विशेषार्घ्यस्यसंस्कारःकथितोयंशुचिस्मिते ! ।
यंत्रराजंप्रवक्ष्यामिसमस्तपुरुषार्थदम् ॥ ७१ ॥

अर्थ–हे सुन्दरि ! तुमसे विशेषार्घ्यका संस्कार वर्णन किया, अव समस्त पुरुषार्थके देनेवाले यंत्रराजके लिखनेकी रीति कहताहूं ॥ ७१ ॥

मायागर्भेत्रिकोणञ्चतद्वाह्येवृत्तयुग्मकम् ।
तयोर्मध्येयुग्मयुग्मक्रमात्षोडशकेसरान् ॥ ७२ ॥

अर्थ–प्रथम एक त्रिकोण मंडल खेंच उसमें मायाबीज लिखे उसके बाहर गोलाकार दो मंडल खेंचे तिसके बाहर दो केसर लिखे ॥ ७२ ॥

तद्वाह्येऽष्टदलंपद्मंतद्वाहेभूपुरंलिखेत् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तंसुरेखंसुमनोहरम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–इस गोल मण्डलके बाहर अष्टदल पद्म बनावै उसके बाहर चारद्वारयुक्त सरल रेखामय मनोहर भूपुर लिखे ॥ ७३ ॥

स्वर्णेवाराजतेताम्रेकुण्डगोलविलेपिते ।
स्वयम्भूकुसुमैर्य्युक्तेचन्दनागुरुकुंकुमैः ॥ ७४ ॥
कुशीदेनाथवालिप्तेस्वर्णमय्याशलाकया ।
मालूरकण्टकेनापिमूलमन्त्रंसमुच्चरन् ॥ ७५ ॥

अर्थ–कुंड गोलविलेपितचंदन, अगर, कुसुम अथवा केवल लालचंदन लगा हुआ सुवर्ण, चांदी या ताम्रपात्रमें स्वर्ण शलाका अथवा बिल्वकंटकसे मूलमंत्र उच्चारण करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

विलिखेद्यन्त्रराजन्तुदेवताभावसिद्धये ।
अथवोत्कीलरेखाभिःस्फाटिकेविद्रुमेऽपिवा ॥ ७६ ॥
वैदूर्य्येकारयेद्यन्त्रंकारुकेणसुशिल्पिना
शुभप्रातिष्ठितंकृत्वास्थापयेद्भवनान्तरे । ॥ ७७ ॥
नश्यन्तिदुष्टभूतानिग्रहरोगभयानिच ॥
पुत्रपौत्रसुखैश्वर्य्यैर्म्मोदतेतस्यमन्दिरम् ।
दाताभर्त्तायशस्वीचभवेद्यन्त्रप्रसादतः ॥ ७८ ॥

अर्थ-भावशुद्धिकेलिये यंत्रराज लिखे अथवा स्फटिक, प्रवाल या वैदूर्यके बने हुए पात्रमें चतुर कारीगरसे यंत्रको खुद-वाय प्रतिष्ठा करके गृहमें स्थापित करे, इससे ग्रह, रोग, भूत और दुष्ट भूतोपद्रव शान्तहो जाते हैं ॥ साधकका गृहभी पुत्र पौत्र और ऐश्वर्यसे पूर्ण होजाता है ॥ अधिक क्या कहैं इसके प्रसादसे साधक दाता और यशवान हो जाता है ॥ ७६॥७७॥७८॥

एवंयन्त्रंसमालिख्यरत्नसिंहासनेपुरः ।
संस्थाप्यपीठन्यासोक्तविधिनापीठदेवताः ।
सम्पूज्यकर्णिकामध्येपूजयेन्मूलदेवताम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-इस प्रकार मंत्र लिखकर पुरस्थित रत्नमय सिंहासनपर स्थापित करे और पीठिदेवताओंकी व उनके आवर्त्तमान-कर्णिकामूलमें देवताओंकी पूजा करे ॥ ७९ ॥

कलशस्थापनंवक्ष्येचक्रानुष्ठानमेवच ।
येनानुष्ठानमात्रेणदेवतासुप्रसीदति ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नूनमिच्छासिद्धिःप्रजायते ॥ १८० ॥

अर्थ-इस समय कलश स्थापन और मंत्रानुष्ठानका वर्णन करता हूं, इस्से निश्चयही इच्छासिद्ध, मंत्रसिद्ध होता है और देवताभी प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १८० ॥

कलांकलांगृहीत्वातुदेवानांविश्वकर्म्मणा ।
निर्मितोऽयंसवैयस्मात्कलशस्तेनकथ्यते ॥ ८१ ॥

अर्थ-विश्वकर्माने देवताओंकी एक २ कला लेकर इसको बनाया है, इसी कारणसे इसका नाम कलश हुआ ॥ ८१ ॥

षट्त्रिंशदङ्गुलायामंषोडशाङ्गुलमुच्चकैः ।
चतुरङ्गुलकंकण्ठंमुखन्तस्यषडङ्गुलम् ।
पञ्चाङ्गुलिमितंमूलंविधानंघटनिर्म्मितौ ॥ ८२ ॥

अर्थ-इसकलशका विस्तार डेढ़ हाथका, सोलह अंगुल ऊंचा, गल चार अंगुल, मुख विस्तारमें छै अंगुल, तलपरिमाणमें पांच अंगुल ॥ १८२ ॥

सौवर्णराजतंताम्रंकांस्यजंमृत्तिकोद्भवम् ।
पाषाणंकाचजंवापिघटमक्षतमव्रणम् ।
कारयेद्देवताप्रीत्यैवित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ-यह सुवर्ण, चांदी, कांसी, मट्टी वा कांचका बनाहो, कहींसे टूटा नहो, न कोई छिद्रहो, देवताओंकी प्रीति के लिये सुधाकलश बनानेमें किसी प्रकारकी कृपणता नहो ॥ ८३ ॥

सौवर्णभोगदंप्रोक्तंराजतंमोक्षदायकम् ।
ताम्रंप्रीतिकरंज्ञेयंकांस्यजंपुष्टिवर्द्धनम् ।
काचंवश्यकरंप्रोक्तंपाषाणंस्तम्भकर्म्मणि ।
मृन्मयंसर्वकार्य्येषुसुदृश्यंसुपरिष्कृतम् ॥ ८४ ॥

अर्थ-सुवर्णकलश भोगदायक, चांदीका मोक्षदायक, ताम्रका प्रीतिकर, कांसीका पुष्टिवर्द्धक, कांचपात्र वशीकरणकारक, पाषाणपात्र स्तम्भनोद्दीपक, मट्टीका पात्र सुदृश्य और स्वच्छ होनेसे सर्व कार्यमें श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥

स्ववामभागेषट्कोणंतन्मध्येब्रह्मरन्धकम् ।
तद्बहिर्वृत्तमालिख्यचतुरस्रन्ततोबहिः ॥ ८५ ॥

अर्थ-अपनी बाईं ओर एक षट्कोण मंडल लिखकर तिसमें एक शून्य लगावै, उसके बाहेर एक गोलाकार मंडल खेंचकर तिसके बाहेर एक चौकोन मंडल खेंचे ॥ ८५ ॥

सिन्दूररजसावापिरक्तचन्दनकेनवा ।
निर्म्मायमण्डलंतत्रयजेदाधारदेवताम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-उस मंडलको रज, सिंदूर, या लालचंदनसे लिखकर तिसमें दूसरें देवताकी पूजा करे ॥ ८६ ॥

मायामाधारशक्तिञ्चङेनमोऽन्तांसमुद्धरेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ-"ह्रीं आधारशक्तये नमः" इस मंत्रसे पूजाकरे ॥ ८७ ॥

नमसाक्षालिताधारंस्थापयेन्मण्डलोपरि ।
अस्त्रेणक्षालितंकुम्भंतत्राधारेनिवेशयेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ-फिर "अनंतायनमः" इस मंत्रसे प्रक्षालित आधार उक्त मंडलपर स्थापन करके "फट्" मंत्रसे प्रक्षालित कुंभ आधारपर स्थापित करे ॥ ८८ ॥

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुसमायुतैः ।
मूलंसमुच्चरन्मन्त्रीकारणेनप्रपूरयेत् ॥ ८९ ॥

अर्थ-इसके उपरांत मंत्रका जाननेवाला साधक "क्ष" से आरंभ करके "अ" कारतक वर्णपर बिंदु लगाय मूलमंत्र पढते २ मद्यसे कुंभको पूर्ण करे ॥ ८९ ॥

आधारकुम्भतीर्थेषुवह्न्यर्कशशिमण्डलम् ।
पूर्ववत्पूजयेद्विद्वान्देवीभावपरायणः ॥ १९० ॥

अर्थ-फिर देवीभावसे स्थिरमन हो आधार कुंभ और उसमें रक्खे हुए मद्यके ऊपर पूर्वानुसार वह्निमंडल अर्कमंडल और चंद्र-मंडलकी पूजाकरे ॥ १९० ॥

रक्तचन्दनासिन्दूररक्तमाल्यानुलेपनैः ।
भूषयित्वातुकलशंपञ्चीकरणमाचरेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ-इसके उपरांत लालचंदन, सिंदूर, लालमाला और अनुले-पनसे चंदनको विभूषितकर पंचीकरण करे ॥ १९१ ॥

फटादर्भेणसन्ताड्यहुंबीजेनावगुण्ठयेत् ।

ह्रींदिव्यदृष्टयासंवीक्ष्यनमसाभ्युक्षणंचरेत् ।
मूलेनगन्धंत्रिर्दद्यात्पञ्चीकरणमीरितम् ॥ १९२ ॥

अर्थ–"फट्" मंत्रसे कुशद्वारा कलशकी ताडना करे । 'हीं' मंत्रका उच्चारण कर अवगुण्ठनमुद्रासे कलशको अवगुंठित करे "हीं" मंत्रसे दिव्यदृष्टिद्वारा दर्शन कर "नमः" मंत्रसे जल लेकर कलशपर छिडके । मूलमंत्रसे तीन वार कलशपर चंदन लगावे ॥ १९२ ॥

प्रणम्यकलशंरक्तपुष्पंदत्त्वाविशोधयेत् ॥ १९३ ॥

अर्थ–इसके उपरांत कलशको प्रणाम कर उसपर लालचंदन चढावै और मंत्रसे सुधाको शुद्धकरे ॥ १९३ ॥

एकमेवपरंब्रह्मस्थूलसूक्ष्ममयंध्रुवम् ।
कचोद्भवांब्रह्महत्यांतेनतेनाशयाम्यहम् ॥ १९४ ॥

अर्थ–परमब्रह्म स्थूल और सूक्ष्म है, वह अद्वितीय और अचल है, मैं उनके शुभागमनसे कचसे उत्पन्नहुई ब्रह्महत्याका नाश करता हूं ॥ १९४ ॥

सूर्य्यमण्डलमध्यस्थे[1] ! वरुणालयसम्भवे ! ।
अमाबीजमयेदेवि ! शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ १९५ ॥

अर्थ–हे देवि सुरे ! समुद्रके गर्भमेंसे तुह्मारी उत्पत्ति है, तुम सूर्य-मंडलमें विराजमानहो, तुम अमाबीजस्वरूपिणी हो, तुम शुक्रके शापसे छूटो ॥ १९५ ॥

वेदानांप्रणवोबीजंब्रह्मानन्दमयंयदि ।
तेनसत्येनतेदेवि ! ब्रह्महत्याव्यपोहतु ॥ १९६ ॥

---

१ सूर्य्यमण्डलसम्भूते इति वा पाठः ।

अर्थ–प्रणव देवताका बीजरूप हो ! और ब्रह्मानंदमय हो, हे देवि ! उस सत्यसे तुह्मारी ब्रह्महत्या दूर होवे ॥ १९६ ॥

ह्रींहंसःशुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता
वेदिषदातिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतस ।
द्व्योजाअवजाऋतजाअद्रिजाऋतंबृहत् ॥ १९७ ॥
वारुणेनचबीजेनषड्दीर्घस्वरभाजिना ।
ब्रह्मशापविशब्दान्तेमोचितायैपदंवदेत् ।
सुधादेव्यैनमःपश्चात्सप्तधाब्रह्मशापनुत् ॥ १९८ ॥

अर्थ–इसके उपरांत वरुणबीजमें क्रमानुसार छैः दीर्घस्वर मिलाय पश्चात् " ब्रह्मशापविमोचितायै " पद उच्चारण करे, फिर "सुधादेव्यैनमः" पदका प्रयोग करे ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

अङ्कुशंदीर्घषट्केनयुतंश्रीमाययायुतम् ।
सुधापश्चाद्ब्रह्मशापंमोचयेतिपदन्ततः ।
अमृतंश्रावयेद्द्वन्द्वंद्विठान्तोमनुरीरितः ॥ १९९ ॥

अर्थ–और इस पदमें छैः दर्घिस्वर मिलाय फिर "श्रीं" और मायाबीज मिलावै, तिसके पश्चात् सुधाशब्द प्रयोग करके "ब्रह्मशापंमोचय" शब्दउच्चारण करे(१) ॥ १९९ ॥

एवंशापान्मोचयित्वायजेत्तत्रसमाहितः ।

---

(१) मंत्रोद्धारः यथाः–क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः श्रीं ह्रीं सुधा कृष्णशापं मोचयामृतं स्रावय स्रावयस्वाहा । कृष्णपापमोचनमंत्र दूसरे प्रकारसे यथाः–ओं ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः । कृष्णशापं विमोचयअमृतं स्रावय स्रावय इति दशधा जपेत् । शुक्रशापमोचनमंत्र दुसरे तंत्रमें यथाः–ओं शां शीं शूं शैं शों शौं शं शः शुक्रशापात् विमोचितायै सुधादेव्यैनमः ।

आनन्दभैरवंदेवमानन्दभैरवीन्तथा ॥ २०० ॥

अर्थ—इस प्रकार शापमोचन करके सावधान हृदयसे आनंद भैरवीकी पूजा करे ॥ २०० ॥

सहस्रमलशब्दान्तेवरयूंमिलितंवदेत् ।
आनन्दभैरवंङेऽन्तंवषडन्तोमनुर्म्मतः ॥ २०१ ॥
अस्यास्यंविपरीतञ्चश्रवणेवामलोचना ।
सुधादेव्यैवौषडन्तोमनुरस्याःप्रपूजने ॥ २०२ ॥

अर्थ—"हस क्षमलवरयूं" इसके प्रथमके दोअक्षर अलग करके कर्णस्थलमें वामचक्षु और दीर्घ "ऊ" के स्थानमें दीर्घ "ई" धरे; फिर "सुधादेव्यै वौषट्" इस पदको प्रयोग करै ॥ २०१ ॥२०२॥

सामरस्यंतयोस्तत्रध्यात्वातदमृतप्लुतम्।
द्रव्यंविभाव्यतस्योर्द्ध्वंमूलंद्वादशधाजपेत् ॥ २०३ ॥

अर्थ—उसके उपरांत कलशमें उक्त दोनों देवी देवताओंका सामरस्य ओ ऐक्य ध्यानकरके यह भावना करे कि अमृतमें सुरासंसिक्त होगई है । तिसमें बारह २ मूलमंत्र जपै (१)॥ २०३ ॥

---

(१) आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीका ध्यान दूसरे तंत्रमें यथाः—सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् । अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम् । वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥ कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् । पाशांकुशधरं देवं गदामुसलधारिणम् ॥ खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरंशूलदण्डधृक् । विचित्रं खेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिनम् - लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः । भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ॥ हिमकुन्देंदुधवलां पंचवक्त्रां त्रिलोचनाम् । अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोंद्यताम् । प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवेशसम्मुखीम् । इति ।

मूलेनदेवताबुद्धचादत्वापुष्पाञ्जलिंततः ।
दर्शयेद्धूपदीपौचघण्टावादनपूर्वकम् ॥ २०४ ॥

अर्थ—फिर देवबुद्धिसे मूलमंत्रके द्वारा मद्यके ऊपर तीनवार पुष्पाञ्जलि देवे, फिर घंटा बजाय धूप दिखावै ॥ २०४ ॥

इत्थंतीर्थस्यसंस्कारःसर्वदादेवपूजने ।
व्रतेहोमेविवाहेचतथैवोत्सवकर्मणि ॥ २०५ ॥

अर्थ—देवार्चना, व्रत, होम, विवाह, और उत्सवोंमें भी पूर्वानुसार सुराका संस्कार करे ॥ २०५ ॥

मांसमानीयपुरतास्त्रिकोणमण्डलोपरि ।
फटाभुज्यवायुवह्निबीजाभ्यांमन्त्रयेत्त्रिधा ॥ २०६ ॥

अर्थ—इसके उपरांत मांस लाकर सामने त्रिकोण मंडलके ऊपरके भागमें स्थापित करे " फट्" मंत्रसे अभ्युक्षित करके फिर वायुबीजसे उसको अभिमिश्रित करे ॥ २०६ ॥

कवचेनावगुण्ठ्याथसंरक्षेच्चास्त्रमंत्रतः ।
धेन्वावममृतीकृत्यमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २०७ ॥

अर्थ—फिर कवचमें अवगुंठित करके " फट्" मंत्रसे रक्षाकरे फिर "वं" मंत्रोच्चारण कर धेनुमुद्रासे अमृतीकरण करके फिर इस मंत्रका पाठ करे ॥ २०७ ॥

विष्णोर्वक्षसियादेवीयादेवीशङ्करस्यच ।
मांसंमेपवित्रीकुरुकुरुतद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ २०८ ॥

अर्थ—जो देवीजी विष्णुजीके वक्षस्थलमें विराजमान हैं जो शंकरजीकी छातीमें विराजमान हैं वह मेरे दियेहुए मांसको पवित्र करे और मुझको विष्णुजीके पदपर स्थापित करे ॥ २०८ ॥

इत्थंमीनंसमानीयप्रोक्तमन्त्रेणसंस्कृतम् ।
मंत्रेणानेनमतिमांस्तंमीनमभिमंत्रयेत् ॥ २०९ ॥

अर्थ-बुद्धिमान पुरुष इस प्रकारसे मत्स्य लाय उनको संशोधन-कर इस मंत्रसे मंत्रपूत करे ॥ २०९ ॥

त्र्यम्बकंयजामहेसुगन्धिपुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ २१० ॥

अर्थ-हम शिवजीकी आराधना करतेहैं उनके प्रसादसे यह मत्स्य गंधयुक्त और पुष्टिशाली होवे यह हमको मृत्युके बंधनसे छुटाय मोक्षके मार्गमें प्रेरितहो ॥ २१० ॥

तथैवमुद्रामादायशोधयेदमुनाप्रिये ! ।
तद्विष्णोःपरमंपदंसदापश्यन्तिसूरयः ।
दिवीवचक्षुराततम् ॥
ओंतद्विप्रासोविपण्यवोजागृवांसःसमिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमंपदम् ॥ २११ ॥
अथवासर्वतत्त्वानिमूलेनैवविशोधयेत् ।
मूलेतुश्रद्दधानोयःकिन्तस्यदलशाखया ॥ २१२ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! फिर मुद्रा लाकर " तद्विष्णोः परमं पदं सदा-पश्यंति सूरयः " इसमंत्रसे अथवा केवल मूलमंत्रसे पंचतत्व शोधन करे, जिनकी मूलमंत्रमें श्रद्धा है उनको शाखा और पत्तोंसे क्या प्रयोजन है ॥ २११ ॥ २१२ ॥

केवलंमूलमन्त्रेणयद्द्रव्यंशोधितंभवेत् ।
तदेवदेवताप्रीत्यैसुप्रशस्तंमयोच्यते ॥ २१३ ॥

अर्थ-मैं कहता हूं कि केवल मूलमंत्रसे जो द्रव्य शोधित होता है देवताकी प्रसन्नता के लिये वही श्रेष्ठ है ॥ ११३ ॥

यथाकालस्यसंक्षेपात्साधकानवकाशतः ।
सर्वंमूलेनसंशोध्यमहादेव्यैनिवेदयेत् ॥ २१४ ॥

अर्थ-जब कालके संक्षेपसे साधकको अनवकाश हो तबही मूलमंत्रसे पंचतत्व शोधन करके देवीको निवेदन करे ॥ २१४ ॥

नचात्रप्रत्यवायोस्तिऽनाङ्गवैगुण्यदूषणम् ।
सत्यंसत्यंपुनःसत्यंमितिशङ्करशासनम् ॥ २१५ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे मन्त्रोद्धारकलशस्थाप-
नतत्त्वसंस्कारो नाम पञ्चम उल्लासः ॥ ५ ॥

अर्थ-इस्सेभी कोई प्रत्यवाय या अंगहानि नहीं होगी, मैं यह त्रिसत्य कहता हूं और यही महादेवकी आज्ञा है ॥ २१५ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदा-
द्यासदाशिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां
मंत्रोद्धारकलशस्थापनतत्वसंस्कारो नाम पंचम उल्लासः ॥ ५ ॥

षष्ठ उल्लासः ।

श्रीदेव्युवाच ।

यत्त्वयाकथितंपञ्चतत्त्वंपूजादिकर्म्माणि ।
विशिष्यकथ्यतांनाथ ! यदितेऽस्तिकृपामयि ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने पूछा-हे नाथ ! पूजा इत्यादिके समय जिस प्रकारसे पंचतत्व निवेदन करना चाहिये, वह आपने सब कहा, अब यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा हो तो सबको भलीभांति विशेषतासे कहिये ॥ १ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

गौडीपैष्टीतथामाध्वीत्रिविधाचोत्तमासुरा ।
सैवनानाविधाप्रोक्तातालखर्जूरसम्भवा ।
तथादेशविभेदेननानाद्रव्यविभेदतः ।
बहुधेयंसमाख्याताप्रशस्तादेवतार्चने ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीमहादेवजीने कहा गौडी, पैष्टी और माध्वी यह तीन प्रकारकी उत्तम सुरा है । यह सुरा तालसे उत्पन्न होती है, खजूरसे उत्पन्न होती हैं व और वस्तुओंसे उत्पन्न होनेके कारण अनेक प्रकारकी होती हैं । इस कारण देशभेद और द्रव्यनामभेदसे यह सुरा अनेक प्रकारकी कही गई है । यह सब सुरा देवपूजामें श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

येनकेनसमुत्पन्नायेनकेनाहृतापिवा ।
नात्रजातिविभेदोऽस्तिशोधितासर्वसिद्धिदा ॥ ३ ॥

अर्थ—यह सुरा जिस किसी प्रकारसे उत्पन्न हों, चाहै जिस देशसे चाहै कोई पुरुष लायाहो, शोधित होनेपर सब भांतिकी सिद्धियोंको देती है । सुराके विषयमें जातिका विचार नहीं है॥३॥

मांसन्तुत्रिविधंप्रोक्तंजलभूचरखेचरम् ।
यस्मात्तस्मात्समानीतंयेनतेनाविघातितम् ।
तत्सर्वंदेवताप्रीत्यैभवेदेवनसंशयः ॥ ४ ॥

अर्थ--जलचर (मच्छली इत्यादि) थलचर (हरिणादि) आकाशचर (जंगली कपोतादि) यह तीन प्रकारका मांस है । यह मांस चाहै जिस स्थानसे आयाहो चाहै जो कोई पुरुष लाया हो, तिस्से अवश्य देवता प्रसन्न होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ४ ॥

साधकेच्छाबलवतीदेयेवस्तुनिदैवते ।
यद्यदात्मप्रियंद्रव्यंतत्तदिष्टायकल्पयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-देवताको कोई मांस या किसी वस्तुके देनेमें साधककी इच्छाही बलवती है, जो जो मांस या जो जो वस्तु अपनी प्यारी हो वही इष्ट देवताको देनी उचित है ॥ ५ ॥

बलिदानविधौदेवि ! विहितःपुरुषःपशुः ।
स्त्रीपशुर्नचहन्तव्यस्तत्रशाम्भवशासनात् ॥ ६ ॥

अर्थ-हे देवि ! बलिदानके समय पुरुषपशुही (नर) शास्त्रमें कहा गया है । महादेवकी आज्ञा है कि स्त्री पशु (मादा) का बलिदान नहीं करे ॥ ६ ॥

उत्तमास्त्रिविधामत्स्याःशालपाठीनरोहिताः ॥ ७ ॥

अर्थ-शाल, पाठीन, व रोहित यह तीन प्रकार मत्स्य के उत्तम हैं ॥ ७ ॥

मध्यमाःकण्टकैर्हीनाअधमाबहुकण्टकाः ।
तेऽपिदेव्यैप्रदातव्यायदिसुष्टुविभर्जिताः ॥ ८ ॥

अर्थ-दूसरे मत्स्यभी, जिनमें कांटे नहीं हो-उत्तमोत्तम हैं । शैल आदि कि जिनमें कांटे अधिकाईसे होते हैं-अधम हैं। परंतु बहुतसे कांटेवाला मत्स्यभी भलीभांतिसे भूंजकर देवीको दिया जा सक्ता है ॥ ८ ॥

मुद्रापित्रिविधाप्रोक्ताउत्तमादिविभेदतः ।
चन्द्रबिम्बनिभंशुभ्रंशालितण्डुलसम्भवम् ।
यवगोधूमजंवापिघृतपक्वंमनोरमम् ॥ ९ ॥

अर्थ-उत्तम, मध्यम, अधम यह तीन प्रकारकी मुद्राभी होतीं हैं । जो चंद्रमाके बिम्बकी समान शुभ्रहो, शालिके चावलोंसे बनीं

हो, अथवा जो गेहूंके आटेकी बनी हो और जो घीमें पकी व मनोहर हो ॥ ९ ॥

मुद्रेयमुत्तमामध्याभृष्टधान्यादिसम्भवा ।
भर्जितान्यन्यबीजानिअधमापरिकीर्त्तिता ॥ १० ॥

अर्थ-तैसी मुद्राही उत्तम है । जो भृष्टधान्य अर्थात् खील इत्यादिकी बनीं हो वह मध्यम है। जो औरप्रकारके नाजको भूंजकर बनाई जाय सो अधम कहलाती है ॥ १० ॥

मांसंमीनश्चमुद्राचफलमूलानियानिच ।
सुधादानेदेवतायैसंज्ञैषांशुद्धिरीरिता ॥ ११ ॥

अर्थ-देवीको सुरादान करनेके समय जो मांस, मत्स्य, मुद्रा, फल इत्यादि देनाहो उस सबका ही शुद्धनाम होगा ॥ ११ ॥

विनाशुद्ध्याहेतुदानंपूजनन्तर्पणन्तथा ।
निष्फलंजायतेदेवि ! देवतानप्रसीदति ॥ १२ ॥

अर्थ-विना इन शुद्धियोंके देवीजीको सुरादान करना,पूजाकरना या तर्पणकरना निष्फल होजायगा और तिससे देवताभी प्रसन्न नहीं होगा ॥ १२ ॥

शुद्धिंविनामद्यपानंकेवलंविषभक्षणम् ।
चिररोगीभवेन्मन्त्रीस्वल्पायुर्म्रियतेऽचिरात् ॥ १३ ॥

अर्थ-विनाशुद्धिके सुरापान करना विष खानेकी समान होता है, विशेष करके शुद्धिके विना सुरापान करनेसे सदा रोगी और अल्पायु होकर शीघ्रही कालको कौर होना पडता है ॥ १३ ॥

शेषतत्त्वंमहेशानि ! निर्बीजेप्रबलेकलौ ।
स्वकीयाकेवलाज्ञेयासर्वदोषविवर्जिता ॥ १४ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! निर्वीर्य कलियुगके प्रबल होनेपर शेषतत्त्वके केवल सर्वदोषरहित अपनी स्त्रीसेही सिद्ध होगा ॥ १४ ॥

अथवात्रस्वयम्भ्वादिकुसुमंप्राणवल्लभे ! ।
कथितंतत्प्रतिनिधौकुसीदंपरिकीर्त्तितम् ॥ १५ ॥

अर्थ-हे देवि ! अथवा मैंने जो स्वयंभु पुष्पका वर्णन किया हैं, तिसके बदलेमें लालचंदन देना चाहिये ॥ १५ ॥

अशोधितानितत्त्वानिपत्रपुष्पफलानिच ।
नैवदद्यान्महादेव्यैदत्वावैनारकीभवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ-उक्त पंचतत्व और फलमूल पत्र विना शोधन किये देवीको निवेदन न करे. करनेसे नरकगामी होना पडता है ॥ १६ ॥

श्रीपात्रस्थापनंकुर्य्यात्स्वीययागुणशीलया ।
अभिषिञ्चेत्कारणेनसामान्यार्घ्योदकेनवा ॥ १७ ॥

अर्थ-अपनी गुणशीलापत्नीसे श्रीपात्र स्थापन करावे और इस पत्नीके कारणद्वारा और साधारण अर्घ्यजलके द्वारा अभिषेक करे ॥ १७ ॥

आदौबालांसमुच्चार्य्यत्रिपुरायैततोवदेत् ।
नमःशब्दावसानेचइमांशक्तिमुदीरयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ-(अभिषेकके समय जो मंत्र उच्चारण करना चाहिये उसका उद्धार किया जाता है) पहले "ऐं क्लीं सौः" उच्चारण करके, फिर "त्रिपुरायै नमः" उच्चारण करनेके अनंतर "इमां शक्तिं" पद कहै ॥ १८ ॥

पवित्रीकुरुशब्दान्तेममशक्तिंकुरुद्विठः ॥ १९ ॥

अर्थ-फिर "पवित्रीकुरु" शब्दके अन्तमें "मम शक्तिं कुरु

स्वाहा" यह पद उच्चारण करना चाहिये । सबको मिलायकर यह मंत्रोद्धार हुआ "ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायैनमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम शक्तिं कुरुस्वाहा" ॥ १९ ॥

अदीक्षितायदानारीकर्णेमायांसमुच्चरेत् ।
शक्तयोऽन्याःपूजनीयानार्य्यस्ताड़नकर्मणि ॥ २० ॥

अर्थ-यदि नारी दीक्षित न हुई हो, उसके कानमें मायाबीज उच्चारण करे । उस स्थानमें मैथुनतत्वको पूर्ण करनेके लिये और जो परकीया शक्ति रहै उनकी पूजाकी जाय ॥ २० ॥

अथात्मयन्त्रयोर्मध्येमायागर्भंत्रिकोणकम् ।
वृत्तंषट्कोणमालिख्यचतुरस्रंलिखेद्बहिः ॥ २१ ॥

अर्थ-फिर अपने और पहले कहे हुए यंत्रके बीचमें एक त्रिकोण मंडल खेंचकर उसके बीचमें मायाबीज लिखे, तदनंतर इस त्रिकोण मंडलके बाहर एक षट्कोण मंडल खेंचे, तिसके बाहर एक और चतुष्कोण मंडल बनावे ॥ २१ ॥

अस्त्रकोणेपूर्णशैलमुड्डीयानन्तथैवच ।
जालन्धरंकामरूपंसचतुर्थीनमोऽन्तकम् ।
निजनामादिबीजाढ्यंपूजयेत्साधकोत्तमः ॥ २२ ॥

अर्थ-फिर साधकश्रेष्ठ इस चतुष्कोण मंडलके चारों कोनोंमें "पूं पूर्णशैलाय पीठाय नमः ऊं उड्डीयानाय पीठाय नमः जां जालंधराय पीठाय नमः कां कामरूपाय पीठाय नमः" इन चार मंत्रोंका पाठ करके "पूर्णशैल उड्डीयान जालंधर कामरूप" इन चार पीठोंकी पूजा करे ॥ २२ ॥

षट्कोणेषुषड़ङ्गानिमूलेनैवत्रिकोणकम् ।

---

१ नाद्यास्ताडनकर्मणिइति, नार्य्यास्ताड़नकर्म्मणिइति पाठान्तरम् ।

मायामाधारशक्तिश्चनमोऽन्तेनप्रपूजयेत् ॥ २३ ॥

अर्थ–फिर षट्कोण मंडलके छैः कोणमें "हां नमः हीं नमः हूंनमः हैं नमः हौं नमः हः नमः" इनछैः मंत्रोंसे षट्कोणके अधिदेवता की पूजा करे फिर त्रिकोणमंडलमें "ह्रीं आधारशक्त्येनमः" यह मंत्र पढकर आधारदेवताकी पूजा करे ॥ २३ ॥

नमसाक्षालिताधारंसंस्थाप्यतत्रपूर्ववत् ।
वृत्तोपरियजेद्वह्नेःकलाःस्वस्वादिमाक्षरैः॥ २४ ॥

अर्थ–अनंतर "नमः" पढकर पहलेकी समान उस मंडलके ऊपर धोयाहुआ आधार स्थापितकरके उसमें अपना पहला अक्षर उच्चारणकर अग्निकी दशकलाका पूजन करे ॥ २४ ॥

धूम्रार्च्चिर्ज्वलिनीसूक्ष्माज्वालिनीविस्फुलिंगिनी ।
सुश्रीःसुरूपाकपिलाहव्यकव्यवहातथा ॥२५॥

अर्थ–दश कलाओंके नाम–धूम्रा, अर्चिः, ज्वलिनी, सूक्ष्मा, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा और हव्यकव्यवहा ॥ २५ ॥

सचतुर्थीनमोऽन्तेनपूज्यावह्नेःकलादश ॥ २६ ॥

अर्थ–इन शब्दोंमें चतुर्थीविभक्तिका प्रयोग करके अन्तमें 'नमः' शब्द लगाय अग्निकी ऊपर कही दश कलाका पूजन करे(१)॥२६॥

मंवह्निमण्डलायेतिदशान्तेचकलात्मने ॥
अवसानेनमोदत्वापूजयेद्वाह्निमण्डलम् ॥ २७ ॥

अर्थ–फिर "मं वह्निमंडलाय दशकलात्मने नमः" यह मंत्र पढकर आधारमें अग्निमंडलकी पूजा करे ॥ २७ ॥

---

(१) प्रयोग यथा "धूं धूम्रायैनमः अं अर्च्चिषेनमः ज्वं ज्वलिन्यैनमः, सूं सूक्ष्मायैनमः ज्वां ज्वालिन्यै नमः विं विस्फुलिङ्गिन्यैनमः सुं सुश्रियैनमः सुं सुरूपायैनमः कंकपिलायैनमः हं हव्यकव्यवहायैनमः" ॥

ततोऽर्घ्यपात्रमानीयफट्कारेणविशोधितम् ।
आधारेस्थापयित्वातुकलाःसूर्य्यस्यद्वादश ।
कभादिवर्णबीजेनठडान्तेनप्रपूजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-इसके उपरांत फट्कारद्वारा शोधित किया हुआ पात्र लाकर आधारमें स्थापन करके "कभ" आदि "ठड" तक वर्ण बीज पहले उच्चारण करके सूर्यकी बारह कलाओंको पूजे ॥ २८ ॥

तपिनीतापिनीधूम्रामरीचिर्ज्वालिनीरुचिः ।
सुधूम्राभोगदाविश्वाबोधिनीधारिणीक्षमा ॥ २९ ॥

अर्थ-बारह कलाओंके नाम-तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुधूम्रा, भोगप्रदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा है (१) ॥ २९ ॥

अंसूर्य्यमण्डलायेतिद्वादशान्तेकलात्मने ॥
नमोऽन्तेनार्घ्यपात्रेतुपूजयेत्सूर्य्यमण्डलम् ॥ ३० ॥

अर्थ-फिर अर्घ्यपात्रमें "अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः" यह मंत्र पढ़कर सूर्यमंडलकी पूजा करे ॥ ३० ॥

विलोममातृकांतद्वन्मूलमन्त्रंसमुच्चरन् ।
त्रिभागंपूरयेन्मन्त्रीकलशस्थेनहेतुना ॥ ३१ ॥

अर्थ--इसके उपरांत मंत्रका जाननेवाला पुरुष क्षकारसे अकारतक विलोममातृकावर्ण और तिसके अंतमें मूलमंत्र उच्चारण करते २ कलशमें रक्खी हुई सुरासे अर्घ्यपात्रके तीन भाग पूर्णकरे (२) ॥ ३१ ॥

---

(१) प्रयोग यथाः-कंभंतपिन्यैनमः खंबंतापिन्यैनमः, गंफं धूम्रायैनमः, घंपं मरीच्यैनमः, ङंनं ज्वालिन्यैनमः, चंथं रुचयेनमः, छंदं सुधूम्रायैनमः, जंथं भोगदायै नमः, झंतं विश्वायैनमः, ञंणं बोधिन्यैनमः, टंढं धारिण्यैनमः, षंडं क्षमायैनमः ।

(२) मंत्र यथा,-क्षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, ळं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा। हं ह्रीं श्रींक्रीं परमेश्वरि स्वाहा । इस प्रकार सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ॠं ॠं ॠं ऊं उं ईं इं आं अं इनमेसे प्रत्येक वर्णके अन्तमें ह्रीं श्रींक्रीं परमेश्वरि स्वाहा । यह बजी उच्चारण करना चाहिये ।

विशेषार्घ्यजलैःशेषंपूरयित्वासमाहितः ।
षोड़शस्वरबीजेननाममन्त्रेणपूजयेत् ।
सचतुर्थीनमोऽन्तेनकलाःसोमस्यषोडश ॥ ३२ ॥

अर्थ–फिर चित्तको सावधानकर अर्घ्यविशेषके जलसे अर्घ्य-पात्रके पिछले अंशको पूर्ण करके, सोलह स्वर बीजोंके अन्तमें चतुर्थ्यन्त नाम उच्चारण करके, अन्ते"नमः" शब्द लगाय चंद्रमाकी सोलह कलाओंको पूजे ॥ ३२ ॥

अमृतामानदापूजातुष्टिःपुष्टीरतिर्धृतिः ।
शशिनीचन्द्रिकाकान्तिर्ज्योत्स्नाश्रीःप्रीतिरङ्गदा ।
पूर्णापूर्णामृताकामदायिन्यःशशिनःकलाः ॥ ३३ ॥

अर्थ–सोलह कलाओंके नाम–अमृता, मानदा, पूजा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता, यह सोलह कला कामदायिनीहैं (१) ॥ ३३ ॥

ऊंसोममण्डलायेतिषोडशान्तेकलात्मने ।
नमोऽन्तेनयजेन्मन्त्रीपूर्ववत्सोममण्डलम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–फिर इस अर्घ्यपात्रके जलसे "ऊं सोममंडलाय षोड़-शकलात्मने नमः" यह मंत्र पढ़कर सोममंडलकी पूजा करे ॥ ३४ ॥

दूर्वाक्षतंरक्तपुष्पंववर्रामपराजिताम् ।
माययाप्रक्षिपेत्पात्रेतीर्थमावाहयेदपि ॥ ३५ ॥

---

(१) प्रयोगः यथाः–अं अमृतायैनमः आं मानदायैनमः इं पूजायैनमः, ईं तुष्ट्यै नमः उं पुष्ट्येनमः ऊं रतयेनमः ऋं धृतयेनमः ॠं शशिन्यैनमः ऌं चन्द्रिकायैनमः ॡं कांतयेनमः, एं ज्योत्स्नायैनमः, ऐं श्रियैनमः, ओं प्रीतयेनमः औं अंगदायैनमः अं पूर्णायैनमः, अः पूर्णामृतायैनमः ।

अर्थ-तिसके उपरांत दूब, अक्षत, लालफूल, दर्वरापत्र (श्यामाघास) अपराजिताके फूल, इन सबको ग्रहण करके "ह्रीं" मंत्रसे पात्रमें डालकर तीर्थ आवाहन करे ॥ ३५ ॥

कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रमुद्रयारक्षणञ्चरेत् ।
धेन्वाचैवामृतीकृत्यच्छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥ ३६ ॥

अर्थ-फिर "हूं" बीज पढ़कर अवगुंण्ठन मुद्राके द्वारा अर्घ्यपात्रकी सुरा अवगुण्ठित करके अस्त्रमुद्रासे रक्षाकरे । फिर धेनुमुद्राद्वारा अमृतीकृत करके उसको मत्स्यमुद्रासे आच्छादन करे ॥ ३६ ॥

मूलंसञ्जप्यदशधादेवतावाहनञ्चरेत् ।
आवाह्यपुष्पाञ्जलिनापूजयेदिष्टदेवताम् ।
अखण्डाद्यैःपञ्चमन्त्रैर्मन्त्रयेत्तदनन्तरम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-तदनंतर अर्घ्यपात्रमें रक्खीहुई सुराके ऊपर दशवार मूलमंत्र जपै, तिसमें इष्टदेवताका आवाहन करके पुष्पांजलि देवे ॥ फिर अखंडादि पांच मंत्रोंसे सुराको अभिमंत्रित करे ॥ ३७ ॥

अखण्डैकरसानन्दाकरेपरसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्रनिधेहिकुलरूपिणि ! ॥ ३८ ॥

अर्थ-(पांच मंत्रोंके यह अर्थ हैं) हे कुलरूपिणि ! तुम इस परमसुधामयी वस्तुमें केवल अखंड सान्द्ररस और सान्द्रानंद देनेवाली हो । तुम स्वाधीनस्फूर्ति दो ॥ ३८ ॥

अनङ्गस्थामृताकारे ! शुद्धज्ञानकलेवरे ! ।
अमृतत्वंनिधेह्यस्मिन्वस्तुनिक्लिन्नरूपिणि ॥ ३९ ॥

अर्थ-तुम अनंगकी अमृतस्वरूपहो, शुद्ध ज्ञानही तुम्हारा शरीर है । तुम क्लिन्नरूप इस वस्तुमें अमृत फल प्राप्त करो ॥ ३९ ॥

तद्रूपेणैकरस्यञ्चकृत्वार्घ्यंतत्स्वरूपिणि ! ।
भूत्वाकुलामृताकारमपिंविस्फुरणंकुरु ॥ ४० ॥

अर्थ-हे सुरास्वरूपिणि ! तुम प्रधान मधुरताईके रसरूपसे इस मद्य एकरस्य अर्थात् प्रधान माधुर्ययुक्त करके कलामृतस्वरूपहो, हमें स्फूर्ति देवो ॥ ४० ॥

ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितंमहापात्रंपीयूषरसमावह ॥ ४१ ॥

अर्थ-सुरासे पूरित हुए इस महापात्रको ब्रह्मांडके रससे युक्त और अनंत रसका आकार करो ॥ ४१ ॥

अहन्तापात्रभरितमिदन्तापरमामृतम् ।
पराहन्तामयेवह्नौहोमस्वीकारलक्षणम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-मैं आत्मभावरूपपात्रमें पूरित हुए इदम्भावरूप परम अमृतका परात्मरूप अग्निमें होम करूंगा ॥ ४२ ॥

इत्यामंत्र्यततस्तस्मिञ्छिवयोःसामरस्यकम् ।
विभाव्यपूजयेद्धूपदीपावपिचदर्शयेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-इन पांच मंत्रोंसे सुराको पढकर तिसमें सदाशिव और भगवतीकी समरसताका ध्यान करनेके उपरांत पूजा करके धूप दीप दिखावे ॥ ४३ ॥

इतिश्रीपात्रसंस्कारःकथितःकुलपूजने ।
अकृत्वापापभाङ्मन्त्रीपूजाचाविफलाभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ-कुलपूजाके विषयमें श्रीपात्रका संस्कार करना तुमसे कहा, मंत्र जाननेवाला पुरुष यदि इस प्रकारसे संस्कार न करे तो पापका भागी होगा और उसकी पूजा विफल होगी ॥ ४४ ॥

घटश्रीपात्रयोर्मध्येपात्राणिस्थापयेद्बुधः ।
गुरुपात्रंभोगपात्रंशक्तिपात्रंमतःपरम् ॥ ४५ ॥

अर्थ-घट और श्रीपात्रके बीचमें गुरुपात्र, भोगपात्र, और शक्तिपात्र, यह तीन पात्र ॥ ४५ ॥

योगिनीवीरपात्रेचबलिपात्रंततःपरम् ।
पाद्याचमनयोःपात्रंश्रीपात्रेणनवक्रमात् ।
सामान्यार्घ्यस्यविधिनापात्राणांस्थापनञ्चरेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-और योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, आचमनपात्र पाद्यपात्र, श्रीपात्रके सहित यह नौ पात्र, साधारण अर्घ्य स्थापन करनेकी विधिके अनुसार स्थापन करे ॥ ४६ ॥

कलशस्थामृतेनैवत्रिभागंपरिपूर्य्यच ।
माषप्रमाणंपात्रेषुशुद्धिखण्डंनियोजयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-फिर इन सब पात्रोंके तीन अंश कलशमें रक्खी हुई सुधासे पूरित करके इन सब पात्रोंमें मासे २ भर मांसादि डाले ॥ ४७ ॥

वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्याममृतंपात्रसंस्थितम् ।
गृहीत्वाशुद्धिखण्डेनदक्षयातत्त्वमुद्रया ।
सर्वत्रतर्पणंकुर्य्याद्विधिरेषप्रकीर्त्तितः ॥ ४८ ॥

अर्थ-अनंतर बांए हाथके अंगूठे और अनामिकाके द्वारा पात्रमें रक्खा हुआ अमृत और मांसादि ग्रहण करके दाहिने हाथसे तत्व-मुद्राके द्वारा सब पात्रोंमें तर्पण करे तर्पणकी विधि आगे कही जातीहै ॥ ४८ ॥

श्रीपात्रात्परमंबिन्दुंगृहीत्वाशुद्धिसंयुतम् ।
आनन्दभैरवंदेवंभैरवीञ्चप्रतर्पयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ–पहले श्रीपात्रसे मांसादिसहित एक बिन्दु सुधा ले " हस-क्षमलवरयूं आनंदभैरवायवषट् आनंदभैरवं तर्पयामि नमः " इस मंत्रसे आनन्दभैरवका तर्पण करे और " सहक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वौषट् आनन्दभैरवीं तर्पयामि स्वाहा " इस मंत्रसे आनन्दभैरवीका तर्पण करे ॥ ४९ ॥

गुरुपात्रामृतेनैवतर्पयेद्गुरुसन्ततिम् ।
सहस्रारेनिजगुरुंसपत्नीकंप्रतर्प्यच ।
वाग्भवाद्यंस्वस्वनाम्नातद्वद्गुरुचतुष्टयम् ॥ ५० ॥

अर्थ–फिर गुरुपात्रमें रक्खेहुए अमृतको ग्रहण करके गुरु परम्पराका तर्पण करे । पहले ब्रह्मरंध्रमें स्थित सहस्रदलकमलमें स्त्रीके साथ अपने गुरूका तर्पण करके, फिर परमगुरु परसे परे गुरु और परमेष्ठी गुरूका तर्पण करे (१) इन चार गुरुओंका तर्पण करनेके समय पहले " ऐं " बीज और पीछे चारों गुरुओंका नाम लेवै ॥ ५० ॥

ततःस्वहृदयाम्भोजेभोगपात्रामृतेनच ।
आद्यांकालीं तर्पयामिनिजबीजपुरःसरम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–इसके उपरांत अपने हृदयकमलमें भोगपात्रके अमृतसे अपना बीज उच्चारण करके " आद्यां कालीं तर्पयामि " इस मंत्रको पढै ॥ ५१ ॥

स्वाहान्तेनत्रिधामन्त्रीतर्पयेदिष्टदेवताम् ।

---

(१) गुरुतर्पणके मंत्र–" ऐं सपत्नीकममुकानंदनाथं श्रीगुरुं तर्पयामि नमः । ऐं सपत्नीकममुकानंदनाथं परमगुरुं तर्पयामि नमः । ऐंसपत्नीकममुकानंदनाथं परात्परगुरुं तर्पयामि नमः । ऐं सपत्नीकममुकानंदनाथं परमेष्ठिगुरुं तर्पयामि नमः ॥

शक्तिपात्रामृतैस्तद्वदङ्गावरणतर्पणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ–अन्तमें "स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण करके मंत्रजाननेवाला पुरुष तीनवार इष्टदेवताका तर्पण करे । फिर इस शक्तिपात्रके अमृतसे अंगदेवता और आवरणदेवताका तर्पण करे (१) ॥ ५२॥

योगिनीपात्रसंस्थेनसायुधांसपरिकराम् ।
सन्तर्प्यकालिकामाद्यांबटुकेभ्योबलिंहरेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ–अनंतर योगिनीपात्रमें रक्खे हुए अमृतसे शस्त्रोंसे शोभायमान, परिकर बांधे भगवती आदिकालिकाका तर्पणकरके बटुकोंको बलि देना चाहिये (२) ॥ ५३ ॥

स्ववामभागेसामान्यंमण्डलंरचयेत्सुधीः ।
सन्पूज्यस्थापयेत्तत्रसामिषान्नंसुधान्वितम् ॥ ५४ ॥

अर्थ–ज्ञानी पुरुष अपने वामभागमें एक साधारण चौकोन मंडल खेंचकर, उसमें मद्यमांसादिसहित अन्न स्थापन करे ॥ ५४॥

वाङ्मायाकमलावञ्चबटुकायनमःपदम् ।
सम्पूज्यपूर्वभागेचबटुकस्यबलिंहरेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ–पहले "वाङ्माया कमला" और "वं" उच्चारण करके "बटुकायनयः" यह पद उच्चारणकरे । और मंडलके पूर्वभागमें इस मंत्रसे बटुककी पूजाकरे (३) ॥ ५५ ॥

---

(१) आदिकालिकातर्पणमंत्र यथाः– ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । आद्यां कालीं तर्पयामि स्वाहा । अंगदेवताका तर्पणमंत्र यथाः–अंगदेवतास्तर्पयामि स्वाहा । आवरणदेवताका तर्पणमंत्र यथाः--आवरणदेवतास्तर्पयामि स्वाहा ।

(२) ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । सायुधां सपरिकरामाद्यां कालीं तर्पयामि स्वाहा । इस मंत्रको पढकर कालीका तर्पण करे ॥

(३) मंत्रोद्धार यथाः– " एष सुधामिषान्वितबलिः ऐं ह्रीं श्रीं वं बटुकाय नमः "

ततस्तुयांयोगिनीभ्यःस्वाहायाम्यांहरेद्बलिम् ॥ ५६ ॥

अर्थ-फिर (एष सुधामिषान्वितान्नबलिः यां योगिनीभ्यः स्वाहा)इस मंत्रसे मंडलकी दांई ओर योगिनीयोंको बलि देवै॥५६॥

षड्दीर्घयुक्तंसंवर्त्तंक्षेत्रपालायहृन्मनुः ।
अनेनक्षेत्रपालायबलिंदद्यात्तुपाश्चिमे ॥ ५७ ॥

अर्थ-फिर छैः दीर्घस्वरयुक्त संवर्त अर्थात् "क्ष" उच्चारण करकें (क्षेत्रपालायनमः) यह शब्द कहकर जो मंत्र उद्धृत होगा उस मंत्रसे मंडलके पश्चिम ओर क्षेत्रपालको बलिदेवै (१) ॥५७॥

खान्तवीजंसमुद्धृत्यषड्दीर्घस्वरसंयुतम् ।
ङेऽन्तंगणपतिंचोक्त्वावह्निजायान्ततोवदेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ-अनंतर "ख" वर्णका अन्त्यबीज उद्धार करके तिसमें छैः दीर्घस्वर मिलाय चतुर्थीका एकवचनान्त गणपतिशब्द पढ़कर तिसके अन्तमें वह्निजाया अर्थात् "स्वाहा" पद उच्चारण करके (२) ॥ ५८ ॥

उत्तरस्यांगणेशायबलिमेतेनकल्पयेत् ।
मध्येतथा सर्वभूतबलिंदद्याद्यथाविधि ॥ ५९ ॥

अर्थ-इस मंत्रसे मंडलके उत्तरओर गणेशजीकेअर्थ बलि देना चाहिये । और मंडलके मध्यमें यथाविधानसे सर्व भूतोंको बलि देवे ॥ ५९ ॥

---

(१) मंत्रोद्धार यथाः-- " एष सुधामिषान्वितान्नबलिः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपालायनमः" ।

(२) मंत्रोद्धार यथाः--" एष सुधामिषान्वितान्नबलिः गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये स्वाहा" ।

ह्रींश्रींसर्वपदञ्चोक्त्वाविघ्नकृद्भ्यस्ततोवदेत् ।
सर्वभूतेभ्यइत्युक्त्वाहूंफट्स्वाहामनुर्मतः॥ ६० ॥

अर्थ– (सर्वभूतोंको बलि देनेका मंत्र कहा जाता है) पहले " ह्रीं श्रीं सर्व " पद उच्चारण करके फिर " विघ्नकृद्भ्यः " शब्द पाठ करना उचितहै । अनंतर " सर्वभूतेभ्यः " उच्चारण करके " हूं फट् स्वाहा " ऐसा उच्चारण करनेसे मंत्रोद्धार होजायगा (१)॥ ६० ॥

ततःशिवायैविधिवद्बलिमेकंप्रकल्पयेत् ।
गृह्णदेवि ! महाभागे ! शिवे ! कालाग्निरूपिणि ! ॥६१॥

अर्थ–अनंतर (फेतकारिका) शिवाको विधिविधानसे एक बलि देवे । यह शिवाबलि देनेके समय इस मंत्रका पाठ करे । हे देवि ! हे महाभागे ! हे कालाग्निरूपिणि ! यह बलि ग्रहण करो ॥ ६१ ॥

शुभाशुभंफलंव्यक्तंब्रूहिगृह्णबलिंतव ।
मूलमेषबलिःपश्चाच्छिवायैनमइत्यपि ।
चक्रानुष्ठानमेतत्तुतवाग्रेकथितंशिवे ! ॥ ६२ ॥

अर्थ--हमारे होनहार शुभ व अशुभ फलको व्यक्त रूपसे कहो । यह मूलमंत्र पढकर पीछे " एष बलिः शिवायैनमः " यह मंत्र कहकर शिवाबली देवै । हे शिवे ! यह चक्रका अनुष्ठान मैंने तुमसे कहा (२)॥ ६२ ॥

---

(१) मंत्रोद्धार यथाः–"एष सुधामिषान्वितान्नबलिः ह्रीं श्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हूं फट् स्वाहा" ॥

(२) शिवाबलि देनेका मंत्र यथाः–"गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभं फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ॥ ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष बलिः शिवायै नमः ॥"

चन्दनागुरुकस्तूरीवासितंसुमनोहरम् ।
पुष्पंगृहीत्वापाणिभ्यांकरकच्छपमुद्रया ॥ ६३ ॥

अर्थ-इसके उपरांत चंदन, अगर कस्तूरीसे सुगंधित मनोहर पुष्प दोनोंहाथोंकी कच्छपमुद्रामें ग्रहण करके ॥ ६३ ॥

नीत्वास्वहृदयाम्भोजेध्यायेदाद्यांपरात्पराम् ॥ ६४ ॥

अर्थ--उसे अपने हृदयकमलमें स्थापनकरे ¦ फिर परात्परा आदि-कालीका ध्यानकरना चाहिये ॥ ६४ ॥

सहस्रारेमहापद्मेसुषुम्नाब्रह्मवर्त्मना ।
नीत्वासानन्दितांकृत्वाबृहन्निःश्वासवर्त्मना ।
दीपाद्दीपान्तरामिवतत्रपुष्पेनियोज्यच ॥ ६५ ॥

अर्थ-फिर सुषुम्नानाडीरूप ब्रह्ममार्गद्वारा हृदयकमलमें स्थित भगवतीको सहस्रारनामक सहस्रदलमहापद्ममें लेजाकर निर्मल सुधासे उनको सन्तर्पित और आनंदमयी करके नासिकाके पुटमें स्थित श्वासरूप मार्गसे एक दीपकसे जलेहुए दूसरे दीपककी समान भगवतीजीके हाथमें रक्खेहुये उन पुष्पोंमें संस्थापन करके ॥ ६५ ॥

यन्त्रेनिधापयेन्मन्त्रीदृढभक्तिसमन्वितः ।
कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेदिष्टदेवताम् ॥ ६६ ॥

अर्थ--दृढ भक्तिके साथ यंत्रमें स्थापन करे । मंत्र जाननेवाला पुरुष फिर हाथ जोडकर देवतासे प्रार्थना करे कि ॥ ६६ ॥

देवेशिँ ! भक्तिसुलभे ! परिवारसमन्विते ! ।
यावत्त्वांपूजयिष्यामितावत्त्वंसुस्थिराभव ॥ ६७ ॥

अर्थ-हे देवदेवि ! हे भक्तिसुलभे ! मैं जबतक तुम्हारी पूजा करूं तबतक तुम परिवारके सहित स्थित होकर रहो ॥ ६७ ॥

क्रीमाद्ये ! कालिके ! देवि ! परिवारादिभिः सह ।
इहागच्छद्विधाप्रोक्ताइहतिष्ठद्विधापुनः ॥ ६८ ॥

अर्थ–पहले " क्रीं " बीज उच्चारण करके "आद्ये कालिके देवि ! परिवारादिभिःसह इहागच्छ इहागच्छ " यह उच्चारण करके "इह तिष्ठ इह तिष्ठ " पाठकरे ॥ ६८ ॥

इहशब्दात्सन्निधेहिइहसान्निपदात्ततः ।
रुध्यस्वपदमाभाष्यममपूजांगृहाणच ॥ ६९ ॥

अर्थ–फिर " इह सन्निधेहि " यह पढ़कर " इह सन्निरुध्यस्व यह पद पाठकर "मम पूजां गृहाण " यह पद पाठकरना चाहिये (१) ॥ ६९ ॥

इत्थमावाहनंकृत्वादेव्याःप्राणान्प्रतिष्ठयेत् ॥ ७० ॥
अर्थ--इस प्रकारसे देवीका आवाहन कर प्राणप्रतिष्ठा करे ॥७०॥

आंह्रींक्रींश्रींवह्निजायाप्रतिष्ठामंत्रईरितः ।
अमुष्यादेवतायाश्चप्राणाइहततःपरम् ।
प्राणाइतिततःपञ्चबीजानितदनन्तरम् ॥ ७१ ॥

अर्थ–प्राणप्रतिष्ठाका मंत्र कहा जाता है । " श्रीं ह्रीं क्रीं श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः " यह उच्चारण करके पछि ऊपर कहेहुए पांच बीज उच्चारण करे ॥ ७१ ॥

अमुष्याजीवइहचस्थितइत्युच्चरेत्पुनः ।
पञ्चबीजान्यमुष्याश्चसर्वेन्द्रियाणिकीर्त्तयेत् ॥ ७२ ॥

---

(१) "क्रीं आद्ये कालिके देवि परिवारादिभिःसह इहागच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व मम पूजां गृहाण " इस मंत्रसे भगवतीका आवाहन करे ॥

अर्थ-इसके उपरांत " आद्याकालीदेवतायाः जीव इहस्थितः" यह उच्चारण करके पांच बीजोंका उच्चारण करे " आद्याकाली-देवतायाः सर्वेन्द्रियाणि" यह शब्द उच्चारण करे ॥ ७२ ॥

पुनस्तत्पञ्चबीजानिअमुष्यावचनन्ततः ।
वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्पदतोवदेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-फिर पंचबीज उच्चारणपूर्वक " आद्याकालीदेवताया वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्" यह पाठ करे ॥ ७३ ॥

प्राणाइहागत्यसुखंचिरन्तिष्ठन्तुठद्वयम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-फिर "प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठंतु स्वाहा" पाठ करे (१) ॥ ७४ ॥

इतित्रिधायन्त्रमध्येलेलिहानाख्यमुद्रया ।
संस्थाप्यविधिवत्प्राणान्कृताञ्जलिपुटोवदेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ-यंत्रमें यह प्राणप्रतिष्ठाका मंत्र तीनवार पढ़कर लेलिहान मुद्रासे (जीभ बाहर निकाल) उसमें देवीका प्राण प्रतिष्ठित कर हाथ जोडके कहै ॥ ७५ ॥

आद्ये ! कालि ! स्वागतन्तेसुस्वागतमिदन्तव ।
आसनञ्चेदमत्रत्वयास्यतांपरमेश्वरि ! ॥ ७६ ॥

अर्थ-हे आद्ये काली ! तुम्हारा स्वागत, यहांपर यह आसन है, परमेश्वरि ! तुम विराजमान होवो ॥ ७६ ॥

---

(१) प्राणप्रतिष्ठाका मंत्र यथाः "आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः जीव इह स्थितः आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि आं ह्रीं क्रों श्रीं स्वाहा आद्याकालीदेवतायाः वाङ्मनोनयनघ्राणश्रोत्रत्वक्प्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठंतु स्वाहा" तीनवार यह मंत्र पढकर यंत्रमें प्राणप्रतिष्ठा करे ।

ततोविशेषार्घ्यजलैस्त्रिधामूलंसमुच्चरन् ।
प्रोक्षयेद्देवशुद्ध्यर्थंषडङ्गैःसकलीकृतिः ।
देवताऽङ्गेषडङ्गानांन्यासःस्यात्सकलीकृतिः ।
ततःसम्पूजयेद्देवींषोड़शैरुपचारकैः ॥ ७७ ॥

अर्थ-फिर देवताशुद्धिके लिये मूलमंत्र पढ़ते २ अर्घ्यविशेषके जलसे तीनवार देवीको स्नान करावे, फिर देवीके अंगमें सकलीकरण करे देवताके अंगमें षडङ्गन्यास करनेका नाम सकलीकरण है । अनंतर सोलह उपचारसे भगवतीकी पूजा करे (१)॥ ७७ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयञ्चस्नानंवसनभूषणे ।
गन्धपुष्पेधूपदीपौनैवेद्याचमनेतथा ॥ ७८ ॥

अर्थ-(षोडश उपचार कहे जाते हैं) पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य पुनराचमनीय ॥ ७८ ॥

अमृतञ्चैवताम्बूलंतर्पणञ्चनतिक्रिया ।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांश्चषोडश ॥ ७९ ॥

अर्थ-अमृत, पान, तर्पण, नमस्कार. देवीकी पूजा करनेके समय यह षोडशोपचार चाहिये ॥ ७९ ॥

आद्यावीजमिदंपाद्यंदेवतायैनमःपदम् ।
पाद्यञ्चरणयोर्दद्याच्छिरस्यर्घ्यंनिवेदयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-पहले "आद्या" बीज उच्चारण करके फिर "इदं पाद्यमाद्याकालीदेवतायैनमः" यह मंत्र पढकर देवीके दोनों चरणोंमें पाद्यप्रदान करे फिर ऐसे स्वाहान्त मंत्रसे मस्तकपर अर्घ्य निवेदन करे ॥ ८० ॥

---

(१) षडङ्गन्यासके मंत्र । " ह्रां हृदयाय नमः ह्रीं शिरसे स्वाहा, हूं शिखायै वषट्, हैं कवचायहुं, ह्रौंनेत्रत्रयाय वौषट्, हः करतलपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् ॥

स्वाहापदेनमतिमान्स्वधेत्याचमनीयकम् ।
मुखेनियोजयेन्मन्त्रीमधुपर्कंमुखाम्बजे ।
वंस्वधेतिसमुच्चार्य्यपुनराचमनीयकम् ॥ ८१ ॥

अर्थ-फिर ऐसे स्वधान्त मंत्रसे मुखमें आचमनीय देवै। अनंतर उक्त मंत्र से देवीके मुखमें मधुपर्क दे, फिर इस मंत्रके अन्तमें "वं स्वधा" उच्चारण करके देवीके मुखमें पुनराचमनीय देवै ॥८१॥

स्नानीयंसर्वगात्रेषुवसनंभूषणानिच ।
निवेदयामिमनुनादद्यादेतानिदेशिकः ॥ ८२ ॥

अर्थ-अनन्तर साधक "निवेदयामि" मंत्रके द्वारा देवीके सर्व-शरीरमें स्नान करनेके योग्य वसन भूषण पहिरावे ॥ ८२ ॥

मध्यमानामिकाभ्याञ्चगन्धन्दद्याद्धृदम्बुजे ।
नमोऽन्तेनचमन्त्रेणवौषड़न्तेनपुष्पकम् ॥ ८३ ॥

अर्थ-फिर मंत्रके अंतमें "नमः" पद मिलाय मध्यमा और अनामिकासे देवीके हृदयकमलमें गंध देवै । फिर मंत्रके अन्तमें "वौषट्" पद उच्चारण करके पुष्प चढावै ॥ ८३ ॥

धूपदीपौचपुरतःसंस्थाप्यप्रोक्षणादिभिः ।
निवेदयामिमन्त्रेणउत्सृज्यतदनन्तरम् ॥ ८४ ॥

अर्थ-तिसके उपरांत सन्मुख धूप दीप जलाय सामने स्थापित कर प्रोक्षणादिसे शुद्ध कर मंत्रके अन्तमें "निवेदयामि" पद उच्चारण कर उत्सर्ग करे ॥ ८४ ॥

जयध्वनिमन्त्रमातःस्वाहेतिमन्त्रपूर्वकम् ।
सम्पूज्यघण्टांवामेनवादयन्दक्षिणेनतु ॥ ८५ ॥

अर्थ–फिर "जय ध्वनिमंत्रमातःस्वाहा" यह मंत्र पढ़ घंटेकी पूजा करे उसको बांये हाथमें ग्रहण कर बजाते २ दाहिने हाथसे ॥८५॥

धूपंगृहीत्वामतिमान्नासिकाधोनियोजयेत् ।
दीपन्तुदृष्टिपर्य्यन्तंदशधाभ्रामयेत्पुरः ॥ ८६ ॥
ततःपात्रञ्चशुद्धिञ्चसमादायकरद्वये ।
मूलंसमुच्चरन्मन्त्रीयन्त्रमध्येनिवेदयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ–धूप लेकर साधक पुरुष देवीकी नासिकाके नीचे निवेदन करे और दीप ग्रहण करके देवीके सन्मुख चरणसे लेकर नेत्रतक दशवार घुमावे(१) फिर पानापात्र और शुद्धि अर्थात् मांसादि दोनों

---

(१) प्रयोगः यथाः– " ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पाद्यमाद्याकाली-देवतायै नमः" इसमंत्रसे देवीके चरणकमलमें पाद्य देवे " ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदमर्घ्यमाद्यायै काल्यै स्वाहा " इसमंत्रसे देवीके मस्तकपर अर्घ्य देवै " ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदमाचमनीयमाद्यायै काल्यै स्वधा " इस मंत्रसे देवीके मुखमें आचमनीय निवेदन करे । "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष मधुपर्कः आद्यायै काल्यै स्वधा ।" इस मंत्रसे देवीके मुखकमलमें मधुपर्क प्रदानकरे।"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा पुनराचमनीयमाद्यायै काल्यै वं स्वधा " यह मंत्र पढ़कर देवीके मुखमें पुनराचमनीय देवै । " ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं स्नानीयमाद्यायै कालिकायै निवेदयामि " इस मंत्रसे देवीके सब शरीरमें स्नानीय जल छिडके । " ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं वसन माद्यायै कालिकायै निवेदयामि " इस मंत्रसे देवीके सर्वाङ्गमें वस्त्र पहिरावे । "ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतानि भूषणानि आद्यायै कालिकायै निवेदयामि " इस मंत्रसे देवकि सर्वाङ्गमें गहने पहिरावै।"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एष गंधः आद्यायै काल्यै नमः" यह मंत्र पढ़कर मध्यमा और अनामिका अंगुलीसे देवीके हृदयकमलमें गंध देवै । " ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदं पुष्पमाद्यायै कालिकायै वौषट् " यह मंत्र पढकर देवीके ऊपर फूल चढावे।"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतौ धूपदीपौ आद्यायै कालिकायै निवेदयामि" इस मंत्रसे उत्सर्ग करके देवीको धूपदीप समर्पण करे॥ फिर इसमें गंध पुष्पसे " जय ध्वनिमंत्रमातः स्वाहा " यह मंत्र पढ घंटा पूजकर बांए हाथसे घंटा बजाते २ दाहिने हाथमें धूप ले देवीकी नासिकाके नीचे समर्पण करे । और दीप ले चरणसे नेत्रतक दशवार भ्रमण करावै ।

हाथोंमें ग्रहण करके मूलमंत्र उच्चारण कर यंत्रमें देवी कालीको वह निवेदन करे (१) ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

परमंवारुणीकल्पंकोटिकल्पान्तकारिणि ।
गृहाणशुद्धिसहितंदेहिमेमोक्षमव्ययम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-(फिर इस प्रकारसे प्रार्थना करे कि) मातः तुम कोटि २ कल्पोंका अंत करतीहो । तुमको यह परम वारुणीरूप कल्प अर्थात् मद्य शुद्धिके साथ अर्पण करताहूं ग्रहण करके मुझको अक्षय मुक्ति दो ॥ ८८॥

ततःसामान्यविधिनापुरतोमण्डलंलिखेत् ।
तस्योपरिन्यसेत्पात्रंनैवेद्यपरिपूरितम् ॥ ८९ ॥

अर्थ-फिर साधारण विधानके अनुसार सामने चौकोन या तिकोन मंडल खेंच तिसके ऊपर नैवेद्यपूरितपात्र स्थापित करे ॥ ८९ ॥

प्रोक्षणञ्चावगुण्ठञ्चरक्षणञ्चामृतीकृतम् ।
मूलेनसप्तधामन्त्र्यअर्घ्याद्भिर्विनिवेदयेत् ॥ ९० ॥

अर्थ-फिर " फट् " मंत्रसे नैवेद्य प्रोक्षित कर" हूं" बीजसे अवगुंठित करे, अनंतर " फट् " मंत्रके द्वारा उसकी रक्षाकरे " वं " बीज पढे । और धेनुमुद्रासे उसका अमृतीकरण करे । फिर उसको मूलमंत्रसे सात वार अभिमंत्रित कर अर्घ्य जलसे वह देवीजीको निवेदन करे ॥ ९० ॥

---

(१) मंत्रयथाः—ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इदम् मद्यम् इमां शुद्धिंच आद्यायै कालिकायै निवेदयामि ।

मूलमेतत्तुसिद्धान्नंसर्वोपकरणान्वितम्।
निवेदयामीष्टदेव्यैजुषाणेदंहविःशिवे ! ॥ ९१ ॥

अर्थ–निवेदनका यह मंत्र है कि पहले मूलमंत्र पढकर "सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टदेवतायै निवेदयामि" पाठकरे फिर "शिवे हविरिदं जुषाण" यह पाठकरे (१) ॥ ९१ ॥

ततःप्राणादिमुद्राभिःपञ्चभिःप्राशयेद्धविः ॥ ९२ ॥

अर्थ–अनंतर–(प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और व्यानाय स्वाहा इत्यादि मंत्रोच्चारण करे) प्राणादि पांच मुद्रा दिखाय देवीजीको हवि देवै ॥ ९२ ॥

वामेनैवेद्यमुद्राञ्चाविकचोत्पलसन्निभाम्।
दर्शयेन्मूलमन्त्रेणपानार्थंतीर्थपूरितम् ॥ ९३ ॥

अर्थ–फिर बांये हाथसे प्रफुल्ल कमलकीसमान नैवेद्यमुद्रा दिखाय मूलमंत्रका उच्चारण कर पान करनेके अर्थ मद्यसे भरा ॥ ९३ ॥

कलशंविनिवेद्याथपुनराचमनीयकम्।
ततःश्रीपात्रसंस्थेनामृतेनतर्पयेत्त्रिधा ॥ ९४ ॥

अर्थ–कलश निवेदन करके देवीको पुनराचमनीय जल देवै। फिर श्रीपात्रमें रक्खे हुए अमृतसे तीनवार तर्प्पण करे ॥ ९४ ॥

उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गकेषुच।
पञ्चपुष्पाञ्जलीन्दत्वामूलमन्त्रेणदेशिकः ॥ ९५ ॥

---

(१) मंत्र यथाः–"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा एतं सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टदेवतायै निवेदयामि शिवे हविरिदं जुषाण "अमान्नस्थले "ओं सिद्धान्नं" यह पद प्रयोग करना चाहिये।

अर्थ-इसके उपरांत साधक पुरुष मूलमंत्रका उच्चारण करके देवीके शिरपर हृदयके आधारमें, दोनों चरणोंमें और सब अंगोंमें पांच पुष्पांजलि देवे ॥ ९५ ॥

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
तवावरणदेवांश्चपूजयामिनमोवदेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ- हाथ जोडकर "इष्टदेवते ! तव आवरणदेवान् पूजयामि नमः"(अर्थात् तुम्हारे आवरण देवताओंकी पूजा करताहूं)यह वाक्य उच्चारण करके प्रार्थना करे ॥ ९६ ॥

अग्निर्नैर्ऋतिवाय्वीशपुरतःपृष्ठतःक्रमात् ।
षडङ्गानिचसम्पूज्यगुरुपङ्क्तीःसमर्च्चयेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ-यंत्रके अग्निकोण नैर्ऋत वायु और ईशानकोण और सम्मुखदेश व पश्चात् भागमें क्रमानुसार चंद्राकारमें (हां नमः हींनमः हूंनमः हैंनमः हौंनमः हः नमः) इत्यादि मंत्रोंसे षडङ्गदेवताकी पूजाविधि समाप्तकरके गुरुपंक्तिकी पूजा करे ॥ ९७ ॥

गुरुञ्चपरमादिञ्चपरात्परगुरुन्तथा ।
परमेष्ठिगुरुञ्चैवयजेत्कुलगुरूनिमान् ॥ ९८ ॥

अर्थ-(ओं गुरुवेनमः ओं परमगुरवेनमः इत्यादि मंत्र उच्चारण करके)गंध पुष्पादिके द्वारा क्रमानुसार गुरु, परमगुरु, परात्परगुरु और परमेष्ठि गुरु आदि कुलगुरूकी पूजा करे ॥ ९८ ॥

गुरुपात्रामृतेनैवत्रिस्त्रिस्तर्पणमाचरेत् ।
ततोऽष्टदलमध्येतुपूजयेदष्टनायिकाः ॥ ९९ ॥
मङ्गलाविजयाभद्राजयन्तीचापराजिता ।
नन्दिनीनारसिंहीचकौमारीत्यष्टमातरः ॥ १०० ॥

अर्थ-फिर पात्रमें रक्खेहुए अमृतसे "ओं गुरुं तर्पयामि नमः" इत्यादि मंत्रोंसे तीनवार तर्पण विधान करके अष्टदलमें "ओं मङ्गलायै नमः, ओं विजयायै नमः" इत्यादि मंत्र उच्चारण करके गंध पुष्पादिसे मंगला, विजया, भद्रा, जयन्ती, अपराजिता, नंदिनी, नारसिंही और कौमारी, इन आठ नायिकाओंकी पूजा करे ९९॥१००

दलाग्रेषुयजेदष्टभैरवान्साधकोत्तमः ॥ १०१ ॥
असिताङ्गोरुरुश्चण्डःक्रोधोन्मत्तोभयङ्करः ।
कपालीभीषणश्चैवसंहारोऽष्टौचभैरवाः ॥ १०२ ॥

अर्थ-और प्रणवादि नमोन्त मंत्र उच्चारण करके गंध पुष्पादिसे असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण और संहार, इन आठ भैरवोंकी पूजा करे (१) ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

इन्द्रादिदशदिक्पालान्भूपुरान्तःप्रपूजयेत् ।
तेषामस्त्राणितद्बाह्येपूजयेत्तर्पयेत्ततः ॥ १०३ ॥

अर्थ-इसके उपरांत प्रणवादि नमोन्त मंत्रोंके द्वारा भूपुरमें इन्द्रादि दश दिक्पालोंकी पूजा करके उक्त प्रकारसेही तिसके बाहिरी भागमें दिक्पालोंके वज्रादि अस्त्रोंकी पूजाकर "ओं इन्द्रं तर्पयामिनमः" इस प्रकार दिक्पालोंका तर्पण करे ॥ १०३ ॥

सर्वोपचारैःसम्पूज्यबलिंदद्यात्समाहितः ॥ १०४ ॥

अर्थ-इस प्रकार पाद्यादिक सर्वोपचारसे देवीकी पूजा समाप्त कर सावधान हो बलिदान करे ॥ १०४ ॥

---

(१) मंत्रः- " ओं असिताङ्गाय भैरवाय नमः ओंरुरवे भैरवाय नमः ओंचंडाय भैरवायनमः, ओंक्रोधोन्मत्ताय भैरवायनमः, ओंभयंकराय भैरवायनमः, ओंकपालिने भैरवायनमः, ओंभीषणाय भैरवायनमः, ओंसंहाराय भैरवायनमः ।"

मृगश्छागश्चमेषश्चलुलायःशूकरस्तथा ।
शल्लकीशशकोगोधाकूर्म्मःखड्गोदशस्मृताः ॥ १०५ ॥

अर्थ-मृग, छाग, मेष, भैंसा, शूकर, शल्लकी (सेई) शशक, गोह, कछुआ और गंडार यह दश प्रकारके पशुही बलिदानके लिये श्रेष्ठ हैं ॥ १०५ ॥

अन्यानपिपशून्दद्यात्साधकेच्छानुसारतः ॥ १०६ ॥

अर्थ-इनके सिवाय साधककी इच्छानुसार औरपशुओंकाभी बलि दिया जासक्ता है ॥ १०६ ॥

सुलक्षणंपशुंदेव्याअग्रेसंस्थाप्यमन्त्रवित् ।
अर्घ्योदकेनसम्प्रोक्ष्यधेनुमुद्रामृतीकृतम् ॥ १०७ ॥
कृत्वाछागायपशवेनमइत्यमुनासुधीः ।
सम्पूज्यगन्धसिन्दूरपुष्पनैवेद्यपाथसा ।
गायत्रीन्दक्षिणेकर्णेजपेत्पाशविमोचनीम् ॥ १०८ ॥

अर्थ-मंत्रका जाननेवाला विचक्षण साधक रोगादिरहित श्रेष्ठ लक्षणवाले पशुको देवीके सम्मुख स्थापन करके "फट्" मंत्रके द्वारा प्रोक्षित करे और धेनुमुद्रा करके "वं" बीज मंत्र उच्चारण कर अमृतीकरण करके "छागाय पशवे नमः वा मेषाय पशवे नमः" ऐसे मंत्रसे गंध सिन्दूर पुष्प नैवेद्य और जलके द्वारा पूजा करे फिर पशुके दाहिने कानमें पाशविमोचिनी गायत्रीका जप करे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

पशुपाशायशब्दान्तेविद्महेपदमुच्चरेत् ।
विश्वकर्म्मणेचपदाद्धीमहीतिपदंवदेत् ॥ १०९ ॥

ततश्चोदीरयेन्मन्त्रीतन्नोजीवःप्रचोदयात्।
एषातुपशुगायत्रीपशुपाशविमोचिनी ॥ ११० ॥

अर्थ-शास्त्रमें पशुपाशविमोचिनी गायत्रीका मंत्र इस प्रकारसे कहा है कि साधक पुरुष पहले "पशुपाशाय" शब्द उच्चारणकर "विद्महे' शब्द उच्चारण करे, फिर "विश्वकर्मणे" इस पदका उच्चारण करके "धीमहि" पदका प्रयोग करे, फिर "तन्नो जीवः प्रचोदयात्" उच्चारण करे (१) ॥ १०९ ॥ ११० ॥

ततःखड्गंसमादायकूर्चबीजेनपूजयेत्।
तदग्रमध्यमूलेषुक्रमतःपूजयेदिमान् ॥ १११ ॥
वागीश्वरीञ्चब्रह्माणंलक्ष्मीनारायणौततः।
उमामहेश्वरौमूलेपूजयेत्साधकोत्तमः ॥ ११२ ॥

अर्थ-फिर खड्ग लेकर कूर्चबीज अर्थात् "हूं" मंत्रका उच्चारण करके क्रमानुसार खड्गके आगे बीचमें और मूलदेशमें वागीश्वरी सरस्वती, ब्रह्मा, लक्ष्मी, नारायण और उमा व महेश्वरकी पूजा करे। खड्गके आगे वागीश्वरी और ब्रह्माकी बीचमें लक्ष्मीनारायणकी मूलमें उमा व महेश्वरकी पूजा करे ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अनन्तरंब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुतायच।
खड्गायनमइत्यन्तमनुनाखड्गपूजनम् ॥ ११३ ॥

अर्थ-फिर ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय खड्गाय नमः इस मन्त्रसे खड्गकी पूजा करे ॥ ११३ ॥

महावाक्येनचोत्सृज्यकृताञ्जलिपटोवदेत्।
यथोक्तेनविधानेनतुभ्यमस्तुसमर्पितम् ॥ ११४ ॥

(१) पशुपाशविमोचनी गायत्री यथाः-"पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि" तन्नो जीवः प्रचोदयात्"-यह पशुगायत्री पढ़े।

अर्थ—इसके उपरांत महावाक्य (१) उच्चारण कर पशुको उत्सर्ग करके देवीको समर्पण करे और हाथ जोड "यथोक्तेन विधिना तुभ्यमस्तु समर्पितम्" इसका पाठ करे ॥ ११४ ॥

इत्थंनिवेद्यचपशुंभूमिसंस्थन्तुकारयेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ—इस प्रकार विधिके अनुसार निवेदन करके पशुका बलिदान करे ॥ ११५ ॥

देवीभावपरोभूत्वाहन्यात्तीव्रप्रहारतः ।
स्वयंवाभ्रातृपुत्रैर्वाभ्रात्नावासुहृदैववा ।
सपिण्डेनाथवाच्छेद्योनारिपक्षंनियोजयेत् ॥ ११६ ॥

अर्थ—देवीकी भक्तिमें परायणहो तीक्ष्ण प्रहारसे पशुका वध करे भ्राता, भतीजे, सुहृद् अथवा सपिंड पुरुषसे पशुका वध करावे या अपने आप करे शत्रुपक्षसे कदापि पशुका वध न करावै॥ ११६॥

ततःकवोष्णंरुधिरंबटुकेभ्योबलिंहरेत् ।
सप्रदीपशीर्षबलिर्नमोदेव्यैनिवेदयेत् ॥ ११७ ॥

अर्थ—फिर "एषकवोष्णरुधिरबलिः ओं बटुकेभ्यो नमः" यह मंत्र पढकर बटुक जनोंको किंचिद् गरम रुधिरबलि देवे और "एष सप्रदीपशीर्षबलिःओं ह्रीं देव्यै नमः"यह कहकर देवीको शीर्षबलिप्रदान करे ॥ ११७ ॥

एवंबलिविधिःप्रोक्तःकौलिकानांकुलार्च्चने ।
अन्यथादेवताप्रीतिर्जायतेनकदाचन ॥ ११८ ॥

अर्थ—इस प्रकारसे कौलिकोंके कुलदेवताका पूजानुष्ठान और बलिकी विधि कही गई, अन्यथा (बलिविधिका अनुष्ठान न करनेसे) देवता कदापि प्रसन्न नहीं होती है ॥ ११८ ॥

---

(१) महावाक्यं यथाः—विष्णुरोम् तत् सत् ओं अद्यामुकमासि अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकराशिस्थते भास्करे समस्ताभीप्सितपदार्थसिद्धिकामः अमुक गोत्रः अमुकशर्माहमिष्टदेवतायै इमं पशुं सम्प्रददे ।

ततोहोमंप्रकुर्वीततद्विधानंशृणुप्रिये ! ॥ ११९ ॥

अर्थ-हे प्रिये! इसके उपरांत होम करे होमका नियम कहताहूं श्रवण करो ॥ ११९ ॥

स्वदक्षिणेवालुकाभिर्मण्डलंचतुरस्रकम् ।
चतुर्हस्तपरिमितंकृत्वामूलेनवीक्षणम् ।
अस्त्रेणताडयित्वाचतेनैवप्रोक्षणंचरेत् ॥ १२० ॥

अर्थ-साधकको चाहिये कि अपने दक्षिण भागमें रेतेका चार हाथके प्रमाणका मंडल बनाय, उसको मूलमंत्रसे वीक्षण करे । और " फट् " मंत्र पढकर कुशासे ताडना करके उस मंत्रसेही प्रोक्षित करे ॥ १२० ॥

कूर्च्चबीजेनावगुण्ठ्यदेवतानामपूर्वकम् ।
स्थण्डिलायनमइतियजेत्साधकसत्तमः ॥ १२१ ॥

अर्थ-साधकश्रेष्ठ "हूं" इस कूर्चबीजसे मंडलको घेर देवताका नाम ले" स्थंडिलाय नमः "यह मंत्र पढकर गंधपुष्पसे स्थंडिलकी पूजा करे ॥ १२१ ॥

प्रागग्राउदगग्राश्चरेखाःप्रादेशसम्मिताः ।
तिस्रास्तिस्रोविधातव्यास्तत्रसंपूजयेदिमान् ॥ १२२ ॥

अर्थ-फिर स्थंडिलमें प्रादेशके परिमाणानुसार तीन प्रागग्र और तीन उदगग्र रेखा खेंच कर तिसके ऊपर पीछे लिखे हुए देवताओंकी पूजा करे ॥ १२२ ॥

प्रागग्रासुचरेखासुमुकुन्देशपुरन्दरान् ।
ब्रह्मवैवस्वतेंदूंश्चउत्तराग्रासुपूजयेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ-प्रागग्र तीन रेखाओंपर क्रमानुसार विष्णु, शिव और इन्द्रकी और तीन उदगग्ररेखाओंपर ब्रह्मा, यम व चंद्रमाकी पूजा करे ॥ १२३ ॥

ततःस्थण्डिलमध्येतुहसौर्गर्भैत्रिकोणकम् ।
षट्कोणंतद्बहिर्वृत्तंततोष्टदलपङ्कजम् ।
भूपुरन्तद्बहिर्विद्वान्विलिखेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥ १२४ ॥

अर्थ-फिर उस स्थंडिलमें त्रिकोण मंडल रचना करे उस त्रिकोणमंडलमें "हसौः" शब्द लिखे । फिर त्रिकोणमंडलके बाहिरे षट्कोण और षट्कोणके आगे बाहिरे वृत्त खेंचकर तिसके बाहिरे अष्टदल पद्म खेंचे और सबके बाहिरे चौकोर भूपुर लिखे, इस प्रकार बुद्धिमान साधक उत्तम यंत्र बनावे ॥ १२४ ॥

मूलेनपुष्पाञ्जलिनासंपूज्यप्रणवेनतु ।
होमद्रव्याणिसंप्रोक्ष्यकर्णिकायांयजेत्सुधीः ।
मायामाधारशक्त्यादीन्प्रत्येकंवाप्रपूजयेत् ॥ १२५ ॥

अर्थ-फिर मूलमंत्र पढकर लिखे हुए यंत्रकी पूजा करके प्रणवके उच्चारणसे होम द्रव्यको प्रोक्षित करे और अष्टदल पद्मके बीजकोशपर मायाबीज उच्चारण करके आधारशक्तियोंकी एकही साथ या प्रत्येककी अलग २पूजा करे (१) ॥१२५॥

अग्न्यादिकोणेधर्मञ्चज्ञानंवैराग्यमेवच ।
ऐश्वर्य्यंपूजयित्वातुपूर्वादिषुदिशांक्रमात् ॥ १२६ ॥
अधर्म्ममज्ञानमितिअवैराग्यमनन्तरम् ।
अनैश्वर्य्यंयजेन्मन्त्रीमध्येऽनन्तञ्चपद्मकम् ॥ १२७ ॥

अर्थ-और यंत्रके अग्निकोणसे क्रमानुसार चारों कोनोंमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी पूजा करे और पूर्वसे क्रमानुसार चारों ओर अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यकी पूजा करके मध्यस्थलमें अनंत और पद्मकी पूजाकरे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

---

(१) मंत्र यथाः—ह्रींआधारशक्तिभ्यो नमः ।

कलासहितसूर्य्यस्यतथासोमस्यमण्डलम्।
प्रागादिकेसरेष्वेषुमध्येचैताःप्रपूजयेत् ॥ १२८ ॥
पीताश्वेतारुणाकृष्णाधूम्रातीव्रातथैवच।
स्फुलिङ्गिनीचरुचिराज्वलिनीतितथाक्रमात् ॥१२९॥

अर्थ-और "ओं सूर्यमंडलाय द्वादशकलात्मनेनमः ओं सोममंडलाय षोडशकलात्मने नमः" इस प्रकार मंत्र पढ़कर यंत्रमें कलासहित सूर्य और सोममंडलकी पूजा करके प्रागादि केसरमें क्रमानुसार पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिंगिनी, रुचिरा और ज्वलिनीकी पूजा करे ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

प्रणवादिनमोऽन्तेनसर्वत्रपूजनंचरेत्।
रंवह्नेरासनायेतिनमोऽन्तेनप्रपूजयेत् ॥ १३० ॥

अर्थ-सब जगह पूजापद्धतिमें देवदेवीके नाम उच्चारण करनेमें आदिमें प्रणव और अंतमें नमः शब्द मिलावै बस इस नियमके अनुसारही यंत्रमें "ओं रं वह्नेरासनाय नमः" यह मंत्र पढ़कर अग्निके आसनकी पूजा करे ॥ १३० ॥

वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनाम्।
वागीश्वरेणसंयुक्तांध्यात्वामन्त्रीतदासने ॥ १३१ ॥
माययातौप्रपूज्याथविधिवद्वह्निमानयेत्।
मूलेनवीक्षणंकृत्वाफटावाहनमाचरेत् ॥ १३२ ॥

अर्थ-फिर साधक ब्रह्मयुक्त कमलदलकी समान नेत्रवाली ऋतुस्नाता वागीश्वरीका ध्यान करके पहली कहीहुई वह्निपीठमें उन दोनोंकी पूजा करे। पूजाके समय देवदेवीके नाम मंत्रका आदिमें "ह्रीं" मायाबीज और अन्तमें "नमः" शब्द मिलावै अर्थात् "ओं ह्रीं ब्रह्मणे नमः ओं ह्रीं वागीश्वर्यै नमः" इस प्रकार मंत्र

पढ कर पूजा करनी चाहिये फिर विधानके अनुसार (सरैयां अथवा कांसेके पात्रमें करके) अग्नि लाय मूलमंत्र पढकर " अग्नि-वीक्षण "और" फट् " मंत्र पढ़ आवाहनक्रिया करे ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

प्रणवंचततोवह्नेर्योगपीठायतन्मनुः ।
यन्त्रेपीठंपूजयित्वादिक्षुचैताःप्रपूजयेत् ।
वामाज्येष्ठातथारौद्रीअम्बिकेतियथाक्रमात् ॥ १३३ ॥

अर्थ—आवाहनके अंतमें प्रणवका उच्चारण करके " वह्नेर्योग-पीठायनमः " यह मंत्र पढकर वह्निपीठकी पूजा करे । तिसके उपरांत पीठकी पूर्व ओरसे क्रमानुसार चारोंओर वामा, ज्येष्ठा रौद्री और अम्बिकाकी पूजा करे ॥ १३३ ॥

ततोऽमुक्यादेवतायाःस्थण्डिलायनमःपदम् ।
इतिस्थण्डिलमापूज्यतन्मध्येमूलरूपिणीम् ॥ १३४ ॥

अर्थ—फिर " अमुक्या देवतायाः स्थंडिलाय नमः " इस मत्रसे स्थंडिलकी पूजा करके तिसमें मूलदेवतारूपिणी ॥ १३४ ॥

ध्यात्वावागीश्वरींदेवींवह्निबीजपुरःसरम् ।
वह्निमुद्धृत्यमूलान्तेकूर्च्चमन्त्रंसमुच्चरन् ॥ १३५ ॥

अथ—वागीश्वरी देवीका ध्यान करके " रं " वह्निबीज उच्चारण करे और अग्निका उद्धार करे । फिर मूलमंत्र पढनेके अंतमें " हूं " कूर्च बीज और " फट् " यह अंतबीज पढकर ॥ १३५ ॥

क्रव्यादेभ्योवह्निजायांक्रव्यादांशंपरित्यजेत् ।
अस्त्रेणवह्निंसंवीक्ष्यकूर्चेनैवावगुण्ठयेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ—" क्रव्यादेभ्यः " उच्चारण करके फिर वह्निजाया अर्थात् "स्वाहा" उच्चारण करके जो मंत्र उद्धृत होवे उसको पढकर राक्ष-

सोंका देने योग्य अंश दक्षिणओरको फेंकदे (१) फिर अस्त्र बीजसे अग्निवीक्षण कर कूर्चबीजसे वह्नि वेष्टनकरे ॥ १३६ ॥

धेन्वाचैवामृतीकृत्यहस्ताभ्यामग्निमुद्धरेत् ।
प्रादक्षिण्यक्रमेणाग्निंभ्रामयन्स्थण्डिलोपरि ॥१३७॥
त्रिधाजानुस्पृष्टभूमिःशिवबीजंविचिन्तयन् ।
आत्मनोऽभिमुखीकृत्ययोनियन्त्रेनियोजयेत् ॥ १३८॥

अर्थ-फिर धेनुमुद्रासे अमृतीकरण करके दोनों हाथोंसे अग्निको उठावे और प्रदक्षिणाके क्रमसे स्थंडिलके ऊपरिभागमें तीनवार घुमावे, व शंभुके वीर्यरूप अग्निका ध्यान करे फिर जानुसे पृथवीको छू उसे अपने मुखकी ओर करके योनियंत्रके ऊपर स्थापन करे॥ १३७ ॥ १३८ ॥

ततोमायांसमुच्चार्य्यवह्निमूर्त्तिश्चङेयुताम् ।
नमोऽन्तेनप्रपूज्याथरंवह्निपरतःसुधीः ।
चैतन्यायनमोवह्नेश्चैतन्यंपरिपूजयेत् ॥३९॥

अर्थ-अनंतरश्रेष्ठबुद्धिवाला साधक मायाबीज " ह्रीं " उच्चारण करके अन्तमें " नमः " शब्द लगाय चतुर्थीविभक्तिका एकवचनान्त " वह्निमूर्ति " शब्दका उच्चारण करके, वह्नि मूर्तिकी पूजा करे (२) और "रंवह्नि" उच्चारण करके " चैतन्यायनमः " अर्थात् "रंवह्निचैतन्याय नमः"इस मंत्रसे वह्निचैतन्यकी पूजा करे ॥ १३९ ॥

नमसावह्निमूर्तिंश्चचैतन्यपरिकल्प्यच ।
प्रज्वालयेत्ततोवह्निंमन्त्रेणानेनमंत्रवित् ॥ १४० ॥

---

(१) मंत्र यथाः-"ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा हूं फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा"
(२) "ह्रीं वह्निमूर्तये नमः ।"

अर्थ–इसके उपरांत मंत्रका जाननेवाला साधक मनहीमनमें "नमो" मंत्रसे "वह्निमूर्ति" और वह्निचैतन्यकी परिकल्पना करके यह (वक्ष्यमाण) मंत्र पढकर अग्नि जलावे ॥ १४० ॥

प्रणवंपूर्वमुद्धृत्याचितिंपिंगलपदन्तथा ।
हनद्वयंदहदहपचपचेतिततोवदेत् ॥ १४१ ॥

अर्थ–प्रथमही प्रणवका उच्चारण करके "चित् पिंगल" पद फिर "हनहन" तिसके अंतमें "दहदह" और फिर "पचपच" पाठ करे ॥ १४१ ॥

सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहावह्निप्रज्वालनेमनुः ।
ततःकृताञ्जलिर्भूत्वाप्रकुर्य्यादग्निवंदनम् ॥ १४२ ॥

अर्थ–तदनंतर "सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा" उच्चारण करके इस प्रकार अग्नि जलानेका मंत्र कहाहै (१) फिर हाथ जोडकर अग्निकी वंदना करे ॥ १४२ ॥

अग्निंप्रज्वलितंवन्देजातवेदंहुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलंसमिद्धंसर्वतोमुखम् ॥ १४३ ॥

अर्थ–(यह कहकर अग्निकी वंदना करे कि) "अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्" अर्थात् प्रज्वलित, सुवर्णतुल्य, निर्मल, प्रदीप्त और सर्वतोमुख, जातवेद, हुताशनका वंदन करताहूं ॥ १४३ ॥

इत्युपस्थाप्यदहनंछादयेत्स्थण्डिलंकुशैः ।
स्वेष्टनाम्नावह्निनामकृत्वाभ्यर्च्चनमाचरेत् ॥ १४४ ॥

अर्थ–इस प्रकार अग्निकी वंदना करके कुशासे स्थंडिल ढाकके फिर अपने इष्टदेवताका नाम ले वह्निनाम उच्चारण करके अभ्यर्चना करे ॥ १४४ ॥

---

(१) "ओंचितिंपिंगल हनहन दहदह पचपच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा" यह मंत्र पढकर अग्नि जलावे ।

तारोवैश्वानरपदाज्जातवेदपदंवदेत् ।
इहावहावहेत्युक्तालोहितादक्षपदान्तरम् ॥ १४५ ॥

अर्थ-(मंत्रका नियम यह है कि) प्रथममें प्रणव, तिसके अंतमें " वैश्वानर " पद फिर " जातवेद " पद उच्चारण करे । अनंतर " इहावहावह " कह फिर " लोहिताक्ष " पदका उच्चारण करे ॥ १४५ ॥

सर्वकर्माणिपदतःसाधयान्तेऽग्निवल्लभा ।
इत्यभ्यर्च्यहिरण्यादिसप्तजिह्वाःप्रपूजयेत् ॥ १४६ ॥

अर्थ-फिर "सर्वकर्माणि" पदके अंतमें "साधय" पाठ करके अग्निवल्लभा "स्वाहा"का नाम लेवै (१) इस प्रकार मंत्र पढ़कर अग्निकी अभ्यर्चना कर हिरण्यादि सप्त जिह्वाकी पूजा करै (२) ॥ १४६ ॥

सहस्रार्चिःपदंङेऽन्तंहृदयायनमोवदेत् ।
षड़ङ्गंपूजयेद्वह्नेस्ततोमूर्त्तीर्यजेत्सुधीः ॥१४७॥

अर्थ-फिर श्रेष्ठबुद्धिवाला साधक चतुर्थीविभक्तिका एकवचनान्त "सहस्रार्चिः" शब्द उच्चारण करके "हृदयाय नमः" कह अग्निके हृदयकी पूजा करै फिर षडंग और वह्निमूर्तिकी पूजा करै (३) ॥ १४७ ॥

---

(१) मंत्र यथाः-" ओं वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा " यह मंत्र पढकर अग्निकी पूजा करै ।

(२) मंत्र यथाः-" ओं वह्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्योनमः " इस मंत्रसे अग्निकी हिरण्यादि सप्त जिह्वाकी पूजा करै । सप्तजिह्वाके नाम यथाः-काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरूपिणी ।

(३) " ओं सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः " इस मंत्रसे वह्निहृदयकी पूजा करै । " ओं वह्नेः षडङ्गेभ्योनमः" इस मंत्रसे अग्निके षडङ्गकी पूजा और " ओंवह्निमूर्त्तिभ्योनमः " इस मंत्रसे अग्निमूर्तिकी पूजा करै ।

जातवेदप्रभृतयोमूर्त्तयोऽष्टौप्रकीर्त्तिताः ॥ १४८ ॥

अर्थ–"जातवेदः" इत्यादि अग्निकी अष्ट मूर्तिसंज्ञा पहलैही कह आये हैं ॥ १४८ ॥

ततोयजेदष्टशक्तीर्ब्राह्म्याद्यास्तदनन्तरम् ।
पद्माद्यष्टनिधीनिष्ट्वायजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ॥ १४९ ॥

अर्थ–फिर ब्राह्मी इत्यादि अष्टशक्तिकी पूजा करै और पद्मादि अष्टनिधिकी पूजा करके इन्द्रादि दिक्पालोंकी पूजा करै(१)॥ १४९॥

वज्राद्यस्त्राणिसम्पूज्यप्रादेशपरिमाणकम् ।
कुशपत्रद्वयंनीत्वाघृतमध्येनिधापयेत् ॥ १५० ॥

अर्थ–और दिक्पालोंके वज्रादि अस्त्रोंकी पूजा करकै (२) प्रादेशके परिमाणवाले कुशके दो पत्र ग्रहण कर घीमें (एक वाम-भागमें दूसरा दक्षिण भागमें) स्थापित करे ॥ १५० ॥

वामेध्यायेदिडांनाडींदक्षिणेपिंगलान्तथा ।
मध्येसुषुम्नांसञ्चित्यदक्षभागात्समाहितः ॥ १५१ ॥

अर्थ–घृतके बांये भागमें इडा, दाहिनेमें पिंगला और मध्यमें सुषुम्ना नाडीका ध्यान करै । फिर सावधानचित्तहो दक्षिण-भागसे ॥ १५१ ॥

आज्यंगृहीत्वामतिमान्दक्षनेत्रेहुताशितुः ।
मन्त्रेणानेनजुहुयात्प्रणवान्तेऽग्नयेपदम् ॥ १५२ ॥

अर्थ–घृत ले सुसिद्ध साधक अग्निके दाहिने नेत्रमें इस मंत्रको

---

(१) " ओं ब्रह्मादिभ्यो अष्टशाक्तिभ्यो नमः " इस मंत्रसे अष्टशाक्तिकी और " ओं पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः " यह मंत्र पढकर गन्धपुष्पादिसे आठ निधिकी पूजा करै ।

(२) अस्त्रोंके नाम यथाः–" वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, चक्र, और पद्म ।

पढ़कर आहुति देवै । (मंत्रका नियम यह है कि) प्रथम प्रणव उच्चारण करके "अग्नये" पदको उच्चारण करे ॥ १५२ ॥

स्वाहान्तोमनुराख्यातोवामभागाद्धविर्हरेत् ।
वामनेत्रेहुनेद्वह्नेरोंसोमायद्विठोमनुः ॥१५३ ॥

अर्थ–फिर " स्वाहा " शब्द उच्चारण करै । (१) अनन्तर वाम-भागसे हविको ग्रहण करके "ओं सोमाय स्वाहा" इस मंत्रको उच्चारण कर अग्निके वामनेत्रमें आहुति देवे ॥ १५३ ॥

मध्यादाज्यंसमानीयललाटेहवनंचरेत् ।
अग्नीषोमौसप्रणवौतुर्य्यद्विवचनान्वितौ ॥ १५४ ॥
स्वाहान्तोऽयंमनुःप्रोक्तःपुनर्दक्षिणतोहविः ।
गृहीत्वानमसामन्त्रीप्रणवंपूर्वमुद्धरेत् ॥ १५५ ॥

अर्थ–फिर ध्यानसे आज्य ग्रहण करके अग्निके ललाटमें आहुति देवे (ललाटमें आहुति देनेका मंत्र ऐसा कहा है कि) आकार-सहित चतुर्थी विभक्तीका द्विवचनान्त " अग्निसोम " शब्द उच्चा-रण करके "स्वाहा" शब्द उच्चारण करे (१) फिर साधक "नमः" शब्द उच्चारण करके पूनर्वार दाक्षिण भागसे घृत लेकर प्रथम प्रण-वका उच्चारण करे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

अग्नयेचस्विष्टकृतेवह्निकान्तांततोवदेत् ।
अनेनवह्निवदनेजुहुयात्साधकोत्तमः ।
भूर्भुवःस्वर्द्विठान्तेनव्याहृत्याहोममाचरेत् ॥१५६ ॥

---

(१) " ओं अग्नये स्वाहा "
(२) मंत्र–" ओं अग्नीसोमाभ्याम् स्वाहा"।

अर्थ-फिर "अग्नये" तदनन्तर "स्विष्टकृते" और तिसके उपरान्त वह्निजाया अर्थात् "स्वाहा" शब्द उच्चारण करे (१) यह मंत्र उच्चारण करके साधक अग्निके मुखमें आहुति देवे। फिर प्रणवादि और स्वाहान्त करके क्रमानुसार "भूः भुवः और स्वः" यह तीन पद उच्चारण करके होम करै (२) ॥ १५६ ॥

तारोवैश्वानरपदाज्जातवेदइहावह ।
वहलोहिपदान्तेचताक्षसर्वपदंवदेत् ।
कर्माणिसाधयस्वाहात्रिधानेनाहुतीर्हरेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ-अनन्तर प्रथम प्रणव उच्चारण करके "वैश्वानर" पद उच्चारण करके तदुपरान्त "जातवेद इहावहावहलोहि" तिसके अन्तमें "ताक्षसर्व" यह पद उच्चारण करे फिर "कर्माणि साधय स्वाहा" उच्चारण करे। इस प्रकार मंत्र पढ़कर तीनवार आहुति देवे (३) ॥ १५७ ॥

ततोऽग्नौस्वेष्टमावाह्यपीठाद्यैःसहपूजनम् ।
कृत्वास्वाहान्तमनुनामूलेनपञ्चविंशतीः ॥ १५८ ॥

अर्थ-अनन्तर अग्निमें अपने इष्ट देवताका आवाहन करके (पहला कहाहुआ मंत्र पढ़कर) पीठादिके साथ उसकी पूजा करे फिर मूलमंत्र पढ़कर तिसके अन्तमें "स्वाहा" शब्द उच्चारण करके अग्निमें पचीस ॥ १५८ ॥

हुत्वावह्न्यात्मनोर्देव्याऐक्यंसम्भावयन्धिया ।
एकादशाहुतीर्हुत्वामूलेनैवांगदेवताः ॥ १५९ ॥

---

(१) मंत्रः-" ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । "

(२) मंत्रः-"ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा ओं स्वः स्वाहा । "

(३) मंत्रोद्धार यथाः- " ओं वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा " यह मंत्र पढकर तीन वार आहुति देवे ।

अर्थ-आहुति देकर मनही मनमें अग्नि, देवी और अपनी आत्मा, इन तीनोंकी एकताकी चिन्ता करै । फिर मूलमंत्रसे ग्यारह आहुति देकर "ओं अंगदेवताभ्यः स्वाहा" इस मंत्रसे अंगदेवताके अर्थ ॥ १५९ ॥

हुत्वास्वकाममुद्दिश्यतिलाज्यमधुमिश्रितैः ॥ १६० ॥

अर्थ-होम करै । फिर अपनी कामनाके लिये (१) मूलमंत्र पढ़कर तिसके अन्तमें "स्वाहा" मिलाय (जो मंत्रोद्धार होगा) तिसको पढ़ताहुआ तिल, आज्य और मधु मिले ॥ १६० ॥

पुष्पैर्बिल्वदलैर्वापियथाविहितवस्तुभिः ।
यथाशक्त्याहुतिंदद्यान्नाष्टन्यूनांप्रकल्पयेत् ॥ १६१ ॥

अर्थ-फूल अथवा बेलपत्र वा यथाविहित वस्तुसे शक्तिके अनुसार आहुति देवै । आठसे कम आहुति न दे ॥ १६१ ॥

ततःपूर्णाहुतिन्दद्यात्फलपत्रसमन्विताम् ।
स्वाहान्तमूलमन्त्रेणततःसंहारमुद्रया ।
तस्माद्देवींसमानीयस्थापयेद्धृदयाम्बुजे ॥ १६२ ॥

अर्थ-फिर अन्तमें " स्वाहा " पद मिलाय मूलमंत्र पढकर अग्निमें फल और पानयुक्त पूर्णाहुति देवै फिर संहारमुद्राके द्वारा देवीको अग्निसे लायकर हृदयकमलमें स्थापन करै ॥ १६२ ॥

क्षमस्वेतिचमन्त्रेणविसृजेत्तंहुताशनम् ।
कृतदक्षिणकोमन्त्रीअच्छिद्रमवधारयेत् ॥ १६३ ॥

अर्थ-फिर मंत्री "अग्नये क्षमस्व" मंत्र पढकर अग्निका विसर्जन

(१) कामनावाक्य यथाः-" विष्णुराम् तत्सत् ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षे अमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रः श्रीअमुकशर्मा तिलाज्यादिमिश्रितैः पुष्पैर्बिल्वपत्रादिभिर्वा सार्द्धं वा वह्नावाहुतिमहं ददे ।"

करें । फिर दक्षिणाविधि समाधान करके "कृतमिदं होमकर्माच्छिद्रमस्तु" यह कहकर अच्छिद्रावधारण करे ॥ १६३ ॥

हुतशेषंभ्रुवोर्मध्येधारयेत्साधकोत्तमः ॥ १६४ ॥

अर्थ-फिर साधकश्रेष्ठ होमसे बचीहुई सामग्री भ्रूयुगलके मध्य-मध्यमें धारण करे । अर्थात् होमसे बची हुई भस्मका माथेमें तिलक लगावे ॥ १६४ ॥

एषहोमविधिःप्रोक्तःसर्वत्रागमकर्मणि ।
होमकर्मसमाप्यैवंसाधकोजपमाचरेत् ॥ १६५ ॥

अर्थ-सर्वत्र आगम कर्ममें जिस प्रकारसे होमका अनुष्ठान होता है तिसकी विधि कही । इस प्रकार साधक होमको करके जपका अनुष्ठान करै ॥ १६५ ॥

विधानंशृणुदेवेशि ! येनविद्याप्रसीदति ।
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यंसम्भावयेद्धिया ॥ १६६ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! जिससे विद्या प्रसन्न होती है तिस जपके अनुष्ठानकी विधि कहताहूं श्रवण करो । मनही मनमें देवता गुरु और मनकी एकता चिन्तन करै ॥ १६६ ॥

मन्त्राणांदेवताप्रोक्तादेवतागुरुरूपिणी ।
अभेदनयजेद्यस्तुतस्यसिद्धिरनुत्तमा ॥ १६७ ॥

अर्थ-मंत्र वर्णदेवता स्वरूप देवता गुरू रूपिणी, जो पुरुष देवतास्वरूप विचारकर मंत्रवर्णकी पूजाकरे उसकोही सिद्धि मिलती है ॥ १६७ ॥

गुरुंशिरसिसञ्चिन्त्यदेवतांहृदयाम्बुजे ।
रसनायांमूलविद्यांतेजोरूपांविचिन्त्यच ।
त्रयाणान्तेजसात्मानमेकीभूतंविचिन्तयेत् ॥ १६८ ॥

अर्थ-शिरमें गुरूका ध्यान करै हृदयकमलमें देवताका और रसनामें तेजरूप मूलमंत्रात्मिका विद्याका ध्यान करै । फिर गुरू देवता और मंत्र इन,तीनके तेजसे एकहुई आत्माको चिन्ता करै ॥ १६८ ॥

तारेणसम्पुटीकृत्यमूलमन्त्रञ्चसप्तधा ।
जप्त्वातुसाधकःपश्चान्मातृकापुटितंस्मरेत् ॥ १६९ ॥

अर्थ-फिर प्रणवके द्वारा संपुटित करके सातवार मूलमंत्रका जप करे फिर मातृका पुटित करकै सातवार स्मरण करे (१)॥ १६९ ॥

मायाबीजंस्वशिरसिदशधाप्रजपेत्सुधीः ।
वदनेप्रणवंतद्वत्पुनर्मायांहृदम्बुजे ।
प्रजप्यसप्तधामन्त्रीप्राणायामंसमाचरेत् ॥ १७० ॥

अर्थ-फिर साधक अपने शिरमें " ह्रीं " माया बीजका दशवार जपकरै फिर अपने मुखमें दश वार प्रणवका जप करे फिर हृदयपद्ममें सात वार माया बीजका जपकरके पहलेके अनुसार प्राणायामका अनुष्ठान करे ॥ १७० ॥

ततोमालांसमादायप्रवालादिसमुद्भवाम् ।
मालेमाले[1]महाभागे ! सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥

---

(१) प्रणवसे मूलमंत्रका संपुटीकरण यथाः-" ओं ह्रीं श्रीं क्रीं आद्ये कालिके स्वाहा । ओं मातृकापुटित यथाः- मूलमंत्रके आदि वा अन्तमें क्रमानुसार अकारादिसे लेकर क्षकारान्ततक इक्यावन वर्ण मिलानेका नाम मातृकापुटितकरणहै । जैसे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा, क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ॥

---

[1] महामाले इति पाठान्तरम् ।

चतुर्वर्गस्त्वयिन्यस्तस्तस्मान्मेसिद्धिदाभव ॥१७१॥

अर्थ–इसके उपरान्त प्रवालादिकी माला ग्रहण करके " हे माले ! हे महामाले! तुम सर्व शक्तिस्वरूपिणी हो मैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, यह चार वर्गही तुमको अर्पण करताहूं; तुम हमको सिद्धि देओ (१) ॥ १७१ ॥

इतिसम्पूज्यमालान्तांश्रीपात्रस्थामृतेनच ।
त्रिधामूलेनसन्तर्प्यस्थिराचित्तोजपंश्चरेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रंवाप्यथवाष्टोत्तरंशतम् ॥ १७२ ॥

अर्थ–यह मंत्र पढ़कर मालाकी पूजा करे। फिर मूलमंत्र पढ़कर श्रीपात्रमें रक्खे हुए अमृतसे तीनवार मालाका तर्पण करै (२) फिर साधक चित्तको स्थिर करके एक सहस्र आठ (१००८ अथवा एक शत आठ १०८) वार मूलमंत्रका जपकरे ॥ १७२ ॥

प्राणायामन्ततःकृत्वाश्रीपात्रजलपुष्पकैः ।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वंगृहाणास्मत्कृतंजपम् ॥ १७३ ॥
सिद्धिर्भवतुमेदेवि ! त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ! ।
इतिमन्त्रेणमतिमान्देव्यावामकराम्बुजे ॥ १७४ ॥
तेजोरूपंजपफलंसमर्प्यप्रणमेद्भुवि ।
ततःकृताञ्जलिर्भूत्वास्तोत्रञ्चकवचंपठेत् ॥ १७५ ॥

---

(१) " माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥ "

(२) तर्पणमंत्रः–प्रथम मूलमंत्रका उच्चारण करके " मालां सन्तर्पयामि स्वाहा" यह कहकर तर्पण करे ।

अर्थ-फिर प्राणायाम करके मतिमान् साधक श्रीपात्रमें रक्खे हुए जल और पुष्पादिसे देवीके कमलरूपी बांये हाथमें तेजरूप फल समर्पण करे। जप समर्पण करनेका मंत्र यह है कि:- " हे देवी ! हे महेश्वरि ! तुम गुह्या, अतिगुह्या और रक्षा करनेवाली हो तुम अस्मत्कृत जप ग्रहण करो तुह्मारे प्रसादसे मुझको सिद्धि प्राप्त हो (१) इस प्रकारसे जप समाप्त कर पृथ्वीमें दंडकी समान हो प्रणाम करै फिर हाथ जोड स्तुतिवाक्य पढ़ै ॥ १७३ ॥ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

ततःप्रदक्षिणीकृत्यविशेषार्घ्येणसाधकः ।
विलोमार्घ्यप्रदानेनकुर्य्यादात्मसमर्पणम् ॥ १७६ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधक प्रदक्षिणा करके विलोममंत्रसे अर्घ्यविशेष देकर देवीको आत्मसमर्पण करे ॥ १७६ ॥

इतःपूर्वंप्राणबुद्धिदेहधर्म्माधिकारतः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यन्तेअवस्थासुप्रकीर्त्तयेत् ॥ १७७ ॥

अर्थ-आत्मसमर्पण करनेका मंत्र कहा जाता है पहले " इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारत जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति " यह पद उच्चारण करके " अवस्थासु " पद उच्चारण करे ॥ १७७ ॥

मनसान्तेवदेद्वाचाकर्म्मणातदनन्तरम् ।
हस्ताभ्यांपदतःपद्भ्यामुदरेणततःपरम् ॥ १७८ ॥

अर्थ-फिर "मनसा" तिसके अन्तमें " वाचा " तदनन्तर "कर्मणा " तदुपरान्त " हस्ताभ्यां " शब्दका उच्चारण करे । अनन्तर " पद्भ्यां " तदुपरान्त " उदरेण " पद पाठ करे ॥ १७८ ॥

शिस्नयायत्कृतश्चोक्तायत्स्मृतंपदतोवदेत् ।

---

(१) " गुह्यातिगुह्यगोप्त्रीत्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि " ।

यदुक्तंतत्सर्वमितिब्रह्मार्पणमुदीरयेत् ।
भवत्वन्तेमांमदीयंसकलंतदनन्तरम् ॥ १७९ ॥

अर्थ–फिर "शिस्नया यत्कृतं" पद उच्चारण करके "यत्स्मृतं" कहै । फिर "यदुक्तं तत्सर्वं" पद पढै । अनन्तर "ब्रह्मार्पणं" शब्द उच्चारण करे । फिर "भवतु" तिसके अन्तमें "मां मदीयं सकलं" इस शब्दका उच्चारण करै ॥ १७९ ॥

आद्याकालीपदाम्भोजेअर्पयामिपदंवदेत् ।
प्रणवंतत्सदित्युक्त्वाकुर्य्यादात्मसमर्पणम् ॥ १८० ॥

अर्थ–तदुपरान्त "आद्याकालीपदाम्भोजे अर्प्पयामि" पद पढ़ै तदनन्तर 'प्रणव' तिसके अन्तमें "तत्सत्" उच्चारण करके काली देवीको आत्मसमर्पण करै (१) ॥ १८० ॥

ततःकृताञ्जलिर्भूत्वाप्रार्थयेदिष्टदेवताम् ।
मायाबीजंसमुच्चार्य्यश्रीआद्येकालिके ! वदेत् ॥ १८१॥

अर्थ–इसके उपरान्त मंत्री हाथ जोडकर इष्ट देवतासे प्रार्थना करे । प्रथम 'मायाबीज' अर्थात् "ह्रीं" उच्चारण करके "श्री आद्ये कालिके" पद उच्चारण करे ॥ १८१ ॥

पूजितासियथाशक्त्याक्षमस्वेतिविसृज्यच ।
संहारमुद्रयापुष्पमाघ्रायस्थापयेद्धृदि ॥ १८२ ॥

अर्थ–फिर "यथाशक्त्या पूजितासि क्षमस्व" पद उच्चारण करके प्रार्थना करे (५) इसप्रकार इष्टदेवताको विसर्ज्जनकर संहार-मुद्रासे फूलले सूंघै और अपने हृदयमें स्थापन करै ॥ १८२ ॥

---

(१) मंत्रोद्धार यथाः– "इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिस्ना यत् कृतं यत् स्मृतं यत् उक्तं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मां मदीयं सकलमाद्याकालीपदाम्भोजे-र्पयामि ओंतत्सत्" यह मंत्र पढकर देवीको आत्मसमर्पण करे । प्रार्थनाका मंत्र "ह्रीं श्रीं आद्ये कालिके यथाशक्त्या पूजितासि क्षमस्व" ।

ऐशान्यांमण्डलंकृत्वात्रिकोणंसुपरिष्कृतम्।
तत्रसंपूजयेद्देवींनिर्म्माल्यपुष्पवासिनीम्।
ह्रींनिर्म्माल्यपदञ्चोक्त्वावासिन्यैनमइत्यपि ॥ १८३ ॥

अर्थ-फिर ईशानकोणमें परिष्कार त्रिकोणमण्डल बनाय तिसके ऊपर निर्मल पुष्प और जलसे निर्माल्यवासिनी देवीकी पूजा करे। प्रथम "ह्रां निर्माल्य" पद उच्चारण करके फिर "वासिन्यै नमः" पद उच्चारण करे। इस उद्धृत मंत्रसे निर्माल्यवासिनी देवी की पूजा करे (१)॥ १८३ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादिभ्यःसर्व्वदेवेभ्यएवच।
नैवेद्यंवितरेत्पश्चाद्गृह्णीयाच्छक्तिसाधकः ॥ १८४ ॥

अर्थ-अनन्तर शक्तिसाधक ब्रह्मा विष्णु शिवादिको नैवेद्य पाठ कर पीछेसे स्वयं ग्रहण करै ॥ १८४ ॥

स्वीयशक्तिंवामभागेसंस्थाप्यपृथगासने।
एकासनोपविष्टोवापात्रंकुर्य्यान्मनोरमम् ॥ १८५ ॥

अर्थ-वाम भागमें पृथक् आसन पर अपनी शक्तिको स्थापित कर अथवा तिसके साथ एक आसनपर बैठ पान भोजनके लिये रमणीय पात्र स्थापन करै ॥ १८५ ॥

पानपात्रंप्रकुर्व्वीतनपञ्चतोलकाधिकम्।
तोलकात्रितयान्न्यूनंस्वार्णराजतमेवच ॥ १८६ ॥

अर्थ-पानपात्रका परिमाण पांच तोलेसे अधिक अथवा तीन तोलेसे कम न हो सुवर्णका बनाहो, या चांदीका ॥ १८६ ॥

अथवाकाचजनितंनारिकेलोद्भवञ्चवा।
आधारोपरिसंस्थाप्यशुद्धिपात्रस्यदक्षिणे ॥ १८७ ॥

---

(१) मंत्रः-"ह्रीं निर्माल्यवासिन्यै नमः"।

अर्थ-वा नारियलसे उत्पन्न हुआ अथवा कांचका पात्रही श्रेष्ठ है। पानपात्र शुद्धिपात्रके दाहिनीओर आधारपर स्थापन करके ॥ १८७ ॥

महाप्रसादमानीयपात्रेषुपरिवेषयेत् ।
स्वयंवाभ्रातृपुत्रैर्वाज्येष्ठानुक्रमतःसुधीः ॥ १८८ ॥

अर्थ-महाप्रसादको लाय साधक अपने आप वा भ्रातृपुत्र (भतीजा) के द्वारा ज्येष्ठानुक्रमसे पात्रमें परशवावे (१) ॥१८८॥

पानपात्रेसुधादेयाशौद्धेचेशुद्धचादिकानिच ।
ततःसामायिकैःसार्द्धंपानभोजनमाचरेत् ॥ १८९ ॥

अर्थ-पानपात्रमें मदिरा और शुद्धिपात्रमें मांसमत्स्यादि देवै फिर देवीजीकी पूजा प्रारम्भ विधिमें सब आयेहुए मनुष्योंके साथ पान भोजनकी क्रियाको करै ॥ १८९ ॥

आदावास्तरणार्थायगृह्णीयाच्छुद्धिमुत्तमाम् ।
ततोऽतिहृष्टमनसासमस्तःकुलसाधकः ॥ १९० ॥

अर्थ-पहले मद्य आस्तरणके लिये उत्तम शुद्धि (मांसादि) ग्रहण करै फिर समस्त कुलसाधक आनन्दित चित्तसे ॥ १९० ॥

स्वस्वपात्रं समादाय परमामृतपूरितम् ।
मूलाधारादिजिह्वान्तां चिद्रूपां कुलकुण्डलीम् ॥१९१॥

अर्थ-उत्तम मद्यसे भरे अपने २ पात्रको ग्रहण कर मूलाधारसे जिह्वान्तव्यापिनी चैतन्यरूप कुलकुण्डिलिनीका ॥ १९१ ॥

विभाव्य तन्मुखाम्भोजे मूलमन्त्रं समुच्चरन् ।
परस्पराज्ञामादाय जुहुयात्कुण्डलीमुखे ॥ १९२ ॥

---

(१) यहांपर, जन्मग्रहण अथवा वयसके अनुसार श्रेष्ठपन ग्राह्य नहीं है अभिषेकके अनुसारही ज्येष्ठपन अनुमानित होताहै ।

अर्थ-ध्यान करके तिसके मुखपद्ममें मूलमंत्र उच्चारण करके परस्पर आज्ञा ले कुण्डलीमुखमें परमामृत दान करे ॥ १९२ ॥

अलिपानं कुलस्त्रीणां गन्धस्वीकारलक्षणम् ।
साधकानां गृहस्थानां पञ्चपात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ १९३॥

अर्थ-कुलस्त्रियोंके लिये मद्यसम्बन्धि गन्धाङ्गीकरण स्वरूप मद्यपानही कहा है । अर्थात् कुलस्त्रियें केवल मद्यकी गन्धको ग्रहण करैं, उसे पियै नहीं । और गृहस्थ साधकोंके लिये पंचपात्र-परिमित मद्यपान कहा है ॥ १९३ ॥

अतिपानात्कुलीनानां सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ १९४॥

अर्थ-अधिक पान करनेसे सिद्धिकी हानि होती है ॥ १९४ ॥

यावन्न चालयेद्दृष्टिं यावन्न चालयेन्मनः ।
तावत्पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम् ॥ १९५ ॥

अर्थ-(यदि पंचपात्रसे अधिक पान करै तौ) जबतक दृष्टि न घूमें, जबतक मन चलायमान नहो, तबतक पिये । इससे अ-धिक पान करना पशुपानके तुल्य है ॥ १९५ ॥

पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणी च शक्तिसाधके ।
स पापिष्ठः कथं ब्रूयादाद्यां कालीं भजाम्यहम्॥१९६॥

अर्थ-जिसको पीते २ भ्रान्ती होजाय और जो शक्तिसाधककी निन्दा करे वह पापी ऐसा कदापि नहीं कह सकता कि मैं आदि कालिकाका भजन करताहूं ॥ १९६ ॥

यथा ब्रह्मार्पितेऽन्नादौ स्पृष्टदोषो न विद्यते ।
तथा तव प्रसादेऽपि जातिभेदं विवर्जयेत् ॥ १९७॥

अर्थ-ब्रह्मसमर्पित अन्नादिमें जिस प्रकार स्पर्शदोष नहीं है, वैसेही तुम्हारे प्रसादमें जातिभेदको छोड देना चाहिये ॥ १९७ ॥

एवमेव विधानेन कुर्य्यात्पानञ्च भोजनम् ।
हस्तप्रक्षालनं नास्ति तव नैवेद्यसेवने ।
लेपावनोदनं कुर्य्याद्वस्त्रेण पाथसापि वा ॥ १९८ ॥

अर्थ–इस प्रकार नियमानुसार पान भोजन करै तुम्हारी नैवेद्य सेवन करके (शुद्धिके लिये) कदापि हाथ नहीं धोवे । वस्त्र या जलसे केवल हाथका लेप छुडा देना योग्य है ॥१९८ ॥

ततो निर्माल्यकुसमं विधृत्य शिरसा सुधीः ।
यन्त्रलेपं कूर्चदेशे विहरेद्देववद्भुवि ॥ १९९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे श्रीपात्रस्थापनहोम-
चक्रानुष्ठानकथनंनाम
षष्ठउल्लासः ॥ ६ ॥

अर्थ–फिर श्रेष्ठ बुद्धिवाला साधक मस्तकपर निर्मल पुष्प धारण करे और यंत्रमेंके पदार्थविशेषसे ललाटपर तिलक लगावे । (इस प्रकारसे जो साधक नियमानुसार पूजा करता है) वह देवताकी समानहो पृथ्वीपर विचरण करता है ॥ १९९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषा-
टीकायां श्रीपात्रस्थापनहोमचक्रानुष्ठानकथनंनाम
षष्ठउल्लासः ॥ ६ ॥

सप्तमउल्लासः ।

श्रुत्वाद्याकालिकादेव्यामन्त्रोद्धारंमहाफलम् ।
सौभाग्यमोक्षजननंब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ॥ १ ॥

अर्थ–(इस प्रकार प्राणियोंको) सौभाग्य और मोक्षका देने

वाला ब्रह्मज्ञानलाभका कारणस्वरूप, महाफलका देनेवाला आदि-कालिकादेवीका मंत्रोद्धार सुनकर ॥ १ ॥

प्रातःकृत्यंतथास्नानंसन्ध्यांसंविद्विशोधनम् ।
न्यासपूजाविधानञ्चबाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ २ ॥

अर्थ–और प्रातःकृत्य स्नान, सन्ध्या, संवित्शोधन, बाह्य व अन्तर भेदसे न्यास और पूजाविधान ॥ २ ॥

बलिप्रदानंहोमञ्चचक्रानुष्ठानमेवच ।
महाप्रसादस्वीकारंपार्वतीहृष्टमानसा ।
विनयावनतादेवीप्रोवाचशंकरंप्रति ॥ ३ ॥

अर्थ–बलिदान, होम, चक्रानुष्ठान और महाप्रसादग्रहणादि क्रियाओंके मंत्र और नियमावली सुनकर देवी पार्वतीजी आनन्दित व विनयावनत होकर महादेवजीसे पूंछतीहुई ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

सदाशिव ! जगन्नाथ!जगतांहितकारक! ।
कृपयाकथितंदेव!पराप्रकृतिसाधनम् ॥ ४ ॥

अर्थ--श्रीदेवीजी बोलीः–हे सदाशिव ! तुम जगत्के नाथ, जगत्के हितकारी हो तुमने कृपायुक्त होकर मुझसे परात्परा प्रकृतिका साधन कहा ॥ ४ ॥

सर्वप्राणिहितकरंभोगमोक्षैककारणम् ।
विशेषतःकलियुगेजीवानामाशुसिद्धिदम् ॥ ५ ॥

अर्थ–यह प्रकृतिका साधन प्राणियोंका हित करनेवाला और भोगमोक्षका कारण है विशेषकरके कलियुगके जीव इस साधन-सेही शीघ्र सिद्धिको प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥

तववागमृताम्भोधौनिमज्जन्ममानसम् ।
नोत्थातुमीहतेस्वैरंभूयःप्रार्थयतेऽचिरात् ॥ ६ ॥

अर्थ-हे देव! मेरा मन आपके वचनरूप सुधासागरमें मग्न हुआ है, फिर उसमेंसे उठनेकी अभिलाषा नहीं बरन मेरा मन फिर आपके वचनामृत पान करनेकी प्रार्थना करता है ॥६॥

पूजाविधौमहादेव्याःसूचितंनप्रकाशितम् ।
स्तोत्रञ्चकवचंदेव!तदिदानींप्रकाशय ॥ ७ ॥

अर्थ-तुमने महादेवीकी पूजाविधिमें स्तोत्र और कवचपाठ करना कहा है; परन्तु उसको प्रकाश नहीं किया. हे देव! अब उसको विशेषतासे कीर्तन कीजिये ॥ ७ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

शृणुदेवि!जगद्वन्द्ये!स्तोत्रमेतदनुत्तमम् ।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्यसर्वसिद्धीश्वरोभवेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिव बोले-हे जगद्वन्द्ये देवी! उस अनुपम स्तोत्रको कहताहूं श्रवण करो । उसके पढने या श्रवण करनेसे सर्व सिद्धि प्राप्तिकी समर्थता होती है ॥ ८ ॥

असौभाग्यप्रशमनंसुखसम्पद्विवर्द्धनम् ।
अकालमृत्युहरणंसर्वापद्विनिवारणम् ॥ ९ ॥

अर्थ-इस्से कुभाग्यका नाश व सुखसम्पत्तिकी वृद्धि होती है और अकालमृत्युका हरण वा आपत्तियोंका निराकरण (दूरहो जाना) होता है ॥ ९ ॥

श्रीमदाद्याकालिकायाःसुखसान्निध्यकारणम् ।
स्तवस्यास्यप्रसादेनत्रिपुरारिरहंशिवे ! ॥ १० ॥

अर्थ-हे देवि ! आदिकालिकाका यह स्तोत्र सुख उपजानेका कारण है मैंने इस स्तोत्रके प्रसादसेही (त्रिपुरासुरका संहार कर) त्रिपुरारिनाम धारण किया है ॥ १० ॥

स्तोत्रस्यास्य ऋषिर्देवि ! सदाशिव उदाहृतः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताद्या कालिका परिकीर्तिता ॥ १० ॥

अर्थ-हे देवि ! इस स्तोत्रके ऋषि सदाशिव छन्द अनुष्टुप् आदि कालिका देवता और धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष इन चतुर्व्वर्गमें इसका विनियोग कीर्तन करना होगा ॥ ११ ॥

ह्रीं काली श्रीं कराली च क्रीं कल्याणी कलावती !
कमला कलिदर्पघ्नी कपर्दीशकृपान्विता ॥ १२ ॥

अर्थ-(अब आद्या देवीका स्तोत्र कहा जाता है) तुम ह्रीं स्वरूपा काली हो, श्रीं स्वरूपा कराली हो और "क्रीं" स्वरूपा कल्याणी हो तुम कलावती, कमला, कलिदर्पघ्नी और कपर्दीश-कृपान्विता हो अर्थात् शिवे कृपावती हो ॥ १२ ॥

कालिका कालमाता च कालानलसमद्युतिः ॥
कपर्दिनी करालास्या करुणामृतसागरा ॥ १३ ॥

अर्थ-तुम कालिका, कालमाता और कालानलकी समान द्युतिवाली अर्थात् तुमारा तेज कालानलकी समान है तुम कप-र्दिनी और करालास्या अर्थात् करालवदनाहो तुम करुणामृत-सागरा हो ॥ १३ ॥

कृपामयी कृपाधारा कृपापारा कृपागमा ।
कृशानुःकपिलाकृष्णाकृष्णानन्दाविवर्द्धिनी ॥ १४ ॥

अर्थ-कृपामयी और कृपाधारा हो तुम कृपापारा और कृपागमा अर्थात् तुम जिसपर कृपा करती हो

वही तुमको जान सक्ता है तुम कृशानु, कपिला, कृष्णा और कृष्णानन्दविवर्द्धिनी हो ॥ १४ ॥

कालरात्रिःकामरूपाकामपाशविमोचनी।
कादम्बिनीकलाधाराकलिकल्मषनाशिनी ॥ १५ ॥

अर्थ-तुम कालरात्री, कामरूपा और कामपाशविमोचिनी हो तुम कादम्बिनी, कलाधारा और कलिकल्मषनाशिनी अर्थात् तुमही कलियुगके पापका नाश करती हो ॥ १५ ॥

कुमारीपूजनप्रीताकुमारीपूजकालया।
कुमारीभोजनानन्दाकुमारीरूपधारिणी ॥ १६ ॥

अर्थ-तुम कुमारीपूजनप्रीता, कुमारीपूजकालया, कुमारीभोजनानन्दा और कुमारीरूपधारिणी हो अर्थात् कुमारीपूजा करनेसे तुमको प्रसन्नता होती है। जिस स्थानमें कुमारीकी पूजा होतीहै तहां तुम रहती हो, कुमारीभोजन करानेसे तुमको आनन्द होता है और तुमही कुमारीरूपसे अवतीर्णा हो ॥ १६ ॥

कदम्बवनसञ्चाराकदम्बवनवासिनी।
कदम्बपुष्पसन्तोषाकदम्बपुष्पमालिनी ॥ १७ ॥

अर्थ-तुम कदम्बवनसंचारा, कदम्बवनवासिनी, कदम्बपुष्पसन्तोषा और कदम्बपुष्पमालिनी हो अर्थात् तुम कदम्बवनमें भ्रमण करतीहो कदम्बवनमें वास करती हो, कदम्बके फूलसे तुमको संतोष होता है और तुम कदम्बके फूलोंकी माला धारण करती हो ॥ १७ ॥

किशोरीकलकण्ठाचकलनादनिनादिनी।
कादम्बरीपानरतातथाकादम्बरीप्रिया ॥ १८ ॥

अर्थ-तुम किशोरी, तुम कलकण्ठा अर्थात् तुम्हारे कंठका स्वर

अतीव गंभीर है. तुम कलनादनिनादिनी, कादम्बरीपानमें रत और कादम्बरीप्रिया हो अर्थात् गौडी मदिरा तुमको अत्यन्त प्यारी है ॥ १८ ॥

कपालपात्रनिरताकङ्कालमाल्यधारिणी ।
कमलासनसन्तुष्टाकमलासनवासिनी ॥ १९ ॥

अर्थ–तुम कपालपात्रनिरता और कपालमालाधारिणी अर्थात् शरीरकी हड्डियोंकी माला धारण करतीहो, तुम कमलासनसंतुष्टा और कमलासनवासिनी हो ॥ १९ ॥

कमलालयमध्यस्थाकमलामोदमोदिनी ।
कलहंसगतिःक्लैब्यनाशिनीकामरूपिणी ॥ २० ॥

अर्थ–तुम कमलालयमध्यस्था और कमलामोदमोदिनी अर्थात् कमलगन्धसे तुमको आनन्द होता है । तुम कलहंसगति (कलहंसकी समानमंथरगामिनी) हो तुम क्लैब्यनाशिनी (भक्तोंका दुःख दूर करतीहो) तुम कामरूपिणी हो ॥ २० ॥

कामरूपकृतावासाकामपीठविलासिनी ।
कमनीयाकल्पलताकमनीयविभूषणा ॥ २१ ॥

अर्थ–तुम कामरूपकृतावासा, कामपाठविलासिनी, कमनीया कल्पलता और कमनीयविभूषणा हो ॥ २१ ॥

कमनीयगुणाराध्याकोमलांगीकृशोदरी ।
कारणामृतसन्तोषाकारणानन्दसिद्धिदा ॥ २२ ॥

अर्थ–तुम कमनीयगुणाराध्या अर्थात् कमनीयगुणोंके द्वाराही तुह्मारी आराधना की जाती है । तुम कोमलांगी, कृशोदरी और कारणामृतसंतोषा अर्थात् मद्यसुधाद्वारा तुमको प्रसन्नता होती

है तुम कारणानन्दासिद्धिदा (कारणद्वारा जिसको आनन्द होता है) उसको सिद्धि देती हो ॥ २२ ॥

कारणानन्दजापेष्टाकारणार्चनहर्षिता ।
कारणार्णवसम्मग्नाकारणव्रतपालिनी ॥ २३ ॥

अर्थ-तुम कारणानन्दजापेष्टा और कारणार्चनहर्षिता हो, जो तुमको कारणसे पूजता है तिसपर तुम प्रसन्न होतीहो तुम कारणरूपी समुद्रमें मग्न हो और कारणव्रतपालिनी हो ॥ २३ ॥

कस्तूरीसौरभामोदाकस्तूरीतिलकोज्ज्वला ।
कस्तूरीपूजनरताकस्तूरीपूजकप्रिया ॥ २४ ॥

अर्थ-तुम कस्तूरीसौरभामोदा (कस्तूरीकी गन्धसे तुम आनन्दित होती हो) तुम कस्तूरीतिलकोज्ज्वला हो (कस्तूरीका तिलक धारण करनेसे अपूर्व दीप्ति प्राप्त करती हो) तुम कस्तूरीपूजनरता और कस्तूरीपूजकप्रिया हो अर्थात् जो कस्तूरीसे तुह्मारी पूजा करता है वह तुमको अत्यन्त प्यारा है ॥ २४ ॥

कस्तूरीदाहजननीकस्तूरीमृगतोषिणी ।
कस्तूरीभोजनप्रीताकर्पूरचन्दनोक्षिता ॥ २५ ॥

अर्थ-तुम कस्तूरीदाहजननी, कस्तूरीमृगतोषिणी, कस्तूरीभोजनसे प्रसन्न, कर्पूरकी सुगन्धसे मुदित होती हो तुम कर्पूरकी माला धारण करती हो और कर्पूरचन्दनोक्षिता अर्थात् तुह्मारे अंगमें सदा कपूरसे मिलाहुआ चन्दन लगा रहता है ॥ २५ ॥

कर्पूरकारणाह्लादाकर्पूरामृतपायिनी ।
कर्पूरसागरस्नाताकर्पूरसागरालया ॥ २६ ॥

अर्थ-तुम कर्पूरकारणसे आनन्दित, कर्पूरअमृतपायिनी और

कर्पूरसागरमें स्नान करनेवाली और कर्पूरसागर तुम्हारा आलय है ॥ २६ ॥

कूर्चबीजजपप्रीताकूर्चजापपरायणा ।
कुलीनाकौलिकाराध्याकौलिकप्रियकारिणी ॥ २७ ॥

अर्थ-तुम "हूं" बीजके जपमें तत्पर व कूर्च्चजपपरायणा हो कुलीना, कौलिकाराध्या और कौलिकप्रियकारिणी हो ॥ २७ ॥

कुलाचाराकौतुकिनीकुलमार्गप्रदर्शिनी ।
काशीश्वरीकष्टहर्त्रीकाशीशवरदायिनी ॥ २८ ॥

अर्थ-तुम कुलाचारा, कौतुकिनी और कुलमार्गकी दिखानेवाली हो, तुम काशीश्वरी, कष्ट हरण करनेवालीहो और काशीश्वरको वरदायिनी हो ॥ २८ ॥

काशीश्वरकृतामोदाकाशीश्वरमनोरमा ॥ २९ ॥

अर्थ-तुम काशीश्वरको आनन्द देनेवाली और काशीश्वरमनोरमा अर्थात् काशीश्वरके मनको मोहनेवाली हो ॥ २९ ॥

कलमञ्जीरचरणक्वणत्काञ्चीविभूषणा ।
काञ्चनाद्रिकृतागाराकाञ्चनाचलकौमुदी ॥ ३० ॥

अर्थ-तुम कलमंजीरचरणा, अर्थात् तुम्हारे चरणयुगलके दोनों मंजरि गंभीर शब्दसे पूर्ण हैं । तुम क्वणत्कांचीविभूषणा अर्थात् तुम मधुरध्वनिपूर्णकांचीगुणसे विभूषिता हो, काञ्चनगिरिपर तुम्हारा वासहै और तुम कांचनाचलकी चांदिनीस्वरूपिणी हो ॥ ३० ॥

कामबीजजपानन्दाकामबीजस्वरूपिणी ।
कुमतिघ्नीकुलीनार्तिनाशिनीकुलकामिनी ॥ ३१ ॥

अर्थ–तुम कामबीजजपानन्दा अर्थात् " क्लीं " बीजरूपसे तुमको प्रसन्नता होती है तुम कामबीजस्वरूपिणीहो । तुम कुमति-और कुलीनार्तिकीनाशिनी हो अर्थात् तुम्हारे प्रसादसेही कुमतिका विनाश और कुलीनोंका दुःख दूर होता है, तुमही कुलका-मिनी हो ॥ ३१ ॥

क्रींह्रींश्रींमन्त्रवर्णेनकालकण्टकघातिनी ।
इत्याद्याकालिकादेव्याःशतनामप्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥
ककारकूटघटितंकालीरूपस्वरूपकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ--क्रीं ह्रीं श्रीं यह तीन वर्ण तुम्हारे स्वरूप हैं। इससे तुम कालकण्टकघातिनीहो हे देवि! । ककारराशिसम्मिलित कालीरूपस्वरूप, आदिकालिका देवीका शतनामस्तोत्र तुमसे कहा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पूजाकालेपठेद्यस्तुकालिकाकृतमानसः ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशुतस्यकालीप्रसीदति ॥ ३४ ॥

अर्थ–जो पुरुष पूजाके समय कालिकादेवीमें चित्त लगाय इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसका मंत्र शीघ्र सिद्ध हो जायगा और कालिका उसपर प्रसन्न हो जातीं हैं ॥ ३४ ॥

बुद्धिंविद्याञ्चलभतेगुरोरादेशमात्रतः ।
धनवान्कीर्त्तिमान्भूयाद्दानशीलोदयान्वितः ॥ ३५ ॥

अर्थ–गुरूके आदेशसे उसको विद्या बुद्धिकी प्राप्ति होती है वह धनी, कीर्तिमान, दाता और दयावान होता है ॥ ३५ ॥

पुत्रपौत्रसुखैश्वर्य्यैर्मोदतेसाधकोभुवि ॥ ३६ ॥
भौमावास्यानिशाभागेमपञ्चकसमन्वितः ।

अर्थ-वह साधकही पृथ्वीपर पुत्र पौत्रादिके साथ सुख स्वच्छन्दतासे आनन्दभोग करता रहता है॥ ३६॥

पूजयित्वामहाकालीमाद्यांत्रिभुवनेश्वरीम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-जो पुरुष मंगलवारी मावस तिथिमें महारात्रीके समय मद्यादि पंचतत्त्वयुक्त होकर त्रिभुवनेश्वरी आदिकालिकाकी पूजा करके ॥ ३७॥

पठित्वाशतनामानिसाक्षात्कालीमयोभवेत्।
नासाध्यंविद्यतेतस्यत्रिषुलोकेषुकिञ्चन ॥ ३८ ॥

अर्थ-इस शतनाम स्तोत्रका पाठ करता है, वह निस्सन्देह कालीमय होजाता है, त्रिभुवनमें उसकी कोई बात असाध्य नहीं रहती ॥ ३८ ॥

विद्यायांवाक्पतिःसाक्षाद्धनेधनपतिर्भवेत्।
समुद्रइवगाम्भीर्य्येबलेचपवनोपमः॥ ३९॥

अर्थ-वह पुरुष विद्याके प्रभावमें साक्षात् वाक्पति, धनमें धनपति, गंभीरतामें समुद्र और बलमें पवनकी समान हो जात है॥ ३९॥

तिग्मांशुरिवदुष्प्रेक्ष्यःशशिवच्छुभदर्शनः।
रूपेमूर्त्तिधरःकामोयोषितांहृदयङ्गमः॥ ४० ॥

अर्थ-उसका तेज सूर्यकी समान तीक्ष्ण और चंद्रमाकी समान सौम्य होजाता है वह मूर्तिमान कामदेवकी समान रूपवानहो कामिनियोंके हृदयको हरण करता है॥ ४०॥

सर्वत्रजयमाप्नोतिस्तवस्यास्यप्रसादतः।
यंयंकामंपुरस्कृत्यस्तोत्रमेतदुदीरयेत्॥ ४१॥

अर्थ-इस स्तुतिके प्रसादसे वह सब जगह विजयको प्राप्त कर-सक्ता है। जिस २ कामना करके इस स्तुतिका पाठ किया जाता है ॥ ४१ ॥

तंतंकाममवाप्नोतिश्रीमदाद्याप्रसादतः ।
रणेराजकुलेद्यूतेविवादेप्राणसङ्कटे ॥ ४२ ॥

अर्थ-श्रीआदिकालिकाके प्रसादसे उसको वह सब कामनायें फलवती होती हैं। संग्राममें राजाके समीपमें, जुआ खेलनेमें, झगडेमें प्राणसंकटमें ॥ ४२ ॥

दस्युग्रस्तेग्रामदाहेसिंहव्याघ्रावृतेतथा ॥ ४३ ॥

अर्थ-चोरके आक्रमणमें ग्रामके दाहमें, सिंहव्याघ्रादि हिंसक जन्तुओंसे पूर्ण ॥ ४३ ॥

अरण्येप्रान्तरेदुर्गेग्रहराजभयेऽपिवा ।
ज्वरदाहेचिरव्याधौमहारोगादिसङ्कुले ॥ ४४ ॥

अर्थ-वनमें वृक्ष, लतादिसे रहित मयदानमें, दुर्गमें ग्रह और राजभयमें, ज्वरदाहमें, सदाके रोगमें, महारोगादिके घेर लैनेमें ॥ ४४ ॥

बालग्रहादिरोगेचतथादुःस्वप्नदर्शने ।
दुस्तरेसलिलेवापिपोतेवातविपद्गते ॥ ४५ ॥

अर्थ-बालग्रहादिरोगमें बुरे स्वप्न देखनेमें, दुष्पार समुद्रमें अथवा प्रबल आंधीसे टकराईहुई नाव पर ॥ ४५ ॥

विचिन्त्यपरमांमायामाद्यांकालींपरात्पराम् ।
यःपठेच्छतनामानिदृढभक्तिसमन्वितः ॥ ४६ ॥

अर्थ-इत्यादि विपदोंमें जो पुरुष परात्परा परमामाया आदि

कालिकाका ध्यानकरके आन्तरिके भक्तिक साथ इस शतनाम-स्तोत्रका पाठकरता रहै ॥ ४६ ॥

सर्वापद्भ्योविमुच्येतदेवि ! सत्यंनसंशयः ।
नपापेभ्योभयन्तस्यनरोगेभ्योभयंक्वचित् ॥ ४७ ॥

अर्थ–हे देवि ! वह सत्य २ ही सब विपात्तियोंसे छूट जाता है । इसमें कोई सन्देह नहीं । उसको न पापका भय रहता और न रोगका भय रहता ॥ ४७ ॥

सर्वत्रविजयस्तस्यनकुत्रापिपराभवः ।
तस्यदर्शनमात्रेणपलायन्तेविपद्गणाः ॥ ४८ ॥

अर्थ--पराभवकी शंकाभी दूर होजातीहै वह सर्वत्र विजय प्राप्त करताहै । उसका दर्शन करते ही विपत्तियें दूर होजातीहैं ॥ ४८॥

सवक्तासर्वशास्त्राणांसभोक्तासर्वसम्पदाम् ।
सकर्त्ताजातिधर्माणांज्ञातीनांप्रभुरेवसः ॥ ४९ ॥

अर्थ–इस (स्तुतिके प्रसादसे) वह पुरुष सर्व्व शास्त्रका वक्ता होताहै सर्व्व सम्पत्तियोंको भोगता है । वह जातिधर्मका कर्ता और जातीवालोंके ऊपर प्रभुता प्राप्त करताहै ॥ ४९ ॥

वाणीतस्यवसेद्वक्त्रेकमलानिश्चलागृहे ।
तन्नाम्नामानवाःसर्वेप्रणमन्तिससम्भ्रमाः ॥ ५० ॥

अर्थ–सरस्वतीजी सदा उसके मुखमें रहती हैं । लक्ष्मीजी अचल होकर उसके गृहमें वास करतीहैं । मनुष्य गण उसका नाम सुन्तेही सम्भ्रमसे प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

दृष्टयातस्यतृणायन्तेह्यणिमाद्यष्टसिद्धयः ।
आद्याकालीस्वरूपाख्यंशतनामप्रकीर्त्तितम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–अणिमादि आठ सिद्धिये उसका दर्शन करतेही तिनकेकी

समान जान पडतीहैं । हे देवि यह तुमसे आदिकालिकाका स्वरूपरूपी शतनामस्तोत्र कीर्तन किया ॥ ५१ ॥

अष्टोत्तरशतावृत्त्यापुरश्चर्यास्यगीयते ।
पुरस्क्रियान्वितंस्तोत्रंसर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-इस स्तोत्रका पुरश्चरण करनेंमें (१०८) एक शत आठ वार इसका पाठ करना चाहिये । ऐसी विधि कहीहै । यह स्तोत्र पुरस्क्रियान्वित होनेसे अभीष्ट फल देता है ॥ ५२ ॥

शतनामस्तुतिमिमामाद्याकालीस्वरूपिणीम् ।
पठेद्वापाठयेद्वापिशृणुयाच्छ्रावयेदपि ॥ ५३ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तोब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥५४॥

अर्थ-जो पुरुष आद्याकालीस्वरूपिणी शतनामस्तुति अपने आप पढता है वा और किसीको पढाता है स्वयं सुनता है अथवा और किसीको सुनाता है वह सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मतुल्य होजाताहै (इसमें सन्देह नहीं) ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

कथितंपरमंब्रह्मप्रकृतेःस्तवनंमहत् ।
आद्यायाःश्रीकालिकायाःकवचंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवनें कहा, हे देवि ! तुमसे परम ब्रह्मस्वरूप प्रकृतिका स्तोत्र प्रकाशित किया । अब आदिकालिकाका कवच कहताहूं, श्रवण करो ॥ ५५ ॥

त्रैलोक्यविजयस्यास्यकवचस्यऋषिःशिवः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताचआद्याकालीप्रकीर्त्तिता ॥ ५६ ॥

अर्थ-इस त्रिलोकविजय करनेवाले कवचके ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप् और देवता आदि कालिका है ॥ ५६ ॥

मायाबीजंबीजमितिरमाशक्तिरुदाहृता ।
क्रींकीलकंकाम्यसिद्धौविनियोगःप्रकीर्त्तितः ॥ ५७ ॥

अर्थ–" ह्रीं " इसका बीज है " श्रीं " इसकी शक्ति है " क्रीं" इसका कीलक और कामसिद्धिमें इसका विनियोग कीर्तन करना पडता है (१) ॥ ५७ ॥

ह्रीमाद्यामेशिरःपातुश्रींकालीवदनंमम ।
हृदयंक्रींपराशक्तिःपायात्कण्ठंपरात्परा ॥ ५८ ॥

अर्थ–(अब कवच कहा जाता है) " ह्रीं " स्वरूपा आद्या मेरे शिरकी और " श्रीं " स्वरूपिणी काली मेरे वदनकी रक्षा करै । " क्रीं " स्वरूपा परा शक्ति मेरे हृदय और परात्परा मेरे कंठकी रक्षा करै ॥ ५८ ॥

नेत्रेपातुजगद्धात्रीकर्णौरक्षतुशंकरी ।
घ्राणंपातुमहामायारसनांसर्वमङ्गला ॥ ५९ ॥

अर्थ–जगद्धात्री मेरे दोनों नेत्रोंकी और शंकरी मेरे दोनों कानोंकी रक्षा करैं । महामाया मेरी नासिकाकी रक्षा और सर्व मंगला मेरी रसनाकी रक्षा करै ॥ ५९ ॥

दन्तान्रक्षतुकौमारीकपोलौकमलालया ।
ओष्ठाधरौक्षमारक्षेच्चिबुकंचारुहासिनी ॥ ६० ॥

अर्थ–कौमारी दन्तपंक्ति और कमलालया मेरे दोनों कपो-

---

(१) ऋषिन्यास यथाः–अस्य कवचस्य सदाशिवः ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः आद्याकाली देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिः क्रीं कीलकं काम्यसिद्ध्यर्थे कवचपाठे विनियोगः शिरसि ओं सदाशिवाय ऋषयेनमः मुखे ओं अनुष्टुप्छन्दसे नमः हृदि ओं आद्याकालिकायै देवतायै नमः गुह्ये ओं ह्रीं बीजाय नमः पादयोः ओं श्रीं-शक्तये नमः सर्वाङ्गे ओं क्रीं कीलकाय नमः काम्यसिद्ध्यर्थे कवचपाठे विनियोगः ॥

लोंकी रक्षा करे क्षमा मेरे ओष्ठ व अधर और चारुहासिनी ठोडी की रक्षा करै ॥ ६० ॥

ग्रीवांपायात्कुलेशानीककुत्पातुकृपामयी ।
द्वौबाहूबाहुदारक्षेत्करौकैवल्यदायिनी ॥ ६१ ॥

अर्थ-कुलेशानी मेरी गर्दनकी और कृपामयी ककुदूकी रक्षा करै ! बाहुदा दौनों बाहौंकी और कैवल्यदायिनी मेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करैं ॥ ६१ ॥

स्कन्धौकपर्दिनीपातुपृष्ठंत्रैलोक्यतारिणी ।
पार्श्वेपायादपर्णामेकटिंमेकमठासना ॥ ६२ ॥

अर्थ-कपर्दिनी दौनों कंधौंकी और त्रैलोक्यतारिणी मेरे पृष्ठ-देशकी रक्षाकरैं अपर्णा मेरे दोनों पार्श्वोंकी और कमठासना मेरी कटिकी रक्षा करैं ॥ ६२ ॥

नाभौपातुविशालाक्षीप्रजास्थानंप्रभावती ।
ऊरूरक्षतुकल्याणीपादौमेपातुपार्वती ॥ ६३ ॥

अर्थ-विशालाक्षी मेरी नाभिकी और प्रभावती मेरे प्रजा-स्थानकी रक्षा करै । कल्याणी दोनों ऊरुकी और पार्वती मेरे दोनों पावोंकी रक्षा करैं ॥ ६३ ॥

जयदुर्गावतुप्राणान्सर्वाङ्गंसर्वसिद्धिदा ।
रक्षाहीनन्तुयत्स्थानंवर्ज्जितंकवचनेच ॥ ६४ ॥

अर्थ-जयदुर्गा मेरे पंचप्राणकी और सर्वसिद्धिदा मेरे सर्वा-ङ्गकी रक्षा करैं । जो जो स्थान कवचमें नहीं कहे हैं ॥ ६४ ॥

तत्सर्वंमेसदारक्षेदाद्याकालीसनातनी ।
इतितेकथितंदिव्यंत्रैलोक्यविजयाभिधम् ॥ ६५ ॥

अर्थ-उन मेरे सब अंगोंकी सनातना आद्याकाली रक्षा करें । हे

देवि ! तुमसे त्रैलोक्यविजयनामक आद्याकालिका देवीका दिव्य कवच कहा ॥ ६५ ॥

कवचंकालिकादेव्याआद्यायाःपरमाद्भुतम् ।
पूजाकालेपठेद्यस्तुआद्याधिकृतमानसः ॥ ६६ ॥

अर्थ-जो पुरुष पूजाके समय देवीमें चित्त लगाय आदिकालिकाके इस परम अद्भुत कवचका पाठ करताहै ॥ ६६ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोतितस्याद्यासुप्रसीदति ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेदाशुकिंकराःक्षुद्रसिद्धयः ॥ ६७ ॥

अर्थ-उसकी सब कामनायें पूरी होती हैं और उसपर आदिकालिकाजी प्रसन्न हो जाती हैं । वह शीघ्र मंत्रसिद्धि प्राप्त करलेता है छोटी सिद्धियें उसकी किंकर होजातीं हैं ॥ ६७ ॥

अपुत्रोलभतेपुत्रंधनार्थीप्राप्नुयाद्धनम् ।
विद्यार्थीलभतेविद्यांकामीकामानवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥

अर्थ-इसकवचके प्रसादसे अपुत्रक पुत्र धनार्थी धन और विद्यार्थी विद्या प्राप्त करनेमें समर्थ होताहै कामीकी कामना पूर्ण होती है ॥ ६८ ॥

सहस्रावृत्तपाठेनवर्म्मणोऽस्यपुरस्क्रिया ।
पुरश्चरणसम्पन्नंयथोक्तफलदंभवेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ-पुरश्चरण करनेमें सहस्रवार इस कवचका पाठ करना पडता है । जो इस कवचका पुरश्चरण होजाता है तो यह यथोक्त फल देताहै ॥ ६९ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमैरक्तचन्दनैः ।
भूर्जेविलिख्यगुटिकांस्वर्णस्थांधारयेद्यदि ॥ ७० ॥

शिखायांदक्षिणेबाहौकण्ठेवासाधकःकटौ ।
तस्याद्याकालिकावश्यावाञ्छितार्थंप्रयच्छति ॥ ७१ ॥

अर्थ–जो साधक अगर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम अथवा लाल चंदनसे भोजपत्रपर यह कवच लिखकर सुवर्णकी गुटिकामें रख चोटीमें, दाहिनी भुजामें, कंठमें या कमरमें धारण करताहै, आदिकालिका उसके निरन्तर वश होकर वांछित फल देतीहै ॥ ७० ॥ ७१ ॥

नकुत्रापिभयंतस्यसर्वत्रविजयीकविः ।
अरोगीचिरजीवीस्याद्बलवान्धारणक्षमः ॥ ७२ ॥

अर्थ–उसको भयकी शंका कहीं नहीं रहती, वह सब जगह विजय पाता और अरोगी बलवान्, धारणक्षम, और चिरंजीवी होकर समय बिताता है ॥ ७२ ॥

सर्वविद्यासुनिपुणःसर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
वशेतस्यमहीपालाभोगमोक्षौकरस्थितौ ॥ ७३ ॥

अर्थ–वह सर्वविद्याओंमें प्रवीणता और सर्व शास्त्रोंके अर्थको जान जाता है, राजालोग उसके वशमें रहते हैं, भोग मोक्ष उसकी हथेलीपर विद्यमान रहती है ॥ ७३ ॥

कलिकल्मषयुक्तानांनिःश्रेयसकरंपरम् ॥ ७४ ॥

अर्थ–निःसन्देह यह कवच कलिके पापसे कलुषित मनुष्योंका मुक्ति देनेवाला है ॥ ७४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कथितंकृपयानाथ!स्तोत्रंकवचमेवच ।
अधुनाश्रोतुमिच्छामिपुरश्चर्य्याविधिंविभो ॥ ७५ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा हेनाथ ! आपने कृपा करके मुझसे यह स्तोत्र व कवच कहा, हे प्रभो! अब पुरश्चरणकी विधि श्रवण करनेकी मुझको इच्छा है ॥ ७५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

योविधिर्ब्रह्ममन्त्राणांपुरश्चरणकर्म्मणि ।
सएवाद्याकालिकायामन्त्राणांविधिरिष्यते ॥ ७६ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा, ब्रह्ममंत्रके पुरश्चरणकर्ममें जो विधि है वही आदिकालिकाके मंत्रकी विधि कही जाती है (१) ॥ ७६ ॥

अशक्ते साधके देवि ! जपपूजाहुतादिषु ।
पूजां संक्षेपतः कुर्य्यात्पुरश्चरणमेव च ॥ ७७ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो साधकमें जप, पूजा, व होमादि अनुष्ठान करनेकी सामर्थ्य न हो तौ संक्षेपसे पूजा और पुरश्चरण करै ॥७७॥

यतो हि निरनुष्ठानात्स्वल्पानुष्ठानमुत्तमम् ।
संक्षेपपूजनं भद्रे ! तत्रादौ शृणु कथ्यते ॥ ७८

अर्थ-क्यों कि बिलकुल अनुष्ठान न करनेकी अपेक्षा थोडाहीं अनुष्ठान करना उत्तम है । हे भद्रे ! पहले संक्षेपपूजाकी विधि कहता हूं श्रवण करो ॥ ७८ ॥

आचम्य मूलमन्त्रेण ऋषिन्यासं समाचरेत् ।
करशुद्धिं ततः कुर्य्यान्न्यासञ्च करदेहयोः ॥ ७९ ॥

अर्थ-पहले तो मूलमंत्रके द्वारा आचमन करके ऋषिन्यास करै । फिर करशुद्धि करके करन्यास और अंगन्यास करै ॥ ७९ ॥

---

(१) आदिकालिकामंत्रके पुरश्चरणमें ३२००० जप जपका दशमा अंश होम, होमका दशमा अंश तर्पण; तर्पणका दशमा अंश अभिषेक और अभिषेकका दशमा अंश ब्राह्मणभोजन करावे । होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मणभोजन जो इन चारोंमें असमर्थ हो तो नियत संख्यासे दूना जप करे ।

ब्रह्मज्ञानमवाप्नोतिश्रीमदाद्याप्रसादतः ।
ब्रह्मज्ञानयुतोमर्त्योजीवन्मुक्तोनसंशयः ॥ ८९ ॥

अर्थ-इस मंत्रका जप करनेपर आदिकालिकाके प्रसादसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है । इसकारण ब्रह्मज्ञानी मनुष्यके जीवन्मुक्त होनेमें कोई सन्देह नहीं ॥ ८९ ॥

नचप्रयासबाहुल्यंकायक्लेशोऽपिनाप्रिये ! ।
आद्याकालीसाधकानांसाधनंसुखसाधनम् ॥ ९० ॥

अर्थ-साधकलोग इस मंत्रको सुखसे साधन कर सक्ते हैं । हे प्रिये ! न इस मंत्रके साधनमें परिश्रम है न कायाक्लेश है ॥ ९० ॥

चित्तसंशुद्धिरेवात्रमन्त्रिणांफलदायिनी ॥ ९१ ॥

अर्थ-इस आदिकालिकाके मंत्रमें चित्तकी शुद्धि होतेही साधक अभीष्ट फलको प्राप्त करनेंमें समर्थ होताहै ॥ ९१ ॥

यावन्नचित्तकलिलंहातुमुत्सहतेव्रती ।
तावत्कर्मप्रकुर्वीतकुलभक्तिसमन्वितः ॥ ९२ ॥

अर्थ-जबतक चित्तकी कलुषता निवारण करनेंमें सामर्थ्य न रखताहो तितने दिनतक साधक कुलभक्तिसे युक्त हो कर्मका अनुष्ठान करे ॥ ९२ ॥

यथावद्विहितंकर्मचित्तशुद्धेर्हिकारणम् ।
आदौमन्त्रंगुरोर्वक्त्राद्गृह्णीयाद्ब्रह्ममन्त्रवत् ॥ ९३ ॥

अर्थ-क्योंकि यथाविधिसे कहा हुआ कर्मानुष्ठानही चित्तकी शुद्धिका कारण है । पहले ब्रह्ममंत्रकी समान यह मंत्रभी गुरूके मुखसे श्रवण करै ॥ ९३ ॥

प्रातःकृत्यादिनियमान्कृत्वाकुर्य्यात्पुरस्क्रियाम् ।

चित्तेशुद्धेमहेशानि ! ब्रह्मज्ञानंप्रजायते ।
ब्रह्मज्ञानेसमुत्पन्नेकृत्याकृत्यंनविद्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ-तिसके उपरान्त प्रातःकृत्यादि नियमानुष्ठान करके पुरश्चरण करै। हे महेशानि ! चित्तके शुद्ध होनेंसे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, इस कारण जब ब्रह्मज्ञान होताहै तब फिर कृत्याकृत्यकी आवश्यकता नहीं रहती ॥ ९४ ॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

कुलंकिंपरमेशान ! कुलाचारश्चकिंविभो ! ।
लक्षणंपञ्चतत्त्वस्यश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ९५ ॥

अर्थ-पार्वतीजीने कहा हे परमेश्वर ! कुल क्या है ? कुलाचार किसको कहते हैं? और पंचतत्वके लक्षण कैसे हैं? इन सब बातोंको जाननेंकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ९५ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

सम्यक्पृष्टंकुलेशानि ! साधकानांहितैषिणि ।
कथयामितवप्रीत्यैयथावदवधारय ॥ ९६ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा हे कुलेश्वरि ! तुम साधक लोगोंका हित करनेवाली हो; तुमनें श्रेष्ठ विषय पूछा है। तुम्हारी प्रसन्नताके लिये मैं सब बातैं प्रकाशित करता हूं तुम सुनो ॥ ९६ ॥

जीवः प्रकृतितत्त्वञ्चदिक्कालाकाशमेव च ।
क्षित्यप्तेजोवायवश्चकुलमित्यभिधीयते ॥ ९७ ॥

अर्थ-जीव, प्रकृतितत्व, दिक्, काल, आकाश, पृथ्वी, अप (जल) तेज और वायु यह नव कुल कहे जाते हैं ॥ ९७ ॥

ब्रह्मबुद्ध्यानिर्व्विकल्पमेतेष्वाचरणञ्च यत् ।
कुलाचारःसएवाद्ये धर्म्मकामार्थमोक्षदः ॥ ९८ ॥

अर्थ—हे आद्ये ! इन जीवादि नव कुलोंमें ब्रह्मविषयिणी बुद्धिसे नानाविध कल्पनाशून्य जो आवरण हैं, वही कुलाचार कहा जाताहै । इस कुलाचारसे धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, यह चारों फल मिलते हैं ॥ ९८॥

बहुजन्मार्जितैःपुण्यैस्तपोदानदृढ़व्रतैः ।
क्षीणाघानांसाधकानांकुलाचारेमतिर्भवेत् ॥ ९९ ॥

अर्थ—जिन्होंनें तप, दान, और दृढ़व्रतादि करके जन्म जन्मान्तरमें बहुतसा पुण्य इकट्ठा कियाहै, उन्हीं सब पापरहित साधकोंके कुलाचारमें मति उत्पन्न होती है ॥ ९९ ॥

कुलाचारगताबुद्धिर्भवेदाशुसुनिर्म्मला ।
तदाद्याचरणाम्भोजेमतिस्तेषांप्रजायते ॥ १०० ॥

अर्थ—कुलाचारमें लगनेपर बुद्धि अति शीघ्र विमल हो जाती है । बुद्धिकी विमलता होनेपर आदिदेवीके चरणकमलमें मन लग जाता है ॥ १०० ॥

सद्गुरोःसेवयाप्राप्यविद्यामेनांपरात्पराम् ।
कुलाचाररताभूत्वापञ्चतत्त्वैःकुलेश्वरीम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—जो सद्गुरूकी सेवा करके परेसे परे मंत्ररूपी विद्याको प्राप्त करके कुलाचारमें निरत होकर पंचतत्वसे कुलेश्वरी ॥ १०१ ॥

यजन्तःकालिकामाद्यांकुलज्ञाःसाधकोत्तमाः ।
इहभुक्त्वाखिलान्भोगान्व्रजन्त्यन्तेनिरामयम्॥१०२॥

अर्थ—आदिकालिकाकी पूजा करता है वही कुलज्ञहै । वही साधकोंमें श्रेष्ठ है । वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तकालमें मोक्षपदको पाताहै ॥ १०२ ॥

महौषधंयज्जीवानांदुःखविस्मारकंमहत् ।
आनन्दजनकंयच्चतदाद्यतत्त्वलक्षणम् ॥ १०३ ॥

अर्थ-आदितत्त्वके लक्षण इस प्रकार कहेहैं कि यह महौषधिकी समान रूपवाले हैं (इस तत्वको जानकर अपने दुःखोंको भूल जातेहैं) और यह अत्यन्त आनन्ददायक हैं ॥ १०३ ॥

असंस्कृतञ्चयत्तत्त्वंमोहदंभ्रमकारणम् ।
विवादरोगजननन्त्याज्यंकौलैःसदाप्रिये ! ॥ १०४ ॥

अर्थ-परन्तु आदितत्व शुद्ध न होनेपर केवल मोह और भ्रमका कारण हो उठता है विवाद और रोगका कारणहोजाताहै अतएव हे प्रिये ! कौलिकगण संस्कार न किये हुए तत्वको सदा छोडदें ॥ १०४ ॥

ग्राम्यवायव्यवन्यानामुद्भूतंपुष्टिवर्द्धनम् ।
बुद्धितेजोबलकरंद्वितीयतत्त्वलक्षणम्॥ १०५ ॥

अर्थ-ग्राम्य छागादि, वायव्य-तित्तिरी (तीतर) आदि पक्षी वन्य-मृगादि, इनकी देहसे उत्पन्न पुष्टिकर और बुद्धि, तेज और बलदाता, यही दूसरे तत्वका लक्षण है ॥ १०५ ॥

जलोद्भवंयत्कल्याणि ! कमनीयंसुखप्रदम् ।
प्रजावृद्धिकरञ्चापितृतीयंतत्त्वलक्षणम् ॥ १०६ ॥

अर्थ-हे कल्याणि ! तीसरा तत्व,-प्रजाकी वृद्धि करनेवाला जलपर उत्पन्न हुआ और सुखदाई है ॥ १०६ ॥

सुलभंभूमिजातञ्चजीवानांजीवनञ्चयत् ।
आयुर्म्मूलंत्रिजगतांचतुर्थंतत्त्वलक्षणम् ॥ १०७ ॥

अर्थ-चौथा तत्व पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ जीवका जीवनस्वरूप त्रिलोकीकी आयुका मूलकारण है ॥ १०७ ॥

महानन्दकरंदेवि ! प्राणिनांसृष्टिकारणम् ।
अनाद्यन्तजगन्मूलंशेषतत्त्वस्यलक्षणम् ॥ १०८ ॥

अर्थ–हे देवि ! अत्यन्त आनन्दका करनेवाला, प्राणियोंकी उत्पत्तिका हेतु आदि और अन्तरहित जगत्का मूलकारण है । इस प्रकार पिछले तत्वके लक्षण कहे हैं ॥ १०८ ॥

आद्यतत्त्वंविद्धितेजोद्वितीयंपवनंप्रिये ! ।
अपस्तृतीयंजानीहिचतुर्थंपृथिवींशिवे ! ॥ १०९ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! तेजही आदितत्व है, पवन दूसरा तत्व तीसरा जल और चौथा तत्व पृथ्वीकों जानो ॥ १०९ ॥

पञ्चमंजगदाधारावियद्विद्धिवरानने ! ॥ ११० ॥

अर्थ–हे वरानने ! यह जगदाधार आकाशमण्डलही पांचवा तत्व है ॥ ११० ॥

इत्थंज्ञात्वाकुलेशानि ! कुलन्तत्त्वानिपञ्चच ।
आचारंकुलधर्म्मस्यजीवन्मुक्तोभवेन्नरः ॥ १११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे स्तोत्रकवचकुलतत्व-
लक्षणकथनंनाम सप्तम उल्लास ॥ ७ ॥

अर्थ–हे कुलेश्वरि ! जो मनुष्य इस प्रकारसे नव कुल पंचतत्व और कुलधर्मके आचारको जानकर (कर्मानुष्ठान करता है) उसके जीवन्मुक्त होनेमें संदेह नहीं ॥ १११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-
सदाशिवसंवादे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां स्वोत्रकव-
चकुलतत्वलक्षणकथनं नाम

सप्तम उल्लासः ॥ ७ ॥

अष्टमउल्लासः।

श्रुत्वाधर्म्मान्बहुविधान्भवानीभवमोचिनी।
हितायजगतांमाताभूयःशङ्करमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त भवपाशविमोचिनी जननी पार्वतीजीने इस प्रकार बहुविध धर्मविषय श्रवण करके जगत्के हितका अनुष्ठान करनेकी वासनासे फिर महादेवजीसे पूछा ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच।

श्रुतंबहुविधंधर्म्ममिहामुत्रसुखप्रदम्।
धर्म्मार्थकामदंविघ्नहरंनिर्वाणकारणम् ॥ २ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा-हे नाथ! जो इस लोक और परलोकमेंभी सुखका देनेवालाहै,जिसके द्वारा धर्म, अर्थ और काम प्राप्त होता है। विघ्नोंका नाश करनेवाले और मुक्तिप्राप्तिके कारणस्वरूप बहुतसे धर्मविषय तुमसे सुने ॥ २ ॥

साम्प्रतंश्रोतुमिच्छामिब्रूहिवर्णाश्रमान्विभो !।
तत्रयेविहिताचाराःकृपयावदतानपि ॥ ३ ॥

अर्थ-हे प्रभो! अब वर्ण और आश्रमके विषयको जाननेका अभिलाष करती हूं। आप कृपा करके वह सब और वर्णोंमें जैसा आचार विचार कहा गया है वह भलीभांतिसे वर्णन कीजिये ॥

श्रीसदाशिव उवाच।

चत्वारःकथितावर्णाआश्रमाअपिसुव्रते !।
आचाराश्चापिवर्णानामाश्रमाणांपृथक्पृथक् ॥ ४ ॥
कृतादौकलिकालेतुवर्णाःपञ्चप्रकीर्त्तिताः।
ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रःसामान्यएवच ॥ ५ ॥

अर्थ–श्रीसदाशिव कहने लगे– हे सुव्रते ! सत युगादिमें चारों वर्ण और आश्रम और चारों वर्ण और आश्रमोंके आचार अलग २ कहेगये हैं; परन्तु कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और साधारण यह पांच प्रकारके वर्ण कहे हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतेषांसर्व्ववर्णानामाश्रमौद्वौमहेश्वरि ! ।
तेषामाचारधर्मांश्चशृणुष्वाद्ये ! वदामिते ॥ ६ ॥

अर्थ--इन समुदाय ब्राह्मणादि वर्णोंके आश्रम दो प्रकार हैं । हे आद्ये ! महेश्वरि ! तुमसे उन धर्म और आश्रमोंके आचार धर्मका वर्णन करताहूं । श्रवण करो ॥ ६ ॥

पुरैवकथितंतावत्कलिसम्भवचेष्टितम् ।
तपःस्वाध्यायहीनानांनृणामल्पायुषामपि ।
क्लेशप्रयासाशक्तानांकुतोदेहपरिश्रमः ॥ ७ ॥

अर्थ–हे देवि ! कलिकालके मनुष्योंका विषय पहलेही तुमसे कह आया हूं वह तप रहित और वेद पाठसे विरत होंगे । वह दुर्बलताके मारे क्लेश परिश्रम करनेको असमर्थ होंगे । वह अल्पायु होंगे, इसकारण उनसे दैहिक परिश्रमका होना किस प्रकारसे सम्भव है ॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्य्याश्रमोनास्तिवानप्रस्थोऽपिनाप्रिये ! ।
गार्हस्थ्योभैक्षुकश्चैवआश्रमौद्वौकलौयुगे ॥ ८ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! कलियुगमें ब्रह्मचर्याश्रम नहीं है, वानप्रस्थाश्रमभी नहींहै । कलिकालमें मनुष्योंके गार्हस्थ्य और भैक्षुक नामक यह दो आश्रम निरूपित हुएहैं ॥ ८ ॥

गृहस्थस्याक्रियाःसर्व्वाआगमोक्ताःकलौशिवे ! ।
नान्यमार्गैःक्रियासिद्धिःकदापिगृहमेधिनाम् ॥ ९ ॥

अर्थ-हे शिवे! कलिकालमें गृहस्थलोग आगममें कहीहुई विधिके अनुसार कर्मानुष्ठान करैंगे और किसी प्रकारकी विधिका सहारा ले क्रियानुष्ठान करनेसे गृहस्थगण किसी प्रकारसे सिद्धि प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होंगे ॥ ९ ॥

भैक्षुकेऽप्याश्रमेदेवि ! वेदोक्तंदण्डधारणम् ।
कलौनास्त्येवतत्त्वज्ञे ! यतस्तच्छ्रौतसंस्कृतिः ॥ १० ॥

अर्थ-हे देवि! हे तत्वके जान्नेवालि! कलियुगके विषय भैक्षुकाश्रममेंभी वेदोक्त दण्डधारण करनेकी विधि नहीं है। क्योंकि वह वैदिक संस्कार है ॥ १० ॥

शैवसंस्कारविधिनावधूताश्रमधारणम् ।
तदेवकथितंभद्रे ! संन्यासग्रहणंकलौ ॥ ११ ॥

अर्थ-हे भद्रे! कालिकालमें शैवसंस्कारकी विधिके अनुसार अवधूताश्रम धारण करनेकोही संन्यास ग्रहण करना कहतेहैं ॥ ११ ॥

विप्राणामितरेषाञ्चवर्णानांप्रबलेकलौ ।
उभयत्राश्रमेदेवि ! सर्व्वेषामधिकारिता ॥ १२ ॥

अर्थ-देवि! प्रबल कलियुगमें ब्राह्मणादि सर्व वर्णही इन दोनों आश्रमोंके अधिकारी होंगे ॥ १२ ॥

सर्व्वेषामेवसंस्काराःकर्म्माणिशैववर्त्मना ।
विप्राणामितरेषाञ्चकर्म्मलिङ्गंपृथक्पृथक् ॥ १३ ॥

अर्थ-ब्राह्मणादि सर्व वर्णही शैवविधिके अनुसारसे संस्कार और दूसरे कर्मोंका अनुष्ठान करैंगे। परन्तु ब्राह्मण व और वर्णोंके कर्म चिह्न अलग २ सम्पादित होंगे ॥ १३ ॥

जातमात्रोगृहस्थःस्यात्संस्कारादाश्रमीभवेत् ।
गार्हस्थ्यंप्रथमंकुर्य्याद्यथाविधिमहेश्वरि ! ॥ १४ ॥

अर्थ-मनुष्यगण जन्म लेतेही गृहस्थ होतेहैं फिर संस्कार होनेपर आश्रमी होतेहैं। हे महेश्वरि! कलियुगमें प्रथमही यथा-विधानसे ग्रहस्थाश्रमका अवलम्बन करै ॥ १४ ॥

तत्त्वज्ञानेसमुत्पन्नेवैराग्यंजायतेयदा ।
तदासर्वपरित्यज्यसंन्यासाश्रममाचरेत् ॥ १५ ॥

अर्थ-फिर तत्वज्ञान होजानेपर जब हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होजाय, तब सबको छोड़कर संन्यासाश्रमको धारण करै ॥ १५ ॥

विद्यामुपार्जयेद्बाल्येधनंदारांश्चयौवने ।
प्रौढ़धर्म्याणिकर्माणिचतुर्थेप्रव्रजेत्सुधीः ॥ १६ ॥

अर्थ--बालकपनमें विद्या पढै जवानीमें धन उपार्जन करै और विवाह करै। प्रौढ़ समयमें धर्मकर्मका अनुष्ठान करै और बुढ़ा-पेमें संन्यास आश्रमको ग्रहण करै ॥ १६ ॥

मातरंपितरंवृद्धंभार्य्याञ्चैवपतिव्रताम् ।
शिशुञ्चतनयंहित्वानावधूताश्रमंव्रजेत् ॥ १७ ॥

अर्थ-वृद्ध पितामाता, पतिव्रता भार्या, शिशुपुत्र इनको छोड़कर कभी अवधूताश्रमको ग्रहण न करै ॥ १७ ॥

मातॄःपितॄञ्छिशून्दारान्स्वजनान्बान्धवानपि ।
यःप्रव्रजतिहित्वैतान्समहापातकीभवेत् ॥ १८ ॥

अर्थ-जो पुरुष माता, पिता, शिशु पुत्र, भार्या और सगे बन्धु बान्धवादिको छोड़कर संन्यासको ग्रहण करता, वह महापातकी होता है ॥ १८ ॥

मातृहापितृहासस्यात्स्त्रीवधीब्रह्मघातकः ।
असन्तर्प्यस्वपित्रादीन्योगच्छेद्भिक्षुकाश्रमे ॥ १९ ॥

अर्थ-जो पुरुष विना अपने माता पिताको संतुष्ट किये भिक्षुकाश्रममें गमन करताहै । उसको मातापिता और स्त्रीहत्याका पाप लगता है और वह निःसन्देह ब्रह्महत्याके पापसे कलुषित होगा १९

ब्राह्मणोविप्रभिन्नश्चस्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रियाम् ।
शैवेनवर्त्मनाकुर्य्यादेषधर्मःकलौयुगे ॥ २० ॥

अर्थ-ब्राह्मणवर्ण और दूसरे वर्ण शैवमार्गके अनुसारही अपने वर्णकी क्रियाका अनुष्ठान करे । यह कलियुगका सनातन धर्म है ॥ २० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

कोवाधर्म्मोगृहस्थस्यभिक्षुकस्यचकिंविभो ! ।
विप्रस्यविप्राभिन्नानांसंस्कारादीनिमेवद ॥ २१ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा; हे विभो ! गृहस्थोंका धर्म क्याहै ? भिक्षुकोंका धर्म किस प्रकारका है ? ब्राह्मण व दूसरे वर्णोंके संस्काराादि क्याहैं ? वह सब मुझसे भलीभांति कहिये ॥ २१ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

गार्हस्थ्यंप्रथमंधर्म्यंसर्वेषांमनुजन्मनाम् ।
तदेवकथयाम्यादौशृणुकौलिनितत्त्वतः ॥ २२ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा, हे कौलिनि ! गृहस्थधर्म ही मनुष्योंका प्रथम धर्म कहा जाता है, अब पहले गृहस्थधर्मका वर्णन किया जाताहै; तिसको सुन ॥ २२ ॥

ब्रह्मनिष्ठोगृहस्थःस्याद्ब्रह्मज्ञानपरायणः ।
यद्यत्कर्मप्रकुर्वीततद्ब्रह्मणिसमर्पयेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-गृहस्थोंको चाहिये ब्रह्मनिष्ठहों, ब्रह्मज्ञानमें निरतहों, वह जिस२कर्मका अनुष्ठान करेंगे वह समस्त ब्रह्ममें समर्पण करै॥ २३ ॥

नमिथ्याभाषणंकुर्य्यान्नचशाठ्यंसमाचरेत् ।
देवतातिथिपूजासुगृहस्थोनिरतोभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ–गृहस्थोंको मिथ्या वाक्य नहीं कहना चाहिये कपटाचरणका छोड़ना और देवता व अतिथिका सत्कार करना चाहिये२४॥

मातरंपितरञ्चैवसाक्षात्प्रत्यक्षदेवताम् ।
मत्वागृहीनिषेवेतसदासर्वप्रयत्नतः ॥ २५ ॥

अर्थ–अपने मातापिताको साक्षात् देवता स्वरूप जानकर गृहस्थोंको सदा उनकी सेवाका यत्न करना चाहिये ॥ २५ ॥

तुष्टायांमातरिशिवे ! तुष्टेपितरिपार्वति ! ।
तवप्रीतिर्भवेद्देवि ! परब्रह्मप्रसीदति ॥ २६ ॥

अर्थ–हे शिवे ! जो पुरुष मातापिताको संतुष्ट करता है । हे पार्वति ! तुम उसपर प्रसन्न होतीहो । हे देवि ! परब्रह्मभी उसपर प्रसन्न हो जाता है ॥ २६ ॥

त्वमाद्येजगतांमातापिताब्रह्मपरात्परम् ।
युवयोःप्रीणनंयस्मात्तस्मात्किंगृहिणान्तपः ॥ २७ ॥

अर्थ–हे आद्ये ! तुम्हीं जगत्की माता और परात्पर ब्रह्महीं जगत्के पिता हैं । इस कारण जो–गृहस्थलोग मातापितारूप तुमको संतुष्ट करते हैं उनको तप करनेंकी क्या आवश्यकताहै॥२७॥

आसनंशयनंवस्त्रंपानम्भोजनमेव च ।
तत्तत्समयमाज्ञायमात्रेपित्रेनियोजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ–सुअवसर देखकर मातापिताको आसन, शेज, वस्त्र, पानी और भोजनादि दे ॥ २८ ॥

श्रावयेन्मृदुलांवाणींसर्वदाप्रियमाचरेत् ।
पित्रोराज्ञानुसारीस्यात्सत्पुत्रःकुलपावनः ॥ २९ ॥

अर्थ-कुलका पवित्र करनेवाला सुपुत्र उनसे मीठे २ वचन कहै । सदा वह काम करै जो उनको अच्छा लगे । सदा उनकी आज्ञामें रहै ॥ २९ ॥

औद्धत्यंपरिहासञ्चतर्ज्जनंपरिभाषणम् ।
पित्रोरग्रेनकुर्वीतयदीच्छेदात्मनोहितम् ॥ ३० ॥

अर्थ-जो अपना हित चाहता वह कदापि मातापिताके धोरे ऊधम न मचावै वा परिहास नहीं करै उनके निकट (सेवकादि किसीको) डांटे या बुरे वचन कहै नहीं ॥ ३० ॥

मातरंपितरंवीक्ष्यनत्वोत्तिष्ठेत्ससम्भ्रमः ।
विनाज्ञयानोपविशेत्संस्थितःपितृशासने ॥ ३१ ॥

अर्थ-मातापिताको देखतेही साधक प्रणाम करके उठ बैठे विना उनकी आज्ञा लिये आसनपर नहीं बैठे; उनकी आज्ञाके वशमें रहै ॥ ३१ ॥

विद्याधनमदोन्मत्तोयःकुर्य्यात्पितृहेलनम् ।
सयातिनरकंघोरंसर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ३२ ॥

अर्थ-जो पुरुष विद्या और धनके मदसे मत्त होकर मातापिता को कुछ नहीं समझता वह सब धर्मोंके बाहिरे होकर घोर नरकमें जाता है ॥ ३२ ॥

मातरंपितरंपुत्रंदारानतिथिसोदरान् ।
हित्वागृहीनभुञ्जीयात्प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ ३३ ॥

अर्थ-यदि प्राण कंठमें आजाँय तौभी गृहस्थोंको चाहिये कि माता, पिता, पुत्र, भार्या, अतिथि और सहोदर विना इनको दिये कदापि भोजन न करै ॥ ३३ ॥

वञ्चयित्वागुरून्बन्धून्योभुङ्क्तेस्वोदरम्भरः ।
इहैवलोकेगर्ह्योऽसौपरत्रनारकीभवेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ-जो पुरुष माता, पिता, भ्राता, बन्धु बान्धवादि स्वजनोंको न देकर अपनाही पेट भरनेको भोजन करता है, वह इस लोकमें महानिन्दित और परलोकके बीच घोर नरकमें पडता है ॥ ३४ ॥

गृहस्थोगोपयेद्दारान्विद्यामभ्यासयेत्सुतान् ।
पोषयेत्स्वजनान्बन्धूनेषधर्मःसनातनः ॥ ३५ ॥

अर्थ-गृहस्थोंको अपनी भार्याकी रक्षा करनी चाहिये । पुत्रोंको विद्या पढानी चाहिये स्वजन और बन्धु बान्धवोंका भरण पोषण करना चाहिये । यही उनका सनातन धर्म है ॥ ३५ ॥

जनन्यावर्द्धितोदेहोजनकेनप्रयोजितः[1] ।
स्वजनैःशिक्षितःप्रीत्यासोऽधमस्तान्परित्यजेत् ॥३६॥

अर्थ-मातासे अपने शरीरकी पुष्टि होती है जन्मदाता पितासे देहकी उत्पत्ति होतीहै । अपने सगे प्रीतिके कारण शिक्षा देतेहैं बस उन सबका त्याग करदेनेवाला नराधम होताहै (इसमें संदेह नहीं है) ॥ ३६ ॥

एषामर्थेमहेशानि ! कृत्वाकष्टशतान्यपि ।
प्रीणयेत्सततंशक्त्याधर्मोह्येषसनातनः॥ ३७ ॥

अर्थ-हे महेशानि ! शत २ कष्ट स्वीकार करके भी इन लोगोंको सन्तुष्ट करे, यही सनातन धर्महै ॥ ३७ ॥

सधन्यःपुरुषोलोकेसकृतीपरमार्थवित् ।
ब्रह्मनिष्ठःसत्यसन्धोयोभवेद्भुविमानवः॥ ३८ ॥

अर्थ-जो पुरुष, ब्रह्मनिष्ठ और सत्यप्रतिज्ञ होकर कर्मानुष्ठान करता है पृथ्वीमें वही महापुरुष धन्य है और वही पुरुष परमार्थ-ज्ञानको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ३८ ॥

---

१ जनकेनप्रपोषितः इति पाठान्तरम् ।

नभार्य्यान्ताड़येत्क्कापिमातृवत्पालयेत्सदा।
नत्यजेद्धोरकष्टेऽपियदिसाध्वीपतिव्रता॥३९॥

अर्थ—गृहस्थोंको चाहिये कि वहभी अपनी भार्याको ताडना नहीं करे सदा माताकी समान पालन करे। चाहे जैसा घोर कष्ट पडनेपरभी साध्वी भार्याको नहीं छोडे॥ ३९॥

स्थितेषुस्वीयदारेषुस्त्रियमन्यांनसंस्पृशेत्।
दुष्टेनचेतसाविद्वानन्यथानारकीभवेत्॥ ४०॥

अर्थ—अपनी भार्याके रहते कदापि दूसरी स्त्रीको नहीं स्पर्शकरे। मनहीं मनमें पराई स्त्रीके स्पर्शकी कल्पना करलेनेसे मन विकारको प्राप्त होजाताहै। बुद्धिमानको चाहिये कि मन २ में भी पराई स्त्रीकी कामना न करे। क्योंकि ऐसा करनेसे घोर नरकमें गिरना पडता है॥ ४०॥

विरलेशयनंवासंत्यजेत्प्राज्ञःपरस्त्रिया।
अयुक्तभाषणञ्चैवास्त्रियंशोर्य्यंन्नदर्शयेत्॥ ४१॥

अर्थ—बुद्धिमानमनुष्यको उचित है कि पराई स्त्रीके साथ एकान्तमें शयन या एकान्तमें वास नहीं करे। किसी स्त्रीसे अनुचित बात न कहे और शूरता न दिखावै॥ ४१॥

धनेनवाससाप्रेम्णाश्रद्धयामृदुभाषणैः।
सततंतोषयेद्दारान्नाप्रियंक्वचिदाचरेत्॥ ४२॥

अर्थ—धन, वस्त्र, प्रेम, श्रद्धा, अमृतवचनादिसे सदा अपनी भार्याको संतुष्ट करे, कभी उसको बुरा लगनेवाला आचरण न करे॥ ४२॥

उत्सवेलोकयात्रायांतीर्थेष्वन्यनिकेतने।
नपत्नींप्रेषयेत्प्राज्ञःपुत्रामात्यविवर्जिताम्॥ ४३॥

अर्थ-श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुषको चाहिये कि उत्सवमें लोकयात्रामें तीर्थमें पराये घरमें पुत्र अथवा औरकिसी सगेको विना साथ किये अकेला अपनी स्त्रीको कहीं न भेजे ॥ ४३ ॥

यस्मिन्नरेमहेशानि ! तुष्टाभार्य्यापतिव्रता ।
सर्वोधर्मःकृतस्तेनभवतिप्रियएवसः ॥ ४४ ॥

अर्थ-हे महेशानि ! जिस पुरुषपर पतिव्रता भार्या संतुष्ट रहती है वह सब धर्मोंसे उत्पन्न हुए फलको प्राप्त करता है और वह तुम्हारा प्रीतिपात्र होता है ॥ ४४ ॥

चतुर्वर्षावधिसुतान् लालयेत्पालयेत्पिता ।
ततःषोड़शपर्य्यन्तंगुणान्विद्याश्चशिक्षयेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-पिताको चार वर्षतक पुत्रका लालन पालन करना चाहिये सोलह वर्षतक विद्या और गुण सिखाने चाहिये ॥ ४५ ॥

विंशत्यब्दाधिकान्पुत्रान्प्रेरयेद्गृहकर्मसु ।
ततस्तांस्तुल्यभावेन मत्वास्नेहंप्रदर्शयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-फिर वीस वर्षकी आयुतक गृह कार्यमें लगादे तदनन्तर अपनी समान जानकर स्नेह दिखावै ॥ ४६ ॥

कन्याप्येवंपालनीयाशिक्षणीयातियत्नतः ।
देयावरायविदुषेधनरत्नसमान्विता ॥ ४७ ॥

अर्थ-इस प्रकार कन्याकाभी यत्नसे पालन करके उसको यत्नके साथ शिक्षादे । फिर धनरत्नसे शोभायमान करके ज्ञानवान वरको दान कर देना चाहिये ॥ ४७ ॥

एवंक्रमेणभ्रातॄंश्चस्वसृभ्रातृसुतानपि ।
ज्ञातीन्मित्राणिभृत्यांश्चपालयेत्तोषयेद्गृही ॥ ४८ ॥

अर्थ-इस प्रकारसे गृहस्थोंको बन्धु, बान्धव, भानजा, भतीजा, जातिवाले मित्र और सेवकोंका भरण पोषण करना उचित है। और इनको संतुष्टभी करना चाहिये ॥ ४८ ॥

ततः स्वधर्मनिरतानेकग्रामनिवासिनः ।
अभ्यागतानुदासीनान्गृहस्थःपरिपालयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-फिर गृहस्थके (समर्थ होनेपर) अपने धर्मके मनुष्योंका, एक ग्रामवासी, अभ्यागत पाहुने व उदासियोंका प्रतिपालन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

यद्येवंनाचरेद्देवि ! गृहस्थोविभवेसति ।
पशुरेवसविज्ञेयःसपापीलोकगर्हितः ॥ ५० ॥

अर्थ-हे देवि ! विभव होनेपरभी गृहस्थ यदि ऐसा आचरण न करे तो उसको घोर पापमें लिप्त लोकनिन्दित और पशुकी समान मानना चाहिये ॥ ५० ॥

निद्रालस्यंदेहयत्नंकेशविन्यासमेव च ।
आसक्तिमशनेवस्त्रेनातिरिक्तंसमाचरेत् ॥ ५१ ॥

अर्थ-निद्रा, आलस्य, शरीरका यत्न, बाल काढना, खाने पहरनेमें आसक्ति, इन बातोंको अधिकाईसे न करै ॥ ५१ ॥

युक्ताहारोयुक्तनिद्रोमितवाङ्मितमैथुनः ।
स्वच्छोनम्रःशुचिर्दक्षोयुक्तःस्यात्सर्वकर्मसु ॥ ५२ ॥
शूरःशत्रौविनीतःस्याद्बान्धवेगुरुसन्निधौ ।
जुगुप्सितान्नमन्येतनावमन्येतमानिनः ॥ ५३ ॥

अर्थ-गृहस्थोंको परिमित भोजन और परिमित निद्राका सेवन करना चाहिये । परिमाणसे बोलना चाहिये, परिमाणसे मैथुन करना चाहिये । कपट छोड़ देना चाहिये । सदा शुद्ध सब

कर्ममें निरालस्य और नम्र होकर समय बिताना चाहिये शत्रुके निकट शूरता और बन्धु बान्धव व गुरुके समीप विनयका दिखाना योग्य है निंदित जनोंका आदर करना योग्य नहीं मानी जनों-का सन्मान करना चाहिये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

सौहार्दंव्यवहारांश्चप्रवृत्तिप्रकृतिंनृणाम् ।
सहवासेनतर्कैश्चविदित्वाविश्वसेत्ततः ॥ ५४ ॥

अर्थ-साथ रहके और भलीभांति सोच विचारके मनुष्यका स्वभाव, सौहार्द, व्यवहारादि और स्वभाव व प्रवृत्ति जानकर उसका विश्वास करना चाहिये ॥ ५४ ॥

त्रसेद्द्वेष्टुरपिक्षुद्रात्समयंवीक्ष्यबुद्धिमान् ।
प्रदर्शयेदात्मभावान्नैवधर्मंविलंघयेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-बुद्धिमान पुरुषको लघु शत्रुसेभी भय करना चाहिये और समयानुसार अपना प्रभाव दिखावै कदापि धर्ममार्गको नहीं छोड़े ॥ ५५ ॥

स्वीयंयशःपौरुषञ्चगुप्तयेकथितञ्चयत् ।
कृतंयदुपकारायधर्मज्ञोनप्रकाशयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ-धर्मवान् पुरुषको चाहिये कि पराया उपकार करके उसको प्रकाशित नहीं करे, अपने यश और पौरुषका वखानभी न करै। पराई गुप्त वातभी किसीसे न कहै ॥ ५६ ॥

जुगुप्सितप्रवृत्तौचानिश्चितेऽपिपराजये ।
गुरुणालघुनाचापियशस्वीनविवादयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ-यशवान पुरुषको उचित है कि निश्चय पराजयकी सम्भावना होनेपरभी कभी लोकगर्हितकार्य नहीं करे और छोटे या बड़े पुरुषके साथ कभी लड़ाई झगड़ा नहीं करे ॥ ५७ ॥

विद्याधनयशोधर्मान्यतमानउपार्जयेत् ।
व्यसनञ्चासतांसङ्गंमिथ्याद्रोहंपरित्यजेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ-यत्नसे विद्या, धन, यश और धर्मको उपार्जन करे। व्यसन असज्जन संसर्ग, मिथ्यावचन, क्लेशादि छोड़ देवै ॥ ५८ ॥

अवस्थानुगताश्चेष्टाःसमयानुगताःक्रियाः ।
तस्मादवस्थांसमयंवीक्ष्यकर्मसमाचरेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ-चेष्टा अवस्थाकी अनुगामिनी है, क्रिया समयकी अनुगामिनी है, अतएव अवस्था और समयके अनुसारही कर्मानुष्ठान करे ॥ ५९ ॥

योगक्षेमरतोदक्षोधार्मिकःप्रियबान्धवः ॥
मितवाङ्मितहासःस्यान्मान्यायेतुविशेषतः ॥ ६० ॥

अर्थ-गृहस्थोंको योग और क्षेममें अनुरागी होना चाहिये दास और धार्मिककी समान न्यायका आचरण करै। बन्धुओंपर सौहार्दता दिखावै (सबको सामने) विशेष करके माननीय जनोंके निकट परिमित वचन कहै उनके निकट बैठकर बहुत हंसे नहीं॥ ६०॥

जितेन्द्रियःप्रसन्नात्मासुचिन्त्यःस्याद्दृढव्रतः ।
अप्रमत्तोदीर्घदर्शीमात्रास्पर्शान्विचारयेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ-गृहस्थको जितेन्द्रिय, प्रसन्नचित्त, सुचिन्त्य, दृढ़व्रतधारी, अप्रमत्त और दीर्घदर्शी होना चाहिये इन्द्रियोंकी वृत्तिके विषयमें भलीभांति न विचार करके कोई काम न करै ॥ ६१ ॥

सत्यंमृदुप्रियंधीरोवाक्यंहितकरंवदेत् ।
आत्मोत्कर्षन्तथानिन्दांपरेषांपरिवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ-धीर पुरुषको सदा सत्य, मृदु, प्रिय और हितकारी वचन कहना चाहिये अपनी बड़ाई और पराई निन्दा करना उचित नहीं ६२

जलाशयाश्चवृक्षाश्चविश्रामगृहमध्वनि ।
सेतुःप्रतिष्ठितोयेनतेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६३ ॥

अर्थ-मार्गमें जो पुरुष तालाव खुदवाताहै, वृक्ष लगवाताहै विश्रामगृह (सराय) बनवाताहै और सेतुकी प्रतिष्ठा कराताहै, वह पुरुषही (पुण्यके फलसे) त्रिलोकीको जीत लेताहै ॥ ६३ ॥

सन्तुष्टौपितरौयस्मिन्ननुरक्ताःसुहृद्गणाः ।
गायन्तियद्यशोलोकास्तेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६४ ॥

अर्थ-जिसपर माता पिता संतुष्टहैं सुहृद् गण, जिसमें अनुराग करते हैं, मनुष्य जिसके यशको गातेहैं, वह पुरुषही (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेताहै ॥ ६४ ॥

सत्यमेवव्रतंयस्यदयादीनेषुसर्वथा ॥
कामक्रोधौवशेयस्यतेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ-सत्यही जिसका सनातन व्रतहै, जो पुरुष दीन दरिद्रपर दया दिखाताहै, काम और क्रोध जिसके वशमें हैं वह पुरुषही (पुण्यके फलसे) त्रिभुवनको जीत लेताहै ॥ ६५ ॥

विरक्तःपरदारेषुनिःस्पृहःपरवस्तुषु ।
दम्भमात्सर्य्यहीनोयस्तेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-जो पुरुष परनारीसे विरागी रहताहै, पराये द्रव्यकी इच्छा नहीं करता, जो पुरुष दम्भ और मात्सर्यसे हीनहै, वह पुरुषही (पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेताहै ॥ ६६ ॥

नबिभेतिरणाद्योवैसंग्रामेऽप्यपराङ्मुखः ।
धर्मयुद्धेमृतोवापितेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६७ ॥

अर्थ-जो पुरुष रणमें डरता नहीं, समरसे विमुख नहीं होता और जो पुरुष धर्मयुद्धमें प्राण त्याग देता है, वह पुरुषही, (पुण्य फलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६७ ॥

असंशयात्मासुश्रद्धःशाम्भवाचारतत्परः ।
मच्छासनेहितोयश्चतेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ-जिसकी आत्मा सन्दिग्ध नहीं है, जो पुरुष श्रद्धायुक्त और शैवाचारमें निरत होकर मेरे शासनके वश रहता है, वह पुरुषही (पुण्यफलसे) त्रिभुवनको जीत लेता है ॥ ६८ ॥

ज्ञानिनालोकयात्रायैसर्वत्रसमदृष्टिना ।
क्रियन्तेयेनकर्माणितेनलोकत्रयंजितम् ॥ ६९ ॥

अर्थ--जो ज्ञानी पुरुष लोकयात्रासिद्ध करनेके लिये शत्रु या मित्र सबके ऊपर बराबर दृष्टि रखकर कर्मका अनुष्ठान करताहै वह पुरुषही (पुण्यकेफलसे) त्रिभुवनको जीत लेताहै ॥ ६९ ॥

शौचन्तुद्विविधन्देवि! बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
ब्रह्मण्यात्मार्पणंयत्तच्छौचमान्तरिकंस्मृतम् ॥ ७० ॥

अर्थ-हे देवि! बाहिरी और आभ्यन्तरिक यह दो प्रकारके शौचहैं।ब्रह्ममें आत्मसमर्पण करनेको आन्तरिक शौच कहतेहैं॥७०॥

अद्भिर्व्वाभस्मनावापिमलानामपकर्षणम् ।
देहशुद्धिर्भवेद्येनबाहिःशौचंतदुच्यते ॥ ७१ ॥

अर्थ-जलसे या भस्मसे मलको दूर करके जो देहकी शुद्धि की जाती है उसको बाहिरी शौच कहते हैं ॥ ७१ ॥

गङ्गानद्योह्रदावाप्यस्तथाकूपाश्चक्षुल्लकाः ।
सर्व्वपवित्रजननंस्वर्णदीक्रमतःप्रिये ! ॥ ७२ ॥

अर्थ-हे प्रिये! गंगा, नदी, कुण्ड, वापी, कूप, स्वर्णदी मन्दाकिनी और सरोवरमें स्नान करनेसे शरीर पवित्र होजाता है ॥ ७२ ॥

भस्मात्रयाज्ञिकंश्रेष्ठंमृत्स्नातुमलवर्ज्जिता ।
वासोऽजिनतृणादीनिमृद्वज्जानीहिसुव्रते ! ॥ ७३ ॥

अर्थ–हे सुव्रते ! । बाहिरी शौचके विषयमें याज्ञिक स्नान भस्म-के द्वारा ही श्रेष्ठ है । निर्मल मृत्तिकासे भी ऐसा स्नान हो सक्ता है । वस्त्र, मृग, चर्म, तृणादि और मृत्तिका यह बराबर पवित्र है ॥ ७३ ॥

किमत्रबहुनोक्तेनशौचाशौचविधौशिवे ! ।
मनःपूतंभवेद्येनगृहस्थस्तत्तदाचरेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ–हे शिवे ! इस शौच और अशौचके विषयमें अधिक और क्या कहा जाय, गृहस्थको वैसा आचरण करना चाहिये जिस्से मन पवित्र हो जाय ॥ ७४ ॥

निद्रान्तेमैथुनस्यान्तेत्यागान्तेमलमूत्रयोः ।
भोजनान्तेमलेस्पृष्टेबाहिःशौचंविधीयते ॥ ७५ ॥

अर्थ–निद्राके पश्चात् स्त्रीभोगके पीछे मल मूत्र त्यागनेपर भोजनके बाद अथवा मलस्पर्श होनेपर तदुपरान्त ऐसा बाहिरी शौच शास्त्रमें लिखा है ॥ ७५ ॥

सन्ध्यात्रैकालिकीकार्य्यावैदिकीतान्त्रिकीक्रमात् ।
उपासनायाभेदेनपूजांकुर्य्याद्यथाविधि ॥ ७६ ॥

अर्थ–त्रिकालीन वैदिकी और तांत्रिकी संध्या क्रमानुसार करनी चाहिये और उपासनाके भेदसे यथाविधान पूजा करे ॥ ७६ ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकानांगायत्रीजपतांप्रिये ! ।
ज्ञानाद्ब्रह्मेतितद्वाच्यंसन्ध्याभवतिवैदिकी ॥ ७७ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! जो लोग ब्रह्ममंत्रके उपासक हैं वह जिस समय गायत्री जप करैं, वह गायत्रीका प्रतिपाद्य ब्रह्मको समझैं, ऐसे समझनेसे वैदिक संध्या होजायगी ॥ ७७ ॥

अन्येषांवैदिकीसन्ध्यासूर्य्योपस्थानपूर्व्वकम् ।
अर्घ्यदानन्दिनेशायगायत्रीजपनन्तथा ॥ ७८ ॥

अर्थ-जो ब्रह्मोपासक नहीं हैं उन लोगोंको सन्ध्योपासनाके समय सूर्यकी उपासना, सूर्यको अर्घ्य देना और (सूर्य भगवानके अर्थ) गायत्रीका जप करना चाहिये ॥ ७८ ॥

अष्टोत्तरंसहस्रंवाशतंवादशधापिवा ।
जपानांनियमोभद्रे ! सर्व्वत्राह्निककर्म्मणि ॥ ७९ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! समस्त आह्निककार्य करनेके समय एक सहस्र आठ (१००८) वा एक शत आठ (१०८) अथवा दश वार जप करनेका नियम है ॥ ७९ ॥

शूद्रसामान्यजातीनामधिकारोऽस्तिकेवलम् ।
आगमोक्तविधौदेवि ! सर्व्वसिद्धिस्ततोभवेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-हे देवि ! शूद्रजातिको और साधारण जातिको केवल तंत्रमें कहे हुए विधानमेंही अधिकार है । तिस्सेही उनको सब सिद्धि मिलजाती है ॥ ८० ॥

प्रातःसूर्य्योदयःकालोमध्याह्नस्तदनन्तरम् ।
सायंसूर्य्यास्तसमयस्त्रिकालानामयंक्रमः ॥ ८१ ॥

अर्थ-(त्रिकालीन संध्या करनेके निमित्त) सूर्य निकलनेके समय प्रातःकाल तदुपरान्त मध्याह्नकाल, सूर्यके अस्तगमन समयमें सायंकाल, इस प्रकार त्रिकालका क्रम कहा है ॥ ८१ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

विप्रादिसर्व्ववर्णानांविहितातान्त्रिकीक्रिया ।
त्वयैवकथितानाथ ! सम्प्राप्तेप्रबलेकलौ ॥ ८२ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा-हे नाथ ! तुमने आपही पहले कहा है कि जब कलियुग प्रबल होगा तब ब्राह्मणादि सब वर्णोंको केवल तांत्रिक अनुष्ठानही विहित होता है ॥ ८२ ॥

तदिदानींकथंदेव!विप्रान्वैदिककर्म्मणि ।
नियोजयसितत्सर्व्वंविशेषाद्वक्तुमर्हसि ॥ ८३ ॥

अर्थ–हे देवदेव ! इस समय किस कारणसे तुम ब्राह्मणोंको वैदिककार्यमें लगातेहो यह मुझसे भलीभांति वर्णन करो ॥ ८३ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

सत्यंब्रवीषितत्त्वज्ञे!सर्व्वेषांतान्त्रिकीक्रिया ।
लोकानांभोगमोक्षायसर्व्वकर्म्मसुसिद्धिदा ॥ ८४ ॥

अर्थ–श्रीसदाशिवने कहा हे तत्वज्ञे ! तुमने यथार्थ कहा । कलियुगमें सब मनुष्योंके लिये केवल तांत्रिक क्रिया श्रेष्ठ है । यह तांत्रिक अनुष्ठान भोग, मोक्ष और सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिको देता है ॥ ८४ ॥

इयन्तुब्रह्मसावित्रीयथाभवतिवैदिकी ।
तथैवतान्त्रिकीज्ञेयाप्रशस्तोभयकर्म्मणि ॥ ८५ ॥

अर्थ–पहली कही हुयी ब्रह्मसावित्रीको जिस प्रकार वैदिकी कहते जाता है, वैसेही तांत्रिकीकोभी कहा जासक्ता है यह गायत्री दोनों पक्षमें श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥

अतोत्रकथितंदेवि!द्विजानांप्रबलेकलौ ।
गायत्र्यामधिकारोऽस्तिनान्यमन्त्रेषुकर्हिचित् ॥ ८६ ॥

अर्थ–हे देवी ! इस कारणसेही मैंने इस स्थलमें कहाहै कि कलिके प्रबल होनेसे द्विजगणोंका गायत्रीमें अधिकार है और किसी वैदिक मंत्रमें ऐसा अधिकार नहींहै ॥ ८६ ॥

ताराद्याकमलाद्याचवाग्भवाद्यायथाक्रमात् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशांसावित्रीकथिताकलौ ॥ ८७ ॥

अर्थ-कलियुगमें ब्राह्मणोंकी गायत्रीके आगे " ओं " क्षत्रियोंकी गायत्रीके प्रथममें " श्रीं " वैश्योंकी गायत्रीके पहले " ऐं " मिलाना चाहिये ॥ ८७ ॥

द्विजादीनांप्रभेदार्थंशूद्रेभ्यःपरमेश्वरि ! ।
सन्ध्येयंवैदिकीप्रोक्ताप्रागेवाह्निककर्म्मणाम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! शूद्र जातिके द्विजातियोंको अलग रखनेके लिये उनका आह्निक करना प्रातःकालमें वैदिक संध्याकी विधि कही है ॥ ८८ ॥

अन्यथाशाम्भवैर्म्मार्गैःकेवलैःसिद्धिभाग्भवेत् ।
सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यमेतन्नसंशयः ॥ ८९ ॥

अर्थ-यदि वैदिक संध्याका अनुष्ठान न किया जाय तोभी केवल शिवजीके दिखायेहुए मार्गका अवलम्बन करनेसेही सिद्धि प्राप्त होसक्ती है । यह निःसन्देह सत्यसत्य औ सब प्रकारसे सत्य है ॥ ८९ ॥

कालात्ययेऽपिसन्ध्येयंकर्त्तव्यादेववन्दिते! ।
ओंतत्सद्ब्रह्मचोच्चार्यमोक्षेच्छुभिरनातुरैः ॥ ९० ॥

अर्थ-हे सुरवन्दिते ! जो लोग मुक्तिकी कामना करते हैं उनको संध्याका समय, बीत जानेपरभी " ओंतत्सत् ब्रह्म " मंत्र पढकर तांत्रिकी और वैदिकी संध्या करलेनी चाहिये, परन्तु आतुरमें कोई नियम नहीं है ॥ ९० ॥

आसनंवसनंपात्रंशय्यांयानंनिकेतनम् ।
गृह्यकंवस्तुजातञ्चस्वच्छात्स्वच्छंप्रशस्यते ॥ ९१ ॥

अर्थ-आसन, वस्त्र, पात्र, शेज, पान, गृह, गृहसामग्री यह वस्तुमें जितनी निर्मलहों उतनीही अच्छी है ॥ ९१ ॥

समाप्याह्निककर्म्माणिस्वाध्यायंगृहकर्म्मवा ।
गृहस्थोनियतंकुर्य्यान्नैवतिष्ठेन्निरुद्यमः ॥ ९२ ॥

अर्थ–आह्निक कार्यको समाप्त करके गृहस्थको अध्ययन वा गृह-कर्म करना चाहिये, क्षणमात्रभी निरुद्यम होकर न रहै ॥ ९२ ॥

पुण्यतीर्थेपुण्यतिथौग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ।
जपंदानंप्रकुर्वाणःश्रेयसांनिलयोभवेत् ॥ ९३ ॥

अर्थ–पुण्यतीर्थमें, पुण्यतिथिमें चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें जप करनेसे मंगलको प्राप्त होताहै ॥ ९३ ॥

कलावन्नगतप्राणानोपवासःप्रशस्यते ।
उपवासप्रतिनिधावेकंदानंविधीयते ॥ ९४ ॥

अर्थ–कलिकालके मनुष्योंका प्राण अन्नमें है, अतएव इस युगमें उपवास श्रेष्ठ नहीं है कलियुगमें केवल दान देनाही उपवा-सका बदल कहा गयाहै ॥ ९४ ॥

कलौदानंमहेशानि ! सर्व्वसिद्धिकरंभवेत् ।
तत्पात्रंकेवलंज्ञेयोदरिद्रःसत्क्रियान्वितः ॥ ९५ ॥

अर्थ–हे महेश्वरि ! कलियुगमें केवल दान करनाही सब सिद्धि-योंका कारण है केवल श्रेष्ठ क्रियासे युक्त दीन दरिद्र पुरुषकोही दानका पात्र कहाहै ॥ ९५ ॥

मासवत्सरपक्षाणामारम्भदिनमम्बिके ! ।
चतुर्दश्यष्टमीशुक्लातथैवैकादशीकुहूः ॥ ९६ ॥

अर्थ–हे अम्बिके ! महीनेके पहिले दिन, वर्षके पहले दिन, पक्षके पहले दिन चतुर्दशी, अष्टमी, शुक्ल पक्षकी एकादशी, अमावास्या९६

निजजन्मदिनञ्चैवपित्रोर्म्मरणवासरः ।

वैधोत्सवदिनञ्चैवपुण्यकालःप्रकीर्त्तितः ॥ ९७ ॥

अर्थ-अपना जन्मदिन, पिताका मरण दिन, विधिमें कहाहुआ उत्सवका दिन यह सब दिन पुण्यकाल कहे जातेहैं ॥ ९७ ॥

गङ्गानदीमहानद्योगुरोःसदनमेवच ।
प्रसिद्धंदेवताक्षेत्रंपुण्यतीर्थंप्रकीर्त्तितम् ॥ ९८ ॥

अर्थ-गंगानदी, महानदी, गुरुगृह, प्रसिद्धदेवता, क्षेत्र यह समस्त पुण्य तीर्थ कहे जातेहैं ॥ ९८ ॥

त्यक्त्वास्वाध्ययनंपित्रोःशुश्रूषान्दाररक्षणम् ।
नरकायभवेत्तीर्थंतीर्थायव्रजतांनृणाम् ॥ ९९ ॥

अर्थ-अध्ययन, मातापिताकी सेवा करना, भार्याकी रक्षा करना इन सबको छोड़कर जो तीर्थमें जाताहै; उसके लिये तीर्थ नरकका कारण होताहै ॥ ९९ ॥

नतीर्थसेवानारीणांनोपवासादिकाःक्रियाः ।
नैवव्रतानांनियमोभर्त्तुःशुश्रूषणंविना ॥ १०० ॥

अर्थ-स्त्रियोंके लिये, पतिसेवाके सिवाय तीर्थयात्राका विधान नहीं है, न व्रत करनेके अनुष्ठानका विधान है ॥ १०० ॥

भर्त्तैवयोषितांतीर्थंतपोदानंव्रतंगुरुः ।
तस्मात्सर्व्वात्मनानारीपतिसेवांसमाचरेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके लिये स्वामीही तीर्थ, स्वामीही तपस्या, स्वामीही दान, स्वामीही व्रत और स्वामीही गुरूहै । अतएव स्वामिसेवा करना स्त्रीका सर्वप्रकार कर्तव्यहै ॥ १०१ ॥

पत्युःप्रियंसदाकुर्य्याद्वचसापरिचर्य्यया ।
तदाज्ञानुचरीभूत्वातोषयेत्पतिबान्धवान् ॥ १०२ ॥

अर्थ–स्त्रियोंका कर्तव्य यही है वचनसे, सेवासे सदा स्वामीका प्रिय कार्य करे और सदा आज्ञामें रहकर पतिको और पतिके भाई-बन्धुओंको संतुष्ट करै ॥ १०२ ॥

नेक्षेत्पतिंक्रूरदृष्ट्याश्रावयेन्नैवदुर्व्वचः ।
नाप्रियंमनसावापिचरेद्भर्त्तुःपतिव्रता ॥ १०३ ॥

अर्थ–पतिको क्रूर दृष्टिसे नहीं देखै, न दुर्वाक्य सुनावै पति-व्रता नारी मनसेभी स्वामीका अप्रिय कार्य नहीं करै ॥ १०३ ॥

कायेनमनसावाचासर्व्वदाप्रियकर्म्मभिः ॥
याप्रीणयतिभर्त्तारंसैवब्रह्मपदंलभेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ–जो स्त्री, मन, वचन, कार्यसे और प्रियकार्य करके सदा स्वामीको संतुष्ट रखती है वह ब्रह्मपदको प्राप्त करसक्ती है ॥१०४॥

नान्यवक्त्रंनिरीक्षेतनान्यैःसम्भाषणञ्चरेत् ।
नचाङ्गंदर्शयेदन्यान्भर्त्तुराज्ञानुसारिणी ॥ १०५ ॥

अर्थ–स्त्रियोंको औरपुरुषका मुंह नहीं देखना चाहिये, औरके साथ बात नहीं करनी चाहिये, औरपुरुषको शरीर नहीं दिखावे, सदा स्वामीकी आज्ञामें रहै ॥ १०५ ॥

तिष्ठेत्पित्रोर्वशेबाल्येभर्त्तुःसम्प्राप्तयौवने ।
वार्द्धक्येपतिबन्धूनांनस्वतन्त्राभवेत्क्वचित् ॥ १०६ ॥

अर्थ–बालकपनके समय पिताकी अधीनतामें, जवानीके समय पतिके अधीनतामें और बुढ़ापेमें स्वामीके बन्धुबान्धवोंकी आधीनतामें रहै, परन्तु स्त्रीको कभी स्वाधीन नहीं होना चाहिये १०६

अज्ञातपतिमर्य्यादामज्ञातपतिसेवनाम् ।
नोद्वाहयेत्पिताबालामज्ञातधर्म्मशासनाम् ॥ १०७ ॥

अर्थ-जिस नारीने पतिकी मर्यादाको नहीं जानाहै,(जो स्त्री पति-की) सेवा करनेके योग्य नहींहै,जो स्त्री धर्मके शासनको नहीं जानती पिताको चाहियेकि,ऐसी बालिका कन्याका विवाह न करै ॥१०७॥

नरमांसंनभुञ्जीयान्नराकृतिपशूंस्तथा ।
बहूपकारकान्गाश्चमांसादान्रसवर्जितान् ॥ १०८ ॥

अर्थ-नरमांस, नराकार पशुका मांस, महोपकारक गोजातिका मांस, गृध्रादिमांसभोजी जन्तुओंका नीरस मांस भक्षण न करै१०८

फलानिग्राम्यवन्यानिमूलानिविविधानिच ।
भूमिजातानिसर्वाणिभोज्यानिस्वेच्छयाशिवे ! ॥१०९॥

अर्थ-हे शिवे ! पृथ्वीसे उत्पन्न हुए गांवके और वनेले अनेक प्रकारके फलमूल इच्छानुसार भक्षण करने चाहिये ॥ १०९ ॥

अध्यापनंयाजनञ्चविप्राणांव्रतमुत्तमम् ।
अशक्तौक्षत्रियविशांवृत्तैर्निर्वाहमाचरेत् ॥ ११० ॥

अर्थ-ब्राह्मणोंके लिये पढ़ाना और यज्ञ कराना यह दो वृत्तियें श्रेष्ठहैं इनसे यदि जीविकाका निर्वाह न हो तो क्षत्रि या वैश्यकी वृत्ति ग्रहण करले ॥ ११० ॥

राजन्यानाञ्चसद्वृत्तंसंग्रामोभूमिशासनम् ।
अत्राशक्तौवाणिग्वृत्तंशूद्रवृत्तमथाश्रयेत् ॥ १११ ॥

अर्थ-संग्राम करना और प्रजापालन करना ये दो वृत्ति क्षत्रि-योंकी हैं, यदि इन वृत्तियोंसे जीविकाका निर्वाह न हो तो वैश्यकी वृत्तिको ग्रहण करै। यदि वैश्यकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह न हो तब शूद्रकी वृत्तिका ग्रहण करना चाहिये ॥ ॥ १११ ॥

वाणिज्याशक्तवैश्यानांशूद्रवृत्तमदूषणम् ।
शूद्राणांपरमेशानि ! सेवावृत्तिर्विधीयते ॥ ११२ ॥

अर्थ–जो वैश्यगण वाणिज्यसे जीविकाका निर्वाह नहीं करसक्के उनको दोषरहित शूद्रकी वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिये । शूद्रोंको, सेवाके द्वारा अपनी जीविकाको निर्वाह करना चाहिये ११२

सामान्यानान्तुवर्णानांविप्रवृत्त्यन्यवृत्तिषु ।
अधिकारोऽस्तिदेवेशि ! देहयात्राप्रसिद्धये ॥ ११३ ॥

अर्थ–हे देवेश्वरि ! जो साधारण जातियें हैं उनको देह यात्रा निर्वाह करनेके लिये ब्राह्मणकी वृत्तिके सिवाय और सब वृत्तियोंका अधिकार है ॥ ११३ ॥

अद्वेष्टानिर्ममःशान्तःसत्यवादीजितेन्द्रियः ।
निर्मत्सरोनिष्कपटःस्ववृत्तौब्राह्मणोभवेत् ॥ ११४ ॥

अर्थ–ब्राह्मणोंका कर्तव्य है कि द्वेषरहित, ममतारहित, शान्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, मत्सरतारहित और कपटहीन होकर अपनी वृत्तिका अनुसरण करे ॥ ११४ ॥

अध्यापयेत्पुत्रबुद्ध्याशिष्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।
सर्वलोकहितैषीस्यात्पक्षपातविनिर्मुखः ॥ ११५ ॥

अर्थ–वह सर्वलोकका हित करै और पक्षपातरहित होकर चेलोंको पुत्रकी समान जानकर पढ़ावै । और ऐसा कार्य करै कि जिस्से चेले श्रेष्ठ मार्गपर चलैं ॥ ११५ ॥

मिथ्यालापमसूयाञ्चव्यसनाप्रियभाषणम् ।
नीचैःप्रसक्तिंदम्भञ्चसर्वथाब्राह्मणस्त्यजेत् ॥ ११६ ॥

अथ–ब्राह्मणका कर्तव्यहै कि मिथ्यावचन, नीच लोगामें और नीच बातोंमें आसक्ति और दम्भ इन सबको छोड़देवै ॥ ११६ ॥

युयुत्सागर्हितासन्धौसन्मानैःसन्धिरुत्तमा ॥
मृत्युर्जयोवायुद्धेषुराजन्यानांवरानन ! ॥ ११७ ॥

अर्थ-हे वरानने! क्षत्रियोंका कर्तव्य यह है कि सन्धि स्थिर होजानेपर फिर युद्धका अभिलाष नहीं करे। सन्मानकी रक्षा करके सन्धिको स्थिर रक्खै । युद्धमें जय हो या मृत्यु हो दोनोंही उनको श्रेष्ठ हैं (उनको युद्धसे कभी नहीं भागना चाहिये)॥११७॥

अलोभीस्यात्प्रजावित्तेगृह्णीयात्सम्मितङ्करम् ।
रक्षन्नङ्गीकृतंधर्मंपुत्रवत्पालयेत्प्रजाः ॥ ११८ ॥

अर्थ-वह प्रजाके धनका लोभ न करे, यथा समयमें नियतकर (महसूल) ग्रहण करे अंगीकार कियेहुए धर्मकी रक्षा करके पुत्रकी समान प्रजाका पालन करे ॥ ११८ ॥

न्यायंयुद्धन्तथासन्धिकर्माण्यन्यानियानिच ।
मन्त्रिभिःसहकुर्वीतविचार्य्यसर्वथानृपः ॥ ११९ ॥

अर्थ-युद्धकार्य, सन्धिकार्य और सारे राजकार्य उनको मंत्रियोंके साथ उत्तम विचार करके करने चाहिये ॥ ११९ ॥

धर्मयुद्धेन युद्धव्यं न्यायदण्डपुरस्क्रियाः ।
करणीयायथाशास्त्रंसन्धिकुर्य्याद्यथाबलम् ॥ १२० ॥

अर्थ-उनको धर्मानुसार युद्ध करना चाहिये, न्यायानुसार दंड और पुरस्कार देना चाहिये, अपना बल समझकर शास्त्रके अनुसार सन्धि करनी चाहिये ॥ १२० ॥

उपायैःसाधयेत्कार्य्यंयुद्धंसन्धिञ्चशत्रुभिः ।
उपायानुगताःसर्वाजयक्षेमविभूतयः ॥ १२१ ॥

अर्थ-वह लोग उपायसे कार्यको सिद्ध करें और उपायसे शत्रुओंके साथ सन्धिविग्रह करैं । जो कर्म उपायसे किये जातेहैं, उनसेही जय, ऐश्वर्य और मंगल होताहै ॥ १२१ ॥

स्यान्नीचसङ्गाद्विरतःसदाविद्वज्जनप्रियः ।

धीरोविपत्तौदक्षश्वशीलवान्सम्मितव्ययी ॥ १२२ ॥

अर्थ–क्षत्रियोंको सदाही पंडितोंका प्यारा होना चाहिये कदापि नीचोंका संग करना योग्य नहीं । उसको विपत्ति कालमेंभी अपने स्वभावको सुशील और उचित खर्च करनेवाला रक्खे विपत्तिके समयभी दक्षता प्रगट करना योग्य है ॥ १२२ ॥

निपुणोदुर्गसंस्कारेशस्त्राशिक्षाविचक्षणः ।
स्वसैन्यभावान्वेषीस्याच्छिक्षयेद्रणकौशलम् ॥ १२३ ॥

अर्थ–उनको दुर्गका संस्कार करनेमें निपुण होना चाहिये । शस्त्रकी शिक्षा अत्युत्तम हुईहो अपनी सेवकके मनका भाव उनको जानना चाहिये और सेनाको रणकौशल शिखानी चाहिये ॥ १२३ ॥

नहन्यान्मूर्छितान्युद्धेत्यक्तशस्त्रान्पराङ्मुखान् ।
बलानीतान्रिपून्देवि ! रिपुदारशिशूनपि ॥ १२४ ॥

अर्थ–हे देवि ! संग्राममें मूर्च्छित हुओंको, अस्त्रका त्याग किये हुवोंको रणसे भागेहुओंको, युद्धसे विमुख हुओंको, बलपूर्वक लाए हुए शत्रुओंको और विपक्षके स्त्री पुत्रोंको नाश नहीं करें ॥ १२४॥

जयलब्धानिवस्तूनिसन्धिप्राप्तानियानिच ।
वितरेत्तानिसैन्येभ्योयथायोग्यविभागतः ॥ १२५ ॥

अर्थ–जो वस्तुयें जयद्वारा या सन्धिद्वारा प्राप्त होजांय उन सबका यथायोग्य विभाग करके सेनाको बांटदे ॥ १२५ ॥

शौर्य्यंवृत्तञ्चयोद्धृणांज्ञेयंराज्ञापृथक्कृतम् ।
बहुसैन्याधिपन्नैकंकुर्य्यादात्महितेरतः ॥ १२६ ॥

अर्थ–योधाओंका चरित्र और शूरपन राजाको पृथक् २ जानना

चाहिये । जो अपना हित चाहते हैं वह कभी एक पुरुषको बहुतसी सेनाका नायक नहीं करते ॥ १२६ ॥

नैकस्मिन्विश्वसेद्राजानैकंन्यायेनियोजयेत् ।
साम्यंक्रीडोपहासञ्चनीचैःसहविवर्जयेत् ॥ १२७ ॥

अर्थ–भलीभांतिसे एकही पुरुषका राजाको विश्वास न करना चाहिये, एकही पुरुषको विचार कार्यका भार न सौंपे । नीच लोगोंके साथ राजाको खेल या उपहास नहीं करना चाहिये, नीचेके प्रीतिभी सम्भव नहीं दिखावे ॥ १२७ ॥

बहुश्रुतःस्वल्पभाषीजिज्ञासुर्ज्ञानवानपि ।
बहुमानोपिनिर्दम्भोधीरोदण्डप्रसादयोः ॥ १२८ ॥

अर्थ–राजा बहुश्रुत होकरभी स्वल्पभाषी, ज्ञानवान् होकरभी जिज्ञासु और बहुसन्मानयुक्त होकरभी दम्भरहित हो । राजाको दण्ड देनेके समय या प्रसन्नताके समय एक साथ अधीर न होना चाहिये ॥ १२८ ॥

स्वयंवाचरदृष्ट्यावाप्रजाभावान्विलोकयेत् ।
एवंस्वजनभृत्यानांभावान्पश्येन्नराधिपः ॥ १२९ ॥

अर्थ–राजा अपनेआप या चारचक्षुसे (दूतके द्वारा) प्रजाका भाव जाने और सेवक व बन्धुबान्धवोंके भावकोभी जाने ॥१२९॥

क्रोधाद्दम्भात्प्रमादाद्वासन्मानंशासनन्तथा ।
सहसानैवकर्त्तव्यंस्वामिनातत्वदर्शिना ॥ १३० ॥

अर्थ–तत्वदर्शी विचारवान् राजा क्रोध करके दम्भ करके वा असावधानी करके हठात् किसीका सन्मान या शासन नहीं करे ॥ १३० ॥

सैन्यसेनाधिपामात्यवनितापत्यसेवकाः ।

पालनीयाःसदोषाश्चेद्दण्डयाराज्ञायथाविधि ॥ १३१ ॥

अर्थ–सेनाका, सेनापतिका और मंत्रियोंके स्त्री, पुत्र व सेवकोंका पालन करना राजाका कर्तव्य है यदि उपरोक्त जनोंमें दोष हो तो यथाविधिसे दण्ड देना चाहिये ॥ १३१ ॥

उन्मत्तानसमर्थांश्चबालांश्चमृतबान्धवान् ।
ज्वराभिभूतान्वृद्धांश्चरक्षयेत्पितृवन्नृपः ॥ १३२ ॥

अर्थ–जो अभिभावक हीन होनेसे उन्मत है, असमर्थहै, बालकहै, रोगी है, वृद्ध है, राजाको पुत्रकी समान उनका पालन करना चाहिये ॥ १३२ ॥

वैश्यानांकृषिवाणिज्यंवृत्तंविद्धिसनातनम् ।
येनोपायेनलोकानांदेहयात्राप्रसिद्ध्यति ॥ १३३ ॥

अर्थ--जिस प्रकारके खेती और वणिज करनेसे शरीरयात्रा निर्वाह हो सक्तीहै वैसीही खेती और वैसाही वाणिज करना वैश्यों-का सनातन व्यौपार है ॥ १३३ ॥

अतःसर्व्वात्मनादेवि!वाणिज्यकृषिकर्म्मसु ।
प्रमादव्यसनालस्यंमिथ्याशाठ्यंविवर्ज्जयेत् ॥ १३४ ॥

अर्थ–हे देवि ! इस कारणसेही वाणिज्य और कृषिकार्यमें प्रमाद, व्यसन, आलस्य, मिथ्यापन और शठता इन सबको सर्व प्रकारसे छोड देना वैश्योंका कर्तव्य है ॥ १३४ ॥

निश्चित्यवस्तुतन्मूल्यमुभयोःसन्मतौशिवे ।
परस्पराङ्गीकरणंक्रयसिद्धिस्ततोभवेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ–हे शिवे ! क्रेता और विक्रेताकी सम्मतिसे जब वस्तु और उसका मोल ठीक होजाय और दोनों उसको अंगीकार करले तब क्रय विक्रय सिद्ध होगा ॥ १३५ ॥

मत्तविक्षिप्तबालानामरिग्रस्तनृणांप्रिये ! ।
रोगविभ्रान्तबुद्धीनामसिद्धौदानविक्रयौ ॥ १३६ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! जो मतवाले हैं, पागल हैं या शत्रु करके बंदी कर लिये गयेहैं अथवा रोग होनेसे जिनकी बुद्धि विगड़ गईहै वह यदि दान करैं या कुछ वेचें तौ वह वेचना और वह दान देना असिद्ध है ॥ १३६ ॥

क्रयसिद्धिरदृष्टानांगुणश्रवणतोभवेत् ।
विपर्य्ययेतद्गुणानामन्यथाभवतिक्रयः ॥ १३७ ॥

अर्थ–न देखी हुई वस्तुका गुण सुनकरही क्रय (मोल लेना) सिद्ध होता है, परन्तु वर्णन किये हुए गुणका व्यतिक्रम होनेसे विक्रय असिद्ध होगा. हाथी, घोडा और ऊंट इनके गुण सुनकरही मोल लेना वेचना सिद्ध होताहै परन्तु यदि वर्णन किये हुए गुण न हो तौ वह विक्रय असिद्ध होगा ॥ १३७ ॥

कुञ्जरोष्ट्रतुरङ्गाणांगुप्तदोषप्रकाशनात् ।
वर्षातीतेऽपितत्क्रेयमन्यथाकर्त्तुमर्हति ॥ १३८ ॥

अर्थ–यदि हाथी, घोडे और ऊंटके गुप्तदोष प्रकाशित हो जांय, तौ एक वर्षके पीछे भी वह क्रयविक्रय अन्यथा हो सक्ता है ॥ १३८ ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाणांभाजनंमानवंवपुः ।
अतःकुलेशि! तत्क्रेयोनसिद्धयेन्ममशासनात् ॥ १३९ ॥

अर्थ–हे कुलेश्वरि! मनुष्योंका शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन है अतएव मेरी आज्ञा है की इस शरीरको कोई खरीदै या वेच नहीं सकेगा, जो कोई ऐसा करेगा तौ वह खरीदना वेचना असिद्ध होगा ॥ १३९ ॥

यवगोधूमधान्यानांलाभोवर्षैगतेप्रिये ! ।
युक्तश्चतुर्थोधातूनामष्टमःपरिकीर्तितः ॥ १४० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो, गेहूं, धान्य (इनको यदि उधार ले लिया जाय) तो वर्षसे केवल मूलका चौथाई अंश लाभ अर्थात् वढ़ोतरीमें देना पड़ेगा धातु द्रव्य (रूपया पैसा इत्यादि) उधार लेनेसे एक वर्षमें मूलका आठवां अंश कुसीद (सूद) देनेका नियम है ॥ १४० ॥

ऋणेकृषौचवाणिज्येतथासर्व्वेषुकर्म्मसु ।
यद्यदंगीकृतंमर्त्यैस्तत्कार्य्यंशास्त्रसम्मतम् ॥ १४१ ॥

अर्थ-ऋण, खेती, वाणिज्य और सारे कार्य जैसे माने जांय, वैसेही उनको करना चाहिये यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ १४१॥

दक्षःशुचिःसत्यभाषीजितनिद्रोजितेन्द्रियः ।
अप्रमत्तोनिरालस्यःसेवावृत्तौभवेन्नरः ॥ १४२ ॥

अर्थ-सेवावृत्ति ग्रहण करनेवालोंको दक्ष अर्थात् अपने कार्यमें चतुर, विशुद्धाचार, सत्यवादी, निद्राके वशमें न रहना, जितेन्द्रिय, प्रमादरहित और आलस्यहीन होना चाहिये॥ १४२॥

प्रभुर्विष्णुसमोऽमात्यस्तज्जायाजननीसमा ।
मान्यास्तद्बान्धवाभृत्यैरिहामुत्रसुखेप्सुभिः ॥ १४३ ॥

अर्थ-इस लोकमें और पर लोकमें सुखकी कामना करनेवाले भृत्योंको स्वामीको विष्णुकी समान जानकर सन्मान करना और उसकी भार्याको जननीकी समान जानना चाहिये और स्वामीके बन्धु बान्धव जो हैं उनके सन्मानकीभी रक्षा करनी चाहिये ॥ १४३ ॥

भर्त्तुर्मित्राणिमित्राणिजानीयात्तदरीनरीन् ।

सभीतिःसर्व्वदातिष्ठेत्प्रभोराज्ञांप्रतीक्षयन् ॥ १४४ ॥

अर्थ-प्रभुके मित्रोंको अपना मित्र समझे । स्वामीके शत्रुओंको अपना शत्रु समझे । सब समयमें स्वामीकी आज्ञाको परखते हुए सभयहृदय रहना चाहिये ॥ १४४ ॥

अपमानंगृहच्छिद्रंगुह्यर्थंकथितञ्चयत् ।
भर्त्तुर्ग्लानिकरंयच्चगोपयेदतियत्नतः ॥ १४५ ॥

अर्थ-अपमान, गृहछिद्र, गुप्तवाक्य अथवा जिस्से प्रभुको ग्लानि हो ऐसी बात अतियत्नसे छिपानी योग्य है ॥ १४५ ॥

अलोभःस्यात्स्वामिधनेसदास्वामिहितेरतः ।
तत्सन्निधावसद्वाचांक्रीडांहास्यंपरित्यजेत् ॥ १४६ ॥

अर्थ-सदाही स्वामीके धनमें लोभ न करे स्वामीके हितमें सदा तत्पर रहै स्वामीके निकट असत् वाक्यका कहना क्रीड़ा और हंसना इन सबको छोड़ देना योग्य है ॥ १४६ ॥

नपापमनसापश्येदपितद्गृहकिङ्करीः ।
विविक्तशय्यांहास्यञ्चताभिःसहविवर्जयेत् ॥ १४७ ॥

अर्थ-स्वामीके गृहकी दासियोंको पापकी दृष्टिसे न देखे । उनके साथ निर्जनमें एक शेजपर शयन न करै, हास परिहास-भी न करै ॥ १४७ ॥

प्रभोःशय्यासनंयानंवसनम्भाजनानिच ।
उपानद्भूषणंशस्त्रंनात्मार्थंविनियोजयेत् ॥ १४८ ॥

अर्थ-स्वामीकी शेज, आसन, सवारी, वसन, भाजन, पादुका, भूषण, शस्त्रको स्वयं व्यवहार न करै ॥ १४८ ॥

क्षमांकृतापराधश्चेत्प्रार्थयेदग्रतःप्रभोः ।
प्रागल्भ्यंप्रौढवादञ्चसाम्याचारंविवर्जयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ-यदि कोई अपराध होजाय तो स्वामीसे सेवकको क्षमा मांगना चाहिये। प्रभुके समीप धृष्टता, प्रौढ़ता और प्रभुत्व नहीं दिखावै ॥ १४९ ॥

सर्वैर्वर्णैःस्वस्ववर्णैर्ब्राह्मोद्वाहन्तथाशनम् ।
कुर्व्वीरन्भैरवीचक्रात्तत्त्वचक्राद्दतेशिवे ! ॥ १५० ॥

अर्थ-हे शिवे ! यदि तत्वचक्रका अनुष्ठान न हो तो सब जातियोंके मनुष्य अपने २ वर्णके साथ ब्रह्मविवाह और भोजन भैरवी चक्रके द्वाराही निर्वाह करना चाहिये ॥ १५० ॥

उभयत्रमहेशानि ! शैवोद्वाहःप्रकीर्त्तितः ।
तथादानेचपानेचवर्णभेदोनविद्यते ॥ १५१ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! तत्वचक्र और भैरवीचक्र दोनोंके विधानसेही शैवविवाह हो सक्ता है । इन दोनों चक्रोंमें पानभोजनके समय वर्णभेदका विचार नहीं करे ॥ १५१ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

किमिदंभैरवीचक्रन्तत्वचक्रञ्चकीदृशम् ।
तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामिकृपयावक्तुमर्हसि ॥ १५२ ॥

अर्थ-श्रीभगवतीजीने कहा-भैरवीचक्र कैसा है ? तत्वचक्र किसप्रकारका है ? मैं इस सबको श्रवण करनेंकी अभिलाषा करती हूं कृपा करके मुझसे कहिये ॥ १५२ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

कुलपूजाविधौदेवि ! चक्रानुष्ठानमीरितम् ।
विशेषपूजासमयेतत्कार्य्यंसाधकोत्तमैः ॥ १५३ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा, हे देवि ! कुलपूजाविधान कहनेके

समय मैंने चक्रका अनुष्ठान कहाहै । जो लोग उत्तम साधक हैं वह विशेषपूजाके समय वैसेही चक्रका अनुष्ठान करें ॥ १५३ ॥

भैरवीचक्रविषयेनताहङ्नियमःप्रिये ! ।
यथासमयमासाद्यकुर्य्याच्चक्रमिदंशुभम् ॥ १५४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! भैरवीचक्रके विषय ऐसा कोई नियम नहीं है । चाहै जिस समयमें इस शुभ भैरवीचक्रका अनुष्ठान किया जासक्ता है ॥ १५४ ॥

विधानमस्यवक्ष्यामिसाधकानांशुभावहम् ।
आराधितायेनदेवीतूर्णंयच्छतिवाञ्छितम् ॥ १५५ ॥

अर्थ-इस समयमें भैरवीचक्रका विधान कहता हूं । इस भैरवीचक्रसे साधकोंका मंगल होता है । इस भैरवीचक्रमें भगवतीकी आराधना करनेसे वह शीघ्रतासे अभीष्टको सिद्ध करती है १५५॥

कुलाचार्य्योरम्यभूमावास्तीर्य्यासनमुत्तमम् ।
कामाद्येनास्त्रबीजेनसंशोध्योपविशेत्ततः ॥ १५६ ॥

अर्थ-कुलाचार्य रमणीयस्थानमें उत्तम आसन बिछाय " क्लीं फट् " इस मंत्रसे इस आसनको शुद्धकरके उसपै बैठे ॥ १५६ ॥

सिन्दूरेणकुसीदेनकेवलेनजलेनवा ।
त्रिकोणञ्चतुरस्रञ्चमण्डलंरचयेत्सुधीः ॥ १५७ ॥

अर्थ-ज्ञानवान साधक सिन्दूरसे, लालचंदनसे अथवा केवल जलसे त्रिकोण और चौकोन मण्डलको बनावै ॥ १५७ ॥

विचित्रघटमानीयदध्यक्षतविमृक्षितम् ।
फलपल्लवसंयुक्तंसिन्दूरतिलकान्वितम् ॥ १५८ ॥

अर्थ-फिर उस चित्रित घटको स्थापन करके तिसमें दही और

अक्षत दान करे और उस घड़ेमें सिन्दूरका तिलक लगाकर तिसमें फल और पल्लव संयुक्त करै ॥ १५८ ॥

सुवासितजलैःपूर्णंमण्डलेतत्रसाधकः ।
प्रणवेनतुसंस्थाप्यधूपदीपौप्रदर्शयेत् ॥ १५९ ॥

अर्थ–फिर साधक इस घड़ेको सुगन्धित जलसे परिपूर्ण करे। फिर प्रणव पाठ करके उसके इस मण्डलपर स्थापनपूर्वक धूप दीप दिखावे ॥ १५९ ॥

सम्पूज्यगन्धपुष्पाभ्यांचिन्तयेदिष्टदेवताम् ।
संक्षेपपूजाविधिनातत्रपूजांसमाचरेत् ॥ १६० ॥

अर्थ–फिर गन्धपुष्पसे अर्चना करके तिसमें इष्टदेवताका ध्यान करे और पूजाके संक्षेप विधानानुसार तिसमें इष्टदेवताकी पूजा करै ॥ १६० ॥

विशेषमत्रवक्ष्यामिशृणुष्वामरवन्दिते ! ।
गुर्वादिनवपात्राणांनात्रस्थापनमिष्यते ॥ १६१ ॥

अर्थ–हे सुरवन्दिते ! इस पूजामें जो विशेष है, उसको कहताहूं श्रवण करो। इस पूजामें गुरुपात्रादि नौ पात्रोंके स्थापन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ १६१ ॥

यथेष्टन्तत्वमादायसंस्थाप्यपुरतोव्रती ।
प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रेणदिव्यदृष्ट्यावलोकयेत् ॥ १६२ ॥

अर्थ–साधक इस पूजाके समय अभिलाषानुसार तत्व सन्मुख स्थापन करकै "फट्" मंत्र पढ प्रोक्षितकर दिव्यदृष्टिसे देखे॥ १६२॥

अलियन्त्रेगन्धपुष्पंदत्वातत्राविचिन्तयेत्।
आनन्दभैरवींदेवीमानन्दभैरवन्तथा ॥ १६३ ॥

अर्थ-फिर मध्यपात्रमें गन्ध पुष्प डालकर तिसमें देवी आनन्द-भैरवी और आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६३ ॥

नवयौवनसम्पन्नांतरुणारुणविग्रहाम् ।
चारुहासामृताभाषोल्लसद्दशनपङ्कजाम् ॥ १६४ ॥

अर्थ-जो नवयौवनयुक्त हैं, जिनका शरीर तरुण अरुणकी समान कान्तिमान है जिसकी अति मनोहर हास्यामृत कान्तिके द्वारा वदनकमल विकसित हुआ है ॥ १६४ ॥

नृत्यगीतकृतामोदां नानाभरणभूषिताम् ।
विचित्रवसनान्ध्यायेद्वराभयकराम्बुजाम् ॥ १६५ ॥

अर्थ-जो नृत्यगीतमें सदा आनन्दको प्रकाशित किया करती है, जो अनेक प्रकारके भूषणोंसे शोभायमान हैं, जो विचित्र वस्त्र पहर रहीं हैं, जो एक हाथसे वर और एक हाथसे अभयदे रही हैं, ऐसी आनन्दभैरवीका ध्यान करै ॥ १६५ ॥

इत्यानन्दमयीन्ध्यात्वास्मरेदानन्दभैरवम् ॥ १६६ ॥

अर्थ-इस प्रकार आनन्दभैरवीका ध्यान करके आनन्दभैरवका ध्यान करे ॥ १६६ ॥

कर्पूरपूरधवलंकमलायताक्षम्
दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम् ।
वामेनपाणिकमलेनसुधाक्षपात्रम्
दक्षेणशुद्धिगुटिकान्दधतंस्मरामि ॥ १६७ ॥

अर्थ-जो कापूरके ढेरकी समान श्वेत वर्ण हैं जिनके नेत्र कमल-दलकी समान दीर्घ हैं जिनका शरीर दिव्य वसन और दिव्य भूषणोंसे भूषित होकर शोभायमान होरहा है, जो बाऐं करकम-

लसे शुद्धि अर्थात् मांस, मत्स्य और मुद्रा धारण किये हुए हैं ऐसे आनन्दभैरवका स्मरण करना योग्य है ॥ १६७ ॥

ध्यात्वैवमुभयन्तत्रसामरस्यंविचिंतयन् ।
प्रणवादिनमोऽन्तेननाममन्त्रेणदेशिकः ।
संपूज्यगन्धपुष्पाभ्यांशोधयेत्कारणंततः ॥ १६८ ॥

अर्थ–इस प्रकारसे साधक आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीका ध्यान करके उस सुरापात्रमें दोनोंका सामरस्य विचार पहले "प्रणव" फिर "नाम" तदुपरान्त "नमः" उच्चारण करके गन्ध पुष्प-द्वारा पूजाकर पीछेसे सुराका सेवन करे ॥ १६८ ॥

पाशादित्रिकबीजेनस्वाहान्तेनकुलार्चकः ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्याजपन्हेतुंविशोधयेत् ॥ १६९ ॥

अर्थ–कुलपूजक, " आं ह्रीं क्रों स्वाहा" इस मंत्रका एक शत आठवार जप करके सुराका शोधन करे ॥ १६९ ॥

गृहकाम्यैकचित्तानांगृहिणांप्रबलेकलौ ।
आद्यतत्वप्रतिनिधौविधेयंमधुरत्रयम् ॥ १७० ॥

अर्थ–कलिकाल प्रबल होनेके समय सर्व गृहस्थ लोग केवल गृहकार्यमें ही चित्त लगावेंगे, तिसकालमें उनके अर्थ आद्य तत्वके प्रतिनिधिरूप तीन मधुर विधान करने होंगें ॥ १७० ॥

दुग्धंसितामाक्षिकञ्चविज्ञेयंमधुरत्रयम् ।
अलिरूपमिदंमत्वादेवतायैनिवेदयेत् ॥ १७१ ॥

अर्थ–दूध, चीनी, शहत, इन तीनों द्रव्योंका नाम मधुर है । इन मधुरत्रयको मद्यरूप समझकर देवताके निकट निवेदन करे ॥ १७१ ॥

स्वभावात्कलिजन्मानःकामविभ्रान्तचेतसः।
तद्रूपेणनजानान्तिशक्तिंसामान्यबुद्धयः॥ १७२॥

अर्थ–कलिकालके मनुष्योंकी बुद्धि अतिसामान्यहै, उनका मन स्वभावसेही कामदेवके द्वारा उद्भ्रान्त होगा। वह स्त्रीको शक्तिरूप नहीं विचार सकेंगे॥ १७२॥

अतस्तेषांप्रतिनिधौशेषतत्त्वस्यपार्वति!।
ध्यानंदेव्याःपदाम्भोजेस्वेष्टमन्त्रजपस्तथा ॥ १७३॥

अर्थ–हे देवि! इसकारण कलियुगके मनुष्योंके लिये शेष तत्वका बदल देवीके चरणका ध्यान और इस मंत्रका जप करनाहै॥ १७३॥

ततस्तुप्राप्ततत्त्वानिपललादीनियानिच।
प्रत्येकंशतधानेनमनुनाचाभिमन्त्रयेत्॥ १७४॥

अर्थ–फिर मांसादि जो तत्व उपस्थित हों उनमेंसे प्रत्येक तत्वको "आं ह्रीं क्रों स्वाहा" इस मंत्रसे अभिमंत्रित करे॥ १७४॥

सर्वंब्रह्ममयंध्यात्वानिमील्यनयनद्वयम्।
निवेद्यपूर्ववत्काल्यैपानभोजनमाचरेत्॥ १७५॥

अर्थ–फिर सबको ब्रह्ममय भावना करके दोनों नेत्र मूंद वह सब कालीको निवेदन करके पान और भोजन करे॥ १७५॥

इदन्तुभैरवीचक्रंसर्वतन्त्रेषुगोपितम्।
तवाग्रेकथितंभद्रे! सारात्सारंपरात्परम्॥ १७६॥

अर्थ–हे भद्रे! यह भैरवीचक्र सारकाभी सारहै श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है। यह सब तंत्रोंमें गुप्त है और प्रच्छन्न है प्रकाशित नहीं हुआ आज यह तुमसे प्रकाशित कर कहा॥ १७६॥

विवाहोभैरवीचक्रेतत्त्वचक्रेऽपिपार्वति!।

सर्वथासाधकेन्द्रेणकर्तव्यःशैववर्त्मना ॥ १७७ ॥

अर्थ–हे पार्वति ! शिवका दिखाया हुआ मार्ग अवलम्बन करनेसे भैरवीचक्र और तत्वचक्रमें परिणय सिद्धकरना सब प्रकारसे साधकको उचित है ॥ १७७ ॥

विनापरिणयंवीरःशक्तिसेवांसमाचरन् ।
परस्त्रीगामिनांपापंप्राप्नुयान्नात्रसंशयः ॥ १७८ ॥

अर्थ–यदि कोई वीर पुरुष विवाहके बिना शक्तिकी सेवा करताहै । तब उसको परस्त्री गमनके पापमें निश्चय लिप्त होना पड़ताहै ॥ १७८ ॥

सम्प्राप्तेभैरवीचक्रेसर्वेवर्णाद्विजोत्तमाः ।
निवृत्तेभैरवीचक्रेसर्वेवर्णाःपृथक्पृथक् ॥ १७९ ॥

अर्थ–जब भैरवीचक्रका आरम्भ होताहै तब सब जातिके पुरुषही द्विजाति गिने जाते हैं । जब भैरवी चक्र निवृत्त होजाताहै, तब सब वर्ण अलग २ गिने जाते हैं ॥ १७९ ॥

नात्रजातिविचारोऽस्तिनोच्छिष्टादिविवेचनम् ।
चक्रमध्यगतावीराममरूपानचान्यथा ॥ १८० ॥

अर्थ–भैरवीचक्रमें जातिका विचार नहीं है जूंठादिका विचारभी नहीं है चक्रमें बैठे हुए वीरगण मेराही रूप हैं । इसमें कोई संदेह नहींहै ॥ १८० ॥

नदेशकालनियमोनवापात्रविचारणम् ।
येनकेनाहृतंद्रव्यंचक्रेऽस्मान्विनियोजयेत् ॥ १८१ ॥

अर्थ–भैरवीचक्रमें देशकालका नियम नहींहै पात्रापात्रका विचारभी नहींहै जो कोई पुरुष चक्रके लायक जो कोई वस्तुभी ले आवै, उसका व्यवहार चक्रमें करना चाहिये ॥ १८१ ॥

दूरदेशात्समानीतंपक्कंवापक्कमेव वा ।
वीरेणपशुनावापिचक्रमध्यगतंशुचि ॥ १८२ ॥

अर्थ-यदि कोई द्रव्य दूरदेशसे लाया हुआ हो पका हुआहो, कच्चाहो, वीर लाया हो, या पशुलाया हो यह सब द्रव्य चक्रमें आतेही पवित्र हो जांयगे ॥ १८२ ॥

चक्रारम्भेमहेशानि! विघ्नाःसर्वेंभयाकुलाः ।
विभीतास्तेपलायन्तेवीराणांब्रह्मतेजसा ॥ १८३ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! जब भैरवीचक्रका आरम्भ होताहै तब चक्रमें बैठे हुए वीरोंके ब्रह्मतेजसे त्रासित होकर सब विघ्न भयभीतहो भाग जातेहैं ॥ १८३ ॥

पिशाचागुह्यकायक्षावेतालाःक्रूरजातयः ।
श्रुत्वात्रभैरवीचक्रंदूरंगच्छन्तिसाध्वसम् ॥ १८४ ॥

अर्थ-पिशाच, गुह्यक, यक्ष; वेतालगण, औरभी समस्त क्रूर जातियें भैरवीचक्रका वृत्तान्त सुन्तेही भीत होकर दूर भाग जाती हैं ॥ १८४ ॥

तत्रतीर्थानिसर्वाणिमहातीर्थानिकानि च ।
सेन्द्रामरगणाःसर्वेतत्रागच्छन्तिसादरम् ॥ १८५ ॥

अर्थ-जहांपर भैरवीचक्र होताहै उस स्थानमें समस्त तीर्थ महातीर्थादि और देवराजके साथ सब देवता आदरपूर्वक आतेहैं ॥ १८५ ॥

चक्रस्थानंमहातीर्थंसर्वतीर्थाधिकंशिवे ! ।
त्रिदशायत्रवाञ्छन्तितवनैवेद्यमुत्तमम् ॥ १८६ ॥

अर्थ-हे शिवे ! चक्रस्थान महातीर्थ और सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ होता है इस चक्रमें देवता लोगभी तुम्हारे उत्तम नैवेद्य की आशा करते हैं ॥ १८६ ॥

म्लेच्छेनश्वपचेनापिकिरातेनापिहूणुना ।
आमंपक्वंयदानीतंवीरहस्तार्पितंशुचि ॥ १८७ ॥

अर्थ–म्लेच्छ, श्वपच, किरात अथवा हूण कोई जाति कच्चा या पक्का द्रव्य लाकर देवै, वीरके हाथमें आतेही वह पवित्र हो जायगा ॥१८७ ॥

दृष्ट्वातुभैरवीचक्रंममरूपांश्चसाधकान् ।
मुच्यन्तेपशुपाशेभ्यःकलिकल्मषदूषिताः ॥ १८८ ॥

अर्थ–जो कलियुगके पापोंसे दूषितहैं वह लोगभी भैरवी चक्र और मेरे स्वरूप साधकोंका दर्शन करतेही पशुपाशसे छूट जाते हैं ॥ १८८ ॥

प्रबलेकलिकालेतुनकुर्य्याच्चक्रगोपनम् ।
सर्वत्रसर्वदावीरःसाधयेत्कुलसाधनम् ॥ १८९ ॥

अर्थ–कलिकाल प्रबल होनेके समय चक्रानुष्ठानका छिपाना ठीक नहीं वीर पुरुषको सब समय और सब स्थानोंमें कुलसाधन करना चाहिये ॥ १८९ ॥

चक्रमध्येवृथालापंचाञ्चल्यंबहुभाषणम् ।
निष्ठीवनमधोवायुंवर्णभेदंविवर्जयेत् ॥ १९० ॥

अर्थ–चक्रमें वृथा न बोले, चपलता प्रकाश न करे, वाचाल न होवे, थूकै नहीं, अधोवायुका त्याग नहीं करे वर्णका विचारभी नहीं करै ॥ १९० ॥

क्रूरान्खलान्पशून्पापान्नास्तिकान्कुलदूषकान् ।
निन्दकान्कुलशास्त्राणांचक्राद्दूरतरंत्यजेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ–जो लोग क्रूर, खल, पशु, पापात्मा, नास्तिक, कुलदूषक,

वा कुलशास्त्रके निन्दा करनेवालेहैं, उनको चक्रसे निकाल देना चाहिये ॥ १९१ ॥

स्नेहाद्भयादानुरक्त्यापशूंश्चक्रेप्रवेशयन् ।
कुलधर्म्मात्परिभ्रष्टोवीरोऽपिनरकंव्रजेत् ॥ १९२ ॥

अर्थ-यदि कोई वीरपुरुष स्नेह, भय, या अनुरागके वशहो किसी पशुको चक्रमें ले आवै, तौ वह कुलधर्मसे भ्रष्ट होकर नरकको जाता है ॥ १९२ ॥

ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राःसामान्यजातयः ।
कुलधर्म्माश्रितायेवैपूज्यास्तेदेववत्सदा ॥ १९३ ॥

अर्थ-जिन्होंने कुलधर्मका आश्रय लियाहै, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा साधारण जातीहों, वह सदा देवताकी समान पूज्य होंगे ॥ १९३ ॥

वर्णाभिमानाच्चक्रेतुवर्णभेदंकरोतियः ।
सयातिघोरनिरयमपिवेदान्तपारगः ॥ १९४ ॥

अर्थ-जो जातिका अभिमान करके चक्रमें जातिभेदका विचार करेगा वह वेदान्तमें पारदर्शी होनेपरभी घोर नरकमें जायगा ॥ १९४ ॥

चक्रान्तर्गतकौलानांसाधूनांशुद्धचेतसाम् ।
साक्षाच्छिवस्वरूपाणांपापाशङ्काभवेत्कुतः ॥ १९५ ॥

अर्थ-जो लोग चक्रमेंके कौल हैं, वह विशुद्धहृदय साधु और साक्षात् शिवस्वरूप हैं, उनको किस प्रकारसे पापकी शंका हो सक्ती है ॥ १९५ ॥

यावद्वसन्तिचक्रेषुविप्राद्याःशैवमार्गिणः ।

तावत्तुशाम्भवाचारांश्चरेयुःशिवशासनात् ॥ १९६ ॥

अर्थ–शिवके दिखाये हुए मार्गपर चलने वाले ब्राह्मण क्षत्रियादि सब जातियोंके मनुष्य जबतक चक्रमें विराजमान रहते हैं जबतक उनको पशुप्रदर्शित आचारका अनुष्ठान करना चाहिये ऐसी शिवजीकी आज्ञा है ॥ १९६ ॥

चक्राद्विनिःसृताःसर्व्वैस्स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् ।
लोकयात्राप्रसिद्धयर्थंकुर्युःकर्म्मपृथक्पृथक् ॥ १९७॥

अर्थ–जो लोग जिस समय चक्रसे निकलै तब सबही लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये अपने २ आश्रममें कहे हुए कर्म पृथक् २ करैं ॥ १९७ ॥

पुरश्चर्य्याशतेनापिशवमुण्डचितासनात् ।
चक्रमध्येसकृज्जप्त्वातत्फलंलभतेसुधीः ॥ १९८ ॥

अर्थ–शत २ पुरश्चरण करनेसे जो फल होता है, शवमुण्डमें और चिताके आसनपर बैठकर जप करनेसे जो फल होता है ज्ञानी पुरुष केवल एकवार चक्रमें जप करनेसे उस फलको प्राप्त कर लेता है ॥ १९८ ॥

भैरवीचक्रमाहात्म्यंकोवावक्तुंक्षमोभवेत् ।
सकृदेतत्प्रकुर्व्वाणःसर्व्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ १९९ ॥

अर्थ–भैरवीचक्रका माहात्म्य कहनेको कोई पुरुष समर्थ नहीं है क्योंकि एकवार इसका अनुष्ठान करनेसे सब पाप दूर होसक्ते हैं ॥ १९९ ॥

षण्मासंभूमिपालःस्याद्वर्षंमृत्युञ्जयःस्वयम् ।
नित्यंसमाचरन्मर्त्त्योब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ २०० ॥

अर्थ-केवल छमहीनेतक भैरवीचक्रका अनुष्ठान करनेसे राजाहो सक्ता है एकवर्षतक अनुष्ठान करनेसे मृत्युञ्जय होता है नित्यही भैरवीचक्रका अनुष्ठान करनेवाला महानिर्वाणको प्राप्त हो जाता है ॥ २०० ॥

बहुनाकिमिहोक्तेनसत्यंजानीहिकालिके ! ।
इहामुत्रसुखावाप्त्यैकुलमार्गोहिनापरः ॥ २०१ ॥

अर्थ-हे कालिके ! इस विषयमें और अधिक क्या कहूं मैं सत्य२ कहता हूं की कुलाचारके सिवाय इस लोकमें और परलोकमें सुखप्राप्तिका दूसरा उपाय नहीं है ॥ २०१ ॥

कलेःप्राबल्यसमयेसर्व्वधर्म्मविवर्जिते ।
गोपनात्कुलधर्म्मस्यकौलोऽपि नारकीभवेत् ॥ २०२ ॥

अर्थ-कलियुगके प्रबल होनेपर जब और दूसरे धर्मरहित हो आवेंगे, तब यदि कौलिक पुरुष कुलधर्मको छिपावेगा तो नरकको जायगा ॥ २०२ ॥

कथितंभैरवीचक्रंभोगमोक्षैकसाधनम् ।
तत्त्वचक्रंकुलेशाने ! साम्प्रतंवच्मितच्छृणु ॥ २०३ ॥

अर्थ-भोग और मोक्षके प्राप्त करानेवाले भैरवीचक्रका विवरण कहा. हे कुलेश्वरि ! अब तत्वचक्रका वर्णन करताहूं श्रवण करो ॥ २०३ ॥

तत्त्वचक्रंचक्रराजंदिव्यचक्रंतदुच्यते ।
नात्राधिकारःसर्व्वेषांब्रह्मज्ञान्साधकान्विना ॥ २०४ ॥

अर्थ-सब चक्रोंमें तत्वचक्र श्रेष्ठ है । इसको दिव्यचक्रभी कहते हैं । ब्रह्मज्ञ साधकके अतिरिक्त इसमें सबका अधिकार नहीं है ॥ २०४ ॥

परब्रह्मोपासकायेब्रह्मज्ञाब्रह्मतत्पराः ।
शुद्धान्तःकरणाःशान्ताःसर्व्वप्राणिहितेरताः ॥ २०५ ॥

अर्थ-जो लोग परब्रह्मके उपासक हैं, जो लोग ब्रह्मज्ञानमें तत्पर हैं, जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं जो लोग सर्वप्राणियोंका हित करनेमें रत और शान्त हैं ॥ २०५ ॥

निर्व्विकारानिर्व्विकल्पादयाशीलादृढ़व्रताः ।
सत्यसङ्कल्पकाब्राह्मयास्तएवात्राधिकारिणः ॥ २०६ ॥

अर्थ-जो लोग विकाररहित विकल्परहित। दयाशील और दृढ़व्रतहैं, जो लोग सत्यसंकल्प और ब्राह्म हैं, वही इस तत्व-चक्रके अधिकारी हैं ॥ २०६ ॥

ब्रह्मभावेनतत्वज्ञे ! ये पश्यन्तिचराचरम् ।
तेषांतत्वाविदांपुंसांतत्त्वचक्रेऽधिकारिता ॥ २०७ ॥

अर्थ-हे तत्वज्ञे ! जो लोग इस चराचर जगत्को ब्रह्ममय अवलोकन करते हैं, उन तत्वज्ञानसम्पन्नपुरुषोंकाही इस तत्वचक्रमें अधिकार है ॥ २०७ ॥

सर्व्वब्रह्ममयंभावश्चक्रेऽस्मिस्तत्वसंज्ञके ।
येषामुत्पद्यतेदेवि ! तएवतत्वचाक्रिणः ॥ २०८ ॥

अर्थ-हे देवि ! इस तत्वचक्रमें तत्वज्ञानसम्पन्न पुरुषोंकाही अधिकार है जो सबको ब्रह्ममय समझते हैं ॥ २०८ ॥

नघटस्थापनात्रास्तिनबाहुल्येनपूजनम् ।
सर्व्वत्रब्रह्मभावेनसाधयेत्तत्वसाधनम् ॥ २०९ ॥

अर्थ-इस तत्वचक्रमें घटस्थापन नहींहै, पूजाकी बहुतापनभी नहीं है, सब स्थानमेंही ब्रह्मभावसे इस तत्वका साधन करना चाहिये ॥ २०९ ॥

ब्रह्ममन्त्रीब्रह्मनिष्ठोभवेच्चक्रेश्वरःप्रिये ! ।
ब्रह्मज्ञैःसाधकैःसार्द्धंतत्त्वचक्रंसमारभेत् ॥ २१० ॥

अर्थ–हे प्रिये ! ब्रह्ममंत्रोपासक और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको चक्रेश्वर होना चाहिये, वह ब्रह्मज्ञानयुक्त साधकपुरुषोंके साथ तत्व-चक्रका अनुष्ठान करे ॥ २१० ॥

रम्येसुनिर्म्मलेदेशेसाधकानांसुखावहे ।
विचित्रासनमानीयकल्पयेद्विमलासनम् ॥ २११ ॥

अर्थ–उत्तम, साफ, सुथरा, निर्मल और रमणीय स्थान साधक-जनोंको उत्तम सुखका देनेवाला है । उस स्थानमें विचित्र आसन बिछाय साधक उसपर बैठनेका स्थान बनावै ॥ २११ ॥

तत्रोपविश्यचक्रेशःसहितोब्रह्मसाधकैः ।
आसादयेत्तुतत्त्वानिस्थापयेदग्रतःशिवे ! ॥ २१२ ॥

अर्थ–हे शिवे ! उस स्थानमें चक्रेश्वर सब साधकोंके साथ बैठ कर सब तत्वोंको मंगाय सन्मुख रक्खे ॥ २१२ ॥

तारादिप्राणबीजान्तंशतावृत्त्याजपन्मनुम् ।
सर्व्वतत्त्वेषुचक्रेशइमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ २१३ ॥

अर्थ–सब तत्वोंके ऊपर चक्रेश्वरको " ओं हंसः " मंत्र शतवार पढ़कर यह मंत्र पढना चाहिये कि ॥ २१३ ॥

ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैवतेनगन्तव्यंब्रह्मकर्म्मसमाधिना ॥ २१४ ॥

अर्थ–जिसके द्वारा अर्पण करताहूं वह ब्रह्म है जिसम अर्पण करताहूं वहभी ब्रह्म है जो अर्पण करता है वहभी ब्रह्म है जो इस प्रकार ब्रह्ममय कर्मकी समाधिसे साधक ब्रह्ममेंही लय जाता है ॥ २१४ ॥

सप्तधावात्रिधाजप्त्वातानिसर्व्वाणिशोधयेत् ॥ २१५ ॥

अर्थ–इस मंत्रको सातवार या तीन वार जप करके सब तत्वोंको शोधन करै ॥ २१५ ॥

ततोब्राह्मेणमनुनासमर्प्यपरमात्मने ।
ब्रह्मज्ञैःसाधकैःसार्धंविदध्यात्पानभोजनम् ॥ २१६ ॥

अर्थ–फिर "ओं सच्चिदेकं ब्रह्म" इस मंत्रसे सब तत्वोंको ब्रह्ममें समर्पण कर ब्रह्मज्ञानी साधकोंके साथ पान और भोजन करै ॥ २१६ ॥

ब्रह्मचक्रेमहेशानि ! वर्णभेदंविवर्जयेत् ।
नदेशकालनियमोनपात्रनियमस्तथा ॥ २१७ ॥

अर्थ–हे महेश्वरि ! इस ब्रह्मचक्रमें जातिभेदका विचार नहीं करै, इसमें देशकालका नियम नहीं है न पात्रापात्रका नियम है ॥ २१७ ॥

येकुर्वन्तिनरामूढादिव्यचक्रेप्रमादतः ।
कुलभेदंवर्णभेदंतेगच्छन्त्यधमांगतिम् ॥ २१८ ॥

अर्थ–जो मूढ पुरुष प्रमादके वश होकर इस दिव्यचक्रमें जातिभेद या कुलभेदका विचार करता है वह अधमगतिको प्राप्त होता है ॥ २१८ ॥

अतःसर्व्वप्रयत्नेनब्रह्मज्ञैःसाधकोत्तमैः ।
तत्वचक्रमनुष्ठेयंधर्मकामार्थमुक्तये ॥ २१९ ॥

अर्थ–अतएव जो लोग ब्रह्मज्ञ और श्रेष्ठ साधक हैं उनको धर्म, अर्थ, काम और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये सर्व यत्नसे तत्वचक्रका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २१८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

गृहस्थानामशेषेणधर्म्मानकथयत्प्रभो ! ।
संन्यासविहितान्धर्म्मान्कृपयावक्तुमर्हसि ॥ २२० ॥

अर्थ-श्री देवीजीने कहा-हे प्रभो ! आपने सम्पूर्ण गृहस्थधर्म कहा अब कृपाकरके संन्यास धर्म कहिये ॥ २२० ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

अवधूताश्रमोदेवि ! कलौसंन्यासउच्यते ।
विधिनायेनकर्त्तव्यस्तत्सर्व्वंशृणुसाम्प्रतम् ॥ २२१ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा-हे देवि ! कलियुगमें अवधूताश्रम-कोही संन्यास कहते हैं। अब वह कहता हूं की जिस प्रकारसे संन्यास आश्रम अवलम्बन करना चाहिये ॥ २२१ ॥

ब्रह्मज्ञानेसमुत्पन्नेविरतेसर्व्वकर्म्मणि ।
अध्यात्मविद्यानिपुणःसंन्यासाश्रममाश्रयेत् ॥ २२२ ॥

अर्थ-जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाय, जब समस्त काम्य कर्म रहित हो जाय तिसकालमें अध्यात्मविद्याविशारद पुरुष संन्यासाश्रमको ग्रहण करै ॥ २२२ ॥

विहायवृद्धौपितरौशिशुंभार्य्यांपतिव्रताम् ।
त्यक्त्वासमर्थान्बन्धूंश्चप्रव्रजन्नारकीभवेत् ॥ २२३ ॥

अर्थ-बूढ़े मा-बाप, शिशु-पुत्र, पतिव्रता भार्या, असमर्थ पोषण करनेके योग्योंको छोड़ जो संन्यासी होता है वह नरकको जाता है ॥ २२३ ॥

ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यःशूद्रःसामान्यएवच ।
कुलावधूतसंस्कारेपञ्चानामधिकारिता ॥ २२४ ॥

अर्थ–कुलावधूतसंस्कारमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और साधारण जाती इन पांच वर्णोंकाही अधिकार है ॥ २२४ ॥

सम्पाद्यगृहकर्म्माणिपरितोष्यपरानापि ।
निर्म्ममोनिलयाद्गच्छेन्निष्कामोविजितेन्द्रियः ॥२२५॥

अर्थ–गृहके सारे कार्य सिद्ध करके सब आत्मीय स्वजनोंको संतुष्टकर ममतारहित कामनारहित और जितेन्द्रिय होकर साधक पुरुष घरसे बाहर निकले ॥ २२५ ॥

आहूयस्वजनान्बन्धून्ग्रामस्थान्प्रतिवासिनः ।
प्रीत्यानुमतिमान्विच्छेद्गृहाज्जिगमिषुर्ज्जनः ॥ २२६ ॥

अर्थ–जो गृहस्थाश्रमको छोड़कर गमन करना चाहै वह निजजनों, बन्धुबान्धवोंको, पड़ोसियोंको और ग्रामवासियोंको बुलायकर प्रीतिपूर्ण हृदयसे अनुमति मांगे ॥ २२६ ॥

तेषामनुज्ञामादायप्रणम्यपरदेवताम् ।
ग्रामंप्रदक्षिणीकृत्यनिरपेक्षोगृहादियात् ॥ २२७ ॥

अर्थ–फिर सबकी अनुमति ले अभीष्टदेवताको प्रणाम कर ग्रामकी प्रदाक्षिणा लगाय निरपेक्षहृदय हो घरसे बाहर निकले ॥ २२७ ॥

मुक्तःसंसारपाशेभ्यःपरमानन्दनिर्वृतः ।
कुलावधूतंब्रह्मज्ञंगत्वासंप्रार्थयेदिदम् ॥ २२८ ॥

अर्थ–फिर संसारबन्धनसे छूट परमानन्दहृदयमें परितृप्त हो कुलावधूत ब्रह्मज्ञपुरुषके निकट जाय प्रार्थना करै कि ॥ २२८ ॥

गृहाश्रमेपरब्रह्मन्!ममैतद्विगतंवयः ।
प्रसादंकुरुमेनाथ!संन्यासग्रहणंप्रति ॥ २२९ ॥

अर्थ-परब्रह्मन् ! मेरी यह वयस गृहस्थाश्रममें बीतीहै हे नाथ ! मैं इस समय संन्यास ग्रहण करनेके लिये आयाहूं मुझसे प्रसन्न हो ॥ २२९ ॥

निवृत्तगृहकर्म्माणंविचार्य्यविधिवद्गुरुः ।
शान्तंविवेकिनंवीक्ष्यद्वितीयाश्रममादिशेत् ॥ २३० ॥

अर्थ-फिर गुरु यह देखकर कि उसके गृहस्थाश्रमके समस्त कार्य निर्वाह हुए हैं या नहीं । और उसे शान्त व विवेकवान निहार कर दूसरे आश्रममें दीक्षित करै ॥ २३० ॥

ततःशिष्यःकृतस्नानोयतात्माविहिताह्निकः ।
ऋणत्रयविमुक्त्यर्थंदेवर्षीनर्चयेत्पितॄन् ॥ २३१ ॥

अर्थ-फिर स्नान कर आत्माको जीत शिष्यको आह्निक कार्य समाप्त करना चाहिये फिर तीन ऋणसे छूटनेके लिये देवगण पितृगण और ऋषिगणोंका तर्पण करे ॥ २३१ ॥

देवाब्रह्माचविष्णुश्चरुद्रश्चस्वगणैःसह ।
ऋषयःसनकाद्याश्चदेवब्रह्मर्षयस्तथा ॥ २३२ ॥

अर्थ-देवगण, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रके अनुचर, सनक, सनन्दन, सनातनादि ऋषिगण, नारदादिक देवर्षिगण, भृगुआदि महर्षि गण ॥ २३२ ॥

अत्रयेपितरःपूज्यावक्ष्यामिशृणुतानपि ॥२३३ ॥
पितापितामहश्चैवप्रपितामहएवच ।
मातापितामहीदेवि! तथैवप्रपितामही ।
मातामहादयोऽप्येवंमातामह्यादयोऽपिच ॥ २३४ ॥

अर्थ-और पितरोंकी सन्यास ग्रहण करनेके समय जैसी पूजा करनी चाहिये वह तुमसे कहताहूं श्रवण करो हे देवि !

पिता, माता, पितामह (दादा), पितामही (दादी), प्रपितामह (परदादा), प्रपितामही (परदादी), मातामह (नाना), मातामही (नानी), प्रमातामह (परनाना), प्रमातामही (परनानी), वृद्धप्रमातामह (सरनाना), वृद्धप्रमातामही (सरनानी), (पितृऋणसे छूटनेके लिये इनका और वृद्धप्रपितामह वृद्धप्रपितामही अतिवृद्धप्रमातामह इत्यादि) की पूजा करनी होगी ॥२३३॥ २३४ ॥

प्राच्यामृषीन्यजेद्देवान्दक्षिणस्यांपितॄन्यजेत् ।
मातामहान्प्रतीच्याञ्चपूजयेन्न्यासकर्म्मणि ॥२३५॥

अर्थ-सन्यास ग्रहण करनेके समय पूर्वदिशाओंके देवताओंकी और ऋषिगणोंकी पूजा करे । दक्षिणदिशामें पितृपक्षकी पूजा करनी योग्य है पश्चिमदिशामें मातामहपक्षकी पूजा करनी चाहिये ॥ २३५ ॥

पूर्व्वादिक्रमतोदद्यादासनानांद्वयंद्वयम् ।
देवादीन्क्रमतस्तत्रावाह्यपूजांसमाचरेत् ॥२३६ ॥

अर्थ-पूर्वदिशासे आरम्भ करके सबके लिये दोदो आसन स्थापन करे इन आसनोंपर क्रमानुसार देवादिकोंका आवाहन करके पूजा करनी आरम्भ करे ॥ २३६ ॥

समर्च्यविधिवत्तेभ्यःपिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ।
पिण्डप्रदानविधिनादत्वापिण्डंयथाक्रमम् ।
कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेत्पितृदेवताः ॥ २३७ ॥

अर्थ-फिर यथाविधानसे सबकी पूजा करके पृथक् २ पिण्डदान करे । इस प्रकार पिण्डदानकी विधिके अनुसार क्रमानुसार पिण्डदानकर पितृ और देवताओंसे प्रार्थना करे ॥ २३७ ॥

तृप्यध्वंपितरोदेवादेवर्षिमातृकागणाः ।
गुणातीतपदेयूयमनृणीकुरुताचिरात् ॥ २३८ ॥

अर्थ-हे पितृगण, मातृगण, देवर्षिगण, मैं गुणातीतपदपर गमन करता हूं आप लोग शीघ्रमुझको ऋणसे छुटावैं ॥ २३८ ॥

इत्यानृण्यमर्थयित्वाप्रणम्यचपुनःपुनः ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तआत्मश्राद्धंप्रकल्पयेत् ॥ २३९ ॥

अर्थ-इस प्रकार अऋणी होनेको बारम्बार प्रणाम करके तीन ऋणसे छूटनेके लिये अपना श्राद्ध करना चाहिये ॥ २३९ ॥

पिताह्यात्मैवसर्व्वेषांततिपताप्रपितामहः ।
आत्मन्यात्मार्पणार्थायकुर्य्यादात्मक्रियांसुधीः॥२४०॥

अर्थ-पिता, पितामह, प्रपितामह यह आत्मासे अलग नहीं हैं। अत एव ब्रह्ममें आत्मसमर्पण करनेके निमित्त ज्ञानीपुरुषको अपना श्राद्ध करना चाहिये ॥ २४० ॥

उत्तराभिमुखोभूत्वापूर्व्ववत्कल्पितासने ।
आवाह्यात्मपितॄन्देवि ! दद्यात्पिण्डंसमर्च्चयन् ॥२४१॥

अर्थ-हे देवि ! पहलेकी समान परिकल्पित आसनपर उत्तरकी ओरको मुख करके बैठे और अपने पितृगणोंका आवाहन कर अर्च्चनापूर्वक पिण्डदान करे ॥ २४१ ॥

प्रागग्रान्दक्षिणाग्रांश्चपश्चिमाग्रान्यथाक्रमात् ।
पिण्डार्थमास्तरेद्दर्भानुदगग्रान्स्वकर्म्मणि ॥ २४२ ॥

अर्थ-देवता, ऋषि और पितृगणोंका (पिण्डदानके निमित्त) यथाक्रमसे पूर्वकी ओर मुख और पश्चिमकी ओर मुख करके कुश बिछाय अपनेको पिण्ड देनेके लिये कुशोंको उत्तरकी ओरको मुख करके बिछावै ॥ २४२ ॥

समाप्यश्राद्धकर्माणिगुरुदर्शितवर्त्मना ।
मुमुक्षुश्चित्तशुद्धचर्थमिमंमन्त्रंशतंजपेत् ॥ २४३ ॥
ह्रींत्र्यम्बकंयजामहेसुगन्धिपुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ २४४ ॥

अर्थ–मोक्षके अभिलाषी पुरुषको गुरूकी बताई पद्धति का अवलम्बन करके श्राद्धकर्मको समाप्त कर चित्तशुद्धिके लिये शतवार " ह्रीं त्र्यम्बकं " मंत्रका जपकरना चाहिये ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

उपासनानुसारेणवेद्यांमण्डलपूर्वकम् ।
संस्थाप्यकलशंतत्रगुरुःपूजांसमारभेत् ॥ २४५ ॥

अर्थ–फिर गुरूको उचित है कि पूजाकी विधिके अनुसार वेदीपर मण्डल बनाय तिसके ऊपर कलश स्थापितकर पूजाको आरम्भ करै ॥ २४५ ॥

ततस्तुपरमंब्रह्मध्यात्वाशाम्भववर्त्मना ।
विधायपूजांब्रह्मज्ञोवह्निस्थापनमाचरेत् ॥ २४६ ॥

अर्थ–फिर ब्रह्मज्ञानी पुरुष शिवकी दिखाई पद्धतिके अनुसार परब्रह्मका ध्यान करके पूजा करे और अग्निस्थापन करे ॥ २४६॥

प्रागुक्तसंस्कृतेवह्नौस्वकल्पोक्ताहुतिंगुरुः ।
दत्वाशिष्यंसमाहूयसाकल्यंहावयेत्ततम् ॥ २४७ ॥

अर्थ–तदुपरान्त संस्कारकीहुई अग्निमें स्वकल्पोक्त आहुति देकर गुरू शिष्यको बुलाकर साकल्य होम करावै ॥ २४७ ॥

आदौव्याहृतिभिर्हुत्वाप्राणहोमंप्रकल्पयेत् ।
प्राणापानौसमानश्चोदानव्यानौचवायवः ॥ २४८ ॥

अर्थ–पहले व्याहृती होम करके प्राणहोम करै प्राणहोमके समय प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, इन पांचों वायुमेंसे प्रत्येकका होम करना चाहिये ॥ २४८ ॥

तत्वहोमंततःकुर्य्याद्देहात्माध्यासमुक्तये ।
पृथिवींसलिलंवह्निर्वायुराकाशमेवच ॥ २४९ ॥

अर्थ-फिर देहसे आत्माका अध्यास छुटानेके लिये तत्वहोम करना चाहिये । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ॥ २४९ ॥

गन्धोरसश्चरूपञ्चस्पर्शःशब्दोयथाक्रमात् ।
ततोवाक्पाणिपादाश्चपायूपस्थौ ततःपरम् ॥ २५० ॥

अर्थ-गन्ध, जल, रूप, स्पर्श, शब्द, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ॥ २५० ॥

श्रोत्रंत्वङ्नयनंजिह्वाघ्राणंबुद्धीन्द्रियाणिच ।
मनोबुद्धिश्चचित्तञ्चाहङ्कारोदेहजाःक्रियाः ॥ २५१ ॥

अर्थ-कान, त्वक्, नयन, जीभ, घ्राण, यह सब ज्ञानेन्द्रियहैं । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार देहके समस्त कार्य ॥ २५१ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्म्माणिप्राणकर्म्माणियानिच ॥ २५२ ॥
एतानिमेपदान्तेचशुद्धयन्तांपदमुच्चरेत् ।
ह्रींज्योतिरहंविरजाविपाप्माभूयासमित्यपि ॥ २५३ ॥

अर्थ-इन्द्रियोंके समस्त कार्य, प्राणोंके समस्त कार्य इन समस्त पदोंको उच्चारण करके "मेशुध्यन्ताम्" अर्थात् शुद्धहो पद उच्चारण करे तदुपरान्त "ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासम्" यहभी पढै (१) ॥ २५२ ॥ २५३ ॥

चतुर्विंशतितत्त्वानिकर्माणिदैहिकानिच ।
हुत्वाग्नौनिष्क्रियोदेहंमृतवच्चिन्तयेत्ततः ॥ २५४ ॥

---

(१) मंत्रोद्धारः "प्राणापानसमानोदानव्याना मे शुध्यन्तां ह्रीं ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा" इस प्रकार सब जगह योजना करे ॥

अर्थ–इस प्रकार चौवीस तत्व और समस्त कर्मोंको अग्निमें होमकर कर्मसे निकलनेके पीछे अपने शरीरको मृतकतुल्य समझे ॥ २५४॥

विभाव्यमृतवत्कायंरहितंसर्व्वकर्मणा ।
स्मरंस्तत्परमंब्रह्मयज्ञसूत्रंसमुद्धरेत् ॥ २५५ ॥

अर्थ–इस प्रकार अपने शरीरको मृतक तुल्य और सबकर्मोंसे रहित विचारकर परमब्रह्मका स्मरण कर गलेमेंसे यज्ञसूत्र निकाल ले॥ २५५॥

ऐंक्लींहंसइतिमन्त्रेणस्कन्धादुत्तार्य्यतत्त्ववित्[1] ।
यज्ञसूत्रंकरेकृत्वापठित्वाव्याहृतित्रयम् ।
वह्निजायांसमुच्चार्य्यघृताक्तमनलेक्षिपेत् ॥ २५६ ॥

अर्थ–तत्वका जाननेवाला पुरुष " ऐं क्लीं हूं " मंत्र पढकर कंधेसे यज्ञसूत्र निकाल हाथमें धारण करे और तीन व्याहृति पढकर ' स्वाहा ' पद उच्चारण करे और घृतसंयुक्त यह यज्ञोपवीत अग्निमें डालदे ॥ २५६ ॥

हुत्वैवमुपवीतञ्चकामवीजंसमुच्चरन् ।
छित्त्वाशिखांकरेकृत्वाघृतमध्येनियोजयेत् ॥ २५७ ॥

अर्थ–इस प्रकार यज्ञोपवीत होमकर " क्लीं " बीज उच्चारण करके चुटियाको काटकर हाथमें ले घृतमें स्थापन करे ॥ २५७ ॥

ब्रह्मपुत्रि ! शिखे ! त्वंहिबालरूपातपास्विनी ।
दीयतेपावकेस्थानंगच्छदेवि ! नमोऽस्तुते ॥ २५८ ॥

अर्थ–फिर यह मंत्र पढ़ै कि, हे ब्रह्मपुत्रि शिखे ! तुम केश-रूपा तपास्विनी हो । हे देवि! तुमको अग्निमें स्थान देताहूं तुम गमन करो तुमको नमस्कार है ॥ २५८ ॥

---

१ ऐंक्लींहूं इति मंत्रेण इतिपाठान्तरम् ।

कामंमायांकूर्च्चमन्त्रंवह्निजायामुदीरयन्।
तस्मिन्सुसंस्कृतेवह्नौशिखाहोमंसमाचरेत् ॥ २५९ ॥

अर्थ–फिर "क्लीं ह्रीं हूं फट् स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर उस संस्कारित अग्निमें शिखाको होम करे ॥ २५९ ॥

शिखामाश्रित्यपितरोदेवादेवर्षयस्तथा।
सर्वाण्याश्रमकर्माणिनिवसन्तिशिखोपरि ॥ २६० ॥

अर्थ–पितृगण, देवगण, देवर्षिगण और समस्त आश्रमोंके कार्य इस शिखाका आश्रय करके इसमें रहते हैं ॥ २६० ॥

अतःसन्तर्प्यताःसर्वादेवर्षिपितृदेवताः।
शिखासूत्रपरित्यागाद्देहीब्रह्ममयोभवेत् ॥ २६१ ॥

अर्थ–इस कारण, देवगण, ऋषिगण, पितृगण, देवतागण, सबहीका तर्पण करके, देही शिखा और यज्ञोपवीतको छोडते ही ब्रह्ममय होजाता है ॥ २६१ ॥

यज्ञसूत्रशिखात्यागात्संन्यासःस्याद्द्विजन्मनाम् ॥२६२

अर्थ–द्विजगण, शिखा और यज्ञोपवीतके छोड़तेही ब्रह्ममय हो जाता है ॥ २६१ ॥

शूद्राणामितरेषांचशिखांहुत्वैवसंस्क्रिया।
ततोमुक्ताशिखासूत्रःप्रणमेद्दण्डवद्गुरुम्।
गुरुरुत्थाप्यतंशिष्यंदक्षकर्णेवदेदिदम् ॥ २६३ ॥

अर्थ–शूद्र वा साधारण जातियोंका शिखा काटकर होम करतेही संस्कार हो जाता है फिर शिखाको छोड़कर गुरुको दण्डवत् प्रणाम करै ॥ २६३ ॥

तत्त्वमसिमहाप्राज्ञ! हंसः सोऽहंविभावय।
निर्म्ममोनिरहङ्कारःस्वभावेनसुखं चर ॥ २६४ ॥

अर्थ-शिष्यको उठाकर गुरू उसके दाहिने कानमें यह मंत्र कहे कि-हे महाप्राज्ञ! तुमहीं वह ब्रह्महो तुम हंस और सोहंकी चिन्ता करो । तुम स्वभावसेही अहंकार व ममताको छोड़कर सुखसे विचरण करो ॥ २६४ ॥

ततोघटञ्चवह्निञ्चविसृज्यब्रह्मतत्त्ववित् ।
आत्मस्वरूपंतंमत्वाप्रणमेच्छिरसागुरुः ॥ २६५ ॥

अर्थ-फिर ब्रह्मज्ञानी पुरुष घट और अग्निका विसर्जन कर चेलेको अपना स्वरूप विचार मस्तक झुकायकर प्रणाम करे (और यह मंत्र पढ़ै कि) ॥ २६५ ॥

नमस्तुभ्यंनमोमह्यंतुभ्यंमह्यंनमोनमः ।
त्वमेवतत्तत्त्वमेवविश्वरूप ! नमोऽस्तुते ॥ २६६ ॥

अर्थ-तुमको नमस्कार है, मुझको नमस्कार है । तुमको और मुझको वारंवार नमस्कार है । हे विश्वरूप ! तुमही यह जगत् हो और यह जगत् ही तुमहो तुमको नमस्कार करताहूं ॥ २६६ ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकानांतत्वज्ञानांजितात्मनाम् ।
स्वमन्त्रेणाशिखाच्छेदात्संन्यासग्रहणंभवेत् ॥ २६७ ॥

अर्थ-जो लोग ब्रह्ममंत्रके उपासक जितेन्द्रिय और तत्वज्ञानसम्पन्न हैं वह यदि अपना मंत्र पढकर चोटीको काटैं तौ उनका संन्यासग्रहण करना हो गया ॥ २६७ ॥

ब्रह्मज्ञानविशुद्धानांकिंयज्ञैःश्राद्धपूजनैः ।
स्वेच्छाचारपराणान्तुप्रत्यवायोनविद्यते ॥ २६८ ॥

अर्थ-जो लोग ब्रह्मज्ञानसे शुद्ध हुए हैं, उनको यज्ञ, पूजा और श्राद्धादि करनेकी आवश्यकता नहीं । वह स्वेच्छाचारी हों तौ भी कुछ बुराई नहीं है ॥ २६८ ॥

ततोनिर्द्वन्द्वरूपोऽसौनिष्कामःस्थिरमानसः ।
विहरेत्स्वेच्छयाशिष्यःसाक्षाद्ब्रह्ममयोभुवि ॥ २६९ ॥

अर्थ-फिर शिष्य सुख दुःखादिरूप द्वन्द्वरहित, कामनारहित स्थिरचित्त औ साक्षात् ब्रह्ममय होकर पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरण करै ॥ २६९ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तंसद्रूपेणविभावयन् ।
विस्मरन्नामरूपाणिध्यायन्नात्मानमात्मनि ॥ २७० ॥

अर्थ-वह आब्रह्मस्तम्बतक सब विश्वको मेरा स्वरूप समझे नाम व रूपको भूलनेकी चेष्टा करे आत्मामें आत्माका ध्यान करै ॥ २७० ॥

अनिकेतःक्षमावृत्तोनिःशङ्कःसङ्गवर्जितः ।
निर्म्ममोनिरहङ्कारःसंन्यासीविहरेत्क्षितौ ॥ २७१ ॥

अर्थ-वह वासगृहशून्य, क्षमाशील, निःशंकहृदय, संसर्गरहित ममतारहित अहंकाररहित और संन्यासी होकर पृथ्वीपर विचरण करै ॥ २७१ ॥

मुक्तोविधिनिषेधेभ्योनिर्य्योगक्षेमआत्मवित् ।
सुखदुःखसमोधीरोजितात्माविगतस्पृहः ॥ २७२ ॥

अर्थ-वह शास्त्रीय विधिनिषेधसे मुक्त होगा उसको लब्ध विषयकी रक्षा और अलब्ध विषयके लाभ करनेकी चेष्टा न करनी चाहिये । वह सुखदुःखमें समान, धीर, जितेन्द्रिय और स्पृहादिरहित होकर आत्मतत्त्वज्ञानमें रतरहै ॥ २७२ ॥

स्थिरात्माप्राप्तदुःखोऽपिसुखेप्राप्तेऽपिनिःस्पृहः ।
सदानन्दःशुचिःशान्तोनिरपेक्षोनिराकुलः ॥ २७३ ॥

अर्थ-दुःख उपस्थित होनेपरभी उसका अन्तःकरण स्थिर रहै, विचलित न होवे, सुख उपस्थित होनेपरभी उसमें स्पृहा नहीं करे। सदा आनन्दयुक्त, पवित्र, शान्त, निरपेक्ष और निराकुल होवे ॥ २७३ ॥

नोद्वेजकःस्याज्जीवानांसदाप्राणिहितेरतः।
विगतामर्षभीर्दान्तोनिःसङ्कल्पोनिरुद्यमः ॥ २७४ ॥

अर्थ-वह सदा सब प्राणियोंका हित करनेमें तत्पर रहै किसीके मनमें उद्वेग न जन्मावै। वह क्रोधरहित और भयरहित होवे, वह संकल्परहित, उद्यमरहित होवै ॥ २७४ ॥

शोकद्वेषविमुक्तःस्याच्छत्रौमित्रेसमोभवेत्।
शीतवातातपसहःसमोमानापमानयोः ॥ २७५ ॥

अर्थ-शोकरहित, द्वेषरहित और शत्रु, मित्रको समान देखै मान, अपमानको समान समझै। वह शीत, वात, आतपादिके कष्टको सहनेमें समर्थ होवै ॥ २७५ ॥

समःशुभाशुभेतुष्टोयदृच्छाप्राप्तवस्तुना।
निस्त्रैगुण्योनिर्विकल्पोनिर्लोभःस्यादसञ्चयी ॥ २७६ ॥

अर्थ-वह इच्छानुसार वस्तुमेंही संतुष्ट रक्खे। वह त्रिगुणातीत निर्विकल्प लोभशून्य और संचयरहित होवै ॥ २७६ ॥

यथासत्यमुपाश्रित्यमृषाविश्वंप्रतिष्ठति।
आत्माश्रितस्तथादेहोजानन्नेवंसुखीभवेत् ॥ २७७ ॥

अर्थ-जगत् मिथ्यास्वरूप होकरभी जैसे एकमात्र सत्यस्वरूप परमात्माको आश्रय करके सत्यकी समान मालूम होताहै। उसकी समान आत्माको आश्रय करकै मिथ्या भूत यह देह आत्मवत् प्रतीत होता है, संन्यासी यह जानकर सुखीहो ॥ २७७ ॥

इन्द्रियाण्येवकुर्वन्तिस्वंस्वंकर्म्मपृथक्पृथक् ।
आत्मासाक्षीविनिर्लिप्तोज्ञात्वैवंमोक्षभाग्भवेत् ॥२७८॥

अर्थ-इन्द्रियांही पृथक् २ अपने कर्मको पृथक् २ निर्वाह करतीहैं आत्मा, साक्षी और निर्लिप्त है अर्थात् वह उन कर्मोंमें बद्ध नहीं होता संन्यासी यह जानकर मोक्षका भागी होताहै ॥२०८॥

धातुप्रतिग्रहंनिन्दामनृतंक्रीड़नंस्त्रिया ।
रेतस्त्यागमसूयाञ्चसंन्यासीपरिवर्ज्जयेत् ॥ २७९ ॥

अर्थ-धातुद्रव्य ग्रहण करना, पराई निन्दा करना, मिथ्या व्यवहार, स्त्रियोंकेसाथ क्रीड़ा, शुक्रत्याग और असूया. संन्यासीको चाहिये की इन सबको छोड़ देवै ॥ २७९ ॥

सर्वत्रसमदृष्टिःस्यात्कीटेदेवेतथानरे ।
सर्वंब्रह्मेतिजानीयात्परिव्राट्सर्वकर्म्मसु ॥ २८० ॥

अर्थ-परिव्राट् संन्यासीका कर्त्तव्य यह है कि देवता, मनुष्य, या कीड़ा मकोड़ा, सबको समदृष्टिसे देखे सब कार्योंमें सबको ब्रह्म जाने ॥ २८० ॥

विप्रान्नंश्वपचान्नंवायस्मात्तस्मात्समागतम् ।
देशंकालंतथापात्रमश्नीयादविचारयन् ॥ २८१ ॥

अर्थ-संन्यासीका कर्तव्य यह है की ब्राह्मणका अन्न होवे वा चाण्डालका अन्न होवे जिस किसी मनुष्यसे प्राप्त करै, तिस अन्नको देश काल और पात्रका विचार न करके अनायास भोजन कर जाय ॥ २८१ ॥

अध्यात्मशास्त्राध्ययनैःसदातत्त्वविचारणैः ।
अवधूतोनयेत्कालंस्वेच्छाचारपरायणः ॥ २८२ ॥

अर्थ-अवधूत पुरुष स्वेच्छाचारी होकरभी वेदान्तादि अध्यात्मशास्त्र पढ़कर सदा आत्मतत्वका विचार करके समय बितावै ॥ २८२ ॥

संन्यासिनांमृतंकायंदाहयेन्नकदाचन ।
सम्पूज्यगन्धपुष्पाद्यैर्निखनेद्वाप्सुमज्जयेत् ॥ २८३ ॥

अर्थ-संन्यासियोंका मृत देहका कभी दाह नहीं करना चाहिये । यह देह गन्धपुष्पादिसे अर्चित करकै पृथ्वीमें दाब दे अथवा जलमें विसर्जन करै ॥ १८३ ॥

अप्राप्तयोगमर्त्त्यानांसदाकामाभिलाषिणाम् ।
स्वभावाज्जायतेदेवि ! प्रवृत्तिःकर्म्मसङ्कुले ॥ २८४ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो लोग योग और ब्रह्मज्ञानको प्राप्त नहीं हुए जो सदा भोगके अभिलाषी हैं, जिनकी स्वभावसेही कर्मकाण्डमें प्रवृत्ति होतीहै ॥ २८४ ॥

तत्रापितेसानुरक्ताध्यानार्चाजपसाधने ।
श्रेयस्तदेवजानन्तुयत्रैवदृढनिश्चयः ॥ २८५ ॥

अर्थ-वही पुरुष कर्मकाण्डमें अनुरागी होकर ध्यान, पूजा और जपादिका साधन किया करतेहैं यह उसी साधनमें दृढ निश्चय होकर उसकोही श्रेष्ठ समझै ॥ २८५ ॥

अतःकर्म्मविधानानिप्रोक्तानिचित्तशुद्धये ।
नामरूपंबहुविधंतदर्थंकल्पितंमया ॥ २८६ ॥

अर्थ--इसी कारणसे मैंने चित्तशुद्धिके लिये कर्मकाण्डका विधान कहा है । इसी कारणसे मैंने अनेक प्रकारके नामरूप कल्पना किये हैं ॥ २८६ ॥

ब्रह्मज्ञानादृतेदेवि!कर्म्मसंन्यासनंविना ।
कुर्वन्कल्पशतंकर्म्मनभवेन्मुक्तिभाग्जनः ॥ २८७ ॥

अर्थ-हे देवि! ब्रह्मज्ञानके विना और कर्म संन्यासके विना शत२ कल्पतक पूजा जपादि कर्म करनेपर भी कोई मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सक्ता ॥ २८७ ॥

कुलावधूतस्तत्त्वज्ञोजीवन्मुक्तोनराकृतिः ।
साक्षान्नारायणंमत्वागृहस्थस्तंप्रपूजयेत् ॥ २८८ ॥

अर्थ-ब्रह्मज्ञानसम्पन्न कुलावधूत मनुष्याकार होकरभी जीवन्मुक्त हैं। गृहस्थ उसको साक्षात् नारायण समझ पूजा करे ॥२८८॥

यतेर्दर्शनमात्रेणविमुक्तःसर्वपातकात् ।
तीर्थव्रततपोदानसर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ २८९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे वर्णाश्रमाचारधर्म-
कथनं नाम अष्टमउल्लासः ॥ ८ ॥

अर्थ-यतीका दर्शन करतेही सब पापोंसे छूट जाताहै। जो पुरुष यतीका दर्शन करता है वह तीर्थगमन, व्रतानुष्ठान, तप, दान और सब यज्ञोंके फलको प्राप्त कर लेताहै ॥ २८९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्या-
सदाशिवसंवादे वर्णाश्रमाचारकथनं नाम
अष्टम उल्लासः ॥ ७ ॥

नवमउल्लासः ।

श्रीसदाशिव उवाच ।

वर्णाश्रमाचारधर्माःकथितास्तवसुव्रते ।
संस्कारान्सर्ववर्णानांशृणुष्वगदतो मम ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहाः-हे सुव्रते ! सब वर्ण वा आश्रमों-का आचार और धर्म मैंने तुमसे कहा; इस समय सब वर्णोंका संस्कार कहताहूं, श्रवण करो ॥ १ ॥

संस्कारेणविनादेवि ! देहशुद्धिर्नजायते ।
नासंस्कृतोऽधिकारीस्याद्दैवेपैत्र्येचकर्मणि ॥ २ ॥

अर्थ–हे देवि! संस्कारके विना किसीका देह शुद्ध नहीं होता जिस पुरुषका संस्कार नहीं हुआ, वह कभी दैव और पैतृकर्मका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ २ ॥

अतोविप्रादिभिर्वर्णैःस्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रिया ।
कर्त्तव्यासर्वथायत्नैरिहामुत्रहितेप्सुभिः ॥ ३ ॥

अर्थ–जो इस लोक और परलोकमें हितकी कामना करतेहैं उन समस्त ब्राह्मणादि वर्णोंका यह कर्तव्य है कि,उनको सर्व प्रकार और सर्व यत्नसे अपने २ वर्णोंका संस्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥

जीवसेकःपुंसवनंसीमन्तोन्नयनंतथा ।
जातनाम्नीनिष्क्रमणमन्नाशनमतःपरम् ।
चूडोपनयनोद्वाहाःसंस्काराःकथितादश ॥ ४ ॥

अर्थ–गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, घरके बाहर होना, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह, यह दश संस्कार कहे गये हैं ॥ ४ ॥

शूद्राणांशूद्रभिन्नानामुपवीतंनविद्यते ।
तेषांनवैवसंस्काराद्विजातीनांदशस्मृताः ॥ ५ ॥

अर्थ–शूद्र और साधारण जातिका उपनयन नहीं होता। इसी कारणसे उनके नौ संस्कार और द्विजातियोंके दश संस्कार कहेहैं ॥ ५ ॥

नित्यानिसर्व्वकर्म्माणितथानैमित्तिकानिच ।
काम्यान्यपिवरारोहे ! कुर्य्याच्छाम्भववर्त्मना ॥ ६ ॥

अर्थ–हे वरारोहे! सब नित्यकर्म नैमित्तिक कर्म और काम्यकर्म महादेवजीकी दिखाई हुई पद्धतिके अनुसार करै ॥ ६ ॥

यानियानिविधानानियेषुयेषुचकर्म्मसु ।
पुरैवब्रह्मरूपेणतान्युक्तानिमयाप्रिये ! ॥ ७ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जिस २ कर्मका जो जो विधान नियत है मैंने पहलेही पितामहरूपसे उसको कहा है ॥ ७ ॥

संस्कारेषुचसर्व्वेषुतथैवान्येषुकर्म्मसु ।
विप्रादिवर्णभेदेनक्रमान्मन्त्राश्चदर्शिताः ॥ ८ ॥

अर्थ-दशविध संस्कारमें और नित्य नैमित्तिकादि कर्मोंके विषयमें ब्राह्मणादि वर्णभेदमें जो मंत्र नियत हैं उनकोभी कह चुकाहूं ॥ ८ ॥

सत्यत्रेताद्वापरेषुतत्तत्कर्म्मसुकालिके! ।
प्रणवाद्यांस्तुतान्मन्त्रान्प्रयोगेषुनियोजयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ-हे कालिके ! सत्य, त्रेता और द्वापर युगमें उपरोक्त सब कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय मंत्रप्रयोग करनेके निकटही पहले प्रणवको मिलावै ॥ ९ ॥

कलौतुपरमेशानि! तैरेवमनुभिर्नराः ।
मायाद्यैःसर्व्वकर्म्माणिकुर्युःशङ्करशासनात् ॥ १० ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! महादेवजीकी आज्ञा है कि कलियुगमें इन सब मंत्रोंके पहले मायाबीज 'ह्रीं' मिलाय नित्य नैमित्तिकादि कर्मोंको करै ॥ १० ॥

निगमागमतन्त्रेषुवेदेषुसंहितासुच ।
सर्व्वेमन्त्रामयैवोक्ताःप्रयोगोयुगभेदतः ॥ ११ ॥

अर्थ-निगम, आगम, तंत्र, वेद, उसे संहिताओंमें जो मंत्र हैं वह सब कह चुके; परन्तु युगभेदसे उसके प्रयोगमें भेद है ॥ ११ ॥

कलावन्नगतप्राणामानवाहीनतेजसः ।
तेषांहितायकल्याणि!कुलधर्मोनिरूपितः ॥ १२ ॥

अर्थ–हे कल्याणि ! कलियुगके मनुष्योंका प्राण अन्नमें होगा वह निस्तेज होंगे मैंने उनका हितकरनेको कुलधर्म निरूपण कियाहै ॥ १२ ॥

कलिदुर्बलजीवानांप्रयासाशक्तचेतसाम् ।
संस्कारादिक्रियास्तेषांसंक्षेपेणापिवच्मिते ॥ १३ ॥

अर्थ–कलियुगके जीवगण अत्यन्त दुर्बल होंगे । उनपर परिश्रम और क्लेश नहीं सहा जायगा । इस कारण मैं उनकी दशविध संस्कारादि समस्त क्रिया तुमसे संक्षेप करके कहताहूं ॥ १३ ॥

सर्व्वेषांशुभकार्य्याणामादिभूताकुशण्डिका ।
तस्मादादौप्रवक्ष्यामिशृणुतांदेववान्दिते ! ॥ १४ ॥

अर्थ–हे सुरवन्दिते ! कुशण्डिका सब शुभ कर्मोंकी मूलरूपहै अतएव पहले कुशण्डिकाको कहताहूं, श्रवण करो ॥ १४ ॥

रम्येपरिष्कृतेदेशेतुषाङ्गारादिवर्जिते ।
हस्तमात्रप्रमाणेनस्थण्डिलंरचयेत्सुधीः ॥ १५ ॥

अर्थ–तुष अंगारादि रहित उत्तम रमणीय साफ स्थानमें ज्ञानी पुरुष एक हाथके परिमाणका स्थण्डिलके रेतीका बना हुआ होमकी अग्निका स्थान बनावै ॥ १५ ॥

तिस्रोरेखाविधातव्याःप्रागग्रास्तत्रमण्डले ।
कूर्च्चेनाभ्युक्ष्यताःसर्व्वावह्निनावह्निमाहरेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–फिर उस मण्डलके ऊपरी हिस्सेमें पूर्वकी ओर तीन रेखा खैंच कर " हूं " मंत्र पढकर तिसे अभ्युक्षित करके वह्निबीज (रं) पढकर अग्नि लावै ॥ १६ ॥

आनीयवह्नितत्पार्श्वेस्थापयेद्वाग्भवंस्मरन् ॥ १७ ॥

अर्थ–फिर अग्निलाय "ऐं" बीजको स्मरणकर उसको मण्डलके पार्श्वमें स्थापन करै ॥ १७ ॥

ततस्तस्माज्ज्वलद्दारुगृहीत्वादक्षपाणिना ॥
ह्रींक्रव्यादेभ्योनमःस्वाहाक्रव्यादांशम्परित्यजेत् ॥१८

अर्थ-फिर दहिने हाथके द्वारा उसमेंसे एक जलता हुआ काठले " ह्रीं क्रव्यादेभ्यो नमः स्वाहा" यह मंत्र पढ़ दक्षिणकी ओर राक्षसका अंश छोड़ देवै ॥ १८ ॥

इत्थंप्रतिष्ठितंवह्निंपाणिभ्यामात्मसम्मुखम् ।
उद्धृत्यतासुरेखासुमायाद्यांव्याहृतिंस्मरन् ॥ १९ ॥

अर्थ-इस प्रकार प्रतिष्ठित अग्निको दोनों हाथोंसे उठाय मायाबीज उच्चारणकर व्याहृति पढ़े और अपने सामने इन तीन रेखाओंके ऊपर ॥ १९ ॥

संस्थाप्यतृणदारुभ्यांप्रबलीकृत्यपावकम् ।
समिधेद्वेघृताक्तेचहुत्वातास्मिन्हुताशने ।
स्वकर्म्मविहितंनामकृत्वाध्यायेद्धनञ्जयम् ॥ २० ॥

अर्थ-यह अग्नि स्थापन करके तृण काष्ठसे उसको उज्ज्वल करे। फिर उस अग्निमें दो घृतयुक्त समिध् आहुति देकर फिर इस अग्निका अपने कर्मके अनुसार नाम रखकर धनञ्जयनामक अग्निका ध्यान करे ॥ २० ॥

बालार्कारुणसङ्काशंसप्तजिह्वंद्विमस्तकम् ।
अजारूढंशक्तिधरंजटामुकुटमण्डितम् ॥ २१ ॥

अर्थ-जो बालसूर्यकी समान अरुण वर्ण हैं, जिनके सात जीभ हैं, दोमस्तक हैं, जो छागपर सवार है, जिनकी शक्तिका परिमाण नहीं, जिनका मस्तक जटा और मुकुटसे शोभायमान है (उन धनञ्जय नामक अग्निका ध्यान करताहूं)॥ २१ ॥

ध्यात्वैवंप्राञ्जलिर्भूत्वावाहयेद्धव्यवाहनम् ॥ २२ ॥

अर्थ–इस प्रकार ध्यानकर हाथ जोड़ आगे कहा हुआ मंत्र पढ़-कर अग्निका आवाहन करे ॥ २२ ॥

मायामेह्येहिपदतःसर्वामरवदेत्प्रिये ! ।
हव्यवाहपदान्तेचमुनिभिःस्वगणैःसह ।
अध्वरंरक्षरक्षेतिनमःस्वाहाततोवदेत् ॥ २३ ॥

अर्थ–पहले मायाबीज'ह्रीं'उच्चारण करके 'एह्येहि' पद पढकर 'सर्वामर' पद उच्चारण करे । हे प्रिये! फिर 'हव्यवाह' पदके पश्चात्, "मुनिभिः स्वगणैःसह अध्वरं रक्षरक्ष नमः स्वाहा" इन सब पदोंको उच्चारण करे (१) ॥ २३ ॥

इत्यावाह्यहव्यवाहमयंतेयोनिरुच्चरन् ।
यथोपचारैःसम्पूज्यसप्तजिह्वांप्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

अर्थ–इस प्रकार आवाहन करके "वह्ने अयं ते योनिः"पद उच्चारण करके पाद्यादि उपचारसे पूजन करके सप्त जिह्वाकी अर्चना करे २४

कालीकरालीचमनोजवाच
सुलोहिताचैवसुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिंगिनीविश्वनिरूपिणीच
लेलायमानेतिचसप्तजिह्वाः ॥ २५ ॥

अर्थ–सप्तजिह्वाके नाम यथा–काली, कराली, मनोजवा, सुलो-हिता, सुधूम्रा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वनिरूपिणी, लेलायमाना यह सात अग्निका जीभें हैं ॥ २५ ॥

ततोऽग्नेःपूर्वमारभ्यसहकीलालपाणिना ।
उत्तरान्तंमहेशानि ! त्रिधाप्रोक्षणमाचरेत् ॥ २६ ॥

---

(१) मंत्रोद्धार यथाः–"ह्रीं एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिभिः स्वगणैःसहाध्वरं रक्ष रक्ष नमः स्वाहा"

अर्थ-हे महेश्वरि! फिर अग्निकी पूर्वदिशासे आरम्भ करके उत्तरादिशातक तीनवार अग्निको प्रोक्षित करे ॥ २६ ॥

तथैवयाम्यमारभ्यकौबेरान्तंहुताशितुः ।
त्रिधापर्य्युक्षणंकुर्य्यात्ततोयज्ञीयवस्तुनः ॥ २७ ॥

अर्थ-तदनन्तर अग्निकी दक्षिणदिशासे आरम्भ करके उत्तरादिशातक तीनवार प्रोक्षितकर सब उपकरणोंकोभी तीनवार प्रोक्षित करे ॥ २७ ॥

परिस्तरेत्ततोदर्भैःपूर्वस्मादुत्तरावधि ।
उदक्संस्थैरुत्तराग्रैःप्रागग्रैरन्यदिक्स्थितैः ॥ २८ ॥

अर्थ-फिर मंडलीकी पूर्वदिशासे आरम्भ करके उत्तरदिशातक कुशसे आच्छादन करे उत्तर दिशाके कुशोंका मुख उत्तरकी ओर करके औरदिशाओंके कुशोंका मुख पूर्वकी ओरको स्थापन करे ॥ २८ ॥

अग्निंदक्षिणतःकृत्वागत्वाब्रह्मासनान्तिकम् ।
वामाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यांब्रह्मणःकल्पितासनात् ॥ २९ ॥

अर्थ-फिर अग्निको दक्षिणदिशामें रख ब्रह्मासनके निकट जाय बाये हाथसे अँगूठे और कनिष्ठ उंगलीसे ब्रह्माके निमित्त कल्पित आसनसे ॥ २९ ॥

गृहीत्वाकुशपत्रैकंह्रींनिरस्तःपरावसुः ।
इत्युक्त्वाग्नेर्दक्षिणस्यांनिक्षिपेदुत्कारादिना ॥ ३० ॥

अर्थ-एक कुशपत्र ग्रहण करके "ह्रीं निरस्तः परावसुः" मंत्र पढकर अग्निकी दाहीं ओर उसको डाल देवे ॥ ३० ॥

सीदयज्ञपते ! ब्रह्मन्निदन्तेकल्पितासनम् ।
सीदामीतिवदन्ब्रह्माविशेत्तत्रोत्तरामुखः ॥ ३१ ॥

अर्थ-फिर कहै कि हे यज्ञपते ! हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे लिये यह आसन बनाया है, इस पर बैठो । ब्रह्माजी बैठे यह कहकर उत्तरमुख हो उसपर बैठ जावे ॥ ३१ ॥

सम्पूज्यगन्धपुष्पाद्यैर्ब्रह्माणंप्रार्थयेदिदम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-फिर गन्धपुष्पादिसे ब्रह्माकी पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे कि ॥ ३२ ॥

गोपाययज्ञंयज्ञेश ! यज्ञंपाहिबृहस्पते ! ।
माञ्चयज्ञपतिंपाहिकर्मसाक्षिन्नमोऽस्तुते ॥ ३३ ॥

अर्थ-हे यज्ञेश्वर ! इस यज्ञकी रक्षा करो ! बृहस्पति ! इस यज्ञकी रक्षा करो ! हे यज्ञपति ! मेरी रक्षा करो, हे कर्मसाक्षी ! तुमको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

गोपायामिवदेद्ब्रह्माब्रह्माभोवस्स्वयंवदेत् ।
तत्रदर्भमयंविप्रंकल्पयेद्यज्ञसिद्धये ॥ ३४ ॥

अर्थ-फिर ब्रह्मा कहै-कि रक्षाकरताहूं ब्रह्माके न होनेसे स्वयं यह वाक्य कहना चाहिये और यज्ञकी सिद्धिके अर्थ उस ब्रह्माके स्थानमें दर्भमय ब्राह्मणकी कल्पना करे ॥ ३४ ॥

ततोब्रह्मन्निहागच्छागच्छेत्यावाह्यसाधकः ।
पाद्यादिभिश्चसम्पूज्ययावद्यज्ञसमापनम् ।
तावद्भवद्भिःस्थातव्यमितिप्रार्थ्यनमेत्ततः ॥ ३५ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त साधक आवाहन करे कि "हे ब्रह्मन् ! इहागच्छ २" फिर पाद्यादिसे उनकी पूजाकरके प्रार्थना करे कि जबतक यज्ञकी समाप्ति न होवे तबतक आप यहां रहैं फिर साधक नमस्कार करै ॥ ३५ ॥

सोदकेनकरेणाग्नेरीशानाद्ब्रह्मणोऽन्तिकम् ।

त्रिधापर्य्युक्ष्यवह्निश्चत्रिःप्रोक्ष्यतदनन्तरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—फिर हाथसे जल ग्रहणकर अग्निके ईशान कोणसे आरम्भ करके ब्रह्माके निकटतक तीन वार जल छिड़के इस प्रकार तीन वार अग्निको प्रोक्षित करे ॥ ३६ ॥

आगत्यवर्त्मनातेनसूपविश्यनिजासने ।
स्थण्डिलस्योत्तरेदर्भानुदगग्रान्परिस्तरेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—फिर पहले जिसमार्गसे ब्रह्माके आसनके निकट गमन कियाथा उस मार्गसे लौटकर अपने आसनपर बैठे और मण्डलकी उत्तर दिशामें थोड़ेसे कुश उत्तरकी ओरको मुखकरके फैलावे ॥ ३७ ॥

तेषुयज्ञीयवस्तूनिसर्वाण्यासादयेत्सुधीः ।
मोदकंप्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीसमित्कुशान् ॥ ३८ ॥

अर्थ—फिर साधकको उचित है कि जलरहित प्रोक्षणीपात्र आज्यस्थाली और समिध् कुशादि यज्ञकी सामग्री दर्भके बिछौने-पर रक्खे ॥ ३८ ॥

आसाद्यस्रुक्स्रुवादीनिह्रांह्रींहूमितिमन्त्रकैः ।
दिव्यदृष्ट्याप्रोक्षणेनसंस्कृत्यतदनन्तरम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—फिर स्रुक् स्रुवा आदि यज्ञके सब पात्र दर्भके इस बिछौने पर स्थापन करके " ह्रां ह्रीं हूं " यह मंत्र पढकर दिव्यदृष्टि (विना पलक मारे देखने) से और प्रोक्षणसे उन सबको शुद्ध करे ॥ ३९ ॥

पृथिव्यांदक्षिणंजानुपातयित्वास्रुवेस्रुचा ।
घृतमादायमतिमांश्चिन्तयन्हितमात्मनः ।
ह्रींविष्णवेद्विठान्तेनप्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥ ४० ॥

अर्थ—फिर ज्ञानी साधक पृथ्वीमें दाहिनी जांघ झुकाय स्रुक्से स्रुवानामक यज्ञीयपात्रसे घृत ग्रहण करके अपनी मंगल कामना

करते २ "ह्रीं विष्णवे स्वाहा" मंत्र पढ़कर तीनवार आहुति देवै ॥ ४० ॥

तथैवघृतमादायध्यायन्देवंप्रजापतिम् ।
वायव्यादग्निकोणान्तंजुहुयादाज्यधारया ॥ ४१ ॥

अर्थ-इस प्रकार दुवारा स्रुक्‌द्वारा स्रुवानामक यज्ञपात्रमेंसे घृत लेकर देव प्रजापतिका ध्यान करते "ह्रीं प्रजापतये स्वाहा" यह मंत्र पढकर वायुकोणसे आरम्भ करके अग्निकोणतक घृत-द्वारा होम करे ॥ ४१ ॥

पुनराज्यंसमादायध्यायन्देवंपुरन्दरम् ।
नैर्ऋतादीशकोणान्तंजुहुयादाज्यधारया ॥ ४२ ॥

अर्थ-ऐसेही फिर घृतको ग्रहण करके पुरन्दर देवका ध्यान करते २ "ह्रीं पुरन्दराय स्वाहा" इसमंत्रको पढ़कर नैर्ऋतकोणसे आरम्भ करके ईशानकोणतक घृतसे आहुति देवे ॥ ४२ ॥

ततोऽग्नेरुत्तरेयाम्येमध्येचपरमेश्वरि ! ।
अग्निंसोममग्नीषोमौसमुद्दिश्ययथाक्रमात् ॥ ४३ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! तदनन्तर फिर ऐसेही घृतको ग्रहण करके अग्निके उत्तर दक्षिणमें और मध्यमें क्रमानुसार अग्नि, सोम और अग्निषोमके अर्थ ॥ ४३ ॥

सचतुर्थीनमोऽन्तेनमायाद्येनाहुतित्रयम् ।
हुत्वाविधेयकर्मोक्तंहोमंकुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ४४ ॥

अर्थ-"ह्रीं अग्नये नमः ह्रीं सोमाय नमः ह्रीं अग्नीषोमाभ्यां नमः" यह मंत्र पढ़कर तीनवार आहुति देवे, ज्ञानी पुरुष इस प्रकारसे धाराहोम करके ऋतुसंस्कारादि कर्मका होम करै ॥ ४४ ॥

आहुतित्रयदानान्तंधाराहोमंप्रचक्षते ॥ ४५ ॥

अर्थ-तीन आहुति देनेतकको धारा होम कहते हैं ॥ ४५ ॥

यदुद्दिश्याहुतिंदद्याद्देयोद्देशोऽपितत्कृते ।
समाप्यप्रकृतंकर्मस्विष्टकृद्धोममाचरेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-जिस देवताके अर्थ आहुति दीजाय उस देवताके अर्थ दी हुई वस्तुका नाम लैनाभी उचित है यथाः-" ह्रीं विष्णवे स्वाहा हविरिदं विष्णवे " इस प्रकार यथार्थ होमकर्म समाप्त करके स्विष्टकृत् होम अर्थात् उत्तम अभीष्टदायक होम करे ॥४६॥

प्रायश्चित्तात्मकोहोमःकलौनास्तिवरानने ! ।
स्विष्टकृताव्याहृतिभिःप्रायश्चित्तंविधीयते ॥ ४७ ॥

अर्थ-हे वरानने ! कलिकालमें प्रायश्चित्त होमका अनुष्ठान नहीं है इस कारण स्विष्टकृत् और व्याहृतिहोमसे प्रायश्चित्त होताहै॥४७॥

पूर्ववद्धविरादायब्रह्माणंमनसास्मरन् ।
अस्मिन्कर्मणिदेवेश ! प्रमादाद्भ्रमतोऽपिवा ॥ ४८ ॥
न्यूनाधिकंकृतंयच्चसर्वंस्विष्टकृतंकुरु ।
मायाद्येनामुनादेवि ! स्वाहान्तेनाहुतिंहुनेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-फिर स्रुक् नामक यज्ञपात्रके द्वारा स्रुवानामक यज्ञ-पात्रमेंसे पहलेकी अनुसार घृत ग्रहण करके मनहींमनमें ब्रह्माजी-का स्मरण करै और माया बीजका उच्चारण करके यह मंत्र पढै कि " हे देवदेव! प्रमाद या भ्रमके कारण इस कर्ममें जो कुछ न्यूनाधिक हो गया है वह मुझको उत्तम फल दायक करदो. हे देवि! यह मंत्र पढ़"स्वाहा " पद उच्चारण करके आहुति देवै (१) ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

---

(१) "ह्रीं आस्मिन् कर्मणि देवेश प्रमादात् भ्रमतोऽपि वा ॥ न्यूनाधिकं यच्च कृतं सर्वं स्विष्टकृतं कुरु स्वाहा" ।

त्वमग्ने ! सर्वलोकानांपावनःस्विष्टकृत्प्रभुः ।
यज्ञसाक्षीक्षेमकर्त्तासर्वान्कामान्प्रपूरय ।
अनेनहवनंकुर्य्यान्माययावह्निजायया ॥ ५० ॥

अर्थ–हे अग्ने ! तुम सर्व लोकोंको पवित्र करतेहो तुम सबको अभीष्ट फल देते हो और प्रभुहो तुम यज्ञके साक्षी और मंगलकारी हो तुम हमारी सर्वकामना पूर्ण करो ।प्रथम माया बीज 'ह्रीं' और फिर 'स्वाहा' पद उच्चारण करके इस मंत्रसे आहुति देवे (१)॥५०॥

इत्थंस्विष्टकृतंहोमंसमाप्यक्रतुसाधकः ।
कर्मणोऽस्यपरब्रह्मन्नयुक्तंविहितञ्चयत् ॥ ५१ ॥

अर्थ–इस प्रकारसे यज्ञकर्त्ता स्विष्टकृत् होमको सिद्धकर ऐसी प्रार्थना करे कि, हे परब्रह्मन् ! इस यज्ञमें जो कुछ अयुक्त कर्म हुआ है ॥ ५१ ॥

तच्छान्त्यैयज्ञसम्पत्त्यैव्याहृत्याहूयते विभो ! ।
मायादिवह्निजायान्तैर्भूर्भुवःस्वरितित्रिभिः ॥ ५२ ॥

अर्थ–इसकी शांतिके लिये और यज्ञसम्पत्तिके लिये व्याहृति-होम करताहूं (२) फिर " ह्रीं भूःस्वाहा, ह्रीं भुवः स्वाहा, ह्रीं स्वः स्वाहा " इन तीन मंत्रोंसे ॥ ५२ ॥

आहुतित्रितयंदद्यात्रितयेनतथैवच ।
हुत्वाग्नौयजमानेनदद्यात्पूर्णाहुतिंबुधः ॥ ५३ ॥

अर्थ–तीन वार आहुति देवै । फिर " ह्रीं भूर्भुवःस्वःस्वाहा "

---

(१) " ह्रीं त्वमग्ने सर्वलोकानां पावनं स्विष्टकृत् प्रभुः ॥ यज्ञसाक्षी क्षेमकर्ता सर्वान्कामान्प्रपूरय स्वाहा" ॥

(२) "ह्रीं कर्मणोस्य परब्रह्मन् अयुक्तं विहितं च यत् । तच्छान्त्यै यज्ञसम्पत्त्यै व्याहृत्या हूयते विभो" ।

इस मंत्रसे एकवार आहुति देकर यज्ञकर्त्ता यजमानके साथ यज्ञेश्वरके लिये फिर आहुति दे ॥ ५३ ॥

स्वयंचेत्कर्मकर्त्तास्यात्स्वयमेवाहुतिंक्षिपेत् ।
अभिषेकविधानानामेवमेवविधिःस्मृतः ॥ ५४ ॥

अर्थ-यदि यजमान स्वयं कर्मकर्त्ता हो तो स्वयं आहुति देवे । अभिषेकविधानस्थलमेंभी ऐसीही विधि कही है ॥ ५४ ॥

आदौमायांसमुच्चार्य्यततोयज्ञपते ! वदेत् ।
पूर्णोभवतुयज्ञोमेहृष्यन्तुयज्ञदेवताः ।
फलानिसम्यग्यच्छन्तुवह्निकान्तावधिर्मनुः ॥ ५५ ॥

अर्थ-प्रथम मायाबीज उच्चारण करके फिर "यज्ञपते" पद उच्चारण करे । फिर कहै कि यह मेरा यज्ञ पूर्ण होवे यज्ञदेवता-गण संतुष्ट होकर इस यज्ञका संपूर्ण फल दे, फिर इस मंत्रके अंतमें "स्वाहा" पद लगावै ॥ ५५ ॥

मन्त्रेणानेनमतिमानुत्थायसुसमाहितः ।
फलताम्बूलसहिताहुतिंदद्याद्धुताशने ॥ ५६ ॥

अर्थ-ज्ञानी पुरुष खड़ा होकर सावधान हो इस मंत्रसे फल और पानके साथ अग्निमें आहुति देवै ॥ (१) ॥ ५६ ॥

दत्तपूर्णाहुतिर्विद्वाञ्छान्तिकर्मसमाचरेत् ।
प्रोक्षणीपात्रतोयेनकुशैःसम्मार्जयेच्छिरः ॥ ५७ ॥

अर्थ-विद्वान् पुरुष पूर्णाहुति देकर शान्ति कर्म करे । पहले तो कुशकरके प्रोक्षणीपात्रसे जल लेकर मस्तकपर डाले ॥ ५७ ॥

आपःसुमित्रियाःसन्तुभवन्त्वोषधयोमम ।

---

(१) पूर्णाहुतिका मंत्र-"ह्रीं यज्ञपते पूर्णो भवतु यज्ञो मे हृष्यन्तु यज्ञदेवताः ॥ फलानि सम्यक् यच्छन्तु स्वाहा" ।

आपोरक्षन्तुमांनित्यमापोनारायणःस्वयम् ॥ ५८ ॥

अर्थ-(इसका मंत्र यह है कि) जल मेरा श्रेष्ठ मित्रस्वरूपहो । जल मेरे लिये औषधिस्वरूप हो, जल नारायण स्वरूपहै, जल सदा हम लोगोंकी रक्षा करे ॥ ५८ ॥

आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्जेदधातन ।
इत्याभ्यांमार्जनंकृत्वाभूमौबिन्दून्विनिक्षिपेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ-हे जल ! तुम सुख देतेहो तुम हमको ऐहिक विषय दान करो । इस मंत्रसे मस्तक गीलाकर पृथ्वीपर जलकी बूंदें डाले ॥ ५९ ॥

येद्विषन्तिचमांनित्यंयांश्चद्विष्मोनरान्वयम् ।
आपोदुर्मित्रियास्तेषांसन्तुभक्षन्तुतानपि ॥ ६० ॥

अर्थ-जो लोग सदा हमसे द्वेष करतेहैं हम लोग जिनसे द्वेष करते हैं । उनके लिये जल शत्रुस्वरूप होकर उनका भक्षण करे ॥ ६० ॥

अनेनेशानदिग्भागेबिन्दून्प्रक्षिप्यतान्कुशान् ।
हित्वाकृताञ्जलिर्भूत्वाप्रार्थयेद्धव्यवाहनम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-यह मंत्र पढकर कुशसे ईशान कोणमें जलकी बूंदें डाल कर कुशोंको छोडदेवे फिर हाथ जोडकर अग्निके निकट प्रार्थना करे कि ॥ ६१ ॥

बुद्धिंविद्यांबलंमेधांप्रज्ञांश्रद्धांयशःश्रियम् ।
आरोग्यंतेजआयुष्यंदेहिमेहव्यवाहन! ॥ ६२ ॥

अर्थ-हे हुताशन ! मुझको बुद्धि अर्थात् शास्त्रादितत्त्वज्ञान बल अर्थात् शक्ति मेधा अर्थात् धारणशक्ति, प्रज्ञा अर्थात् सारासार विवेककी निपुणता, श्रद्धा, यश, श्री, आरोग्य, तेज, आयु, इन सबको प्रदान करो ॥ ६२ ॥

इतिप्रार्थ्यवीतिहोत्रंविसृजेदमुनाशिवे! ॥ ६३ ॥

अर्थ-हे शिवे ! अग्निके निकट इस प्रकार प्रार्थना करके इस मंत्रसे विसर्जन करे कि ॥ ६३ ॥

यज्ञ!यज्ञपतिंगच्छयज्ञंगच्छहुताशन ! ।
स्वांयोनिंगच्छयज्ञेश!पूरयास्मन्मनोरथम् ॥ ६४ ॥

अर्थ-हे यज्ञ ! तुम यज्ञपुरुष विष्णुमें गमन करो । हे हुताशन तुम यज्ञमें प्रवेश करो । हे यज्ञेश्वर ! तुम अपने स्थानमें गमन करो और मेरे मनोरथको पूर्ण करो ॥ ६४ ॥

अग्ने ! क्षमस्वस्वाहेतिमन्त्रेणाग्नेरुदग्दिशि ।
दत्वादध्नाहुतिंवह्निंदक्षिणस्यांविचालयेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ-' अग्ने ! क्षमस्व स्वाहा ' यह मंत्र पढ़कर अग्निकी उत्तर औरमें दधिसे आहुति देकरके अग्निको दक्षिण ओर चालित करे ॥ ६५ ॥

ब्रह्मणेदक्षिणांदत्वाभक्त्यानत्वाविसर्जयेत् ।
ततस्तुतिलकंकुर्य्यात्स्रुवसंलग्नभस्मना ॥ ६६ ॥

अर्थ-फिर ब्रह्माको दक्षिणा देकर भक्तिके साथ नमस्कार करके विसर्जन करे फिर स्रुवनामक यज्ञपात्रमें लगी हुई भस्मसे तिलक करे ॥ ६६ ॥

मायांकामंसमुच्चार्य्यसर्वशान्तिकरोभव ।
ललाटेतिलकंकुर्य्यान्मन्त्रेणानेनयाज्ञिकः ॥ ६७ ॥

अर्थ-“ ह्रीं क्लीं सर्वशान्तिकरो भव ” इस मंत्रसे यज्ञकर्त्ताको ललाटमें तिलक धारण करना चाहिये ॥ ६७ ॥

शान्तिरस्तुशिवंचास्तुवासवाग्निप्रसादतः ।
मरुतांब्रह्मणश्चैववसुरुद्रप्रजापतेः ॥ ६८ ॥

अर्थ–इन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, वसुगण, रुद्रगण और मरुद्गणोंके प्रसादसे शांति होवै ॥ ६८ ॥

अनेनमनुनायुष्यंधारयन्मस्तकोपरि ।
स्वशक्त्यादक्षिणांदद्याद्धोमप्रकृतकर्मणोः ॥ ६९ ॥

अर्थ–इस मंत्रको पढ़कर मस्तकके ऊपर आयुवृद्धिकारी तिलक लगाय होमकी और प्रकृतकर्मकी दक्षिणा देवै ॥ ६९ ॥

इतितेकथितादेवि ! सर्वकर्मकुशण्डिका ।
प्रयोज्याशुभकर्मादौयत्नतःकुलसाधकैः ॥ ७० ॥

अर्थ–हे देवि ! यह मैंने तुमसे सब सत्कर्मोंकी कुशण्डिका कही । जो लोग कुलसाधकहैं, उनको शुभकर्म करनेके पहले यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ७० ॥

प्रकृतेकर्मणिशिवे ! चरुर्येषांकुलागमः ।
सिद्ध्यर्थंकर्मणान्तेषांचरुकर्मनिगद्यते ॥ ७१ ॥

अर्थ–हे शिवे ! वंशके क्रमसे प्रकृतकर्ममें जिनका चरु करनेका नियम है उनकी कर्मसिद्धिके लिये चरुकर्म कहताहूं ॥ ७१ ॥

चरुस्थालीप्रकर्त्तव्याताम्रीवामृत्तिकोद्भवा ॥ ७२ ॥

अर्थ–पहले तो तांबेकी या मिट्टीकी चरुस्थाली बनावै ॥ ७२ ॥

कुशण्डिकोक्तविधिनाद्रव्यसंस्करणावधि ।
कृत्वाकर्मचरुस्थालीमानयेदात्मसम्मुखे ॥ ७३ ॥

अर्थ–फिर कुशकण्डिकामें कहीहुई विधिके अनुसार द्रव्यसंस्कारसे लेकर सर्वकर्म करके अपने सन्मुख चरुस्थालीको लावै ७३

अक्षतामव्रणांदृष्ट्वाप्रादेशपरिमाणकम् ।
पवित्रकुशमेकञ्चस्थालीमध्येनियोजयेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ-फिर इस चरुस्थालीको अक्षत और व्रणरहित देखकर प्रादेशके प्रमाणका एक पवित्र कुश थालीमें रक्खे ॥ ७४ ॥

आनीयतण्डुलांस्तत्रसंस्थाप्यस्थण्डिलान्तिके ।
यस्मिन्कर्म्मणियेदेवाःपूजनीयाःसुरार्चिते ॥ ७५ ॥

अर्थ-हे सुरवन्दिते! तिसके पीछे यज्ञके स्थानमें चावल लायकर स्थंडिलके निकट स्थापित करके ऋतुसंस्कारादि जिस कर्मसे जिस देवताकी पूजा करनेकी रीतिहै ॥ ७५ ॥

तत्तन्नामचतुर्थ्यन्तमुक्त्वात्वाजुष्टमीरयन् ।
गृह्णामिनिर्वपामीतिप्रोक्षामीतिक्रमाद्वदन् ॥ ७६ ॥

अर्थ-चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें तिन २ का नाम लेकर "त्वाजुष्टम्" (प्रीतिपूर्वक) यह कहकर क्रमशः " गृह्णामि " (लेताहूं) "निर्वपामि" (स्थालीमें रखताहूं) " प्रोक्षामि " (जल छिड़कताहूं) कहकर ॥ ७६ ॥

गृहीत्वानिर्वपेत्स्थाल्यांप्रोक्षयेज्जलबिन्दुना ।
प्रत्येकञ्चतुरोमुष्टीन्देवमुद्दिश्यतण्डुलान् ॥ ७७ ॥

अर्थ-प्रत्येक देवताके लिये चार २ मुठी चावल ग्रहणकरे और थालीमें रखकर जल छिड़के (१) ॥ ७७ ॥

ततोदुग्धंसिताञ्चैवदत्वापाकविधानतः ।
सुपचेत्संस्कृतेवह्नौसावधानेनसुव्रते ! ॥ ७८ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! फिर उसमें दूध और बूरा डालकर सावधान हृदयसे शोधित अग्निमें पाकविधिके अनुसार उसको उत्तमरूपसे पकावै ॥ ७८ ॥

---

(१) मंत्र यथाः-"अमुकदेवाय त्वा जुष्टं गृह्णामि" इस मंत्रसे चावल ग्रहण करके "अमुकदेवाय त्वा जुष्टं निर्वपामि" इस मंत्रसे उस स्थालीमें स्थापन करे फिर "अमुकदेवाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" यह पढकर इन चावलोंमें जल डाले ।

सुपक्वंकोमलंज्ञात्वादद्यात्तत्रघृतस्रुवम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-फिर जब जाने कि यह अन्न सुपक्व और कोमल हुआ है तब उसमें घृतपूर्ण स्रुव डालै ॥ ७९ ॥

अग्नेरुत्तरतःपात्रंविनिधायकुशोपरि ।

पुनस्त्रिधाघृतंदत्वास्थालीमाच्छादयेत्कुशैः ॥ ८० ॥

अर्थ-फिर अग्निकी उत्तर दिशामें कुशोंके ऊपर चरु स्थापन करके फिर उसमें तीनवार घृत डालकर कुशोंसे चरुस्थालीको ढक देवै ॥ ८० ॥

ततःस्रुवेचरुस्थाल्याघृताघारणपूर्वकम् ।

किञ्चिच्चरुंसमादायजानुहोमंसमाचरेत् ॥ ८१ ॥

अर्थ-तदुपरांत चरुस्थालीसे स्रुवनामक यज्ञपात्रमें थोड़ासा चरु ले तिसमें घृत डालकर जानुहोम करे (१) ॥ ८१ ॥

धाराहोमंततःकृत्वाप्रधानीभूतकर्म्मणि ।

यत्रयेविहितादेवास्तन्मन्त्रैराहुतीर्हुनेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ-अनंतर धाराहोम करके जिस प्रधान कर्मके जिस २ स्थानमें जो जो देवता पूज्य हैं, उसी २ देवताके मंत्रसे आहुति देवै ॥ ८२ ॥

समाप्यप्रकृतंहोमंस्विष्टकृद्धोमपूर्वकम् ।

प्रायश्चित्तात्मकंहुत्वाकुर्य्यात्कर्म्मसमापनम् ॥ ८३ ॥

अर्थ-इस प्रकार वास्तविक होम समाप्त करके स्विष्टकृत् होम पूर्ण करे फिर प्रायश्चित्त होम करके कर्म समाप्त करे ॥ ८३ ॥

संस्कारेषुप्रतिष्ठासुविधिरेषप्रकीर्त्तितः ।

विधेयःशुभकर्म्मादौकर्म्मसंसिद्धिहेतवे ॥ ८४ ॥

---

(१) दाहिना जानु नवाकर जो होम करा जाता है उसका नाम जानुहोमहै ।

अर्थ-दशविधि संस्कारके समय और प्रतिष्ठा इस प्रकारकी विधि है, शुभकर्मके पहले कर्मसिद्धिके लिये इस प्रकारकी विधिके अनुसार अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अथोच्यतेमहामाये ! गर्भाधानादिकाःक्रियाः ।
तत्रादावृतुसंस्कारःकथ्यतेक्रमतःशृणु ॥ ८५ ॥

अर्थ-हे महामाये ! अब गर्भाधानादि क्रियाकलापका वर्णन करता हूं, तिसमें पहले क्रमके अनुसार ऋतुसंस्कार कहा जाता है, सो तुम श्रवण करो ॥ ८५ ॥

कृतनित्यक्रियःशुद्धःपञ्चदेवान्समर्च्चयेत् ।
ब्रह्मादुर्गागणेशश्चग्रहादिक्पतयस्तथा ॥ ८६ ॥

अर्थ-नित्य कर्म समाप्त करके शुद्ध शरीरहो पहले पंचदेवताकी पूजा करे । फिर ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, ग्रह, दिक्पाल ॥ ८६ ॥

स्थण्डिलस्येन्द्रदिग्भागेघटेष्वेतान्प्रपूजयेत् ।
ततस्तुमातृकाःपूज्यागौर्य्याद्याःषोड़शक्रमात् ॥ ८७॥

अर्थ-इन देवताओंको, स्थण्डिलकी पूर्व और घटके ऊपर पूजै क्रमानुसार गौरीआदि षोड़श मातृकाकी पूजा करे ॥ ८७ ॥

गौरीपद्माशचीमेधासावित्रीविजयाजया ।
देवसेनास्वधास्वाहाशान्तिःपुष्टिर्धृतिःक्षमा ।
आत्मनोदेवताचैवतथैवकुलदेवता ॥ ८८ ॥

अर्थ-गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, शान्ति, पुष्टि, धृति, क्षमा, आत्मदेवता और कुलदेवता ॥ ८८ ॥

आयान्तुमातरःसर्वास्त्रिदशानन्दकारिकाः ।
विवाहव्रतयज्ञानांसर्वाभीष्टंप्रकल्प्यताम् ॥ ८९ ॥

अर्थ-इन देवताओंको आनंद देनेवाली यह सब मातृका आवैं यह विवाह व्रत और यज्ञमें अभिप्रायानुसार फलदें ॥ ८९ ॥

यानशक्तिसमारूढाःसौम्यमूर्त्तिधराःसदा ।
आयान्तुमातरःसर्वायज्ञोत्सवसमृद्धये ॥ ९० ॥

अर्थ-अपनी २ सवारियों पर और शक्तिपर आरूढ़ हुई यह मातृकाऐ यज्ञोत्सवकी समृद्धिके लिये आवें ॥ ९० ॥

इत्यावाह्यमातृगणान्स्वशक्त्यापरिपूज्यच ।
देहल्यांनाभिमात्रायांप्रादेशपरिमाणतः ।
सप्तवापञ्चवाबिन्दून्दद्यात्सिन्दूरचन्दनैः ॥ ९१ ॥

अर्थ-इस मंत्रको पढ़ मातृकाओंका आवाहन कर यथाशक्ति उनकी पूजा करे । फिर देहलीके मध्य नाभिपरिमाणके ऊंचे स्थानमें, प्रादेशके परिमाणके स्थानमें सिंदूर और चंदनेसे सात या पांच बिन्दू अंकित करे ॥ ९१ ॥

प्रत्येकबिन्दुंमतिमान्क्रामंमायांरमांस्मरन् ।
घृतधारामविच्छिन्नांदत्वातत्रवसुंयजेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ-ज्ञानी पुरुष " क्लीं ह्रीं श्रीं " इन तीन बीजोंको स्मरण करते २ प्रत्येक बिन्दुके ऊपरकी ओर लगातार घृतकी धार देकर तिसमें गंधपुष्पादिसे ऊपरके वसुकी पूजा करै ॥ ९२ ॥

वसुधारांप्रकल्प्यैवंमयोक्तेनैववर्त्मना ।
विरच्यस्थण्डिलंधीरोवह्निस्थापनपूर्वकम् ।
होमद्रव्याणिसंस्कृत्यपचेच्चरुमनुत्तमम् ॥ ९३ ॥

अर्थ-मेरी कही हुई पद्धतिके अनुसार इस प्रकार वसुधारा बनाय स्थण्डिलरचना करके तिसमें वह्निस्थापन करे फिर होम-द्रव्यका संस्कार करके श्रेष्ठ चरुपाक करे ॥ ९३ ॥

प्राजापत्यश्चरुश्चात्रवायुनामाहुताशनः।
समाप्यधाराहोमान्तंकृत्यमार्त्तवमारभेत् ॥ ९४ ॥

अर्थ-इस ऋतुसंस्कारके कार्यमें जो चरु बनाया जाता है, उसका नाम प्राजापत्य है। इसमें स्थापित हुई अग्निका नाम वायु है। धाराहोमतक सब कार्योंको करके ऋतुकर्मका आरंभ करे ॥ ९४ ॥

ह्रींप्रजापतयेस्वाहाचरुणैवाहुतित्रयम्।
प्रदायैकाहुतिंदद्यादिमंमन्त्रमुदीरयन् ॥ ९५ ॥

अर्थ-"ह्रीं प्रजापतये स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर चरूसे तीन आहुति देवै। फिर आगे कहेहुए मंत्रका पाठ करते करते आहुति देवे ॥ ९५ ॥

विष्णुर्योनिंकल्पयतुत्वष्टारूपाणिपिंशतु।
आसिञ्चतुप्रजापतिर्धातागर्भंदधातुते ॥ ९६ ॥

अर्थ-(मंत्रार्थ) विष्णु उत्पादकहों, त्वष्टा रूपविधान करें, प्रजापति निषेक करें, धाता गर्भ सम्पादन करें ॥ ९६ ॥

आज्येनचरुणावापिसाज्येनचरुणापिवा।
सूर्य्यंप्रजापतिंविष्णुंध्यायन्नाहुतिमुत्सृजेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ-फिर सूर्य प्रजापति विष्णुजीका ध्यान करते २ घृत, चरु वा घृतसहित चरुसे उक्त सूर्यादिदेवताओंके लिये आहुति देवै॥९७॥

गर्भंधेहिसिनीवालीगर्भंधेहिसरस्वती।
गर्भंतेअश्विनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजौ ॥ ९८ ॥

अर्थ-तुम देवी सिनीवालीरूप होकर गर्भधारण करो। तुम सरस्वती होकर गर्भधारण करो। कमलकी माला पहिरे दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारा गर्भाधान करें ॥ ९८ ॥

ध्यात्वादेवींसिनीवालींसरस्वत्याश्विनौतथा ।
स्वाहान्तमनुनानेनदद्यादाहुतिमुत्तमाम् ॥ ९९ ॥

अर्थ- देवी सिनीवाली सरस्वती और दोनों अश्विनीकुमारोंको स्मरण करके उक्त (१) मंत्रपढ़ "स्वाहा" उच्चारण कर उत्तम आहुति देवै ॥ ९९ ॥

ततःकामंवधूंमायांरमांकूर्चंसमुच्चरन् ।
अमुष्यैपुत्रकामायैगर्भमाधेहिसद्विठम् ।
उक्त्वाध्यात्वारविंविष्णुंजुहुयात्संस्कृतेऽनले ॥ १०० ॥

अर्थ-फिर "क्लीं श्रीं ह्रीं श्रीं हूं अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर सूर्य और विष्णुका ध्यान करके संस्कारित अग्निमें आहुति देवै ॥ १०० ॥

यथेयंपृथिवीदेवीह्युत्तानागर्भमादधे ।
तथात्वंगर्भमाधेहिदशमेमासिसूतये ।
स्वाहान्तेनामुनाविष्णुंध्यायन्नाहुतिमाचरेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ-यह विस्तारवाली पृथ्वी जिस प्रकारसे गर्भधारण करती है वैसेही दशममासमें प्रसव होनेके लिये तुम गर्भधारण करो । यह मंत्र पढ़ "स्वाहा" पद उच्चारण करे विष्णुजीका ध्यान करके आहुति दे ॥ १०१ ॥

पुनराज्यंसमादायध्यात्वाविष्णुंपरात्परम् ।
विष्णो ! ज्येष्ठेनरूपेणनार्य्यामस्यांवरीयसम् ।
सुतमाधेहिचद्वन्द्वमुक्त्वावह्नौहविस्त्यजेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-फिर घृत ले परात्पर विष्णुजीका ध्यान करके "हे विष्णो"

---

(१) "ह्रीं गर्भं धेहिं सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वती । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा" ।

तुम श्रेष्ठरूप करके इस नारीमें श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करो। यह मंत्र पढ़ "स्वाहा" पद उच्चारण करके अग्निमें आहुति दे ॥१०२॥

कामेनपुटितांमायांमाययापुटितांवधूम् ।
पुनःकामञ्चमायाञ्चपठित्वास्याःशिरःस्पृशेत् ॥१०३॥

अर्थ-फिर कामपुटित और माया पुटित वधू और काममाया (१) पढ़कर उस कामिनीका मस्तक स्पर्शकरे ॥ १०३ ॥

पतिपुत्रवतीभिश्चनारीभिःपरिवेष्टितः ।
शिरश्चालभ्यहस्ताभ्यांवध्वाःक्रोड़ाञ्चलेपातिः ॥१०४॥

अर्थ-फिर कुछ पतिपुत्रवाली स्त्रियोंके साथ स्वामी अपने दोनों हाथोंसे वधूका मस्तक छूकर विधि, विष्णु, दुर्गा और सूर्यका ध्यान करनेके पश्चात् तिसकी गोदीके अंचलमें तीन फल देकर स्विष्टकृत होम और प्रायश्चित्त होम करके कर्मको समाप्त करे ॥१०४॥

विष्णुंदुर्गांविधिंसूर्य्यंध्यात्वादद्यात्फलत्रयम् ।
ततःस्विष्टकृतंहुत्वाप्रायश्चित्त्यासमापयेत् ॥ १०५ ॥

यद्वाप्रदोषसमयेगौरीशङ्करपूजनात् ।
भास्कराघ्यर्प्रदानाच्चदम्पत्योःशोधनंभवेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ-अथवा सायंकालमें गौरी शंकरकी पूजा करके सूर्य भगवान्को अर्घ्य देनेसे दम्पति (स्त्रीपुरुष) का शोधन हो सक्ता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

आर्त्तवंकथितंकर्म्मगर्भाधानमथशृणु ॥ १०७॥

अर्थ-ऋतुशोधन कर्म तुमसे कहा अब गर्भाधान कहताहूं, श्रवण करो ॥ १०७ ॥

तद्रात्राबन्यरात्रौवायुग्मायांनिशिभार्यया
सदनाभ्यन्तरंगत्वाध्यात्वादेवंप्रजापतिम् ॥ १०८ ॥

---

(१) "क्लीं ह्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं" यह मंत्र हुआ ॥

अर्थ–उस ऋतु संस्कारकी रात्रीमें अथवा और किसी युग्म रात्रिमें भार्याके साथ गृहके भीतर जाय देव प्रजापतिका ध्यान करके ॥ १०८ ॥

स्पृशन्पत्नींपठेद्भर्त्तामायाबीजपुरःसरम् ।
आवयोःसुप्रजायैत्वंशय्ये ! शुभकरीभव ॥ १०९ ॥

अर्थ–स्त्रीको स्पर्शकर स्वामी मायाबीज उच्चारण करनेके पीछे यह मंत्र पढे हे शय्ये ! हमारी उत्तम संतानोत्पत्तिके लिये तुम शुभकारी होवो ॥ १०९ ॥

आरुह्यभार्य्ययाशय्यांप्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ।
उपविश्यस्त्रियंपश्यन्हस्तमाधायमस्तके ।
वामेनपाणिनालिङ्गयस्थानेस्थानेमनुंजपेत् ॥११० ॥

अर्थ–फिर भार्याके साथ विस्तरेपर आरोहण करे और पूर्व मुख वा उत्तर मुख हो बैठे भार्याका दर्शन करके उसके मस्तकपर हाथ रक्खे । फिर बांये हाथसे भार्याको आलिंगन कर स्थान स्थानमें मंत्र जपै ॥ ११० ॥

शीर्षेकामंशतंजप्त्वाचिबुकेवाग्भवंशतम् ।
कण्ठेरमांविंशतिधास्तनद्वन्द्वेशतंशतम् ॥ १११ ॥

अर्थ–मस्तकपर एक शतवार कामबीज "क्लीं" जपकर, चिबुक-पर एक शतवार वाग्भव "ऐं" का जपकरे।फिर कंठमें रमा अर्थात् श्रीं बीजको वीसवार जपकर दोनों स्तनोंमें "ऐं श्रीं" बीज एक २ शत जपै ॥ १११ ॥

हृदयेदशधामायांनाभौतांपञ्चविंशतिम् ।
जप्त्वायोनौकरंदत्वाकामेनसहवाग्भवम् ॥ ११२ ॥

अर्थ-हृदयमें दशवार मायाबीजका जपकर नाभिमें "ऐं ह्रीं" बीज पचीस वार जपकरे। फिर योनिमें हाथ लगाय "क्लीं ऐं" मंत्र ॥ ११२ ॥

शतमष्टोत्तरंजप्त्वालिङ्गेऽप्येवंसमाचरन्।
विकाश्यमायया योनिंस्त्रियंगच्छेत्सुतातये ॥ ११३ ॥

अर्थ-एकशत आठवार जप करके ऐसेही उपस्था में "क्लीं ऐं" मंत्र एकशत आठवार जपकरे । फिर "ह्रीं" मंत्र पढ़ योनिको मोचनकर संतानकी कामनासे पत्नीका गमन करे ॥ ११३ ॥

रेतःसम्पातसमयेध्यात्वाविश्वकृतंपतिः।
नाभेरधस्ताच्चित्कुण्डेरक्तिकायांप्रपातयेत् ॥ ११४ ॥

अर्थ-फिर वीर्य स्खलित होनेके समय स्वामी प्रजापतिका ध्यान करके नाभिके नीचे चित्कुण्डके बीच रक्तिका नाड़ीमें वीर्य डाले ॥ ११४ ॥

शुक्रसेकान्तरेविद्वानिमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ-परंतु शुक्रत्याग करनेके समय स्वामी इस मंत्रका पाठ करे कि ॥ ११५ ॥

यथाग्निनासगर्भाभूद्यौर्यथावज्रधारिणा।
वायुनादिग्गर्भवतीतथागर्भवतीभव ॥ ११६ ॥

अर्थ-जैसे पृथ्वी अग्नि धारण करके गर्भवती हुई है, आकाशवती जैसे इन्द्रको धारण करके गर्भवती हुईहै, दिशा जिस प्रकार वायुको धारण करके गर्भवती हुईहै, वैसेही तुमभी गर्भवती होवो ॥ ११६ ॥

१ रक्तिमायाम् इति वा पाठः ।

जातेगर्भेऋतौतस्मिन्नन्यस्मिन्वामहेश्वरि !
तृतीयेगर्भमासेतुचरेत्पुंसवनंगृही ॥ ११७ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! उस ऋतुमें अथवा और ऋतुमें गर्भसंचार होनेपर गृहस्थ पुरुष गर्भाधानसे तीसरे मासमें पुंसवन नामक संस्कार करे ॥ ११७ ॥

कृतनित्यक्रियोभर्त्तापञ्चदेवान्समर्च्चयेत् ।
गौर्य्यादिमातृकाश्चैववसोर्धारांप्रकल्पयेत् ॥ ११८ ॥

अर्थ-पुंसवनके समय स्वामीको चाहिये कि नित्य क्रियाको समाप्त करके पंचदेवताकी पूजा करे । फिर गौर्यादि षोड़श मातृकाओंकी पूजा करके वसुधारा देवे ॥ ११८ ॥

वृद्धिश्राद्धंततःकृत्वापूर्व्वोक्तविधिनासुधीः ।
धाराहोमान्तमापाद्यकुर्य्यात्पुंसवनक्रियाम् ॥ ११९ ॥

अर्थ-इसके उपरांत ज्ञानी पुरुष वृद्धिश्राद्ध करके पहली कही हुई विधिके अनुसार धाराहोम करनेपर पुंसवन क्रियाको समाप्त करे ११९ ॥

प्राजापत्यश्चरुस्तत्रचन्द्रनामाहुताशनः ॥ १२० ॥

अर्थ-पुंसवनसंस्कारके चरुका नाम प्राजापत्यचरु और अग्निका नाम चंद्रहै ॥ १२० ॥

गव्येदध्नियवञ्चैकंद्वौमाषावपिनिक्षिपेत् ।
पातिःपृच्छेत्स्त्रियंभद्रे ! किंत्वंपिबसित्रिःकृतम् ॥ १२१ ॥

अर्थ-फिर स्वामी गायके दहीमें एक (जो) और दो माष (उरद) डालकर भार्यासे तीन वार पूछे कि हे भद्रे ! तुम क्या पान करती हो ॥ १२१ ॥

ततःसीमन्तिनीब्रूयान्मायापुंसवनंत्रिधा ।
प्रसृतींस्त्रीन्पिबेन्नारीयवमाषयुतंदधि ॥ १२२ ॥

अर्थ–तदनंतर भार्या तीन वार कहैकि "ह्रीं पुंसवनम्"-अर्थात् पुत्र प्रसवकी कारणीभूत वस्तु पान कर्ती हूं। फिर नारी यव (जौ) और माष (उरद) युक्त दहीको तीनवार पिये ॥ १२२ ॥

जीवत्सुताभिर्वनितांयागस्थानंसमानयेत् ।
संस्थाप्यवामभागेतांचरुहोमंसमाचरेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ–फिर पतिपुत्रवती कुलकामिनियें इस स्त्रीको यज्ञस्थानमें लाय कर स्वामीकी बांई ओर बैठावे स्वामीको चरुहोम आरंभ करना चाहिये ॥ १२३ ॥

पूर्ववच्चरुमादायमायांकूर्चंसमुच्चरन् ।
येगर्भविघ्नकर्त्तारोयेचगर्भविनाशकाः ॥ १२४॥

अर्थ–आगे पहलेकी समान चरुले "ह्रीं हूं" उच्चारण करके (यह मंत्र पढ़े कि) जो गर्भके विघ्न करनेवाले हैं, जो गर्भके नाशक हैं ॥ १२४ ॥

भूताःप्रेताःपिशाचाश्चवेतालाबालघातकाः ।
तान्सर्वान्नाशयद्वन्द्वंगर्भरक्षांकुरुद्विठः ॥१२५ ॥

अर्थ–और जो भूत, प्रेत, पिशाच और वेताल बालकसंहारक हैं उन सबका नाश करके गर्भकी रक्षा करो। फिर "स्वाहा" पद उच्चारण करना चाहिये (१) ॥ १२५ ॥

मन्त्रेणानेनरक्षोघ्नंचिन्तयित्वाहुताशनम् ।
रुद्रंप्रजापतिंध्यायन्प्रदद्याद्द्वादशाहुतीः ॥ १२६ ॥

अर्थ–यह मंत्र पढ़कर रक्षोघ्न हुताशन ध्यान करके रुद्र और प्रजापतिका ध्यानकरे और बारह आहुति देवे ॥ १२६ ॥

---

(१) " ह्रीं हूं ये गर्भविघ्नकर्तारो येच गर्भविनाशकाः । भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बालघातकाः ॥ तान् सर्वान् नाशय नाशय गर्भरक्षां कुरु कुरु स्वाहा " उद्धार करनेसे यह मंत्र हुआ ।

ततोमायाचन्द्रमसेस्वाहेत्याहुतिपञ्चकम् ।
दत्वाभार्य्याहृदिस्पृष्ट्वामायालक्ष्मींशतंजपेत् ॥१२७॥

अर्थ–फिर " ह्रीं चंद्रमसे स्वाहा " यह मंत्र पढ़कर पंच आहुति देवै और भार्याको स्पर्श करके एक शत वार " ह्रीं श्रीं " मंत्रका जप करे ॥ १२७ ॥

ततःस्विष्टकृतंहुत्वाप्रायश्चित्त्यासमापयेत् ।
ततस्तुपञ्चमेमासिदद्यात्पञ्चामृतंस्त्रियै ॥ १२८ ॥

अर्थ–अनंतर स्विष्टकृत्होम समाप्त करके प्रायश्चित्त होमको करे फिर गर्भके पंचममासमें भार्याको पंचामृत देवे ॥ १२८ ॥

शर्करामधुदुग्धञ्चघृतंदधिसमांशकम् ।
पञ्चामृतमिदंप्रोक्तंदेहशुद्धौविधीयते ॥ १२९ ॥

अर्थ–बूरा, शहत, दुग्ध, घृत, दही, इन पांचों पदार्थोंको बराबर करके देहशुद्धि के लिये देवै ॥ १२९ ॥

वाग्भवंमदनंलक्ष्मींमायांकूर्च्चंपुरन्दरम् ।
पञ्चद्रव्योपरिशिवे ! प्रजप्यपञ्चपञ्चधा ।
एकीकृत्यामृतान्यत्रप्राशयेदपितांपतिः ॥ १३० ॥

अथ–हे शिवे ! स्वामी पहले कहे हुए पांच द्रव्यमेंसे प्रत्येक के ऊपर पांच वार "ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं हूं लं" इन बीजोंको जप, पंचामृत इकट्ठाकर भार्याको पिलावै ॥ १३० ॥

सीमन्तोन्नयनंकुर्य्यान्मासिषष्ठेऽष्टमेऽपि वा ।
यावन्नजायतेऽपत्यंतावत्सीमन्तनाक्रिया ॥ १३१ ॥

अर्थ–गर्भके छठे या आठमें मासमें सीमन्तोन्नयन कर्म करे । जबतक संतान उत्पन्न न होवै, तिसके बीचमें सीमन्तोन्नयन संस्कारकी विधि है ॥ १३१ ॥

पूर्वोक्तधाराहोमान्तंकर्म्मकृत्वास्त्रियासह ।
उपविश्यासनेप्राज्ञःप्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥
विष्णवेभास्वतेधात्रेवह्निजायांसमुच्चरन् ॥ १३२ ॥

अर्थ–ज्ञानवान् स्वामी पहली कही हुई धारातक होम करके भार्याके सहित आसनपर बैठ "विष्णवे स्वाहा, भास्वते स्वाहा, धात्रे स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण करके तीनवार आहुति देवै ॥ १३२ ॥

ततश्चन्द्रमसंध्यात्वाशिवनाम्निहुताशने ।
सप्तधाहवनंकुर्य्यात्सोममुद्दिश्यमानवः ॥ १३३ ॥

अर्थ–फिर चंद्रमाका ध्यान करके चंद्रमाके लिये शिवनामक हुताशनमें सात वार आहुति देवे ॥ १३३॥

अश्विनौवासवंविष्णुंशिवंदुर्गांप्रजापतिम् ।
ध्यात्वाप्रत्येकतोदद्यादाहुतीःपञ्चधाशिवे ! ॥ १३४ ॥

अर्थ–हे शिवे ! फिर दोनों अश्विनीकुमारोंका इंद्र, विष्णु, शिव, दुर्गा, प्रजापति इनका ध्यान करके प्रत्येकको पांच आहुति देवै ॥ १३४ ॥

स्वर्णकङ्कतिकांभर्त्तागृहीत्वादक्षिणेकरे ।
सीमन्ताद्बद्धकेशान्तःकेशपाशेनिवेशयेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ–अनंतर भर्ता दक्षिण (दांये) हाथमें कंकतिका (कंघी) ग्रहण कर सीमन्तसे लेकर बंधे हुए केशतक समस्त केशोंको केशपाशमें मिलाकर बांधे ॥ १३५ ॥

शिवंविष्णुंविधिंध्यायन्मायाबीजंसमुच्चरन् ॥ १३६ ॥

अर्थ–इस सीमंतोन्नयनके समय शिव, विष्णु और विधिका ध्यान करके "ह्रीं" बीज उच्चारण करे ॥ १३६ ॥

भार्य्यें ! कल्याणि ! सुभगे ! दशमेमासिसुव्रते ! ।
सुप्रसूताभवप्रीताप्रसादाद्विश्वकर्म्मणः ॥ १३७ ॥

अर्थ-(और यह मंत्र पढ़े कि) हे कल्याणि! सुभगे ! सुव्रते ! भार्ये ! तुम दशममासमें उत्तम सन्तान प्रसव करके हृदयमें प्रसन्न होवो । और विश्वकर्माके प्रसादसे ॥ १३७ ॥

आयुष्मतीकङ्कतिकावर्च्चस्वीतेशुभंकुरु ।
ततःसमापयेत्कर्म्मस्विष्टकृद्धवनादिभिः ॥ १३८ ॥

अर्थ-आयुष्मति कंघी तुम्हारी आयुको बढ़ानेवाली होवै । तुम शुभकार्यका अनुष्ठान करो यह मंत्रपढ़कर सीमन्तोन्नयन-करके स्विष्टकृत्होमादिद्वारा कर्म समाप्त करे ॥ १३८ ॥

जातमात्रंसुतंदृष्ट्वादत्वास्वर्णगृहान्तरे ।
पूर्वोक्तविधिनाधीरोधाराहोमंसमापयेत् ॥ १३९ ॥

अर्थ-सन्तान उत्पन्न होतेही ज्ञानी पुरुष सुवर्ण देकर पुत्रका मुख देख सूतिकागारके सिवाय और गृहमें पहली कही हुई विधिके अनुसार धाराहोम करे ॥ १३९ ॥

ततःपञ्चाहुतीर्दद्यादग्निमिन्द्रंप्रजापतिम् ।
विश्वान्देवांश्चब्रह्माणमुद्दिश्यतदनन्तरम् ॥ १४० ॥

अर्थ-फिर अग्नि, इंद्र, प्रजापति, विश्वदेवगण और ब्रह्मा, इनके लिये पांच आहुति देवै । फिर ॥ १४० ॥

मधुसर्पिःकांस्यपात्रेसमानीयासमांशकम् ।
वाग्भवंशतधाजप्त्वाप्राशयेत्तनयंपिता ॥ १४१ ॥

अर्थ-पिता कांसीके पात्रमें मधु और घृत असमान अंश लेकर तिसके ऊपर " ऐं " बीज एकशतवार जप करके पुत्रको वह पान करावै ॥ १४१ ॥

दक्षहस्तानामिकयामन्त्रमेनंसमुच्चरन् ।
आयुर्वर्च्चोबलंमेधावर्द्धतांतेसदाशिशोः ॥ १४२ ॥

अर्थ-हे शिशो! तुम्हारी, आयु, तेज, बल और मेधा निरंतर वृद्धिको प्राप्त होवे । यह मंत्र पढ़ते २ दक्षिण हाथकी अनामिकासे वह शिशुको पिलावै ॥ १४२ ॥

इत्यायुर्जननंकृत्वागुप्तंनामप्रकल्पयेत् ।
कृतोपनयनेपुत्रेतेननाम्नासमाह्वयेत् ॥ १४३ ॥

अर्थ-इस प्रकार आयुःकर कार्य करके बालकका एक गुप्त नाम रक्खे, फिर जब इस पुत्रका उपनयन होवे, तब उसको इस गुप्त नामसे आवाहन करे ॥ १४३ ॥

प्रायश्चित्तादिकंकृत्वाजातकर्म्मसमापयेत् ।
नालच्छेदंततोधात्रीकुर्य्यादुत्साहपूर्वकम् ॥ १४४ ॥

अर्थ-फिर प्रायश्चित्त करके जातकर्म समाप्त करके फिर नाडी उत्साहके साथ नालको काटे ॥ १४४ ॥

यावन्नछिद्यतेनालंतावच्छौचंनबाधते ।
प्रागेवनाड़िकाच्छेदाद्दैवींपैत्रींक्रियाञ्चरेत् ॥ १४५ ॥

अर्थ-जबतक नाल न कटे तबतक अशौच नहीं होता इस कारण नाल कटनेसे पहले देव और पैतृकर्म किया जाता है॥१४५॥

कुमार्य्याश्चापिकर्त्तव्यमेवमेवममन्त्रकम् ।
षष्ठेवाचाष्टमेमासिनामकुर्य्यात्प्रकाशतः ॥ १४६ ॥

अर्थ-जो कुमारी उत्पन्न होवे तो यह समस्त कर्म विना मंत्र पढनेके करे । छटे या आठवें महीनेमें प्रगटभावसे नामकरण करे ॥ १४६ ॥

स्नापयित्वाशिशुंमातापरिधाप्याम्बरेशुभे ।
भर्त्तुःपार्श्वंसमागत्यप्राङ्मुखंस्थापयेत्सुतम् ॥ १४७ ॥

अर्थ-नामकरणके समय माताको चाहियेकी शिशुको स्नान कराय उत्तम वस्त्रयुगल पहराय स्वामीके निकट लाय पूर्वमुख करके बैठावे ॥ १४७ ॥

अभिषिञ्चेच्छिशोर्मूर्ध्निसहिरण्यकुशोदकैः ।
जाह्नवीयमुनारेवासुपवित्रासरस्वती ॥ १४८ ॥

अर्थ-अनंतर पिता सुवर्णसहित कुशोदकके द्वारा बच्चेके मस्तक पर जल डाले और यह मंत्र पढ़े कि जाह्नवी, यमुना, रेवा, सुप· वित्रा, सरस्वती ॥ १४८ ॥

नर्म्मदावरदाकुन्तीसागराश्चसरांसिच ।
एतेत्वामभिषिञ्चन्तुधर्म्मकामार्थसिद्धये ॥ १४९ ॥

अर्थ-नर्मदा, वरदा, कुन्ती, सागर, सरोवर इन सबमें धर्म, काम, अर्थसिद्धिके लिये तुमको अभिषिक्त करे ॥ १४९ ॥

ओंह्रींआपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्ज्जे
दधातन ॥ महेरणायचक्षसे ॥ १५० ॥

अर्थ-हे जल! सकल तुम सुखदाताहो अत एव हमारे इस कालका अन्नसंस्थान करो और परकालमें हमारे लिये परम ब्रह्मके साथ मिलाना ॥ १५० ॥

ओंयोवःशिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः ।
उशतीरिवमातरः ॥ ओंतस्माअरङ्गमामवो
यस्यक्षयायजिन्वथ । आपोजनयथाचनः ॥ १५१ ॥

अर्थ-हे जल ! सकल तुम माताकी समान स्नेहयुक्तहो इसी लिये हमको उत्तम मंगलमें रसप्रदान करो । हे जल ! सकल तुम

जिस रससे संसारमंडलको संतुष्ट करते हो, वही रस हमको सम्भोग कराओ । हम तिससे परितृप्त होंगे ॥ १५१

अभिषिच्यत्रिभिर्म्मन्त्रैःपूर्ववद्वह्निसंस्क्रियाम् ।
कृत्वासम्पाद्यधारान्तंदद्यात्पञ्चाहुतीःसुधीः ॥ १५२ ॥

अर्थ—ज्ञानवान पिता, इन दो मंत्रोंसे बालकको अभिषेक करके पहिलेकी अग्निसंस्कार करे और धाराहोमतक समस्त कार्य करके पंच आहुति देवै ॥ १५२ ॥

अग्नयेप्रथमांदत्वावासवायततःपरम् ।
ततःप्रजानाम्पतयेविश्वदेवेभ्यएवच ।
ब्रह्मणेचाहुतिंदद्याद्वह्नौपार्थिवसंज्ञके ॥ १५३ ॥

अर्थ—पार्थिवनामक अग्निमें उक्त पंचआहुति देनेके समय पहले अग्निको फिर वासवको, तदुपरांत प्रजापतिको तदनंतर विश्वदेवाओंको तिसके उपरांत आहुति देवै ॥ १५३ ॥

ततोऽङ्केपुत्रमादायश्रावयेद्दक्षिणश्रुतौ ।
स्वल्पाक्षरंसुखोच्चार्य्यंशुभंनामविचक्षणः ॥ १५४ ॥

अर्थ—फिर विचक्षण पुरुष पुत्रको गोदीमें ले उसके दांये कानमें स्वल्पाक्षर सुखसे उच्चारण करनेके योग्य इसका शुभ नाम श्रवण करावै ॥ १५४ ॥

श्रावयित्वात्रिधानामब्राह्मणेभ्योनिवेद्यच ।
ततःसमापयेत्कर्म्मकृत्वास्विष्टकृदादिकम् ॥ १५५ ॥

अर्थ—इस प्रकार नाम तीनवार सुनाकर स्विष्टकृत्होमादि समाधान कर ब्राह्मणोंको जनाय उनकी अनुमतिले कर्मको समाप्त करे ॥ १५५ ॥

कन्यायानिष्क्रमोनास्तिवृद्धिश्राद्धंनविद्यते ।
नामान्नप्राशनंचूडांकुर्य्याद्धीमानमन्त्रकम् ॥ १५६ ॥

अर्थ—कन्या उत्पन्न होनेका निष्क्रमण नहीं है, न वृद्धिश्राद्ध है बुद्धिमान पुरुष विना मंत्रपढ़े, उनका नामकरण अन्नप्राशन और चूड़ाकरण करे ॥ १५६ ॥

चतुर्थेमासिषष्ठेवाकुर्य्यान्निष्क्रमणंशिशोः ॥ १५७ ॥

अर्थ—चतुर्थमासमें या छठेमासमें बालकका निकलनेका संस्कार सिद्ध करे ॥ १५७ ॥

कृतनित्यक्रियःस्नातःसम्पूज्यगणनायकम् ।
स्नापयित्वातुतनयंवस्त्रालंकारभूषितम् ।
संस्थाप्यपुरतोविद्वानिमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ—बाहर निकलनेके संस्कारके समय पिता स्नान कर नित्य-क्रिया सम्पादन पूर्वक गणेशजीकी पूजा करे । फिर विद्वान् पुरुष बालकको स्नान कराय वस्त्र और अलंकारसे भूषित करके सामने रख यह मंत्र पढ़े ॥ १५८ ॥

ब्रह्माविष्णुःशिवोदुर्गागणेशोभास्करस्तथा ।
इन्द्रोवायुःकुबेरश्चवरुणोऽग्निर्बृहस्पतिः ।
शिशोःशुभंप्रकुर्वन्तुरक्षन्तुपथिसर्वदा ॥ १५९ ॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, गणेश, दिवाकर, इन्द्र, वायु, कुबेर, वरुण, अग्नि, बृहस्पति यह सबही बालकका मंगल करें और मार्गमें सदा इसकी रक्षाकरें ॥ १५९ ॥

इत्युक्त्वाङ्केसमादायगीतवाद्यपुरःसरम् ।
बहिर्निष्क्रामयेद्बालंसानन्दैःस्वजनैःसह ॥ १६० ॥

अर्थ-पिता यह मंत्र पढ़ बच्चेको गोदमें ले अनंदसे पूर्ण अपने परिवारवालोंके साथ गीत गाय बाजे बजाय बालकको बाहर लेजावे ॥ १६० ॥

गत्वाध्वनिकियद्दूरंशिशुंसूर्य्यंनिरीक्षयेत् ॥ १६१ ॥

अर्थ-मार्गमें कुछ एक दूर जाय बालकको सूर्य दिखावै (और इस वैदिक मंत्रका पाठ करे कि) ॥ १६१ ॥

ओंह्रींतच्चक्षुर्देवहितंपुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येमशरदः शतंजीवेमशरदः शतम् ॥ १६२ ॥

अर्थ-शुक्रको अतिक्रम करके जो देवताओंकाभी हितकारी सूर्य-रूप नेत्र वर्तमान है तिसको हम एक शत वर्षतक देखें और तिसको दर्शन करके हम एकशत वर्षतक बचे रहैं ॥ १६२ ॥

इत्यादित्यंदर्शयित्वासमागत्यनिजालयम् ।
अर्घ्यंदत्वादिनेशायस्वजनान्भोजयेत्पिता ॥ १६३ ॥

अर्थ-इस प्रकार पिता कुमारको सूर्य दिखाय अपने गृहमें लौटाय सूर्यको अर्घ्य देकर कुटुंबियोंको भोजन करावे ॥ १६३ ॥

षष्ठेमासिकुमारस्यमासिवाप्यष्टमेशिवे ! ।
पितृभ्रातापितावापिकुर्य्यादन्नाशनक्रियाम् ॥ १६४ ॥

अर्थ--हे शिवे! कुमारके जन्मकालसे छैः मासमें पिता वा पितृ-भ्राता (चचा या ताऊ) उसका अन्नप्राशनसंस्कार करे ॥ १६४ ॥

पूर्ववद्देवपूजादिवह्निसंस्करणंतथा ।
एवंधारान्तकर्माणिसम्पाद्यविधिवत्पिता ॥ १६६ ॥

अर्थ-पिता वा पितृभ्राता पहलेकी समान देवपूजादि और अग्निसंस्कार करके यथाविधानसे धाराहोमतक कर्म करे ॥ १६५ ॥

दद्यात्पञ्चाहुतीस्तत्रशुचिनाम्निहुताशने ।
अग्निमुद्दिश्यप्रथमांद्वितीयांवासवंस्मरन् ॥ १६६ ॥

अर्थ-फिर शुचिनामक अग्निमें पंच आहुति देवै । अग्निके लिये प्रथम आहुति इन्द्रके लिये दूसरी आहुति ॥ १६६ ॥

ततःप्रजापतिंदेवंविश्वान्देवांस्ततःपरम् ।
ब्राह्मणञ्चसमुद्दिश्यपञ्चमीमाहुतिंत्यजेत् ॥ १६७ ॥

अर्थ-देव प्रजापतिके लिये तीसरी आहुति, विश्वदेवाके लिये चौथी आहुति, ब्रह्माके लिये पांचमी आहुति देवै ॥ १६७ ॥

ततोऽग्नावन्नदांध्यात्वादत्तपञ्चाहुतिःपिता ।
तत्राथवागृहेऽन्यस्मिन्वस्त्रालङ्कारशोभितम् ।
क्रोडेनिधायतनयंप्राशयेत्पायसामृतम् ॥ १६८ ॥

अर्थ-इसके उपरांत पिता अग्निमें अन्नदा देवीका ध्यान करके तिसके लिये पंच आहुति दे उस गृहमें वा दूसरे गृहमें वस्त्रालंकारभूषित कुमारको गोदमें ले खीररूपी अमृतपान करावे १६८

पञ्चप्राणाहुतैर्मन्त्रैर्भोजयित्वातुपञ्चधा ।
ततोऽन्नव्यञ्जनादीनांदत्वाकिञ्चिच्छिशोर्मुखे ॥ १६९ ॥

अर्थ-प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, यह पांच मंत्र पढ़कर बालकके मुखमें पांच वार पायसामृत देकर पीछे समस्त अन्नव्यंजनादि कुछ २ लेकर बालकके मुखमें देवै ॥ १६९ ॥

शङ्खतूर्य्यादिघोषेणप्रायश्चित्त्यासमापयेत् ।
इत्यन्नप्राशनंप्रोक्तंचूडाविधिमतःशृणु ॥ १७० ॥

अर्थ-फिर शंख तुरही आदिकी ध्वनी करके प्रायश्चित्त होम समाप्त करनेके पीछे क्रिया समाप्त करे । यह तुमसे अन्नप्राशन-संस्कारकी विधि कही । अब चूडाकरणविधि कहताहूं श्रवण करो ॥ १७० ॥

तृतीयेपञ्चमेवर्षेकुलाचारानुसारतः ।
चूडाकर्मशिशोःकुर्य्याद्बालसंस्कारसिद्धये ॥ १७१ ॥

अर्थ-जन्मकालसे तीसरे वर्षमें या पांचमें वर्षमें संस्कारसिद्धिके लिये कुलाचारके अनुसार बालकका चूडाकरण करे ॥१७१॥

देवपूजादिधारान्तंकर्मनिष्पाद्यसाधकः ।
सत्याग्नेरुत्तरेदेशेवृषगोमयपूरितम् ॥ १७२ ॥

अर्थ-विचक्षण साधक देवपूजासे धाराहोमतक सब कर्म करके सत्यनामस्थापित अग्निकी उत्तर ओर वृषके गोबरसे पूरित ॥ १७२ ॥

तिलगोधूमसंयुक्तंशरावंस्थापयेद्बुधः ।
कवोष्णंसलिलञ्चापिक्षुरमेकंसुशाणितम् ॥ १७३ ॥

अर्थ-तिल और गोधूमसंयुक्त एक नई सरैयामें थोड़ासा गरम जल और एक तीक्ष्ण उस्तरा स्थापन करे ॥ १७३ ॥

आसाद्यतनयंतत्रजनकःस्वीयवामतः ।
संस्थाप्यजननीक्रोडेकवोष्णसलिलैश्चतैः ॥ १७४ ॥

अर्थ-फिर पिता उस स्थानमें अपनी बांई ओर उसकी माता अर्थात् अपनी माताकी गोदमें बालकको रखकर इस समस्त कर्म वा इस गरम जलसे ॥ १७४ ॥

वारुणंदशधाजप्त्वासम्मार्ज्यशिशुमूर्द्धजान् ।
माययाकुशपत्राभ्यांजुष्टिमेकांप्रकल्पयेत् ॥ १७५ ॥

अर्थ-" वं " वरुणबीजको दशवार जप करनेके पीछे बालकके मस्तकको मार्जित करके " ह्रीं " मंत्र पढ़कर दो कुशपत्रसे मस्तकमें एक जुष्टि बनावै ॥ १७५ ॥

मायांलक्ष्मींत्रिधाजप्त्वागृहीत्वालौहजंक्षुरम् ।
छित्त्वातुजुष्टिकामूलंमातृहस्तेनिवेशयेत् ॥ १७६ ॥

अर्थ-फिर " ह्रीं श्रीं " मंत्र तीन वार पढकर लोहेका उस्तरा ले जुष्टिकाकी जड़ काटकर माताके हाथमें देवै ॥ १७६ ॥

कुमारमाताहस्ताभ्यामादायगोमयान्विते ।
शरावेस्थापयेज्जुष्टिंनापितायपितावदेत् ॥ १७७ ॥

अर्थ-कुमारकी माता दोनों हाथोंसे उस जुष्टिकाको ग्रहण करके गोमययुक्त नवीन सरैयांमें स्थापित करे फिर पिता नाईसे कहै कि ॥ १७७ ॥

क्षुरमुण्डिन्!शिशोःक्षौरंसुखंसाधयठद्वयम् ।
पठित्वानापितंपश्यन्सत्यनामानिपावके ।
प्रजापतिंसमुद्दिश्यप्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥ १७८ ॥

अर्थ-हे क्षुरमुण्डिन् नापित ! तुम सुखसे इस बालकका क्षौर-कर्म करो यह कहकर "स्वाहा' पद उच्चारण करना चाहिये पिता यह मंत्र पढकर नापितकी ओर निहार प्रजापतिके अर्थ सत्य-नामक अग्निमें तीनवार आहुति देवै ॥ १७८ ॥

नापितेनकृतंक्षौरंस्नापयित्वाशिशुंततः ।
नापितेनकृतक्षौरंस्नापयित्वाग्निसन्निधौ ॥ १७९ ॥

अर्थ-जब नापित बालकका क्षौरकर्म करचुके तब पिता उस बालकको स्नान कराय वस्त्राभूषण व माला पहराय सजायकर अग्निके सन्मुख ॥ १७८ ॥

स्ववामभागेसंस्थाप्यस्विष्टकृद्धोममाचरेत् ।
प्रायश्चित्तंततःकृत्वादद्यात्पूर्णाहुतिंपिता ॥ १८० ॥

अर्थ-अपने वामभागमें स्थापित कर स्विष्टकृत् होम करे । फिर प्रायश्चित्तहोम करके पूर्णाहुति देवै ॥ १८० ॥

मायाशिशो!तेकुशलंकुरुतांविश्वकृद्विभुः ।
पठित्वैनांशिशोःकर्णेस्वर्णमय्याशलाकया ।
राजत्यालोहमय्यावाकर्णवेधंप्रकल्पयेत् ॥ १८१ ॥

अर्थ-" ह्रीं शिशो विभु विश्वस्रष्टा तुम्हारा मंगल करें " इस मंत्रको पढकर स्वर्णमयी शलाकासे या चांदीकी सलाईसे अथवा लोहेकी सलाईसे बालकका कर्णवेध करे ॥ १८१ ॥

आपोहिष्ठेतिमन्त्रेणअभिषिच्यसुतंततः ।
शान्त्यादिदक्षिणांकृत्वाचूडाकर्म्मसमापयेत् ॥ १८२ ॥

अर्थ-फिर " आपोहिष्ठा मयोभुवः" इस मंत्रसे पुत्रको अभिषेकित कर शान्तिकर्मके पश्चात् दक्षिणा देकर चूडाकर्म करे ॥ १८२ ॥

गर्भाधानादिचूडान्तंसमानंसर्व्वजातिषु ।
शूद्रसामान्यजातीनांसर्व्वमेतदमन्त्रकम् ॥ १८३ ॥

अर्थ-गर्भाधानसे लेकर चूडाकरणतक समस्त संस्कार समस्तजातियोंके लिये समान हैं । शूद्रजाती और साधारण जातियोंके इन सब संस्कारोंके समय केवल मंत्र नहीं पढे ॥ १८३ ॥

जातकर्म्मादिचूडान्तंकुमार्य्याश्चाप्यमन्त्रकम् ।
कर्त्तव्यंपञ्चभिर्व्वर्णैरेकंनिष्क्रमणंविना ॥ १८४ ॥

२०

अर्थ-कन्याउत्पन्न होनेपर ब्राह्मणादि पांचोंवर्ण विना मंत्र पढे इन सारे संस्कारोंको करें, परंतु कुमारीके लिये निष्क्रमणका संस्कार नहीं है ॥ १८४ ॥

अथोच्यतेद्विजातीनामुपवीतक्रियाविधिः ।
यस्मिन्कृतेद्विजन्मानोदैवपैत्र्याधिकारिणः ॥ १८५ ॥

अर्थ-अब द्विजातियोंके उपनयनकी विधि कही जाती है । इस्से द्विजगण दैव और पैतृकर्ममें अधिकारी होजातेहैं ॥ १८५ ॥

गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्देकुर्यादुपनयंशिशोः ।
षोड़शाब्दाधिकोनोपनेतव्योनिष्क्रियोऽपि सः॥१८६॥

अर्थ-गर्भके आठवे वर्षकी आयुमें बालकका उपनयन संस्कार करे।जिनके सोलह वर्ष बीतगये हैं, फिर उसका उपनयन नहीं हो सका, वह अनुपनीत बालक दैव और पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है ॥ १८६ ॥

कृतनित्यक्रियोविद्वान्पञ्चदेवान्समर्च्चयेत् ।
गौर्य्यादिमातृकाश्चैववसुधारांप्रकल्पयेत् ॥ १८७ ॥

अर्थ-विद्वान् पिता नित्यक्रिया समाप्त करके पंच देवताओंकी पूजा करे । फिर गौरीआदि षोड़श मातृकाओंकी पूजा करके वसुधारा देवै ॥ १८७ ॥

वृद्धिश्राद्धंततःकुर्य्याद्देवतापितृतृप्तये ।
कुशण्डिकोक्तविधिनाधाराहोमान्तमाचरेत् ॥ १८८ ॥

अर्थ-फिर देवता और पित्रोंके लिये वृद्धिश्राद्ध करके कुशण्डिकामें कही विधिके अनुसार सब कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥१८८॥

प्रातःकृताशनंबालंसुस्नातंसमलङ्कृतम् ।
शिखांविनाकृतक्षौरंक्षौमाम्बरविभूषितम् ॥ १८९ ॥

अर्थ-प्रातःकालमें बालकको स्नान भोजन कराये उत्तम गहने और रेशमीनवस्त्र पहिरावै । परन्तु केवल शिखा रखकर इसका सारा मस्तक मूंडवादे ॥ १८९ ॥

छायामण्डपमानीयसमुद्भवहुताशितुः ।
समीपेचात्मनोवामेसंस्थाप्यविमलासने ॥ १९० ॥

अर्थ-फिर इस बालकको छाया मंडपमें लाय समुद्भवनामक अग्निके समीपमें अपनी बांई ओर सुविमल आसनपर बैठावे१९०॥

शिष्यंवदेद्ब्रह्मचर्य्यंकुरुवत्स ! ततःशिशुः ।
ब्रह्मचर्य्यंकरोमीतिगुरवेवानिवेदयेत् ॥ १९१ ॥

अर्थ-फिर गुरु इस शिष्यसे कहे कि हे वत्स ! ब्रह्मचर्य धारण करो । बालक गुरुसे निवेदन करे कि ब्रह्मचर्यका अवलंबन करताहूं ॥ १९१ ॥

ततोगुरुःप्रसन्नात्माशिशवेशान्तचेतसे ।
काषायवाससीदद्याद्दीर्घायुष्यायवर्चसे ॥ १९२ ॥

अर्थ-फिर गुरु प्रसन्न होकर शान्तहृदय बालकको दीर्घायुः-कारी तेजकी वृद्धिके लिये कषेले रंगे हुए दो वस्त्र देवै ॥ १९२ ॥

मौञ्जींकुशमयींवापित्रिवृत्तांग्रन्थिसंयुताम् ।
तूष्णींचमेखलांदद्यात्काषायाम्बरधारिणे ॥ १९३ ॥

अर्थ-जब यह बालक कषैले वस्त्र पहरले तब गुरुको चाहिये कि इसको मूंजकी, कुशकी, गांठयुक्त त्रिवली देदे और मौन धारण करके मेखलाभी देवै ॥ १९३ ॥

मायामुच्चार्य्यंसुभगामेखलास्याच्छुभप्रदा ।
इत्युक्त्वामेखलांबद्ध्वामौनीतिष्ठेद्गुरोःपुरः ॥ १९४ ॥

अर्थ-पहले बालक "ह्रीं" उच्चारण करके यह सुभग मेखला मुझे कल्याणकी देनेवालीहो। यह मंत्र पढकर कमरमें मेखला बांध गुरुके सामने बैठे ॥ १९४ ॥

यज्ञोपवीतंपरमंपवित्रम्
बृहस्पतिर्यत्सहजंपुरस्तात् ॥
आयुष्यमग्र्यंप्रतिमुञ्चशुभ्रम् ।
यज्ञोपवीतंबलमस्तुतेजः ॥ १९५ ॥

अर्थ-यह यज्ञोपवीत परम पवित्र है पहले बृहस्पतिजीने इस सहज यज्ञोपवीतको धारण कियाथा आयु करनेवाला श्रेष्ठ शुभ्र यज्ञोपवीत तुम धारण करो तुम्हारा बल और तेज बढे ॥ १९५ ॥

मन्त्रेणानेनशिशवेदद्यात्कृष्णाजिनान्वितम् ।
यज्ञोपवीतंदण्डञ्चवैणवंखादिरञ्चवा ।
पालाशमथवादद्यात्क्षीरवृक्षसमुद्भवम् ॥ १९६ ॥

अर्थ-गुरु यह मंत्र पढकर बालकको काले मृगचर्मका यज्ञोपवीत और बांसका बनाहुआ खदिरकाठका या ढाक अथवा क्षीरवृक्षका बनाहुआ दंड देवै ॥ १९६ ॥

आपोहिष्ठेतिमन्त्रेणमाययापुटितेनच ।
त्रिरावृत्त्याकुशाम्भोभिर्धृतदण्डोपवीतिनम् ।
अभिषिच्यततस्तोयैःपूरयेद्बालकाञ्जलिम् ॥ १९७ ॥

अर्थ-जब बालक दंड और उपवीत धारण करले मायापुटित अर्थात् "ह्रीं" बीजसे पुटित आपोहिष्ठा यह मंत्र तीनवार पढ़कर कुशसे जल ले बालकको अभिषेकित करे। फिर तिस पात्रमें रक्खा हुआ जलले उपनीत बालककी अंजलि भरे ॥ १९७ ॥

तदञ्जलिंदिनेशायदातारंब्रह्मचारिणम् ।
तच्चक्षुरितिमन्त्रेणदर्शयेद्भास्करंगुरुः ॥ १९८ ॥

अर्थ–जब ब्रह्मचारी वह जलांजलि सूर्य भगवानको अर्पण करदे तब गुरु " तच्चक्षुर्देवहितम् " मंत्र पढ़कर तिसको सूर्यका दर्शन करावै ॥ १९८ ॥

दृष्टभास्करमाचार्य्योवदेन्माणवकंततः ।
ममव्रतेमनोधेहिममवित्तंददामिते ।
जुषस्वैकमनावत्स ! ममवाचोस्तुतेशिवम् ॥ १९९ ॥

अर्थ–जब बालक सूर्यका दर्शन कर ले तब आचाय उससे कहै कि मैं तुमको अपना वित्तप्रदान करताहूं तुम हमारे अनुष्ठानमें मन लगाओ. हे वत्स! तुम एक मनोहर हमारे व्रतका आचरण करो हमारा वाक्य तुम्हारा कल्याण करनेवालाहो ॥ १९९ ॥

हृदिस्पृष्ट्वापठित्वैनंकिन्नामासीतितंवदेत् ।
शिष्यस्त्वमुकशर्म्माहंभवन्तमभिवादये ॥ २०० ॥

अर्थ--गुरु यह मंत्र पढ़कर बालकको हृदयस्पर्श करके कहे कि "हेवत्स ! तुम्हारा नाम क्या है" शिष्य कहैकि "मुझ आपके शिष्यका नाम अमुकशर्म्माहै " मैं आपको प्रणाम करता हूं ॥ २०० ॥

कस्यत्वंब्रह्मचारीतिगुरोपृच्छतिपार्व्वति ! ।
शिष्यःसावहितेब्रूयाद्भवतोब्रह्मचार्य्यहम् ॥ २०१ ॥

अर्थ–हे पार्वति ! फिर गुरु पूछेकि तुम किसके ब्रह्मचारीहो; शिष्य सावधानचित्तसे कहैकि मैं आपका ब्रह्मचारी हूं ॥२०१॥

इन्द्रस्यब्रह्मचारीत्वमाचार्य्यस्तेहुताशनः ।
इत्युक्त्वासद्गुरुःपश्चाद्देवेभ्यस्तंसमर्पयेत् ॥ २०२ ॥

अर्थ-फिर सद्गुरु शिष्यसे कहे कि हे वत्स ! तुम इन्द्रके ब्रह्मचारीहो, अग्नि तुम्हारे आचार्य हैं । यह कहकर गुरु शिष्यको देवताओंको समर्पण करे ॥ २०२ ॥

त्वांप्रजापतयेवत्स ! सवित्रेवरुणायच ।
पृथिव्यैविश्वदेवेभ्यःसर्व्वदेवेभ्यएवच ।
समर्पयामितेसर्व्वेरक्षन्तुत्वांनिरन्तरम् ॥ २०३ ॥

अर्थ-(और यह मंत्र पढ़ेकि) वत्स ! तुमको प्रजापतिके निकट, सविताके निकट, वरुणके निकट और सब देवताओंके निकट समर्पण करता हूं । वह सब देवता निरंतर तुम्हारी रक्षा करें॥२०३॥

ततोमाणवकोवह्निंदक्षिणावर्त्तयोगतः ।
गुरुंप्रदक्षिणीकृत्यस्वासनेपुनराविशेत् ॥ २०४ ॥

अर्थ-फिर बालक दक्षिणावर्त योगमें अग्निको और गुरुको प्रदक्षिणा कर फिर आसनपर बैठे ॥ २०४ ॥

गुरुःशिष्येणसंस्पृष्टःसमुद्भवहुताशने ।
पञ्चदेवान्समुद्दिश्यदद्यात्पञ्चाहुतीःप्रिये ! ॥ २०५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! तदुपरांत गुरु शिष्यके द्वारा स्पर्शहोकर समुद्भवनामक अग्निमें पांच देवताओंके लिये पांच आहुति देवै॥२०५॥

प्रजापतिस्तथाशक्रोविष्णुर्ब्रह्माशिवस्तथा ॥ २०६ ॥

अर्थ-अनंतर प्रजापति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, शिव ॥ २०६ ॥

मायादिवह्निजायान्तैर्जुहुयात्स्वस्वनामभिः ।
अनुक्तमन्त्रेसर्व्वत्रविधिरेषप्रकीर्त्तितः ॥ २०७ ॥

अर्थ-इन सब देवताओंका नाम लेकर आदिमें "ह्रीं" अन्तमें "स्वाहा" उच्चारण करके आहुति देवै । जिस मंत्रमें कोई विधि नहीं कही है, उस मंत्रकाभी तैसेही विधान करे । अर्थात् नामके पहले "ह्रीं" उच्चारण करके फिर "स्वाहा" कहै जैसे "ह्रीं प्रजापतये स्वाहा" ॥ २०७ ॥

ततोदुर्गामहालक्ष्मीःसुन्दरीभुवनेश्वरी ।
इन्द्रादिदशदिक्पालाभास्करादिनवग्रहाः ॥ २०८ ॥

अर्थ-फिर दुर्गा, महालक्ष्मी, सुन्दरी, भुवनेश्वरी, इन्द्रादि दश दिक्पाल, भास्करादि नवग्रह ॥ २०८ ॥

प्रत्येकनाम्नाहुत्वैतान्वाससाच्छाद्यबालकम् ।
पृच्छेन्माणवकंप्राज्ञोब्रह्मचर्य्याभिमानिनम् ।
कोवाश्रमस्तेतनय ! ब्रूहिकिन्तेमनोगतम् ॥ २०९ ॥

अर्थ-इनमेंसे प्रत्येकका नाम लेकर आहुति देवे (१) फिर बुद्धिमान गुरु ब्रह्मचर्याभिमानी बालकको वस्त्रसे ढककर पूछै कि हे वत्स ! इस समय तुम कोनसे आश्रमको चाहते हो और तुह्मारे मनका भाव क्या है सो कहो ॥ २०९ ॥

ततःशिष्यःसावहितोधृत्वागुरुपदद्वयम् ।
करोतुमासाश्रमिणंब्रह्मविद्योपदेशतः ॥ २१० ॥

अर्थ-फिर शिष्य सावधानहो गुरुके दोनों चरणकमल पकडकर प्रार्थना करे कि हे गुरो ! ब्रह्मका उपदेश देकर मुझको गृहस्थाश्रमी कीजिये ॥ २१० ॥

एवंप्रार्थयमानस्यदक्षकर्णेशिशोस्तदा ।
श्रावयित्वात्रिधातारंसर्व्वमन्त्रमयंशिवे ! ।
व्याहृतित्रयमुच्चार्य्यसावित्रींश्रावयेद्गुरुः ॥ २११ ॥

अर्थ-हे शिवे ! बालकके इसप्रकार प्रार्थना करनेपर गुरु उसके दाहिने कानमें सर्व मंत्रमें प्रणवको तीनवार सुनाय "भूर्भुवःस्वः" यह तीन व्याहृति उच्चारण करके गायत्रीउपदेश करे ॥ २११ ॥

ऋषिःसदाशिवःप्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
अधिष्ठात्रीतुसावित्रीमोक्षार्थेविनियोगिता ॥ २१२ ॥

(१)मंत्र-"ह्रीं दुर्गायै स्वाहा । ह्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा । ह्रीं सुन्दर्यै स्वाहा" इत्यादि ।

अर्थ-इस सावित्रीके ऋषी सदाशिव, छंद त्रिष्टुप्, अधिष्ठात्री देवी सावित्री मोक्षके लिये विनियोगकीर्तन होताहै (१) ॥२१२॥

आदौतत्सवितुःपश्चाद्वरेण्यंपदमुच्चरेत् ।
भर्गःपदान्तेदेवस्यधीमहीतिपदंवदेत् ॥ २१३ ॥

अर्थ-पहले "तत्सवितुः" पद उच्चारण करके फिर "वरेण्यं" पद उच्चारण करे। तदुपरांत "भर्गः" पदके पीछे "देवस्य धीमहि" पदका पाठ करे ॥ २१३ ॥

ततस्तुपरमेशानि ! धियोयोनःप्रचोदयात् ।
पुनःप्रणवमुच्चार्य्यसावित्र्यर्थंगुरुर्वदेत् ॥ २१४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! तदुपरांत "धियोयोनः प्रचोदयात्" यह पद उच्चारण करके प्रणव, उच्चारण करनेके पीछे गुरु शिष्यको गायत्रीका अर्थ समझावै ॥ २१४ ॥

त्र्यक्षरात्मकतारेणपरेशःप्रतिपाद्यते ।
पाताहर्त्ताचसंस्रष्टायोदेवःप्रकृतेःपरः ॥ २१५ ॥

अर्थ-अक्षरात्मक प्रणवके द्वारा जो देव प्रकृतिसेभी श्रेष्ठ है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलयके कर्ताहैं, वही परमेश्वर कथित होते हैं (२) ॥ २१५ ॥

---

(१) गायत्रीके ऋष्यादि यथाः-अस्याः गायत्र्याः सदाशिवऋषिः त्रिष्टुप्छंदः सावित्र्यधिष्ठात्री देवता मोक्षार्थे विनियोगः । शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुप्छन्दसे नमः । हृदये सावित्र्यै अधिष्ठात्र्यै देवतायै नमः ! मोक्षावाप्तये विनियोगः । इस प्रकार ऋषिन्यास करके गायत्रीका जपकरे ।

(२) अकारो विष्णुरुद्दिष्ट उकारस्तु महेश्वरः। मकारः प्रोच्यते ब्रह्मा प्रणवे न त्रयो मताः ॥ अ, उ, म इनतीन अक्षरोंसे प्रणव होता है । अकारका अर्थ विष्णु अर्थात् पालनकर्ता, उकारका अर्थ महेश्वर अर्थात् संहारकर्ता । मकारका अर्थ ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्त्ता है । अ, उ, म- ओं, इस प्रणवसे सृष्टि, स्थिति, प्रलयकर्ता कहा जाता है । गोरक्षसंहितामें कहा है-इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी। त्रिधा शक्तिः स्थिता लोके तत्परं शक्तिरोमिति॥ईश्वरकी तीन शक्ति हैं एक

असौदेवस्त्रिलोकात्मात्रिगुणंव्याप्यतिष्ठति ।
अतोविश्वमयंब्रह्मवाच्यंव्याहृतिभिस्त्रिभिः ॥ २१६ ॥

अर्थ–वह देव त्रिलोकीके आत्मा हैं वह तीनों गुणोंमें व्याप-रहे हैं । इसकारण "भूर्भुवःस्वः" इन तीन व्याहृतिसे ब्रह्माण्डमें ब्रह्म कहे जाते हैं ॥ २१६ ॥

तारव्याहृतिवाच्योयःसावित्र्याज्ञेयएवसः ।
जगद्रूपस्यसवितुःसंस्रष्टुर्दीव्यतोविभोः ॥ २१७ ॥

अर्थ–जो प्रणवसे प्रतिपाद्यहैं, जो तीनव्याहृतिसे वाच्य हैं सावि-त्रीसे वही जाने जाते हैं । जो जगत्के सविता अर्थात् सृष्टिकर्ता है, जो दीप्त्यादि क्रियाश्रय विभु हैं ॥ २१७ ॥

अन्तर्गतंमहद्वर्चोवरणीयंयतात्मभिः ।
ध्यायेमतत्परंसत्यंसर्वव्यापिसनातनम् ॥ २१८ ॥

अर्थ–उनके अन्तर्गत योगियोंकी वरणीय महाज्योतिका ध्यान-कर्ता हूं । वह ब्रह्मही परमसत्य, सर्वव्यापि और सनातन है॥२१८॥

योभर्गःसर्वसाक्षीशोमनोबुद्धीन्द्रियाणिनः ।
धर्मार्थकाममोक्षेषुप्रेरयेद्विनियोजयेत् ॥ २१९ ॥

अर्थ–जो वह महाज्योति सर्वसाक्षी और ईश्वर है वह हमारे मनको बुद्धि व इन्द्रियोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें लगावें२१९

इत्थमर्थयुतांब्रह्मविद्यामादिश्यसद्गुरुः ।
शिष्यंनियोजयेद्देवि ! गृहस्थाश्रमकर्मसु ॥ २२० ॥

शक्तिका नाम इच्छा शक्ति है । एक शक्तिका नाम क्रिया शक्ति और शक्तिका नाम ज्ञानशक्ति है । इच्छाशक्ति गौरीशब्दमें, क्रियाशक्ति ब्राह्मीशब्दमें और ज्ञानशक्ति वैष्णवीशब्दमें कही जाती है। प्रणव अर्थात् ओंकारके द्वारा यह तीन शक्तियां दिखाई देती हैं ॥

अर्थ–हे देवि ! सद्गुरु इसप्रकार अर्थसहित ब्रह्मविद्याका उपदेश देकर शिष्यको गृहस्थाश्रमके कर्ममें लगावै ॥ २२० ॥

ब्रह्मचर्य्योचितंवेशंवत्सेदानींपरित्यज ।
शाम्भवोदितमार्गेणदेवान्पितॄन्समर्च्चय ॥ २२१ ॥

अर्थ–और कहै कि हे वत्स ! इस समय वह वेश जो ब्रह्मचर्यके योग्य है–त्यागदे। महादेवजीका दिखायाहुआ मार्ग अवलंबन करके देवता और पितृगणोंकी पूजाकर ॥ २२१ ॥

ब्रह्मविद्योपदेशेनपवित्रंतेकलेवरम् ।
प्राप्तागृहस्थाश्रमितातदुक्तंकर्मकल्पय ॥ २२२ ॥

अर्थ–ब्रह्मविद्याके उपदेशसे इस समय तुह्मारा शरीर पवित्र हुआ है । इस समय तुम गृहस्थाश्रमको प्राप्त होगये । अत एव तुम गृहस्थाश्रममें कहे हुए कार्योंका अनुष्ठान करो ॥ २२२ ॥

उपवीतद्वयंदिव्यवस्त्रालङ्करणानिच ।
गृहाणपादुकाछत्रंगन्धमाल्यानुलेपनम् ॥ २२३ ॥

अर्थ–हे वत्स ! इस समय तुम दो यज्ञोपवीत,रमणीय वस्त्र,अलंकार, खडाउं, छत्र, गंध, माला और अनुलेपन ग्रहण करो॥२२३॥

ततःकाषायवसनंकृष्णाजिनसमन्वितम् ।
यज्ञसूत्रंमेखलाञ्चदण्डंभिक्षाकरण्डकम् ॥ २२४ ॥

अर्थ–फिर गेरुआरंगके वस्त्र, कृष्णमृगका चर्म,यज्ञोपवीत, मेखला, दंड, भिक्षापात्र ॥ २२४ ॥

आचारादार्ज्जितांभिक्षांसमर्प्यगुरवेशिवे ।
शुद्धोपवीतयुगलंपरिधायाम्बरेशुभे ॥ २२५ ॥

अर्थ–आचारके अनुसार मिलीहुई भिक्षा, यह सब गुरूजीको अर्पण करके शिष्य, दो शुद्ध यज्ञोपवीत और दो उत्तम वस्त्र पहर ॥ २२५ ॥

गन्धमाल्यधरस्तूष्णींतिष्ठेदाचार्य्यसन्निधौ ।
ततोगृहस्थाश्रमिणंशिष्यमेतद्वदेद्गुरुः ॥ २२६ ॥

अर्थ-गंध और माला धारण कर आचार्यके समीप चुपकेसे खडा रहै । आचार्य गृहस्थाश्रमी शिष्यसे कहै ॥ २२६ ॥

जितेन्द्रियःसत्यवादीब्रह्मज्ञानपरोभव ।
स्वाध्यायाश्रमकर्माणियथाधर्मेणसाधय ॥ २२७ ॥

अर्थ-तुम जितेंद्रिय, सत्यवादी और ब्रह्मपरायण हो । तुम धर्मशास्त्रकी विधिके अनुसार अध्ययन और गृहस्थाश्रमके समस्त कर्म करो ॥ २२७ ॥

इत्यादिश्यद्विजंपश्चात्समुद्भवहुताशने ।
मायादिप्रणवान्तेनभूर्भुवःस्वस्त्रयेणच ॥ २२८ ॥

अर्थ-इस प्रकार द्विज शिष्यको आज्ञा देकर गुरु, पहले माया और पीछेसे प्रणव उच्चारण करके, " भूः भुवः स्वः " इन तीन मंत्रोंसे सम्भवनामक अग्निमें ॥ २२८ ॥

हावयित्वात्रिधाचार्य्यःस्विष्टकृद्धोममाचरन् ।
दत्वापूर्णाहुतिंभद्रे! व्रतकर्म्मसमापयेत् ॥ २२९ ॥

अर्थ-तीन वार आहुति देकर स्विष्टकृत् होमको करे । हे भद्रे ! फिर पूर्णाहुति देकर उपनयन क्रिया समाप्त करे ॥ २२९ ॥

जीवसेकादिसंस्कारान्व्रतान्तःपितृतोनव ।
उद्वाहःपितृतोवापिस्वतोऽपिसिध्यतिप्रिये ! ॥ २३० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जीवसेकसे लेकर उपनयनतक नौ संस्कार पिताहीके द्वारा होतेहैं । परंतु विवाहसंस्कार पिताके द्वारा या अपने आपभी हो सक्ता है ॥ २३० ॥

विवाहाह्निकृतस्नानःकृतनित्यक्रियःकृती ।

पञ्चदेवान्समभ्यर्च्यगौर्य्यादिमातृकास्तथा ।
वसोर्धारांकल्पयित्वावृद्धिश्राद्धंसमाचरेत् ॥ २३१ ॥

अर्थ–कार्यकुशल विवाहके दिन स्नान करके नित्यक्रियासे निवट पांच देवताओंकी पूजा कर गौरी इत्यादि षोड़श मातृकाओंकी पूजा करे । फिर वसुधारा देकर वृद्धिश्राद्धकरे ॥२३१॥

रात्रौप्रतिश्रुतंपात्रंगीतवाद्यपुरःसरम् ।
छायामण्डपमानीयउपवेश्यवरासने ॥ २३२ ॥

अर्थ–पहले जिस पात्रको कन्यादान करनेके लिये वचन दिया था, जब वह पात्र गाजे बाजेके साथ रात्रिके समय आवै, तब उसको छाये हुए मढेके नीचे लायकरके आसनपर बैठावै ॥२३२॥

वासवाभिमुखंदातापश्चिमाभिमुखोविशेत् ।
आचम्यस्वस्तिमृद्धिञ्चकथयेद्ब्राह्मणैःसह ॥ २३३ ॥

अर्थ–पात्र पूर्वकी ओर बैठे, दाता पश्चिमकी ओर बैठे, कन्यादान करनेवाला पहले आचमन करके । (कर्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्माणि स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु) यह मंत्र पढ़कर फिर ब्राह्मणोंके साथ कहै कि (स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा इत्यादि) स्वस्ति पढ़कर फिर कन्यादानकरनेवाला कहै कि (कर्तव्येऽस्मिन् शुभविवाहकर्मणि ऋद्धिं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु) यह मंत्र पढ़ ब्राह्मणोंके साथ कहै कि (ऋध्यताम् ऋध्यताम् ऋध्यताम्) ॥ २३३ ॥

साधुप्रश्नंवरंपृच्छेदर्च्चनाप्रश्नमेवच ।
वरात्प्रश्नोत्तरंनीत्वापाद्याद्यैर्वरमर्च्चयेत् ॥ २३४ ॥

अर्थ-फिर कन्यादाता वरसे साधु प्रश्न और अर्चनाप्रश्न करके प्रश्नका उत्तर ले (१) पाद्यादिसे वरकी अर्चना करके ॥ २३४ ॥

---

(१) कन्यादाताका प्रश्न–"साधु भवानास्तां" वरका उत्तर–"साध्व हमासे" प्रश्न–"अर्चयिष्यामि भवन्तम्" उत्तर– " ओं अर्चय "

समर्पयामिवाक्येनदेयद्रव्यंसमर्पयेत् ।
पादयोरर्पयेत्पाद्यंशिरस्यर्घ्यंनिवेदयेत् ॥ २३५ ॥

अर्थ-पाद्यादि देनेके समय, तुमको यह समर्पण करताहूं यह वाक्य पढ़कर सब देनेके योग्य द्रव्योंको समर्पण करदे, दोनों चरणोंमें पाद्य और मस्तकमें अर्घ्य समर्पण करे ॥ २३५ ॥

आचम्यवदनेदद्याद्गन्धंमाल्यंसुवाससी ।
दिव्याभरणरत्नानियज्ञसूत्रंसमर्पयेत् ॥ २३६ ॥

अर्थ-फिर वदनमें आचमनीय देकर दो वस्त्र, सुगंधित माला, यज्ञोपवीत, उत्तम आभूषण और रत्नादि दान करे ॥ २३६ ॥

ततस्तुभाजनेकांस्येकृत्वादधिघृतंमधु ।
समर्पयामिवाक्येनमधुपर्कंकरेऽर्पयेत् ॥ २३७ ॥

अर्थ-फिर कांसेके पात्रमें दही, घी और मधु रखकर समर्पण करताहूं वाक्य पढकर हाथमें मधुपर्क अर्पण करे ॥ २३७ ॥

वरोऽपिपात्रमादायवामेपाणौनिधायच ।
दक्षाङ्गुष्ठानामिकाभ्यांप्राणाहुत्युक्तमन्त्रकैः ॥ २३८ ॥

अर्थ-वरभी उस मधुपर्कके पात्रको ग्रहण कर वाम हाथमें रख प्राणाहुति मंत्र पढ़के (१) दांये हाथके अंगूठे और अनामिकासे ॥ २३८ ॥

पञ्चधाघ्रायतत्पात्रमुदीच्यांदिशिधारयेत् ।
मधुपर्कंसमर्प्यैवंपुनराचामयेद्वरम् ॥ २३९ ॥

अर्थ-पांच वार सूंघकर उस पात्रको उत्तरकी ओर रखदे इस प्रकार मधुपर्क समर्पण करके वरको पुनराचमनीय दे ॥ २३९ ॥

---

(१) प्राणाहुतिका मंत्र यथाः-"प्राणायस्वाहा, अपानायस्वाहा, समानायस्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा ॥"

दूर्वाक्षताभ्यांजामातुर्विधृत्यजानुदक्षिणम् ।
स्मृत्वाविष्णुंतत्सदितिमासपक्षातिथीस्ततः ॥ २४० ॥

अर्थ-फिर दूब और अक्षत हाथमें ले जामाताकी दाही जांघ नवाय विष्णुजीका स्मरण करके " तत्सत् " वाक्य उच्चारण कर, मास, पक्ष और तिथिका ॥ २४० ॥

समुल्लिख्यनिमित्तानिवृणुयाद्वरमुत्तमम् ।
गोत्रप्रवरनामानिप्रत्येकंप्रपितामहात् ॥ २४१ ॥

अर्थ-नामले वरके परदादेसे लेकर पितातक प्रत्येकका गोत्र, प्रवरके साथ षष्ठयन्त नाम उच्चारण करे, ऐसेही गोत्र प्रवरादिके सहित द्वितीयान्त वरका नामले वरको भलीभांतिसे वरण करे ॥ २४१ ॥

षष्ठयन्तानिसमुच्चार्य्यवरस्यजनकावधि ।
द्वितीयान्तंवरंब्रूयाद्गोत्रप्रवरनामभिः ॥ २४२ ॥
तथैवकन्यामुल्लिख्यब्राह्मोद्वाहेनपण्डितः ।
दातुंभवन्तमित्युक्त्वावृणेऽहमितिकीर्तयेत् ॥ २४३ ॥

अर्थ-फिर इसप्रकार कन्याके दादे लेकर बापतक तीनपुरुषका षष्ठयन्त नाम गोत्र और प्रवरके साथ उच्चारण करके ऐसेही गोत्र प्रवरके साथ द्वितीयान्त कन्याका नाम लेकर, पंडित कन्यादातासे कहै कि ब्राह्मविवाहसे कन्यादान करनेके अर्थ मैं तुमको वरण करता हूं (१) २४२ ॥ २४३ ॥

---

(१) यह मंत्र उद्धृत हुआ यथाः-विष्णुरों तत्सदों अद्यामुकमास्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकगोत्रः श्रीमदमुकदेवशर्मामुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमतोऽमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्रम्, अमुकगोत्रममुकप्रवरं श्रीमन्तममुकदेवशर्माणं वरममुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुक

वृतोऽस्मीतिवरोब्रूयात्ततोदातावदेद्वरम् ।
यथाविहितमित्युक्त्वाविवाहकर्म्मकुर्व्विति ।
वरोब्रूयाद्यथाज्ञानंकरवाणितदुत्तरम् ॥ २४४ ॥

अर्थ–फिर कहै कि (वृतोस्मि) वृत हुआ। फिर कन्यादाता वरसे कहै कि (यथाविहितं विवाहकर्म कुरु) यथा विधानसे विवाह-कार्य करो । वर उत्तर दे कि (यथाज्ञानं करवाणि) मुझको जैसा ज्ञान है वैसा कर्ताहूं ॥ २४४॥

ततःकन्यांसमानीयवस्त्रालङ्कारभूषिताम् ।
वस्त्रान्तरेणसंच्छाद्यस्थापयेद्वरसम्मुखम् ॥ २४५ ॥

अर्थ–फिर वस्त्राभूषणसे सजी हुई कन्याको लाकर वस्त्रसे ढकके वरके सन्मुख बैठावे ॥ २४५ ॥

पुनर्व्वरंसमभ्यर्च्चयवासोऽलङ्करणादिभिः ।
वरस्यदक्षिणेपाणौकन्यापाणिंनियोजयेत् ॥ २४६ ॥

अर्थ–तदुपरांत कन्यादाता फिर वस्त्र और अलंकारादिसे वरकी पूजा करके वरके दाहिने हाथमें कन्याको स्थापित करे ॥ २४६ ॥

तन्मध्येपञ्चरत्नानिफलताम्बूलमेववा ।
दत्वार्च्चयित्वातनयांवरायविदुषेऽर्पयेत् ॥ २४७ ॥

अर्थ–और उसके हाथमें फल, ताम्बूल व पंचरत्न देकर अर्चना करके उस विद्वान्‌वरके हाथमें कन्याको समर्पण करे ॥ २४७ ॥

प्राग्वत्त्रिपुरुषाख्यानंनिमित्ताख्यानमेवच ।
आत्मनःकाममुद्दिश्यचतुर्थ्यन्तंवरंवदेत् ॥ २४८ ॥

देवशर्मणः पौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणःपुत्रीम, अमुकगोत्राममुकप्रवराममुकीम् देवीं कन्यां ब्राह्मोद्वाहेनदातुं भवन्त महं वृणे ॥

अर्थ-इस कन्याको समर्पण करनेके समय पहले अपनी कामना कहकर तीन पुरुषका नाम लेनेके निमित्त कीर्त्तन करके चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें वरका नामले ॥ २४८ ॥

कन्याभिधांद्वितीयान्तामर्च्चितांसमलङ्कृताम् ।
साच्छादनांप्रजापतिदेवताकामुदीरयन् ॥ २४९ ॥

अर्थ-फिर(ऐसेही तीन पुरुषका नाम लेकर) कन्याका द्वितियांन्त नाम उच्चारण करनेके समय, अर्चिता, अलंकृता, साच्छादना, प्रजापाति देवताका यह कई विशेषणपद उच्चारण करे ॥ २४९ ॥

तुभ्यमहमितिप्रोच्यदद्यात्सम्प्रददेवदन् ।
वरःस्वस्तीतिस्वीकुर्य्यात्सम्प्रदातावरंवदेत् ॥२५० ॥

अर्थ-फिर " तुभ्यमहं सम्प्रददे (अर्थात् मैं तुमको सम्प्रदान करताहूं) यह वाक्य पढकर कन्यादान करे (१) वर स्वति कह कर (कन्याको भार्याभावसे ग्रहण करनेको) स्वीकार करे । कन्यादाता वरसे कहै कि ॥ २५० ॥

धर्म्मेचार्थेचकामेचभवताभार्य्ययासह ।
वर्त्तितव्यंवरोबाढ़मुक्ताकामस्तुतिंपठेत् ॥ २५१ ॥

---

(१) सम्प्रदानमंत्रः यथाः-विष्णुरोतत्सदों आद्यामुकमास्यमुकपेक्षेऽमुकातिथावमुकराशिस्थिते भास्करेऽमुकाभीष्टार्थसिद्धिकामोऽमुकगोत्रः श्रीमदमुकशर्मामुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्राय, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्राय, अमुकगोतस्याअमुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्राय, अमुकगोत्रायामुकप्रवराय श्रीमतेऽमुकदेवशर्मणे वराय अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः प्रपौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पौत्रीम्, अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्य श्रीमदमुकदेवशर्मणः पुत्रीम्, अमुकगोत्राममुकप्रवरामार्चितां समलंकृतां साच्छादनां प्रजापतिदेवताकाममुकीं देवीमिनां कन्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥

अर्थ-तुम धर्म, अर्थ और कामविषयमें भार्याके साथ मिलकर कार्य करना। "ऐसेही करूंगा" कहकर वर इस प्रकार कामस्तुति पढे कि ॥ १९१ ॥

दाताकःमोगृहीतापिकामायादाच्चकामिनीम्।
कामेनत्वांप्रगृह्णामिकामःपूर्णोऽस्तुचावयोः ॥ २८२ ॥

अर्थ-काम सम्प्रदान करताहैं, कामही प्रतिग्रह करताहै, कामही कामको कामिनीदान करता हैं हे भार्यें! मैं कामके हेतु तुमको ग्रहण करता हूं हमारे दोनोंके काम पूर्ण होवें ॥ २५२ ॥

ततोवदेत्सम्प्रदाताकन्यांजामातरंप्रति।
प्रजापतिप्रसादेनयुवयोरभिवाञ्छितम्।
पूर्णमस्तुशिवञ्चास्तुधर्म्मंपालयतंयुवाम् ॥ २८३ ॥

अर्थ-फिर कन्याका देनेवाला जमाई और कन्यासे कहे कि प्रजापतिके प्रसादसे तुम्हारी मनोकामना पूर्णहो, तुम्हारा मंगलहो, तुम दोनों मिलकर धर्म करो ॥ २५३ ॥

ततआच्छाद्यवस्त्रेणसम्प्रदातासुमङ्गलैः।
परस्परशुभालोकंकारयेद्वरकन्ययोः ॥२८४ ॥

अर्थ-फिर दाता मंगलगीत बाजे शंखादि बजाय कन्या और वरको श्वेतवस्त्र पहराय परस्पर शुभदृष्टि करावै ॥ २५४ ॥

ततोहिरण्यरत्नानियथाशक्त्यनुसारतः।
जामात्रेदक्षिणांदद्यादच्छिद्रमवधारयेत् ॥ २८५ ॥

अर्थ-तदुपरांत जामाताको यथाशक्ति सुवर्ण और रत्नदक्षिणा देकर "कृतमिदं शुभविवाहकर्माच्छिद्रमस्तु" यह कहकर अच्छिद्रावधारण करे ॥ २५५ ॥

वरस्तुभार्य्ययासार्द्धंतद्रात्रौदिवसेऽपिवा ।
कुशण्डिकोक्तविधिनावह्निस्थापनमाचरेत् ॥ २५६ ॥

अर्थ-अनन्तर उस रात्रिमें वा दूसरे दिन भार्याके साथ कुश-कण्डिकामें कही हुई विधिके अनुसार अग्निस्थापन करे ॥ २५६ ॥

योजकाख्यःपावकोऽत्रप्राजापत्यश्चरुःस्मृतः ।
धारान्तंकर्म्मसम्पाद्यदद्यात्पञ्चाहुतीर्व्वरः ॥ २५७ ॥

अर्थ-इस कुशंडिकास्थलमें योजकनामक अग्नि और प्राजापत्य नामक चरु कहा है । धाराहोमतक सब कर्म करके वरको पांच आहुति देनी चाहिये ॥ २५७ ॥

शिवंदुर्गांतथाविष्णुंब्रह्माणंवज्रधारिणम् ।
ध्यात्वैकैकंसमुद्दिश्यजुहुयात्संस्कृतेऽनले ॥ २५८ ॥

अर्थ-इन पांच आहुतियोंको देनेके समय, शिव, दुर्गा, विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र इन पांच देवताओंका ध्यान करके प्रत्येकके लिये एक २ आहुति संस्कारकीहुई अग्निमें देवै ॥ २५८ ॥

भार्य्यायाःपाणियुगलंगृह्णीयादित्युदीरयन् ।
पाणिंगृह्णामिसुभगे ! गुरुदेवरताभव ।
गार्हस्थ्यकर्म्मधर्म्मेणयथावदनुशीलय ॥ २५९ ॥

अर्थ-फिर भार्याके दोनों हाथ पकड़कर वर यह मंत्र पढे कि हे सुभगे! मैं तेरा पाणिग्रहण करताहूं, तू गुरुभक्ति और देवता-भक्तिपरायण होकर धर्मानुसार विधिविधानसे गृहस्थकर्मका अनुष्ठान कर ॥ २५९ ॥

घृतेनस्वामिदत्तेनलाजैर्भ्रात्राहृतैःशिवे !
प्रजापतिंसमुद्दिश्यदद्याद्वेदाहुतीर्व्वधूः ॥ २६० ॥

अर्थ--हे शिवे ! इसके उपरांत वधूको चाहिये कि स्वामीके दिये हुये घृतसे और भ्राताके दिये हुये लाजसे प्रजापतिके अर्थ चार आहुति देवे ॥ २६० ॥

प्रदक्षिणीकृत्यवह्निमुत्थायभार्य्ययासह ।
दुर्गांशिवंरमांविष्णुंब्राह्मींब्रह्माणमेवच ।
युग्मंयुग्मंसमुद्दिश्यत्रीस्त्रिधाहवनंचरेत् ॥ २६१ ॥

अर्थ—फिर भार्याके साथ वरको उठकर अग्निकी प्रदक्षिणा करके दुर्गा और शिव, रमा और विष्णु, ब्राह्मी और ब्रह्मा इन दोदोंके लिये अर्थात् प्रत्येक दम्पतिके लिये तीनवार आहुति देवे ॥२६१॥

अश्ममण्डलिकारोहौकुर्य्यादमन्त्रकम् ।
निशायांचेत्तदास्त्रीभिःपश्येद्ध्रुवमरुन्धतीम् ॥ २६२॥

अर्थ—फिर विनामंत्र पढ़े शिलारोहण और सप्तपदीगमन करे यदि विवाहकी रात्रिमेंही कुशण्डिका हो तो वर और वधूको पुरकी स्त्रियोंके साथ मिलकर अरुन्धतीका दर्शन करे ॥ २६२ ॥

प्रत्यावृत्त्यासनेसम्यगुपविश्यवरस्तदा ।
स्विष्टकृद्धोमतःपूर्णाहुत्यन्तेनसमापयेत् ॥ २६३ ॥

अर्थ—फिर वरको उचित है कि लौटके भलीभांतिसे अपने आसनपर बैठे और स्विष्टकृत् होमसे पूर्णाहुतितक समस्त कर्म करे २६३

ब्राह्मोविवाहोविहितोदोषहीनःसवर्णया ।
कुलधर्म्मानुसारेणगोत्रभिन्नासपिण्डया ॥ २६४ ॥

अर्थ—यदि स्वजातीय गोत्रके सिवाय असपिंडाकन्याके साथ कुलधर्मके अनुसार विवाह हो तो वह निर्दोष ब्राह्म विवाह (१) कहलाता है ॥ २६४ ॥

---

(१) रूपवान् पात्रको बुलाकर यदि अलंकृता कन्याको दान करदिया जाय तो वह ब्राह्मविवाह कहलाया जायगा ।

ब्राह्मोद्वाहेनयाग्राह्यासैवपत्नीगृहेश्वरी ।
तदनुज्ञांविनाब्राह्मविवाहंनाचरेत्पुनः ॥ २६५ ॥

अर्थ-जो भार्या ब्राह्मविवाहसे ग्रहण की जाती है, वही भार्या पत्नी और गृहेश्वरी होती है, विना उसकी सम्मतिके कोई पुरुष पुनर्वार ब्राह्मविवाह नहीं करसक्ता ॥ २६५ ॥

तस्याअपत्येतद्वंशेविद्यमानेकुलेश्वरि ! ।
शैवोद्भवान्यपत्यानिदायाहाणिभवन्तिन ॥ २६६ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! ब्राह्मविवाहसे उत्पन्न हुआ पुत्र या उसके वंशमें किसीके रहते हुये, शैवविवाहके द्वारा विवाहित भार्याके गर्भका पुत्र धनका अधिकारी नहीं हो सक्ता ॥ २६६ ॥

शैवत्तदन्वयाश्चैवलभेरन्धनभाजिनः ।
यथाविभवमाच्छादंग्रासञ्चपरमेश्वरि ! ॥ २६७ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! शिवविवाहसे उत्पन्न हुई सन्तान वा उस वंशके पुत्रगण, धनाधिकारीके पाससे सम्पत्तिके अनुसार भोजन मात्र पासक्ते हैं ॥ २६७ ॥

शैवोविवाहोद्विविधःकुलचक्रेविधीयते ।
चक्रस्यनियमेनैकोद्वितीयोजीवनावधि ॥ २६८ ॥

अर्थ-शैव विवाह दो प्रकारका है कुलचक्रमेंही ऐसे विवाह होते हैं। एक प्रकारका विवाह चक्रके नियमानुसार (चक्रकी निवृत्ति-तक स्थाई रहता है) दूसरे प्रकारके विवाहका बन्धन जन्मभर-तक स्थाई होता है ॥ २६८ ॥

चक्रानुष्ठानसमयेस्वगणैःशक्तिसाधकैः ।
परस्परेच्छयोद्वाहंकुर्य्याद्वीरःसमाहितः ॥ २६९ ॥

अर्थ-वीर पुरुष चक्रानुष्ठानके समय सावधान चित्तसे शक्ति

साधक स्वजनोंके साथ मिलकर परस्पर इच्छानुसार विवाह करें ॥ २६९ ॥

भैरवीवीरवृन्देषुस्वाभिप्रायंनिवेदयेत् ।
आवयोःशाम्भवोद्वाहेभवद्भिरनुमन्यताम् ॥ २७० ॥

अर्थ-प्रथम, भैरवी वीरोंके निकट अपना अभिप्राय निवेदन करके कहे कि हम दोनोंके शैव विवाहमें आपलोग अनुमतिदें २७०

तेषामनुज्ञामादायजप्त्वासप्ताक्षरंमनुम् ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्याप्रणमेत्कालिकांपराम् ॥ २७१ ॥

अर्थ-अनंतर वीरोंकी अनुमति ग्रहण करके "परमेश्वरि स्वाहा" यह मंत्र एकशत आठवार जप करके परमदेवी कालिकाको प्रणाम करे ॥ २७१ ॥

ततोवदेत्तांरमणींकौलानांसन्निधौ शिवे ! ।
अकैतवेनचित्तेनपतिभावेनमांवृणु ॥ २७२ ॥

अर्थ-हे शिवे ! फिर कौलवर्गके सन्मुख वीरको उस स्त्रीसे कहना चाहिये कि कपटहीन हृदयसे मुझको पतिभावमें वरण कर ॥२७२॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्वृत्त्वासाकौलादयिताततः ।
सुश्रद्दधानादेवेशि ! करोदद्यात्करोपरि ॥ २७३ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! वह कुलीन कामिनी गंध, पुष्प और अक्षत ले श्रद्धायुक्त हृदयसे प्यारे पतिकी पूजा कर उसके हाथपर अपना हाथ रक्खे ॥ २७३ ॥

ततोऽभिषिञ्चेच्चक्रेशोमन्त्रेणानेनदम्पती ।
तदाचक्रस्थिताःकौलाब्रूयुःस्वस्तीतिसादरम् ॥२७४॥

अर्थ-तदनंतर चक्रेश्वरको आगे लिखा हुआ मंत्र पढ़कर उस दम्पतिको अभिषेक करना चाहिये । और चक्रमें बैठेहुए समस्त वीर आदरसहित "स्वस्ति" वचन कहैं ॥ २७४ ॥

राजराजेश्वरीकालीतारिणीभुवनेश्वरी ।
बगलाकमलानित्यायुवांरक्षन्तुभैरवी ॥ २७५ ॥

अर्थ-दम्पतिको अभिषेकित करनेके समय चक्रेश्वर यह मंत्र पढ़े कि राजराजेश्वरी काली, तारिणी, भुवनेश्वरी, बगला, कमला, नित्या और भैरवी यह तुम दोनोंकी रक्षा करें ॥ २७५ ॥

अभिषिञ्चेद्द्वादशधामधुनावार्घ्यपाथसा ।
ततस्तौप्रणतौविद्वाञ्छ्रावयेद्वाग्भवंरमाम् ॥ २७६ ॥

अर्थ-चक्रेश्वर यह मंत्र पढ़कर सुरासे अथवा अर्घ्यके जलसे दोनोंको अभिषेक करे। जब वह दम्पति भूमिष्ठहो प्रणाम करे तब चक्रेश्वर उनको "ऐं श्रीं" यह दो बीज श्रवण करावै॥२७६॥

यद्यदङ्गीकृतंतत्रताभ्यांपाल्यंप्रयत्नतः ।
शाम्भवोक्तविधानेनकुलीनाभ्यांकुलेश्वरि ! ॥ २७७ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! वह कुलीन दम्पति उस शैवविवाहस्थलमें जो जो अंगीकार करेंगे, उसको शिवोक्तविधिके अनुसार उनको अवश्य पालन करना होगा ॥ २७७ ॥

वयोवर्णविचारोऽत्रशैवोद्वाहेनविद्यते ।
असपिण्डांभर्तृहीनामुद्वहेच्छम्भुशासनात् ॥ २७८ ॥

अर्थ-इस शैवविवाहस्थलमें कौन वर्ण, कितनी आयुहै, इसका विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहींहै। महादेवजीकी ऐसी आज्ञा है कि स्वामिहीन और असपिंडकाही विवाह होगा ॥ २७८ ॥

परिणीताशैवधर्मेचक्रनिर्धारणेनया ।
अपत्यार्थीऋतुंदृष्ट्वाचक्रातीतेतुतांत्यजेत् ॥ २७९ ॥

अर्थ–शैवनियमके अनुसार चक्रनियम करके जिसके साथ विवाह किया गया है । सन्तानार्थी और उसका नियमित ऋतुकाल देखकर चक्रनिवृत्त होनेपर उसको त्याग करसक्तेहैं ॥ २७९ ॥

शैवभार्य्योद्भवापत्यमनुलोमेनमातृवत् !
समाचरेद्विलोमेनतत्तुसामान्यजातिवत् ॥ २८० ॥

अर्थ–अनुलोम विवाहकी विधिसे विवाहित शैव भार्याकी गर्भसे उत्पन्न हुई संतान (अपनी) माताकी समान होगा । अर्थात् माताकी जो जातीहै सन्तानभी उसी जातिको प्राप्त होगी । यदि विलोम विवाह हो जाय अर्थात् कन्या ऊंची जातिकी और पात्र नीच जातिका हो तो उसके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तान साधारण जातिकी समान अर्थात् पंचम वर्ण होगी ॥ २८० ॥

एषांसङ्करजातीनांसर्वत्रापितृकर्म्मसु ।
भोज्यप्रदानंकौलानांभोजनंविहितंभवेत् ॥ २८१ ॥

अर्थ–इन संकरजातिको पितृश्राद्धादिमें कौलपुरुषको भोज देना और भोजन कराना होगा ॥ २८१ ॥

नृणांस्वभावजंदेवि ! प्रियंभोजनमैथुनम् ।
सङ्क्षेपायहितार्थायशैवधर्मोनरूपितम् ॥ २८२ ॥

अर्थ–हे देवि ! भोजन और मैथुन मनुष्योंको स्वभावसेही प्रिय होता है अतएव उसको संक्षेप करनेके लिये और हित करनेके लिये शैवधर्ममें उसकी सीमा नियतकीगईहै ॥ २८२ ॥

अतएवमहेशानि ! शैवधर्म्मनिषेवणात् ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणांप्रभुर्भवतिनान्यथा ॥ २८३ ॥

इति श्रीमहानिर्व्वाणतन्त्रे सर्व्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्व्वधर्म्म-
निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे
कुशण्डिकादशविधसंस्काराविधि-
र्नाम नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! इस कारण शिवके प्रवर्तित किये धर्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य निःसंदेह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी हो जाताहै ॥ २८३ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां कुशण्डिकादशविधसंस्कारविधिर्नाम नवमउल्लासः ॥ ९ ॥

दशमउल्लासः ।

श्रीदेव्युवाच ।

कुशण्डिकाविधिर्नाथ ! संस्काराश्चदशश्रुताः ।
वृद्धिश्राद्धविधिंदेव ! कृपयामेप्रकाशय ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीदेवीजीने कहा हे नाथ ! आपसे दशविधिके संस्कार और कुशंडिकाकी विधि श्रवण करी । अब मुझसे वृद्धिश्राद्धका विधान कहिये ॥ १ ॥

कस्मिन्कस्मिंश्चसंस्कारेप्रतिष्ठासुचकास्वपि ।
कुशण्डिकाविधानञ्चवृद्धिश्राद्धञ्चशङ्कर! ॥ २ ॥

अर्थ-हे महादेव ! किस संस्कारके समय अथवा किस २ प्रतिष्ठाके समय कुशंडिका और वृद्धिश्राद्ध ॥ २ ॥

कर्त्तव्यंवानकर्त्तव्यंतन्ममाचक्षतत्त्वतः ।
मत्प्रीतयेमहेशान ! जीवानांमङ्गलायच ॥ ३ ॥

अर्थ-करना व न करना चाहिये, सो मेरी प्रीतिके लिये और जीवोंके मंगलार्थ भलीभांति मझसे कहिये ॥ ३ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

जीवसेकाद्विवाहान्तदशसंस्कारकर्म्मसु ।
यत्रयद्विहितंभद्रे ! सविशेषंप्रकीर्त्तितम् ॥ ४ ॥

अर्थ-श्रीदेवजीने कहा, हे भद्रे ! गर्भाधानसे विवाहतक दश विधिसंस्कार के बीच जहांपर जिस २ कार्यकी विधि है सो मैं भलीभांति कह आयाहूं ॥ ४ ॥

तदेवकार्यंमनुजैस्तत्त्वज्ञैर्हितमिच्छुभिः ।
अन्यत्रयद्विधातव्यंतच्छृणुष्ववरानने ! ॥ ५ ॥

अर्थ-हे वरानने! मैंने इस प्रकारसे जहांपर जैसा विधान कियाहै, हित चाहनेवाले तत्वज्ञानी ज्ञानी मनुष्य वैसाही अनुष्ठान करें, इसके अतिरिक्त और स्थलमें जैसा विधान चाहिये । वह भी कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ ५ ॥

वापीकूपतडागानांदेवप्रतिकृतेस्तथा ।
गृहाराममव्रतादीनांप्रतिष्ठाकर्म्मसुप्रिये ! ॥ ६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! वापी, कूप, तड़ाग, देवप्रतिमा, गृह, उद्यान, व्रतादिकी प्रतिष्ठाके समय ॥ ६ ॥

सर्वत्रपञ्चदेवानांमातृणामपिपूजनम् ।
वसोर्धाराचकर्त्तव्यावृद्धिश्राद्धकुशण्डिके ॥ ७ ॥

अर्थ-पंचदेवताओंकी पूजा, मातृकाओंकी पूजा, वसुधारा' वृद्धिश्राद्ध और कुशंडिका करनी चाहिये ॥ ७ ॥

स्त्रीणांविधेयकृत्येषुवृद्धिश्राद्धंनविद्यते ।
देवतापितृतृप्त्यर्थंभोज्यमेकंसमुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-स्त्रीजातिके कर्तव्य कर्ममें वृद्धिश्राद्धका विधान नहींहै, परंतु देवता और पित्रोंकी तृप्तिके लिये एक भोज्य उत्सर्ग करना चाहिये ॥ ८ ॥

देवमात्रर्च्चनंतत्रवसुधाराकुशण्डिका ।
भक्त्यास्त्रियाविधातव्याऋत्विजाकमलानने ! ॥ ९ ॥

अर्थ-हे कमलानने ! ऐसे स्थलमें स्त्रियोंका कर्तव्यहै कि पुरोहित करके भक्तिके साथ देवताकी पूजा करे, वसुधारा देकर कुशण्डिका करे ॥ ९॥

पुत्रश्चपौत्रोदौहित्रोज्ञातयोभगिनीसुतः ।
जामातार्त्विग्दैवपैत्र्यशस्ताःप्रतिनिधौशिवे ! ॥ १० ॥

अर्थ-हे शिवे ! बेटा, पोता, धेवता, जाति, भानजा, जामाता और पुरोहित स्त्रियोंके प्रतिनिधि होनेको यही दैव और पैतृकर्ममें श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

वृद्धिश्राद्धंप्रवक्ष्यामितत्त्वतःशृणुकालिके ! ॥ ११ ॥

अर्थ-हे कालिके ! अब ठीक२ वृद्धिश्राद्धका प्रयोग कहताहूं, श्रवणकरो ॥ ११ ॥

कृत्वानित्योदितंकर्म्ममानवःसुसमाहितः ।
गङ्गांयज्ञेश्वरंविष्णुंवास्त्वीशंभूपतिंयजेत् ॥ १२ ॥

अर्थ-सावधान चित्तसे नित्यकर्म समाप्त करके मनुष्यको गंगा, यज्ञेश्वर, विष्णु, वासुदेव और भूस्वामीकी पूजा करनी चाहिये॥ १२॥

ततोदर्भमयान्विप्रान्कल्पयेत्प्रणवंस्मरन् ।
पञ्चभिर्नवभिर्वापिसप्तभिस्त्रिभिरेववा ॥ १३ ॥

अर्थ-फिर प्रणवका स्मरण करते २ दर्भमय ब्राह्मण बनावै । पांच, नव, सप्त अथवा तीन ब्राह्मण बनावै ॥ १३ ॥

निर्गर्भैश्चकुशैःसाग्रैर्दक्षिणावर्त्तयोगतः ।
सार्द्धद्वयावर्त्तनेनऊर्द्धाग्रैरचयेद्द्विजान् ॥ १४ ॥

अर्थ-गर्भशून्य अग्रभागके साथ ऊर्ध्वाग्रकुशके साथ दक्षिणावर्तमें ढ़ाईसे घेरकर उक्त ब्राह्मणकी रचनाकरे ॥ १४ ॥

वृद्धिश्राद्धेपार्वणादौषड्विप्राःपरिकीर्त्तिताः ।
एकोद्दिष्टेतुकथितएकएवद्विजःशिवे ! ॥ १५ ॥

अर्थ-हे शिवे! वृद्धिश्राद्ध और पार्वणादिश्राद्धमें दो ब्राह्मण बनावै, परंतु एकोद्दिष्ट श्राद्धमें केवल एक ब्राह्मणकी कल्पना करे १५

ततोविप्रान्कुशमयानेकस्मिन्नेवभाजने ।
कौबेराभिमुखान्कृत्वास्नापयेदमुनासुधीः ॥ १६ ॥

अर्थ-अनन्तर ज्ञानी पुरुष कुशमय ब्राह्मणोंको एक पात्रमें उत्तरकी ओर मुख करके स्थापनकर इस मंत्रको पढ़के स्नान करावे कि १६

ह्रींशन्नोदेवीरभिष्टेयशन्नोभवन्तु
पीतयेशंयोरभिस्रवन्तुनः ॥ १७ ॥

अर्थ-जलदेवता हमारी अभीष्टसिद्धिके लिये मंगल करे। जलदेवता हमारे पानके लिये मंगलकरे । जलदेवता सब प्रकारसे हमारे कल्याणकी वर्षा करे ॥ १७ ॥

ततस्तुगन्धपुष्पाभ्यांपूजयेत्कुशभूसुरान् ॥ १८ ॥

अर्थ-फिर इन कुशमय ब्राह्मणोंकी गन्ध पुष्पसे पूजा करे॥१८॥

पश्चिमेदक्षिणेचैवयुग्मयुग्मक्रमात्सुधीः ।
षट्पात्राणिसदर्भाणिस्थापयेत्तुलसीतिलैः ॥ १९ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानी पुरुष पश्चिम और दक्षिणदिशामें तुलसीदल तिल और दर्भके साथ दो२एकत्र करके छैः पात्र स्थापन करे।१९॥

पात्रद्वयेपश्चिमायांयाम्येपात्रचतुष्टयम् ।

पूर्वास्यानुत्तरमुखान्षड्विप्रानुपवेशयेत् ॥ २० ॥

अर्थ–पश्चिमदिशामें रक्खेहुए दोपात्रोंमें दो ब्राह्मणोंको पूर्व मुख करके और दक्षिणदिशामें स्थापित चार पात्रोंमें चार ब्राह्मणोंको उत्तरमुख करके बैठावै ॥ २० ॥

दैवपक्षंपश्चिमायांदक्षिणेवामयाम्ययोः ।
पितुर्मातामहस्यापिपक्षौद्वौविद्धिपार्वति ! ॥ २१ ॥

अर्थ–हे पार्वति ! पश्चिमदिशामें देवपक्ष दक्षिणदिशाके वामभागमें पितृपक्ष और दक्षिणदिशाके दक्षिणभागमें मातामहकी कल्पना करे ॥ २१ ॥

नान्दीमुखाश्चपितरोनान्दीमुख्यश्चमातरः ।
मातामहादयोऽप्येवंमातामह्यादयोऽपिच ।
श्राद्धेनाम्न्याभ्युदयिकेसमुल्लेख्यावरानने ! ॥ २२ ॥

अर्थ–हे वरानने ! आभ्युदयिक नामक नान्दीश्राद्धमें नान्दीमुख पितृगणोंका और नान्दीमुख मातृगणोंका नामले । इस प्रकार नान्दीमुख मातामहादि और नान्दीमुख मातामही इत्यादिकाभी नाम लेना कर्तव्य है ॥ २२ ॥

दक्षावर्त्तेनोत्तरास्योदैवंकर्मसमाचरेत् ।
वामावर्त्तेनदक्षास्यःपितृकर्माणिसाधयेत् ॥ २३ ॥

अर्थ–दक्षिणावर्तसे उत्तर मुख होकर बैठ दैवकर्मका अनुष्ठान करे । और वामावर्तसे लौट दक्षिणकी ओर मुखकर पितृकर्म करे २३

सर्वकर्म्मप्रकुर्वीतदैवादिक्रमतःशिवे ! ।
लङ्घनान्मातृमातॄणांश्राद्धंतद्विफलंभवेत् ॥ २४ ॥
कौबेराभिमुखोऽनुज्ञावाक्यंदैवेप्रकल्पयेत् ।

यास्यास्यःकल्पयेद्वाक्यंपित्रेमातामहेऽपिच ।
तत्रादौदैवपक्षेतुवाक्यंशृणुशुचिस्मिते ! ॥ २५ ॥

अर्थ-हे शिवे ! इस प्रकार देवादि क्रमसे सब कर्म करे (वामावर्तन होकर) माताके पितामाताको लंघन करके श्राद्ध किया जाय तो वह निष्फल होगा दैवकर्मके समय उत्तरकी ओर मुख करके अनुज्ञावाक्य पढ़े और पैत्र्य व मातामहादिके कर्मकालमें दक्षिणकी ओरको मुखकर अनुज्ञावाक्य कहे । हे शुचिस्मिते ! पहले देवपक्षके वाक्य कहताहूं श्रवण करो ॥ २४ ॥ २५ ॥

कालादीनिनिमित्तानिसमुल्लिख्यततःपरम् ।
तत्तत्कर्म्माभ्युदयार्थमुक्त्वासाधकसत्तमः ॥ २६ ॥

अर्थ-साधकश्रेष्ठको चाहिये कि प्रथम काल और निमित्तका नाम लेकर फिर "तत्तत्कर्माभ्युदयार्थं" कहकर ॥ २६ ॥

पित्रादीनांत्रयाणांतुमात्रादीनांतथैवच ।
मातामहानांचमातामह्यादीनामपिप्रिये ! ॥ २७ ॥

अर्थ-पित्रादि तीन पुरुषोंका, मात्रादि तीनका, मातामहादि तीन पुरुषोंका और मातामही इत्यादि तीनके ॥ २७ ॥

षष्ठ्यन्तंकीर्त्तयेन्नामगोत्रोच्चारणपूर्वकम् ।
विश्वेषाञ्चैवदेवानांश्राद्धंपदमुदीरयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-गोत्रका उच्चारण करके षष्ठी विभक्त्यन्त नाम लेवे फिर "विश्वेषां देवानां श्राद्धं" यह पद उच्चारण करे ॥ २८ ॥

कुशनिर्म्मितयोःपश्चाद्द्विप्रयोरहमित्यपि ।
करिष्येपरमेशानीत्यनुज्ञावाक्यमीरितम् ॥ २९ ॥

अर्थ–हे परमेश्वरि ! फिर " कुशा निर्मितयोर्ब्राह्मणयोरहंकारिष्ये " इस वाक्यको पढ़ै. इसका नाम अनुज्ञावाक्य है (१) ॥ २९ ॥

विश्वान्देवान्परित्यज्य पितृपक्षे तु पार्वति ! ।
तथा मातामहस्यापि पक्षेऽनुज्ञा प्रकीर्त्तिता ॥ ३० ॥

अर्थ–हे पार्वति ! पितृपक्षमें और मातामहपक्षमें " विश्वेषां देवानां " पद छोडकर अनुज्ञावाक्य कल्पित होगा (२) ॥ ३० ॥

ततो जपेद्ब्रह्मविद्यां गायत्रीं दशधा शिवे ! ॥ ३१ ॥

अर्थ–हे शिवे ! फिर दशवार ब्रह्मविद्या गायत्रीका जपकरे ॥ १३ ॥

---

(१) "विष्णुरोंतत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुककर्माभ्युदयार्थममुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रपितामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातुरमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्याः पितामह्याः अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्रायाः नान्दीमुख्याः प्रपितामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य मातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य प्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य वृद्धप्रमातामहस्य अमुकदेवशर्मणः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्याः प्रमातामह्या अमुकीदेव्याः, अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या वृद्धप्रमातामह्याः अमुकीदेव्याश्च विश्वेषां देवानामाभ्युदयिकश्राद्धं कुशनिर्मितयोर्ब्राह्मणयोरहंकरिष्ये " । यह वाक्य उद्धृत हुआ ।

(२) ओं अद्यामुकमास्यमुकपक्षे अमुकतिथावमुककर्माभ्युदयार्थममुकगोत्राणां नान्दीमुखानां पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकामुकदेवशर्मणाम्, अमुकगोत्राणांनान्दीमुखीनाम् मातृपितामहीप्रपितामहीनाममुक्यमुक्यमुकी देवानाम् अमुकगोत्राणां नान्दीमुखानाम् मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामहानाम् अमुकामुकामुकदेवशर्मणाम्, अमुकगोत्राणाम् नान्दीमुखीनाम् मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामहीनाम्, अमुक्यमुक्यमुकीदेवानां चाप्याभ्युदयिकं श्राद्धं कुशनिर्मितयोर्विप्रयोरहंकरिष्ये ।

देवताभ्यः पितृभ्यश्चमहायोगिभ्यएवच ।
नमोऽस्तुपुष्टयैस्वाहायैनित्यमेवभवन्त्विति ॥ ३२ ॥

अर्थ–देवताओंको, पितृगणोंको, महायोगियोंको, पुष्टिको और स्वाहाको नमस्कार है, इस प्रकार अभ्युदयके कार्य नित्यहों ॥३२॥

पठित्वैनंत्रिधाहस्तेजलमादायसत्तमः ।
वंहूंफडितिमन्त्रेणश्राद्धद्रव्याणिशोधयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ–इस मंत्रको पढ़ साधुपुरुष हाथमें जल लेकर "वं हूं फट्" मंत्र पढ़कर श्राद्धके सब द्रव्योंको तीनवार प्रोक्षित करके शुद्ध करे ॥ ३३ ॥

आग्नेय्यांपात्रमेकन्तुसंस्थाप्यकुलनायिके ! ।
रक्षोघ्नममृतंप्रोच्ययज्ञरक्षांकुरुष्वमे ।
इत्युक्त्वाभाजनेतस्मिंस्तुलसीदलसंयुतम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–हे कुलनायिके ! फिर अग्निकोणमें एक पात्र स्थापन करके "रक्षोघ्नममृतमसि मम यज्ञरक्षां कुरुष्व" इस मंत्रको पढ़कर उस पात्रमें तुलसीपत्रके सहित ॥ ३४ ॥

निधायसलिलंदेवि ! देवादिक्रमतःसुधीः ।
विप्रेभ्योजलगण्डूषंदत्वादद्यात्कुशासनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–जल रखकर ज्ञानवान श्राद्धका करनेवाला देवपक्षमें आरंभ करके कुशमय ब्राह्मणोंको जलगंडूष देवे। फिर देवादिक्रमसे कुशासनदे (१) ॥ ३५ ॥

---

(१) "विश्वेदेवा इदमासनंवोनमः" यह वाक्य पढ़कर विश्वदेवाओंको कुशासन देवै । फिर "अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् ! अमुकगोत्र नान्दीमुखप्रपितामह अमुकदेवशर्मन्, इदमासनंवः स्वधा," यह मंत्र पढकर पिता, पितामह और प्रपितामहको आसन देवै । तदनन्तर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकी देवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नादीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि, इदमासनं वः स्वधा ।" यह पढकर, माता,-पितामहीको और प्रपितामहीको आसन देवै । अनन्तर "अमुकगोत्र नान्दीमुख

ततआवाहयेद्विद्वान्विश्वान्देवान्पितॄंस्तथा ।
मातॄम्मातामहांश्चापितथामातामहींशिवे ! ॥ ३६ ॥

अर्थ–हे शिवे ! इसके उपरांत विद्वान् पुरुषको उचित है कि विश्वेदेवाओंको, पितृलोगोंको, मातृगणोंको, मातामहलोगोंको और मातामही इनको आवाहन करै (१) ॥ ३६ ॥

प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्,अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, इदमासनं वः स्वधा" यह पढकर मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहको आसन दे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवि, अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि, इदमासनं वः स्वधा" यह मंत्र पढकर मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमातामहीको आसन दे ।

(१) आवाहनके मंत्र यथा–"विश्वेदेवाः इहागच्छत इह तिष्ठत इह सन्निधत्त मम पूजां गृह्णीत" इस वाक्यसे विश्वेदेवाओंको कुशासनपर आह्वानकरे । "अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण, " इस वाक्यसे पिताको कुशासनपर आह्वानकरै । तदनन्तर "अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढकर पितामहको आह्वानकरै । तदुपरान्त " अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रपितामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण " इस वाक्यसे प्रपितामहको कुशासनपर आह्वानकरै । पश्चात् "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढकर माताको आवाहन करै ।फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ, इह तिष्ठ इह सन्निधेहि, मम पूजां गृहाण " इस वाक्यसे पितामहीका कुशासनपर आवाहन करै । फिर अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इहतिष्ठ इह सन्निधेहि मम पूजां गृहण " इसे पढकर प्रपितामहीको आवाहन करै। अनन्तर "अमुकगोत्र नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इहतिष्ठ इहसन्निधेहि मम पूजां गृहाण " यह मंत्र पढ़कर मातामहको कुशासनपर आवाहन करै । फिर "अमुकगोत्र नान्दीमुख प्रमातामह अमुकदेवशर्मन् ! इहागच्छ, इहतिष्ठ, इहसन्निधेहि मम पूजां गृहाण " यह वाक्य पढ़कर प्रमातामहको कुशासनपर आवाहन करै । तदुपरान्त "अमुक-

आवाह्यपूजयेदादौविश्वान्देवांस्ततोयजेत् ।
पितृत्रयंतथामातृत्रयंमातामहत्रयम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–इस प्रकार विश्वदेव, मातृपक्ष और पितृपक्षका आवाहन करके पहले विश्वेदेवताओंकी पूजा करे, फिर, बाप, दादा, परदादा इन तीन पित्रोंको, माता, दादी, परदादी इन तीन माताओंको, मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामह, इन तीन मातामहोंको ॥ ३७॥

मातामहीत्रयंचापिपाद्याघ्यचिमनादिभिः ।
धूपैर्दीपैश्चवासोभिःपूजयित्वावरानने! ।
पात्राणांपातनप्रश्नंकुर्य्याद्दैवक्रमाच्छिवे ! ॥ ३८ ॥

अर्थ–और मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही इन तीन प्रमातामहीगणोंको, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप, वस्त्रादिसे पूजा करे (१) हे वरानने ! फिर देवपक्षसे आरंभ

गोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन्, इहागच्छ इहतिष्ठ इहसन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढ़कर वृद्धप्रमातामहको कुशासनपर आवाहन करै । अनन्तर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ, इहतिष्ठ इहसन्निधेहि मम पूजां गृहाण" इस वाक्यसे मातामहीको कुशासनपर आवाहन करे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रमातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ, इहातिष्ठ इहसन्निधेहि मम पूजां गृहाण" यह वाक्य पढ़कर प्रमातामहीको कुशासनपर आवाहन करे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि इहागच्छ इहतिष्ठ इहसन्निधेहि मम पूजां गृहाण" इस वाक्यसे वृद्धप्रमातामहीको आवाहन करे ॥

(१) कल्पितवाक्य यथाः-"-विश्वेदेवाः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगंधपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वो नमः" यह वाक्य पढ़कर प्रथम विश्वेदेवाओंकी पूजा करे । फिर "ओं अद्य अमुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानिवः स्वधा" इस वाक्यसे ऊपर कहे तीन जनोंकी पूजा करे । अनन्तर "अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यः मातृपितामहीप्रपितामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-

करके पात्र पातन प्रश्न करै (१) हे शिवे! ॥ ३८ ॥

मण्डलंरचयेदेकंमाययाचतुरस्रकम् ।
द्वे द्वे चमण्डलेकुर्य्यात्तद्वत्पक्षद्वयोरपि ॥ ३९ ॥

अर्थ-फिर मायाबीज उच्चारण करके देवपक्षमें एक चौकोन मंडल रचै फिर मातामहपक्षमें और पितृपक्षमें ऐसेही 'ह्रीं' उच्चारण करके दो दो मंडल बनावै ॥ ३९ ॥

वारुणप्रोक्षितेष्वेषुपात्राण्यासाद्यसाधकः ।
तेनक्षालितपात्रेषुसर्वोपकरणैःसह ।
पानार्थपाथसान्नानिक्रमेणपरिवेषयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-फिर साधकको उचित है कि "वं" इस वरुणवीजसे इस मंडलको प्रोक्षित करके तिसमें क्रमानुसार सब पात्रोंको रक्खे। ऐसेही "वं" बीजसे प्रक्षालित पात्रमें देवपक्षसे आरंभ करके सब उपकरणके सहित और पान करनेके अर्थ जलके साथ क्रमानुसार अन्नपरसे ॥ ४० ॥

ततोमधुयवान्दत्वाह्रां हूं फडितिमन्त्रकैः ।
संप्रोक्ष्यान्नानिसर्वाणिविश्वान्देवांस्तथापितॄन् ॥ ४१ ॥

गंधपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यको पढ़कर तीन माताओंकी पूज करे। फिर "अमुकगोत्रा नान्दीमुखा मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहा अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयगंधपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यसे तीन नानाओंकी पूजा करे। अनन्तर "अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पाद्यार्घ्याचमनीयगंधपुष्पधूपदीपाच्छादनानि वः स्वधा" इस वाक्यसे तीन मातामहीकी पूजा करे।

(१) ब्राह्मणके प्रति प्रश्न करे कि "पात्राणि पातयिष्ये" ब्राह्मण उत्तर दे कि "पातय" ॥

अर्थ-फिर सब अन्नमें मधु और जो डालकर "हां हूं फट्" मंत्र पढ़कर समस्त अन्नको प्रोक्षित अर्थात् जलसे छिड़के फिर विश्वेदेवताओंको पित्रोंको ॥ ४१ ॥

मातॄर्मातामहान्मातामहीरुल्लिख्यतत्त्ववित् ।
निवेद्यदेवींगायत्रींदेवताभ्यस्त्रिधापठेत् ॥ ४२ ॥
शेषान्नपिण्डयोःप्रश्नौकुर्य्यादाद्ये!ततःपरम् ॥ ४३॥

अर्थ-माताओंका, मातामहोंका, मातामहीगणोंका नामलेकर तत्व जाननेवाला पुरुष सब अन्नको क्रमानुसार निवेदन करे (१) फिर दशवार गायत्रीको पढ़कर तीनवार देवताभ्यः (२) मंत्रको पाठ करै हे आद्ये ! तिसके पीछे शेषान्नप्रश्न और पिंडप्रश्न (३) करै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

---

(१) "विश्वेदेवाः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणसहितमेतदन्नं वो नमः" इस मत्रसे विश्वेदेवाओंको अन्न निवेदन करे । फिर "अमुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितृ-पितामहप्रपितामहाः अमुकामुकामुकदेवशर्माणः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपक-रणान्वितमेतदन्नं वः स्वधा" यह वाक्य पढ़कर पितृगणोंको अन्न निवेदन करे। फिर "अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यः मातृपितामहीप्रपितामह्योऽमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमेतदन्नं वः स्वधा" इस वाक्यसे मातृगणोंको अन्नदे । फिर "अमुकगोत्रा नान्दमुखा मातामहप्रमातामहवृद्ध-प्रमातामहाः अमुकामुकामुकदेवशर्माणः एतत् पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकर-णान्वितमन्नं वः स्वधा" इस मंत्रसे मातामहोंको अन्न निवेदन करे । फिर"अमुक-गोत्रा नान्दीमुख्यो मातामहीप्रमातामहीवृद्धप्रमातामह्यः अमुक्यमुक्यमुक्यो देव्यः एतत् पानार्थोदकमधुयवसर्वोपकरणान्वितमन्नं वः स्वधा" इस वाक्यको पढ़ नानियोंको जल देवै ।

(२) देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एवच। नमोऽस्तु पुष्ट्यै स्वाहायै नित्य मेव भवत्विति ॥

(३) ब्राह्मणसे इस प्रकार शेषान्नप्रश्न करे कि "शेषान्नमस्ति क देयम्"ब्राह्मण उत्तर दे "इष्टेभ्योदीयताम्" फिर पिंडप्रश्न करे कि "पिंडदानमहं करिष्ये" ब्राह्मण उत्तर दे कि "ओं कुरुष्व"

दत्तशेषैरक्षताद्यैर्म्मालूरफलसन्निभान् ।
द्विजात्प्राप्तोत्तरःपिण्डान्रचयेद्द्वादशप्रिये ! ॥ ४४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! ब्राह्मणसे प्रश्नका उत्तर प्राप्त होकर बचेहुए अक्षतादिसे बिल्वफलकी समान बारह पिंड बनावै ॥ ४४ ॥

अन्यंतुकल्पयेदेकंपिण्डंतत्सममम्बिके।
आस्तरेन्नैर्ऋतेदर्भान्मण्डलेयवसंयुतान् ॥ ४५ ॥

अर्थ-हे अम्बिके ! वैसाही बेलफलकी समान और एक पिंड बनावै फिर नैर्ऋत्यकोणके मंडलपर यवसंयुक्त दर्भ (कुश) बिछावै ॥ ४५ ॥

येमेकुलेलुप्तपिण्डाःपुत्रदारविवर्जिताः ।
अग्निदग्धाश्चयेकेऽपिव्यालव्याघ्रहताश्चये ॥ ४६ ॥

अर्थ-(तिसके ऊपर यह पढकर पिंडदान करै कि) हमारे वंशमें जो लोग स्त्रीपुत्रसे रहित हैं, जिनका पिंडलोप होगयाहै अथवा जो अग्निसे भस्म होगयेहैं अथवा जो व्याघ्रादिकोंसे या और हिंसक जन्तुओंसे मारडाले गये हैं ॥ ४६ ॥

येबान्धवाबान्धवावायेऽन्यजन्मनिबान्धवाः ।
मदत्तपिण्डतोयाभ्यांतेयान्तुतृप्तिमक्षयाम् ॥ ४७॥

अर्थ-जो हमारे बान्धवहैं या अबान्धवहैं, जो पहले जन्ममें हमारे बान्धवथे, वह सबही मुझ करके दिये हुए इस पिंड और जलसे अक्षय तृप्तिको प्राप्त करैं ॥ ४७ ॥

दत्वापिण्डमपिण्डेभ्योमन्त्राभ्यांसुरवन्दिते ! ।
प्रक्षाल्यहस्तावाचान्तःसावित्रींप्रजपंस्ततः ।
देवताभ्यस्त्रिधाजप्त्वामण्डलानिप्रकल्पयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ-हे सुरवन्दिते ! इन दो मंत्रोंसे अपिण्डियोंको पिंडदान करकै हांथ धोवै और आचमनपूर्वक दशवार गायत्रीका जप करे फिर देवताभ्यः इस मंत्रको तीनवार पढै। फिर मंडल बनावै ॥ ४८ ॥

उच्छिष्टपात्रपुरतःपूर्वोक्तविधिनाबुधः।
द्वेद्वेचमण्डलेदेवि!रचयेत्पितृतःक्रमात्॥ ४९ ॥

अर्थ-हे देवि ! बुद्धिमान श्राद्ध कर्ताको उचितहै कि पितृपक्षमें आरंभ करके उच्छिष्टपात्रके सामने पहली कहीहुई विधिके अनुसार दोदो मंडल बनावै ॥ ४९ ॥

पूर्वमन्त्रेणसंप्रोक्ष्यकुशांस्तेष्वास्तरेत्कृती।
अभ्युक्ष्यवायुनादर्भान्पितृदर्भक्रमाच्छिवे।
ऊर्ध्वेमूलेचमध्येचत्रींस्त्रीन्पिण्डान्निवेदयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ-हे शिवे ! बुद्धिमान् श्राद्धका करनेवाला पहलेकी समान वरुणबीजसे इस मंडलको प्रोक्षित करके तिसमें दर्भ बिछावै फिर "यं" बीजसे सब दर्भोंको अभ्युक्षित करकै पितृदर्भसे आरंभ करके दर्भके मूलमें और ऊपर पितादिको, मातादिको, मातामहादिको और मातामही इत्यादिको क्रमानुसार तीन २ पिंड दे ॥ ५० ॥

आमन्त्रणेनप्रत्येकंनामोच्चार्य्यमहेश्वरि।
स्वधयावितरेत्पिण्डंयवमाध्वीकसंयुतम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! आमंत्रणयुक्त प्रत्येकका नाम उच्चारण करके स्वधा पढ़ प्रत्येकको जौ व मधुसे युक्त पिंडदान करै(१)॥५१॥

---

(१) वाक्य यथाः-"अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकदेवशर्मन् ! एषमधुयवसमन्वितः पिंडस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमूलमें पिताके लिये पिंड दे "अमुकगोत्र नान्दीमुख पितामह अमुकदेवशर्मन् ! एष ते मधुयवसहितः पिण्डः स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमें पितामहको पिंड दे "अमुकगोत्र नान्दीमुख

पिण्डान्तेपिण्डशेषञ्चविकीर्य्यंलेपभाजिनः ।
प्रीणयेत्करलेपेननैकोद्दिष्टेष्वयंविधिः ॥ ९२ ॥

अर्थ-इस प्रकार पिण्ड देकर पिंडके चारों ओर पिण्डशेषको बखेरदे " लेपभुजः पितरः प्रीयन्ताम् " यह वाक्य पढके करलेप अर्थात् हाथमें लगेहुए अन्नसे लेपभोजी चतुर्थपंचमादि पुरुषोंको प्रसन्न करे । एकोद्दिष्टश्राद्धमें यह विधि अर्थात् लेपभागी पितृगणोंके प्रसन्न करनेकी विधि नहीं है ॥ ९२ ॥

देवतापितृतृप्त्यर्थंसावित्रींदशधाजपेत् ।
देवताभ्यस्त्रिधाजप्त्वापिण्डान्सम्पूजयेत्ततः ॥ ९३ ॥

प्रपितामह अमुकदेवशर्मन् ! एष मधुयवयुतः पिण्डस्ते स्वधा " यह वाक्य पढ़कर दर्भके ऊपरीभागमें प्रपितामहको पिंड दे । फिर " अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकीदेवि ! मधुयवसमन्वित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य पढ़कर दर्भमूलमें माताके लिये पिंड दे ।"अमुकगोत्रे नान्दीमुखि पितामहि अमुकीदेवि ! यवमधुसहित एष पिण्डस्ते स्वधा" । यह वाक्य पढ़कर दर्भमें पितामहीको पिंड देवे । तदुपरान्त अमुकगोत्रे नान्दीमुखि प्रपितामहि अमुकीदेवि ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा"। यह वाक्य पढ़कर दर्भके अग्रभागमें प्रपितामहीके लिये पिंड देवै फिर "अमुकगोत्र नान्दीमुख मातामह अमुकदेवशर्मन् ! मधुयवसहित एष पिंडस्ते स्वधा" यह वाक्य पढकर दर्भके मूलमें मातामहको पिंडदे।फिर "अमुकगोत्र प्रमातामह अमुकदेवशर्मन् ! मधुयवसमन्वित एष पिण्डस्ते स्वधा" यह वाक्य उच्चारण करके दर्भके मध्यभागमें प्रमातामहको पिंडदे । फिर " अमुकगोत्र नान्दीमुख वृद्धप्रमातामह अमुकदेवशर्मन् । मधुयवसहित एष पिण्डस्ते स्वधा "यह वाक्य पढ़के दर्भके अग्रभागमें वृद्धप्रमातामहको पिण्डदे । अनन्तर " अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि ! मधुयवयुत एष पिण्डस्ते स्वधा " यह वाक्य पढकर दर्भमूलमें मातामहीको पिण्डदे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातामहि अमुकीदेवि ! मधुयवसमन्वित एष पिण्डस्ते स्वधा " यह वाक्य पढकर प्रमातामहीको पिंडदे । फिर "अमुकगोत्रे नान्दीमुखि वृद्धप्रमातामहि अमुकीदेवि ! यवमधुसहित एष पिण्डस्ते स्वधा "। यह वाक्य पढकर दर्भके अग्रभागमें मातामहको पिंडदे ।

अर्थ-फिर देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये दशवार गायत्रीका जप करे, "देवताभ्यः पितृभ्यश्च" यह मंत्र पढे। फिर (गंध पुष्पसे) पिंडकी पूजा करे ॥ ५३ ॥

प्रज्वाल्यधूपंदीपंचनिमील्यनयनद्वयम् ।
दिव्यदेहधरान्पितॄनश्नतःकव्यमध्वरे ।
विभाव्यप्रणमेद्धीमानिमंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ-तदुपरान्त धूप दीपको जलाय दोनों नेत्र बंदकर विचार करै कि दिव्यदेह धारण करके पितृगण यज्ञस्थलमें कव्य अर्थात् अपना २ अन्न भोजन करते हैं फिर ज्ञानी पुरुष इस मंत्रको पढ़कर पितरोंको प्रणाम करे कि ॥ ५४ ॥

पितामेपरमोधर्म्मःपितामेपरमंतपः ।
स्वर्गःपितामेतत्तृप्तौतृप्तमस्त्यखिलंजगत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-पिताही हमारा परम धर्म है, पिताही हमारा परम तपहै, पिताही हमारा स्वर्गहै, पितरोंके तृप्त होनेसे सारा संसार संतुष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

ततोनिर्म्माल्यमादायप्रार्थयेदाशिषःपितॄन् ॥ ५६ ॥

अर्थ-फिर निर्माल्य ग्रहण करके पितरोंसे इस आशिर्वादकी प्रार्थना करै कि ॥ ५६ ॥

आशिषोमेप्रदीयन्तांपितरःकरुणामयाः ।
वेदाःसन्ततयोनित्यंवर्द्धन्तांबान्धवाामम ॥ ५७ ॥

अर्थ-करुणामय पितृगण हमको आशिर्वाद दे । हमारी वेद, संतान और बांधवगण नित्य वृद्धिको प्राप्तहो ॥ ५७ ॥

दातारोमेविवर्द्धन्तांबहून्यन्नानिसन्तुमे ।
याचितारःसदासन्तुमाचयाचामिकञ्चन ॥ ५८ ॥

अर्थ-जो हमको दान करतेहैं वह वृद्धिको प्राप्त होवैं । हमारे पास बहुतसा अन्न होवै,हमसे अनेक याचना करें, हम मानों कीसीसे याचना नहीं करैं ॥ ५८ ॥

दैवादितोद्विजान्पिण्डान्विसृजेत्तदनन्तरम् ।
तथैवदक्षिणांकुर्य्यात्पक्षेषुत्रिषुतत्त्ववित् ॥५९॥

अर्थ-फिर देवपक्षसे आरंभ करके ब्राह्मणोंको और सब पिंडोंको विसर्जन करदे (१) फिर ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि देवपक्ष, पितृपक्ष, मातामहपक्षको दक्षिणादे (२) ॥ ५९ ॥

गायत्रींदशधाजप्त्वादेवताभ्योऽपिपञ्चधा ।
दृष्ट्वावह्निंरविंविप्रमिदंपृच्छेत्कृताञ्जलिः ॥ ६० ॥

अर्थ-फिर दशवार गायत्रीका जप करके पांचवार " देवताभ्यः पितृभ्यश्च " यह मंत्र पढ़े फिर अग्नि और सूर्यका दर्शन कर हाथ जोड़ ब्राह्मणसे पूछे कि ॥ ६० ॥

इदंश्राद्धंसमुच्चार्य्यसाङ्गंजातमुदीरयेत् ।
द्विजोवदेत्सम्यगेवसाङ्गंजातंविधानतः ॥ ६१ ॥

---

(१) "ब्रह्मन्! क्षमस्व" यह वाक्य पढकर देवपक्षसे आरंभ करके सब ब्राह्मणोंको विसर्जन करे। फिर "पिंड गयां गच्छ" यह वाक्य पढकर ऐसेही देवादि क्रमसे विसर्जन करै ।

(२) " ओंतत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे जम्बुद्वीपान्तर्गतभारतवर्षैकदेशे अमुकग्रामे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकशाखाध्यायी श्रीअमुकदेवशर्मा कृतैतदाभ्युदयिकश्राद्धप्रतिष्ठार्थं काञ्चनमिदम् अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदीयामुकशाखाध्यायिने जम्बूद्वीपान्तर्गतभारतखंडस्थामुकग्रामवासिने-श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे । " यह वाक्य पढकर यथाशक्ति काञ्चनादि दक्षिणा दे ।

अर्थ-"इदं श्राद्धं साङ्गं जातम्?"अर्थात् क्या यह श्राद्ध सब अंशसे सम्पूर्ण हुआ है?ब्राह्मण उत्तर दे "विधानतः सम्यगेव सांङ्गं जातम्" अर्थात् विधिविधानकरके सब भांतिसे सब अंशसे पूर्ण हुआ है ॥ ६१ ॥

अङ्गवैगुण्यशान्त्यर्थंप्रणवंदशधाजपन् ।
अच्छिद्राभिविधानेनकुर्य्यात्सर्व्वसमापनम् ।
पात्रीयान्नानिपिण्डांश्चब्राह्मणायनिवेदयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ-फिर अंगकी विकारताकी शान्तिके लिये दशवार प्रणवका जप करे अच्छिद्राभिधानसे " कृतैतच्छ्राद्धकर्माच्छिद्रमस्तु " कर्म समाप्त करे अनन्तर पात्रका अन्न और पिंड ब्राह्मणको अर्पण करे ॥ ६२ ॥

विप्राभावेगवाजेभ्यःसलिलेवाविनिःक्षिपेत् ।
वृद्धिश्राद्धमिदंप्रोक्तंनित्यसंस्कारकर्म्मणि ॥ ६३ ॥

अर्थ-यदि ब्राह्मण न पाया जाय तौ समस्त द्रव्य गाय या छागको दे दे अथवा जलमें डाल दे । नित्य अर्थात् अवश्य कर्तव्य दशविध संस्कारके समय जो वृद्धिश्राद्ध होताहै वह तुमसे कहा ॥ ६३ ॥

श्राद्धेपर्व्वणिकर्त्तव्येपार्व्वणत्वेनकीर्त्तयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ-यदि अमावस्यादि पर्वोंपर उक्तविधानसे श्राद्ध करना होतौ उसको पार्वण श्राद्ध कहते हैं ॥ ६४ ॥

देवतादिप्रतिष्ठासुतीर्थयात्राप्रवेशयोः ।
पार्व्वणेनविधानेनश्राद्धमेतदुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ-देवतादिकी प्रतिष्ठाके समय, तीर्थयात्राके समय, गृहप्रवेशादिके समय, पार्वणश्राद्धकी विधिके अनुसार कार्य करे॥६५॥

नैतेषुश्राद्धकृत्येषुपितॄन्नान्दीमुखान्वदेत् ।
नमोऽस्तुपुष्टयायित्यत्रस्वधायैपदमुच्चरेत् ॥ ६६ ॥

अर्थ–इन सब श्राद्धोंके समय " नान्दीमुखान् पितॄन् " पद न कहै और " नमोऽस्तु पुष्टयै " इस पदके बदले "नमः स्वधायै" पद उच्चारण करे ॥ ६६ ॥

पित्रादित्रयमध्येतुयोजीवतिवरानने ! ।
तस्योर्द्धतनमुल्लिख्यश्राद्धंकुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ६७ ॥

अर्थ–हे वरानने ! पितादि तीन पुरुषोंके बीचमें जो जीवितहो, बुद्धिमान् उसके बदलेमें उसके ऊपरके पुरुषका नाम लेकर श्राद्ध करे ॥ ६७ ॥

जनकादिषुजीवत्सुत्रिषुश्राद्धंविवर्ज्जयेत् ।
तेषुप्रीतेषुदेवेशि ! श्राद्धयज्ञफलंलभेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ–जो बाप, दादा, परदादा यह तीनों पुरुष जीवितहों तो श्राद्ध नहीं करना चाहिये । हे देवेशि ! इन तीन पुरुषोंके प्रसन्न होनेसे श्राद्धका और यज्ञका फल मिलजाता है ॥ ६८ ॥

जीवत्पितरिकल्याणि नान्यश्राद्धाधिकारिता ।
मातुःश्राद्धंविनापत्न्यास्तयानान्दीमुखंविना ॥ ६९ ॥

अर्थ–हे कल्याणि ! पिताके जीवित रहते हुए माताका श्राद्ध भार्याका श्राद्ध वा नान्दीमुख श्राद्धके सिवाय और किसी श्राद्धके करनेका अधिकार नहीं है ॥ ६९ ॥

एकोद्दिष्टेतुकौलेशि ! विश्वेदेवान्नपूजयेत् ।
एकमेवसमुद्दिश्यानुज्ञावाक्यंप्रकल्पयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ–हे कुलेश्वरि! एकोद्दिष्ट श्राद्ध करनेके समय विश्वेदेवाओंकी

पूजा नहीं करनी चाहिये वहांपर केवल एक पुरुषको उद्देश्य करके ही अनुज्ञावाक्य कल्पना करे ॥ ७० ॥

दक्षिणाभिमुखोदद्यादन्नंपिण्डंचमानवः ।
यवस्थानेतिलादेयाःसर्व्वमन्यच्चपूर्व्ववत् ॥ ७१ ॥

अर्थ-इस एकोद्दिष्ट श्राद्धमें दक्षिणकी ओर मुखकर अन्नका और पिंडका दान करै, इसमें सब विधि पहलेकी नाई हैं, परन्तु जौ की जगह तिल देने चाहिये ॥ ७१ ॥

प्रेतश्राद्धेविशेषोयंगङ्गाद्यर्चांविवर्जयेत् ।
मृतंसमुल्लिखेत्प्रेतंवाक्येदानेऽन्नपिण्डयोः ॥ ७२ ॥

अर्थ-प्रेतश्राद्धमें विशेष बात यह है कि इसमें गंगादिकी पूजा नहीं करनी चाहिये और वाक्यकल्पनाके समय और पिंड देनेके समय मृतक पुरुषको प्रेत कहो ॥ ७२ ॥

एकमुद्दिश्ययच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टंतदुच्यते ।
प्रेतस्यान्नेचपिण्डेचमत्स्यमांसंनियोजयेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-एक पुरुषके लिये श्राद्ध करनेका नाम "एकोद्दिष्ट" श्राद्धहै । प्रेतश्राद्धमें प्रेतके लिये अन्नसे और पिंडमें मत्स्य और मांस देवै ॥ ७३ ॥

अशौचान्ताद्द्वितीयेऽह्निश्राद्धंयत्कुरुतेनरः ।
प्रेतश्राद्धंविजानीहितदेवकुलनायिके ! ॥ ७४ ॥

अर्थ-हे कुलनायिके ! अशौचके अन्तमें दूसरे दिन जो श्राद्ध मनुष्यगण करतेहैं, वह प्रेतश्राद्ध कहलाताहै ॥ ७४ ॥

गर्भस्रावाज्जातमृतादन्यत्रमृतजातयोः ।
कुलाचारानुसारेणमानवोऽशौचमाचरेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ-जहांपर गर्भ गिर जाताहै अथवा जन्म लेतेही मर जाता है, इसके सिवाय और अवसरोंपर, सन्तानके जन्मलेने या मरनेसे मनुष्योंको कुलाचारके अनुसार अशौच ग्रहण करना चाहिये ॥७५॥

द्विजातीनांदशाहेनद्वादशाहेनपक्षतः ।
शूद्रसामान्ययोर्देवि!मासेनाशौचकल्पना ॥ ७६ ॥

अर्थ-हे देवि ! ब्राह्मणोंका दशदिन, क्षत्रियोंका बारह दिन, वैश्योंका पंद्रह दिन और शूद्र व साधारण जातियोंका अशौच एक मासतक रहता है ॥ ७६ ॥

असपिण्डमृतज्ञातौत्रिरात्राशौचमिष्यते ।
शृण्वतोपिगताशौचेसपिण्डस्यमृतिंशिवे ! ॥ ७७ ॥

अर्थ-हे शिवे ! असपिण्डजातिवालेकी मृत्यु होनेसे तीन-राततक अशौच रहताहै। किसी सपिण्डके मरजानेपर यदि अशौच कालके पीछे सुना जाय तोभी तीन राततक अशौच रहता है ॥ ७७ ॥

अशुचिर्नाधिकारीस्याद्दैवेपित्र्येचकर्म्मणि ।
ऋतेकुलार्च्चनादाद्ये! तथाप्रारब्धकर्म्मणः ॥ ७८ ॥

अर्थ-हे आद्ये! जिसको अशौच हुआ है वह पुरुष मूल पूजा और प्रारब्धकर्मके सिवाय और किसी दैव या पैतृक कर्ममें अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ ७८ ॥

पञ्चवर्षाधिकान्मर्त्यान्दाहयेत्पितृकानने ।
भर्त्रासहकुलेशानि ! नदहेत्कुलकामिनीम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! जो पांच वर्षका बालक मरजाय तौ उसको स्मशानमें दग्धकरना चाहिये कुलकामिनीको स्वामीके साथ दग्ध नहीं करे॥ ७९ ॥

तवस्वरूपारमणीजगत्याच्छन्नविग्रहा ।
मोहाद्भर्त्तुश्चितारोहाद्भवेन्नरकगामिनी ॥ ८० ॥

अर्थ-सब स्त्रियें तुह्मारा स्वरूप हैं संसारमें उनका शरीर आच्छन्न जो स्त्री मोहके मारे स्वामीकी चितापर चढ़ती है, वह नरकको जाती है ॥ ८० ॥

ब्रह्ममन्त्रोपासकांस्तुतेषामाज्ञानुसारतः ।
प्रवाहयेद्वानिखनेद्दाहयेद्वापिकालिके ! ॥ ८१ ॥

अर्थ-हे कालिके ! जो लोग ब्रह्ममंत्रके उपासक हैं, उनकी आज्ञानुसार, उनका मृतकशरीर जलमें बहादे या मृत्तिकामें दाबदे या भस्म करड़ाले ॥ ८१ ॥

पुण्यक्षेत्रेचतीर्थेवादेव्याःपार्श्वेविशेषतः ।
कुलीनानांसमीपेवामरणंशस्तमम्बिके ! ॥ ८२॥

अर्थ-हे अम्बिके ! पुण्यक्षेत्रमें, तीर्थमें अथवा भगवतीके समीप वा कौलिकगणोंके समीपही मरना अच्छाहै ॥ ८२ ॥

विभावयन्सत्यमेकंविस्मरञ्जगतांत्रयम् ।
परित्यजतियःप्राणान्सस्वरूपेप्रतिष्ठति ॥ ८३ ॥

अर्थ-जो पुरुष मरणकालमें त्रिलोकीको विसार केवल सत्य-स्वरूपका ध्यान करते २ प्राण छोडता है वह परमात्मामें मिल जाता है ॥ ८३ ॥

प्रेतभूमौशवंनीत्वास्नापयित्वाघृतोक्षितम् ।
उत्तराभिमुखंकृत्वाशाययेत्तंचितोपरि ॥ ८४ ॥

अर्थ-पहले शवको उठाकर प्रेतभूमिमें, लेजावै । फिर इस मृकत देहको घी लगाय स्नान कराय चिताके ऊपर उत्तरकी ओर मुख करके लिटादे ॥ ८४ ॥

सम्बोधनान्तंतद्गोत्रंप्रेताख्यानंसमुच्चरन् ।
दत्वापिण्डंप्रेतमुखेदहेद्वह्निमनुंस्मरन् ॥ ८५ ॥

अर्थ-फिर सम्बोधनके अन्तमें गोत्रके साथ प्रेतका नाम (१) लेकर प्रेतके मुखमें पिंड दे और "रं" वह्निबीजका स्मरण करते२ दाहकरे ॥ ८५ ॥

पिण्डन्तुरचयेत्तत्रसिद्धान्नैस्तण्डुलैश्चवा ।
यवगोधूमचूर्णैर्वाधात्रीफलसमंप्रिये ॥ ८६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! यहांपर पकेहुए अन्नसे चावलोंसे अथवा गेहूंके आटेसे आवलेकी समान पिंड बनावे ॥ ॥ ८६ ॥

स्थितेषुप्रेतपुत्रेषुज्येष्ठेश्राद्धाधिकारिता ।
तदभावेऽन्यपुत्रादौज्येष्ठानुक्रमतोभवेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ-प्रेतपुरुषके और पुत्रोंके रहने परभी बडापुत्रही श्राद्धकरनेका अधिकारी है । बडा पुत्र न हो (मरगयाहो) वा किसी दूर देशमें हो तो इनकारणोंमें ज्येष्ठके क्रमसे और पुत्रभी श्राद्धके अधिकारी हो सक्ते हैं ॥ ८७ ॥

अशौचान्तान्तदिवसेकृतस्नानोनरःशुचिः ।
मृतप्रेतत्वमुक्त्यर्थमुत्सृजेत्तिलकाञ्चनम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-अशौचके अन्तमें दूसरे दिन मनुष्यको स्नान करके पवित्र हो मृतक पुरुषका प्रेतपन छुड़ानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करना चाहिये (२) ॥ ८८ ॥

---

(१) "ओं अद्य अमुकगोत्र प्रेत अमुकदेवशर्मन् ! एष पिण्डस्ते स्वधा" यह पढकर प्रेतके मुखमें पिंड रक्खे ।

(२) "ओं अद्य अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः प्रेतत्वविमुक्त्यर्थम् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणायदातुमहं, काञ्चनसहितान् [तिलान् समुत्सृजे ।" यह वाक्य पढकर मृतकपुरुषका प्रेतपन छुटानेके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्गकरे ।

गांभूमिंवसनंयानंपात्रंधातुविनिर्म्मितम्।
भोज्यंबहुविधंदद्यात्प्रेतस्वर्गायसत्सुतः ॥ ८९ ॥

अर्थ-मृतक पुरुषको स्वर्गप्राप्तिके लिये मृतकपुरुषके पुत्रोंको, गाय, वस्त्र, यान, धातु, पात्र और बहुतसे भोज्य द्रव्य (भोजनकी सामग्री) उत्सर्ग करने उचित हैं (१) ॥ ८९ ॥

गन्धंमाल्यंफलंतोयंशय्यांप्रियकरींतथा।
यद्यत्प्रेतप्रियद्रव्यंतत्स्वर्गायसमुत्सृजेत् ॥ ९० ॥

अर्थ-गंध, माला, फल, जल, थारी, शेज और जो जो वस्तुएं प्रेत पुरुषको प्यारी रही हों वह सब प्रेतकी स्वर्गप्राप्तिके लिये दान करदे ॥ ९० ॥

ततस्तुवृषभश्चैकंत्रिशूलाङ्केनलाञ्छितम्।
स्वर्णेनालङ्कृतंकृत्वात्यजेत्तत्स्वरवाप्तये ॥ ९१ ॥

अर्थ- अनन्तर स्वर्गप्राप्तिके लिये एक वृषभ त्रिशूलके चिह्नसे चिह्नित और सुवर्णालंकारसे भूषितकर छोडदेवे ॥ ९१ ॥

प्रेतश्राद्धोक्तविधिनाश्राद्धंकृत्वातिभक्तितः।
ब्रह्मज्ञान्ब्राह्मणान्कौलान्क्षुधितानपिभोजयेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ-फिर अत्यन्त भक्तिके साथ प्रेतश्राद्धमें कहीहुई विधिके अनुसार कुलवान व दूसरे क्षुधित ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ९२ ॥

दानेष्वशक्तोमनुजःकुर्वञ्छ्राद्धंस्वशक्तितः।
बुभुक्षितान्भोजयित्वाप्रेतत्वंमोचयेत्पितुः ॥ ९३ ॥

अर्थ-जो पुरुष भूमि शय्यादिका दान करनेमें असमर्थ हो, वह

(१) "ओं अमुकगोत्रस्य प्रेतस्य पितुरमुकदेवशर्मणः स्वर्गार्थम् अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे।" यह पढकर स्वर्गप्राप्तिके लिये गोदान करै भूमि, वस्त्र, यानादी उत्सर्गके समयभी यह वाक्य पढे।

मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्धकरके भूंखे ब्राह्मणोंको भोजन कराय पिताका प्रेतपन छुटावै ॥ ९३ ॥

आद्यैकोद्दिष्टमेतत्तुप्रेतत्वान्मुक्तिकारणम् ।
वर्षेवर्षेमृततिथौदद्यादन्नंगतासवे ॥ ९४ ॥

अर्थ-यह प्रेतश्राद्ध आद्य एकोद्दिष्ट और प्रेतपनकी मुक्तिका कारण है इसके आगे प्रतिवर्ष मृतककी तिथिपर मृतक पुरुषके नामपर अन्न देना चाहिये ॥ ९४ ॥

बहुभिर्विधिभिःकिंवाकर्म्मभिर्बहुभिश्चकिम् ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोतिमानवःकौलिकार्च्चनात् ॥ ९५॥

अर्थ-बहुतसे विधानसे क्या फल होसक्ताहै ? बहुतसे कर्मोंका अनुष्ठान, करनेसे क्या फल होसक्ता है ? कुलवान पुरुषकी अर्चना करनेहीसे मनुष्यको सब सिद्धियें मिलजाती हैं ॥ ९५ ॥

विनाहोमाज्जपाच्छ्राद्धात्संस्कारेषुचकर्मसु ।
सम्पूर्णकार्य्यसिद्धिःस्यादेकयाकौलिकार्च्चया ॥ ९६ ॥

अर्थ-होम, जप, श्राद्ध या कोई भी संस्कार न किया जाय तथापि केवल कुलवान् पुरुषकी अर्चना करनेसे सब कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ९६ ॥

शुक्लांचतुर्थीमारभ्यशुभकर्म्माणिकारयेत् ।
आसितांपञ्चमींयावद्विधिरेषाशिवोदितः ॥ ९७ ॥

अर्थ-शिवका कहा हुआ विधान है कि शुक्ल पक्षकी चतुर्थी-तिथिसे आरंभ करके कृष्णपक्षकी पंचमी तिथिके बीचमें ही इन सब शुभकर्मोंको करले ॥ ९७ ॥

अन्यत्रापिविरुद्धेऽह्निगुर्वृत्विक्कौलिकाज्ञया ।
कर्म्माण्यपरिहार्य्याणिकर्म्मार्थीकर्त्तुमर्हति ॥ ९८ ॥

अर्थ-गुरु, ऋत्विक् और कुलवान पुरुषकी आज्ञाके अनुसार मनुष्य अवैध दिनमेंभी अपरिहार्य कर्मका अनुष्ठान करसक्ताहै ९८

गृहारम्भःप्रवेशश्चयात्रारत्नादिधारणम् ।
सम्पूज्याद्यांपञ्चतत्त्वैःकुर्य्यादेतानिकौलिकः ॥ ९९ ॥

अर्थ-गृहारंभ, गृहप्रवेश, यात्रा, शंख रत्नादिधारण इत्यादि कर्म कुलवान पुरुषको पांच तत्वसे देवीकी पूजा करके करने चाहिये ॥ ९९ ॥

संक्षेपयात्रामथवाकुर्य्यात्साधकसत्तमः ।
ध्यायन्देवींजपन्मन्त्रंनत्वागच्छेद्यथामति ॥ १०० ॥

अर्थ-अथवा साधकको उचित है कि देवी भगवतीका ध्यान करके मंत्रजप और नमस्कार करकै इच्छानुसार गमन करे इसका नाम संक्षेपयात्रा है ॥ १०० ॥

सर्वासुदेवतार्च्चासुशारदीयोत्सवादिषु ।
तत्तत्कल्पोक्तविधिनाध्यानपूजांसमाचरेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ-सब देवताओंकी पूजाके स्थानमें शारदीय महोत्सवके स्थलमें तिस२ कल्पमें कही हुई विधिके अनुसार ध्यान और पूजा करनी उचित है ॥ १०१ ॥

आद्यापूजोक्तविधिनाबलिहोमंप्रयोजयेत् ।
कौलार्च्चनंदक्षिणाञ्चकृत्वाकर्म्मसमापयेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-आदिकालिकाकी पूजामें जैसा विधान है तिसके अनुसार बलिदान करे और फिर कुलवान पुरुषको पूज दक्षिणा देकर कर्मको समाप्त करे ॥ १०२ ॥

गङ्गांविष्णुंशिवंसूर्य्यंब्रह्माणंपरिपूज्यच ।
उद्दिश्यमर्च्चयेद्देवंसामान्योविधिरीरितः ॥ १०३ ॥

२३

अर्थ-साधारण विधि यह है, कि गंगा, विष्णु, शिव, सूर्य और ब्रह्मा इन पांच देवताओंकी पूजा करके उद्दिष्ट देवताकी पूजाकरे ॥ १०३ ॥

कौलिकःपरमोधर्म्मःकौलिकःपरदेवता ।
कौलिकःपरमंतीर्थंतस्मात्कौलंसदार्च्चयेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ-कुलवान पुरुषही परम धर्महै, कुलवान पुरुषही परम देवता है, कुलवान पुरुषही परम तीर्थ है, इस कारणसे सदा सर्व भांतिसे कुलवान पुरुषकी पूजा करनी चाहिये ॥ १०४ ॥

सार्द्धत्रिकोटितीर्थानिब्रह्माद्याःसर्व्वदेवताः ।
वसन्तिकौलिकेदेहेकिन्नस्यात्कौलिकार्च्चनात् ॥१०५॥

अर्थ-साड़ेतीन करोड तीर्थ ब्रह्मादि समस्त देवता कुलवान महापुरुषके शरीरमें विराजमान रहते हैं, अतएव कुलवान पुरुषकी पूजा करनेसे सम्पूर्णफल मिलतेहैं ॥ १०५ ॥

पूर्णाभिषिक्तःसत्कौलोयस्मिन्देशेविराजते ।
धन्योमान्यःपुण्यतमःसदेशःप्रार्थ्यतेसुरैः ॥ १०६ ॥

अर्थ-पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त हुआ श्रेष्ठ कुलवान जिस देशमें रहता है, वह देशही धन्य, मान्य और पुण्यतम है। देवतालोग-भी ऐसे देशकी प्रार्थना करतेहैं ॥ १०६ ॥

कृतपूर्णाभिषेकस्यसाधकस्यशिवात्मनः ।
पुण्यपापविहीनस्यप्रभावंवेत्तिभोभुवि ॥ १०७ ॥

अर्थ-पूर्णाभिषेकमें अभिषेकित हुआ साधक पापपुण्यरहित और साक्षात् शिवरूप है, पृथ्वीमें कौन पुरुष उस महात्माके प्रभा-वको जान सक्ताहै ॥ १०७ ॥

केवलंनररूपेणतारयन्नखिलंजगत् ।
शिक्षयँल्लोकयात्राञ्चकौलोविहरतिक्षितौ ॥ १०८ ॥

अर्थ–केवल समस्त जगत्का उद्धार करनेके लिये और लोक यात्रा सिखानेके लिये कुलवान पुरुष पृथ्वीपर विचरण किया करतेहैं ॥ १०८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

पूर्णाभिषिक्तकौलस्यमाहात्म्यंकथितंप्रभो ।
विधानमभिषेकस्यकृपयाश्रावयस्वमाम् ॥ १०९ ॥

अर्थ–श्रीभगवतीजीने कहा–हे प्रभो! पूर्णाभिषेकके द्वारा अभिषेकित हुये कुलवान पुरुषका माहात्म्य आपने कहा, अब कृपाकरके इस अभिषेकका विधान कहिये, इसके श्रवण करनेकी मुझको इच्छा है ॥ १०९ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

विधानमेतत्परमंगुप्तमासीद्युगत्रये ।
गुप्तभावेनकुर्व्वन्तोनरामोक्षंययुःपुरा ॥ ११० ॥

अर्थ–सदाशिवने कहा– सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें इस पूर्ण अभिषेकका विधान अत्यन्त गुप्तथा । तिसकालमें गुप्त भावसे इसका अनुष्ठान करके मनुष्योंने मुक्ति पाई है ॥ ११० ॥

प्रबलेकलिकालेतुप्रकाशेकुलवर्तिनः ।
नक्तंवादिवसेकुर्य्यात्सप्रकाशाभिषेचनम् ॥ १११ ॥

अर्थ–आगे जब कलियुगका प्रभाव बढैगा तब कुलाचारि मनुष्य रात अथवा दिनमें प्रगट भावमें अभिषेक करेंगे ॥१११॥

नाभिषेकंविनाकौलःकेवलंमद्यसेवनात् ।
पूर्णाभिषेकात्कौलःस्याच्चक्राधीशःकुलार्चकः ॥११२॥

अर्थ–अभिषेकके विना केवल मद्यके सेवनसेही कुलवान नहीं होता, जिसका पूर्ण अभिषेक हुआहै, वही कुलार्चक, चक्राधीश्वर और कौल हो सक्ता है ॥ ११२ ॥

तत्राभिषेकपूर्व्वेऽह्निसर्व्वविघ्नोपशान्तये ।
यथाशक्त्युपचारेणविघ्नेशंपूजयेद्गुरुः ॥ ११३ ॥

अर्थ-अभिषेकके पहले दिन सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये यथाशक्ति उपचार करके गुरुको विघ्नराजकी पूजा करनी चाहिये ॥ ११३ ॥

गुरुश्चेन्नाधिकारीस्याच्छुभपूर्णाभिषेचने ।
तदाभिषिक्तकौलेनसंस्कारंसाधयेत्प्रिये! ॥ ११४ ॥

अर्थ-हे प्रिये! यदि गुरू पूर्णाभिषेकमें अधिकारी न हो तो पूर्ण अभिषेकमें अभिषेकित हुए कुलवानसे और कहाहुआ संस्कार सिद्धि करावै ॥ ११४ ॥

खान्तार्णबिन्दुसंयुक्तंबीजमस्यप्रकीर्त्तितम् ॥ ११५ ॥

अर्थ-"ख" वर्णके पिछले वर्णमें चंद्रबिन्दु मिलाने (ग) से गणपतिका बीज होगा ॥ ११५ ॥

गणकोऽस्यऋषिश्छन्दोनीवृद्विघ्नस्तुदेवता ।
कर्त्तव्यकर्मणोविघ्नशान्त्यर्थंविनियोगिता ॥ ११६ ॥

अर्थ-इस गणपतिमंत्रका ऋषि गणक, छन्द नीवृत, देवता विघ्नहै कर्तव्य कर्मकी विघ्नशान्तिके लिये विनियोगकीर्तन करना चाहिये (१) ॥ ११६ ॥

षड्दीर्घयुक्तमूलेनषड़ङ्गानिसमाचरेत् ।
प्राणायामंततःकृत्वाध्यायेद्गणपतिंशिवे ! ॥ ११७ ॥

---

(१) ऋष्यादिन्यासः यथाः—अस्य गणपतिबीजमंत्रस्य गणकऋषिः नीवृच्छन्दो विघ्नो देवता कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः । शिरसि गणकाय ऋषये नमः । मुखे नीवृच्छन्दसे नमः । हृदये विघ्नाय देवतायै नमः । कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः ।

अर्थ-छैः दीर्घ स्वर युक्त मंत्रसे षडङ्गन्यास करै (१) हे शिवे ! फिर प्राणायाम करकै (२) गणेशजीका ध्यान करै ॥ ११७ ॥

सिन्दूराभंत्रिनेत्रंपृथुतरजठरंहस्तपद्मैर्दधानम् ।
शखंपाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम् ॥
बालेन्दूद्दीप्तमौलिंकरिपतिवदनंबीजपूराद्रगण्डम् ।
भोगीन्द्राबद्धभूषंभजतगणपतिंरक्तवस्त्राङ्गरागम् ११८॥

अर्थ-जो सिन्दूरकी समान लालवर्ण हैं, जो तीन नेत्रवाले हैं, जिनका उदर बड़ा है, जो चार भुजाओंमें शंख, पाश, अंकुश और वर धारण किये हैं, जो विशाल शुण्डसे वारुणीसे पूर्णकुम्भ (घड़ा) धारणकररहे हैं, नवीन चंद्रमाकी कलासे जिनका मस्तक शोभायमान हो रहा है, जिनका वदन गजराजके वदनकी समान है, जिनके दोनों कपोल सदा मदके निकलनेसे भीगे रहते हैं, जिनका शरीर सर्पराजसे शोभायमान है, जो लालवस्त्र और लाल अंगराग धारण किये हैं उन देव गणपतिका भजन करना चाहिये ॥ १८ ॥

ध्यात्वैवंमानसैरिष्ट्वापीठशक्तीःप्रपूजयेत् ।
तीव्राचज्वालिनीनन्दाभोगदाकामरूपिणी ॥ ११९ ॥

अर्थ-इसप्रकार ध्यान करके मनके उपचारसे पूजा करके (प्रणवका उच्चारण करके चतुर्थीविभक्त्यन्त नाम लेकर) "नमः" पद

---

(१) अंगुष्ठादिषडङ्गन्यासः यथाः-गामंगुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । गूं मध्यमाभ्यां वषट् । गैं अनामिकाभ्यां हूंम् । गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।गः करतलपृष्ठाभ्यामस्त्राय फट् । हृदयादिषडङ्गन्यासः यथाः-गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा । गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुम्।गौं नेत्रत्रयाय वौषट्।गः करतलपृष्ठाभ्यामस्त्राय फट् ।

(२) "गं" इस बीजमंत्रको पढ़कर प्रणाम करै ।

अंतमें लगाय गंधपुष्पादिसे पीठशक्तियोंकी पूजा करै । तीव्रा, ज्वालिनी, नंदा, भोगदा, कामरूपिणी ॥ ११९ ॥

उग्रातेजस्वतीसत्यामध्येविघ्नविनाशिनी ।
पूर्व्वादितोऽर्च्चयित्वैताःपूजयेत्कमलासनम् ॥ १२० ॥

अर्थ-उग्रा, तेजस्वती और सत्या इन आठ पीठशक्तियोंकी पूर्वादि क्रमसे पूजा करके मध्यदेशमें विघ्नविनाशिनीकी पूजा करै (१) फिर प्रणव पढ़कर " नमः " (पदान्त नाम उच्चारण करके) कमलासनकी पूजा करै (२) ॥ १२० ॥

पुनर्ध्यात्वागणेशानंपञ्चतत्त्वोपचारकैः ।
अभ्यर्च्यतच्चतुर्दिक्षुगणेशंगणनायकम् ॥ १२१ ॥
गणनाथंगणक्रीडंयजेत्कौलिकसत्तमः ।
एकदन्तंरक्ततुण्डंलम्बोदरगजाननौ ॥ १२२ ॥
महोदरञ्चविकटंधूम्राभंविघ्ननाशनम् ॥ १२३ ॥

अर्थ-कौलिक श्रेष्ठको चाहिये कि फिर ध्यान करके मंत्रसे शुद्ध हुए पंचतत्वरूप उच्चारसे गणेशजीकी पूजा करै । फिर उनके चारोंओर गणेश, गणनायक, गणनाथ, गणक्रीड, एकदन्त, रक्त-तुण्ड, लम्बोदर, गजानन, महोदर, विकट, धूम्राभ, विघ्ननाशन इनकी पूजा करे (३) ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

---

(१) पूर्वदिशामें एते गंधपुष्पे "ओं तीव्रायै नमः"। अग्निकोणमें एते गंधपुष्पे "ओं ज्वालिन्यै नमः"।दक्षिणदिशामें"ओं नन्दायैनमः"। नैर्ऋतकोणमें "ओं भोगदायै नमः" । पश्चिमदिशामें" ओं कामरूपिण्यै नमः"। वायुकोणमें "ओं उग्रायै नमः "। उत्तरदिशामें"ओं तेजस्विन्यै नमः"।ईशानकोणमें "ओं सत्यायै नमः"। मध्यमें"ओं विघ्नविनाशिन्यै नमः" ।

(२) एतेगंधपुष्पेः "ओं कमलासनाय नमः"।

(३) एतेगंधपुष्पेः "ओं गणेशाय नमः" एते गंधपुष्पे " ओं गणनायकाय नमः " । इत्यादि ।

ततोब्राह्मीमुखाःशक्तीर्दिक्पालांश्चप्रपूजयन् ।
तेषामस्त्राणिसम्पूज्यविघ्नराजंविसर्जयेत् ॥ १२४ ॥

अर्थ-फिर ब्राह्मी इत्यादि अष्टशक्ति और इन्द्रादि दश दिक्पालोंकी पूजा करके दिक्पालोंके सब अस्त्रोंकी पूजाकरे और विघ्नराज ! (क्षमस्व, इस वाक्यसे) विघ्नराजका विसर्जन करै ॥ १२४ ॥

एवंसम्पूज्यविघ्नेशमधिवासनमाचरेत् ।
भोजयेच्चपञ्चतत्वैर्ब्रह्मज्ञान्कुलसाधकान् ॥ १२५ ॥

अर्थ-इस प्रकार विघ्नराजकी पूजा करके अधिवासन करे और पंचतत्वसे ब्रह्मज्ञानी कुलसाधकोंको भोजन करावै ॥ १२५ ॥

ततःपरदिनेस्नातःकृतनित्योदितक्रियः ।
आजन्मकृतपापानांक्षयार्थंतिलकाञ्चनम् ।
उत्सृजेत्कौलतृप्त्यर्थंभोज्यञ्चैकमपिप्रिये ! ॥ १२६ ॥

अर्थ-फिर दूसरे दिन स्नान करनेके पीछे नित्यक्रियाको समाप्त करके जन्मसे लेकर किये हुए सब पापोंके क्षय होनेके अर्थ तिलकाञ्चन उत्सर्ग करे (१) हे प्रिये ! तिसके उपरान्त कुलवानोंकी तृप्तिके लिये एक भोज्य देवै (२) ॥ १२६ ॥

अर्घ्यंदत्वादिनेशायब्रह्मविष्णुशिवग्रहान् ।
अर्च्चयित्वामातृगणान्वसुधारांप्रकल्पयेत् ॥ १२७ ॥

---

(१) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकतिथौ अमुकवारे जम्बुद्वीपान्तर्गतभारतवर्षैकदेशास्थितामुकग्रामवासी अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिने श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय दातुं काञ्चनसहितान् तिलानहं समुत्सृजे । " यह वाक्य पढकर तिलकाञ्चन उत्सर्ग करै ।

(२) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी श्रीअमुक-

कर्म्मणोऽभ्युदयार्थायवृद्धिश्राद्धंसमाचरेत् ।
ततोगत्वागुरोःपार्श्वंप्रणम्यप्रार्थयेदिदम् ॥ १२८ ॥

अर्थ-फिर सूर्यको अर्घ्य देकर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह, मातृगणोंकी पूजा करके वसुधारा दे । अनन्तर कर्मके उदय होनेकी कामनासे वृद्धिश्राद्ध करे । इसके उपरान्त गुरुके निकट जाय प्रणाम करके प्रार्थना करै कि ॥१२७॥ १२८ ॥

त्राहिनाथ ! कुलाचार ! नलिनीकुलवल्लभ ! ।
त्वत्पादाम्भोरुहच्छायांदेहिमूर्ध्निकृपानिधे ! ॥ १२९ ॥

अर्थ-हे नाथ ! आप कौलिकरूप पद्मवनके धारे हैं । हे कृपानिधे ! इससमय मेरे मस्तकपर अपने चरणकमलकी छाया करदो ॥ १२९ ॥

आज्ञांदेहिमहाभाग ! शुभपूर्णाभिषेचने ।
निर्विघ्नंकर्म्मणःसिद्धिमुपैमित्वत्प्रसादतः ॥ १३० ॥

अर्थ-हे महाभाग ! मेरे शुभ पूर्णाभिषेकके लिये आप आज्ञा दें आपके प्रसादसे मैं निर्विघ्न कार्यकी सिद्धि प्राप्त करलूंगा ॥ १३० ॥

शिवशक्त्याज्ञयावत्स ! कुरुपूर्णाभिषेचनम् ।
मनोरथमयीसिद्धिर्ज्जायतांशिवशासनात् ॥ १३१ ॥

अर्थ-हे वत्स ! शिवशक्तिके आज्ञानुसार पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्तहोवो । महादेवजीकी आज्ञाके अनुसार तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होवे ॥ १३१ ॥

देवशर्मा कौलादितृप्तिकामः अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय अमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिने श्रीमते अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय कौलाय दातुं भोज्यमहं समुत्सृजे" यह वाक्य पढकर भोज्य उत्सर्ग करे ।

इत्थमाज्ञां गुरोः प्राप्य सर्वोपद्रवशान्तये ।
आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यावाप्त्यै सङ्कल्पमाचरेत् ॥ १३२ ॥

अर्थ–गुरूजीसे यह आज्ञा पायकर शिष्य सब उपद्रवोंकी शान्तिके लिये और आयु, लक्ष्मी, बल व आरोग्य प्राप्तिके लिये संकल्प करे (१) ॥ १३२ ॥

ततस्तु कृतसङ्कल्पो वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
कारणैः शुद्धिसहितैरभ्यर्च्य वृणुयाद्गुरुम् ॥ १३३ ॥

अर्थ–इसप्रकार संकल्प कर वस्त्राभूषण वा शुद्धिके साथ कारणसे गुरूको पूज करके वरण करे (२) १३३ ॥

गुरुर्म्मनोहरे गेहे गैरिकादिविचित्रिते ।
चित्रध्वजपताकाभिः फलपल्लवशोभिते ॥ १३४ ॥

अर्थ–गैरिकादिसे चित्रविचित्रबने मनोहर गृहमें गुरुको (बैठना चाहिये) यह गृह मनको रमानेवाला, ध्वजा, पताका और फल पत्रादिसे शोभायमानहो ॥ १३४ ॥

---

(१) "ओं तत्सदद्य अमुकेमासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी, कुमारिकाखंडान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासीं, श्रीअमुकदेवशर्मा, निःशेषोपद्रवशान्तिकामः आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यकामश्च शुभपूर्णाभिषेचनमहं करिष्ये" यह वाक्य पढ़कर संकल्प करे ।

(२) "ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी, कुमारिकाखंडान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासी, श्रीअमुकदेवशर्मा, अमुकगोत्रम् अमुकप्रवरम् अमुकवेदिनम् अमुकशाखाध्यायिनंकुमारिकाखंडान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामीनिवासिनं श्रीमन्तममुकानंदनाथं गुरुत्वेन भवन्तं वस्त्रालंकारादिभिरहंवृणे "इसप्रकार संकल्प पढ गुरूको वरण करे ।

किङ्किणीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते ।
घृतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविवर्जिते ॥ १३५ ॥

अर्थ-किंकिणी अर्थात् क्षुद्रघटिकाओंकी मालासे विभूषित विचित्र चंदोंवेसे यह गृह सजा रहै । घृतके इतने दीपक जलादिये जांय कि अंधकारका नाम न रहै ॥ १३५ ॥

कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपैःसुवासिते ।
व्यजनैश्चामरैर्बर्हैर्दर्पणाद्यैरलङ्कृते ॥ १३६ ॥

अर्थ-कपूरके साथ धूपके द्वारा शालके गोंदसे बनीहुई धूपके द्वारा उस स्थानको सुगंधित करे हाथके खैंचनेके पंखेसे तालवृन्त चामरसे मोरके पंखोंसे और दर्पणादिसे उस गृहको सजावे॥१३६॥

सार्द्धहस्तमितांवेदीमुच्चकैश्चतुरङ्गुलाम् ।
रचयेन्मृन्मयींतत्रचूर्णैरक्षतसम्भवैः ॥ १३७ ॥
पीतरक्तासितश्वेतश्यामलैःसुमनोहरम् ।
मण्डलंसर्वतोभद्रंविदध्याच्छ्रीगुरुस्ततः ॥ १३८ ॥

अर्थ-चार अंगुल उंची और आधे हाथकी लम्बी चौडी वेदी इस गृहमें गुरूको बनानी चाहिये ॥ फिर पीले, लाल, काले, श्वेत, श्यामल इन पांच रंगे चावलोंके आटेसे मनोहर सर्वतोभद्रमंडल बनावे ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

स्वस्वकल्पोक्तविधिनामानसार्चावधिक्रियाम् ।
कृत्वापूर्वोक्तमन्त्रेणपञ्चतत्त्वानिशोधयेत् ॥ १३९ ॥

अर्थ-फिर अपने २ कल्पमें कही हुई विधिके अनुसार मानसिक पूजासे लेकर समस्तकार्य समाप्त करके पहले कहेहुए मंत्रसे पंचतत्वको शुद्धकरे ॥ १३९ ॥

संशोध्यपञ्चतत्त्वानिपुरःकल्पितमण्डले ।
स्वर्णवाराजतंताम्रंमृन्मयंघटमेववा ॥ १४० ॥

अर्थ-पंचतत्वको शुद्धकरनेके उपरान्त पहले कहे हुए सर्वतोभद्र मंडलके ऊपर सुवर्ण,चांदी, तांबा, अथवा मृत्तिकाका बना घड़ा लाय ॥ १४० ॥

क्षालितश्चास्त्रबीजेनदध्यक्षतविवर्जितम् ।
स्थापयेद्ब्रह्मबीजेनसिन्दूरेणाङ्कयेच्छ्रिया ॥ १४१ ॥

अर्थ-" फट् " मंत्रसे इस घड़ेको प्रक्षालितकर उसमें दही चावलका लेप करे और प्रणवका उच्चारण करके उसको इस मंडलमें स्थापन करे । फिर " श्रीं " बीज पढ़कर सिंदूरसे उसको अंकित करै ॥ १४१ ॥

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुविभूषितैः ।
मूलमन्त्रत्रिजापेनपूरयेत्कारणेनतम् ॥ १४२ ॥

अर्थ-फिर चंद्रबिन्दु ' ँ ' विभूषित (क्ष) सेलेकर ' अ ' तक ५० वर्णके साथ तीनवार मूलमंत्रका जप करके कारणसे इस घडेको भरे ॥ १४२ ॥

अथवातीर्थतोयेनशुद्धेनपाथसापिवा ।
नवरत्नंसुवर्णंवाघटमध्येविनिःक्षिपेत् ॥ १४३ ॥

अर्थ-अथवा तीर्थजलसे या शुद्धजलसे घडेको भरकर फिर इस घड़ेमें सुवर्ण या नवरत्न डालने उचित हैं ॥ १४३ ॥

पनसोदुम्बराश्वत्थबकुलाम्रसमुद्भवम् ।
पल्लवंतन्मुखेदद्याद्वाग्भवेनकृपानिधिः ॥१४४॥

अर्थ-फिर कृपानिधान गुरूजी " ऐं " बीज उच्चारण करके कल-

शके मुखमें कटहल, गूलर, पीपल, मौलसिरी और आम इन पांच वृक्षोंके पत्ते रक्खे ॥ १४४ ॥

शरावंमार्त्तिकंवापिफलाक्षतसमन्वितम् ।
रमांमायांसमुच्चार्य्यस्थापयेत्पल्लवोपरि ॥ १४५ ॥

अर्थ-फिर " ह्रीं श्रीं " मंत्र उच्चारण करके आतपतन्दुल और फलयुक्त सुवर्ण, चांदी, तांबे या मिट्टीका बनी सैरयां पत्तोंके ऊपर रक्खे ॥ १४५ ॥

बध्नीयाद्वस्त्रयुग्मेनग्रीवांतस्यवरानने ! ।
शक्तौरक्तंशिवेविष्णौश्वेतवासःप्रकीर्त्तितम् ॥ १४६ ॥

अर्थ-हे वरानने ! दो वस्त्रोंसे इस बरतनका गला बांधे । हे शिवे ! शक्तिमंत्रमें लाल और शिव तथा विष्णुजीके मंत्रमें श्वेत वस्त्रही अच्छा है ॥ १४६ ॥

स्थांस्थींमायांरमांस्मृत्वास्थिरीकृत्यघटान्तरे ।
निक्षिप्यपञ्चतत्त्वानिनवपात्राणिविन्यसेत् ॥ १४७ ॥

अर्थ-अनन्तर " स्थां स्थीं ह्रीं श्रीं स्थिरीभव " यह मंत्र पढ़कर स्थिर किये हुये और घडेमें पंचतत्व रखकर नवपात्रको रक्खे ४७

राजतंशक्तिपात्रंस्याद्गुरुपात्रंहिरण्मयम् ।
श्रीपात्रन्तुमहाशङ्खंताम्राण्यन्यानिकल्पयेत् ॥ १४८ ॥

अर्थ-शक्तिपात्र चांदीका बना हुआ, गुरुपात्र सुवर्णका बना हुआ, श्रीपात्र महाशंखका बना हुआ और सब पात्र तांबेके होने चाहिये ॥ १४८ ॥

पाषाणदारुलौहानांपात्राणिपरिवर्ज्जयेत् ।
शक्त्याप्रकल्पयेत्पात्रंमहादेव्याःप्रपूजने ॥ १४९ ॥

अर्थ-महादेवजीकी पूजाके अवसरमें पत्थरके, काठके और लोहेके पात्रोंको छोड़कर शक्तिके अनुसार और पदार्थसे पात्र बनावै ॥ १४९ ॥

पात्राणांस्थापनंकृत्वागुरून्देवींप्रतर्पयेत् ।
ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्च्चयेत्सुधीः ॥ १५० ॥

अर्थ-फिर पात्र स्थापन करके गुरुगणोंका और भगवतीका (और आनंदभैरवादिकोंका) तर्पण करे । इसके उपरान्त ज्ञानी पुरुष-अमृतसे भरे हुए घडेकी पूजा करे ॥ १५१ ॥

दर्शयित्वाधूपदीपौसर्व्वभूतबलिंहरेत् ।
पीठदेवान्पूजयित्वाषडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १५१ ॥

अर्थ-पीछे धूप दीप दिखाय पहला कहा हुआ मंत्र पढ सब भूतोंको बलि दे । अनन्तर पीठदेवताओंकी पूजा करके षडङ्ग न्यास करे ॥ १५१ ॥

प्राणायामंततःकृत्वाध्यात्वावाह्यमहेश्वरीम् ।
स्वशक्त्यापूजयेदिष्टांवित्तशाठ्यंविवर्ज्जयेत् ॥ १५२ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त प्राणायाम करके महेश्वरीका ध्यान धरके आवाहन करनेके पीछे अपनी शक्तिके अनुसार उस अभीष्टदेवताकी पूजा करे,परन्तु किसी प्रकारसे वित्तशाठ्य(सामर्थ्य रुपयादान करनेकी है तौ देदिया एक पैसा) न करे ॥ १५२ ॥

होमान्तकृत्यंनिष्पाद्यकुमारीशक्तिसाधकान् ।
पुष्पचन्दनवासोभिरर्च्चयेत्सद्गुरुःशिवे! ॥ १५३ ॥

अर्थ-हे शिवे सद्गुरूको चाहिये कि होमसे लेकर सब कार्योंको पूराकर फूल, चंदन और वस्त्रोंसे कुमारियोंकी और शक्तिसाधकोंकी पूजा करे ॥ १५३ ॥

अनुगृह्णन्तुकौलामेशिष्यंप्रतिकुलव्रताः ।
पूर्णाभिषेकसंस्कारेभवद्भिरनुमन्यताम् ॥ १५४ ॥

अर्थ-हे कुलवति! कौलगण आप लोग मेरे शिष्यपर अनुग्रह कीजिये । इस पूर्णाभिषेकसंस्कारमें अनुमति दीजिये ॥१५४॥

एवंपृच्छतिचक्रेशेतंब्रूयुर्गुरुमादरात् ।
महामायाप्रसादेनप्रभावात्परमात्मनः ।
शिष्योभवतुपूर्णस्तेपरतत्त्वपरायणः ॥१५५ ॥

अर्थ-इस प्रकार चक्रेश्वरके प्रश्न करनेपर सब कुलवान आदरपूर्वक कहैं कि महामायाके प्रसादसे और परमात्माके प्रभावसे आपका शिष्य परमतत्वपरायण और पूर्णहो ॥ १५५ ॥

शिष्येणचगुरुर्देवीमर्चयित्वार्चितेघटे ।
कामंमायांरमांजप्त्वाचालयेद्विमलंघटम् ॥ १५६ ॥

अर्थ-फिर गुरुको उचित है कि शिष्यसे देवी भगवतीजीकी पूजा कराय पूजित घड़ेके ऊपर "क्लीं ह्रीं श्रीं" मंत्र जपवा कर उस निर्मल घड़ेको चलावै ॥ १५६ ॥

उत्तिष्ठब्रह्मकलशदेवतात्मक!सिद्धिद! ।
त्वत्तोयपल्लवैःसिक्तःशिष्योब्रह्मरतोऽस्तुते ॥ १५७ ॥

अर्थ-(और यह मंत्र पढै कि) हे ब्रह्मकलश! तुम सिद्धिदाता और देवतास्वरूपहो तुम उठो ! हमारा शिष्य तुम्हारे जल और पत्तोंसे सिक्त होकर ब्रह्ममें निरतहोवै ॥ १५७ ॥

इत्थंसञ्चाल्यकलशमुत्तराभिमुखंगुरुः ।
मन्त्रैरेतैर्व्वक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत्कृपान्वितः ॥ १५८ ॥

अर्थ-इस मंत्रसे कलशको चलायकर गुरु:कृपायुक्त हृदयसे उत्तरकी ओर मुखकरके बैठेहुए शिष्यको अभिषेकित करे और यह मंत्र पढ़ता रहै ॥ १५८ ॥

शुभपूर्णाभिषेकस्यसदाशिवऋषिःस्मृतः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवताद्यापणवंबीजमीरितम् ।
शुभपूर्णाभिषेकार्थेविनियोगःप्रकीर्त्तितः ॥ १५९ ॥

अर्थ–शुभ पूर्णाभिषेकके ऋषि सदाशिव छन्द अनुष्टुप्, बीज प्रणव ॐ शुभपूर्णाभिषेककार्यके अर्थ विनियोग कीर्तन करना चाहिये (१) ॥ १५९ ॥

गुरवस्त्वाभिषिञ्चन्तुब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तुमातरः ॥ १६० ॥

अर्थ–गुरुजन तुमको अभिषेकित करें दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी यह मातायें तुमको अभिषेकित करें ॥ १६० ॥

षोड़शीतारिणीनित्यास्वाहामहिषमर्दिनी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तुमन्त्रपूतेनवारिणा ॥ १६१ ॥

अर्थ–षोडशी, तारिणी, नित्या, स्वाहा, महिषमर्दिनी यह मंत्र पढ़ेहुए जलसे तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६१ ॥

जयदुर्गाविशालाक्षीब्रह्माणीचसरस्वती ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तुबगलावरदाशिवा ॥ १६२ ॥

अर्थ–जयदुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी, सरस्वती, बगला, वरदा, शिवा, यह तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६२ ॥

नारसिंहीचवाराहीवैष्णवीवनमालिनी ।

---

(१) मंत्रः–"एषां शुभपूर्णाभिषेकमंत्राणां सदाशिव ऋषिरनुष्टुप्छंदः आद्या-काली देवता ओं बीजं शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः । शिरसि सदाशिवाय ऋषये नमः । मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः । हृदये आद्यायै कालिकायै देवतायै नमः । गुह्ये ओं बीजाय नमः । शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः ।" इस प्रकार ऋषिन्यासकरे

इन्द्राणीवारुणीरौद्रीत्वाभिषिञ्चन्तुशक्तयः ॥ १६३ ॥

अर्थ–नारासिंही, वैष्णवी, वाराही, वनमालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री यह सब शक्तियें तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६३॥

भैरवीभद्रकालीचतुष्टिःपुष्टिरुमाक्षमा ।
श्रद्धाकान्तिर्द्दयाशान्तिरभिषिञ्चन्तुतेसदा ॥ १६४ ॥

अर्थ–भैरवी, भद्रकाली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति यह सदा तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६४ ॥

महाकालीमहालक्ष्मीम्मेहानीलसरस्वती ।
उग्रचण्डाप्रचण्डात्वामभिषिञ्चन्तुसर्व्वदा ॥ १६५ ॥

अर्थ–महाकाली, महालक्ष्मी, महानीला, सरस्वती, उग्रचंडा, प्रचंडा यह सदा तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६५ ॥

मत्स्यःकूर्मोवराहश्चनृसिंहोवामनस्तथा ।
रामोभार्गवरामस्त्वामभिषिञ्चन्तुवारिणा ॥ १६६ ॥

अर्थ–मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम यह सदा जलसे तुम्हारा अभिषेक करें ॥ १६६ ॥

असिताङ्गोरुरुश्चण्डःक्रोधोन्मत्तोभयङ्करः ।
कपालीभीषणश्चत्वामभिषिञ्चन्तुवारिणा ॥ १६७॥

अर्थ–असिताङ्ग, रुरु, चंड, क्रोधोन्मत्त, भयंकर, कपाली, भीषण यह जलसे तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६७ ॥

कालीकपालिनीकुल्लाकुरुकुल्लाविरोधिनी ।
विप्रचित्तामहोग्रात्वामभिषिञ्चन्तुसर्व्वदा ॥ १६८ ॥

अर्थ–काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, महोग्रा यह सदा तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६८ ॥

इन्द्रोऽग्निःशमनोरक्षोवरुणःपवनस्तथा ।
धनदश्चमहेशानःसिञ्चन्तुत्वान्दिगीश्वराः ॥ १६९ ॥

अर्थ-इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नैर्ऋत, वरुण, मरुत्, कुबेर, ईशान और आठ दिक्पाल तुमको अभिषेकित करैं ॥ १६९ ॥

रविःसोमोमङ्गलश्चबुधोजीवःसितःशनिः ।
राहुःकेतुःसनक्षत्राअभिषिञ्चन्तुतेग्रहाः ॥ १७० ॥

अर्थ-सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु यह सब ग्रह और नक्षत्रगण तुमको अभिषेकित करैं॥१७०॥

नक्षत्रंकरणंयोगोवाराःपक्षौदिनानिच ।
ऋतुर्म्मासोहायनस्त्वामभिषिञ्चन्तुसर्व्वदा ॥ १७१ ॥

अर्थ-अश्विनीआदि नक्षत्र ववआदि करण, विष्कंभादि योग-रवि इत्यादि वार, शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष, दिन, वसन्तादि छैः ऋतु, वैष्णव आदि बारह महीने और उत्तरायण व दक्षिणायन यह सदा तुमको अभिषेकित करैं ॥ १७१ ॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।
समुद्रास्त्वाभिषिञ्चन्तुमन्त्रपूतेनवारिणा ॥ १७२ ॥

अर्थ-लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र यह सब समुद्र अभिमंत्रित जलसे तुमको अभिषेकित करैं ॥ १७२ ॥

गङ्गासूर्य्यसुतारेवाचन्द्रभागासरस्वती ।
सरयूर्गण्डकीकुन्तीश्वेतगङ्गाचकौशिकी ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तुमन्त्रपूतेनवारिणा ॥ १७३ ॥

अर्थ-गंगा, यमुना, रेवा, चंद्रभागा, सरस्वती, सरयू, गंडकी, कुन्ती, श्वेतगंगा, कौशिकी यह नदियें अभिमंत्रित जलसे तुमको अभिषेक करैं ॥ १७३ ॥

अनन्ताद्यामहानागाःसुपर्णाद्याःपतत्रिणः ।
तरवःकल्पवृक्षाद्याःसिञ्चन्तुत्वांमहीधराः ॥ १७४ ॥

अर्थ-अनन्त, वासुकि, पद्म आदि महानाग, गरुड़ादि पक्षी, कल्पवृक्षादि वृक्ष और पर्वत तुमको अभिषेकित करैं ॥ १७४ ॥

पातालभूतलव्योमचारिणःक्षेमकारिणः।
पूर्णाभिषेकसन्तुष्टास्त्वाभिषिञ्चन्तुपाथसा ॥ १७५ ॥

अर्थ-पातालचारी भूतलचारी और व्योमचारी जीवगण तुम्हारा मंगल करैं और वह पूर्णाभिषेक देखकर संतुष्टहो जलसे तुम्हारा अभिषेक करैं ॥ १७५ ॥

दौर्भाग्यंदुर्यशोरोगादौर्म्मनस्यंतथाशुचः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेणपरमब्रह्मतेजसा ॥ १७६ ॥

अर्थ-पूर्णाभिषेक होनेसे और परब्रह्मके तेजसे तुम्हारा दुर्भाग्य, अयश, रोग, दुर्मनता व शोकादि सब विध्वंस हो जांय ॥ १७६ ॥

अलक्ष्मीःकालकर्णीचडाकिन्योयोगिनीगणाः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेणकालीबीजेनताड़िताः ॥ १७७ ॥

अर्थ-अलक्ष्मी, कालकर्णी, डाकिनी, योगिनी यह अभिषेकसे और कालीजीके बीजसे ताड़ित होकर नाशको प्राप्तहो जांय॥ १७७॥

भूताःप्रेताःपिशाचाश्चग्रहायेऽरिष्टकारकाः ।
विद्रुतास्तेविनश्यन्तुरमाबीजेनताड़िताः ॥ १७८ ॥

अर्थ-भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह और सब अनिष्ट करनेवाले रमाके बीजसे फटकारे खाकर भाग जांय और नष्ट होवैं ॥१७८॥

अभिचारकृतादोषावैरिमन्त्रोद्भवाश्चये ।
मनोवाक्कायजादोषाविनश्यन्त्वभिषेचनात् ॥ १७९ ॥

अर्थ-अभिचारसे उत्पन्न हुआ दोष, वैरिमंत्रसे उत्पन्न हुआ दोष, मानसिकदोष, वाचनिकदोष, कायिकदोष यह सब दोष तुम्हारे अभिषेकसे नाश हो जांय ॥ १७९ ॥

नश्यन्तुविपदःसर्वाःसम्पदः सन्तुसुस्थिराः ।
अभिषेकेणपूर्णेनपूर्णाःसन्तुमनोरथाः ॥ १८० ॥

अर्थ-तुम्हारी सब विपत्तियें दूरहों । तुम्हारी समस्त सम्पत्ति स्थिरहो इस पूर्णअभिषेकसे तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण होवैं ॥ १८० ॥

इत्येकाधिकविंशत्यामन्त्रैःसंसिक्तसाधकम् ।
पशोर्म्मुखाल्लब्धमन्त्रंपुनःसंश्रावयेद्गुरुः ॥ १८१ ॥

अर्थ-इन इक्कीसमंत्रोंसे साधकको अभिषिक्त होना चाहिये, यदि शिष्य पशुके निकट दीक्षित हुआ हो, तब गुरूको उचित है कि पुनर्वार शिष्यको वह मंत्र श्रवण करावे ॥ १८१ ॥

पूर्वोक्तनाम्नासम्बोध्यज्ञापयञ्छक्तिसाधकान् ।
दद्यादानन्दनाथान्तमाख्यानंकौलिकोगुरुः ॥ १८२ ॥

अर्थ-फिर गुरुको उचित है कि शक्तिसाधक लोगोंको जताकर पहले नाम ले शिष्यको पुकार आनन्दनाथान्त नाम रक्खे ॥ १८२ ॥

श्रुतमन्त्रोगुरोर्यन्त्रेसम्पूज्यनिजदेवताम् ।
पञ्चतत्त्वोपचारेणगुरुमभ्यर्चयेत्ततः ॥ १८३ ॥

अर्थ-गुरुके मुखसे मंत्र सुनकर शिष्यको चाहिये कि पंच तत्वके उपचारसे यंत्रमें अपने अभीष्टदेवताकी पूजा करके गुरूकी पूजा करे ॥ १८३ ॥

गोभूहिरण्यवासांसिपानालङ्करणानिच ।
गुरवेदक्षिणांदत्वायजेत्कौलाञ्छिवात्मकान् ॥ १८४ ॥

अर्थ-फिर गुरूजीको गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, पीनेके पदार्थ, आभूषण यह सब वस्तुयें दक्षिणामें देकर साक्षात् शिवस्वरूप कुलवानोंकी पूजा करे ॥ १८४ ॥

कृतकौलार्च्चनोधीरःशान्तोऽतिविनयान्वितः ।
श्रीगुरोश्चरणौस्पृष्ट्वाभक्त्यानत्वेदमर्थयेत् ॥ १८५ ॥

अर्थ-अनन्तर ज्ञानी पुरुष कुलवानोंकी पूजाकर शान्त और अतिविनीतहो भक्तिके साथ श्रीगुरूजीके चरण छू नमस्कार करके प्रार्थना करे कि ॥ १८५ ॥

श्रीनाथ ! जगतांनाथ ! मन्नाथ ! करुणानिधे ! ।
परामृतप्रदानेनपूरयास्मन्मनोरथम् ॥ १८६ ॥

अर्थ-हे श्रीनाथ! आप जगत्के नाथहैं, मेरे नाथ और करुणानिधि हैं आप परमामृत देकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥ १८६ ॥

आज्ञांमेदीयतांकौलाःप्रत्यक्षशिवरूपिणः ।
सच्छिष्यायविनीतायददामिपरमामृतम् ॥ १८७॥

अर्थ-(कुलवानोंसे गुरूको कहना उचित है कि) कौलगण ! आप लोग प्रत्यक्ष शिवस्वरूप हैं आप आज्ञादें, मैं इस विनयी श्रेष्ठ शिष्यकूं परम अमृत दूं ॥ १८७ ॥

चक्रेश ! परमेशान ! कौलपङ्कजभास्कर ! ।
कृतार्थंकुरुसच्छिष्यंदेह्यमुष्मैकुलामृतम् ॥ १८८ ॥

अर्थ-(कुलीनोंको कहना चाहिये) हे चक्रेश्वर ! आप साक्षात् परमेश्वर हैं, आप कौलरूप कमलवनके लिये सूर्यरूप हैं, आप इस श्रेष्ठ शिष्यको चरितार्थ करें इसको कुलामृत दें ॥ १८८ ॥

आज्ञामादायकौलानांपरमामृतपूरितम् ।
सशुद्धिकंपानपात्रंशिष्यहस्तेसमर्पयेत् ॥ १८९ ॥

अर्थ-कुलीनोंकी अनुमति लेकर गुरूको उचित है कि शुद्धिके साथ परमामृतपूरितपानपात्र शिष्यके हाथमें समर्पण करे ॥१८९॥

हृद्याकृष्यगुरुर्देवींस्रुवसंलग्नभस्मना ।
स्वस्याःशिष्यस्यकौलानांकूर्च्चेचतिलकंन्यसेत् ॥१९०॥

अर्थ-फिर अपने हृदयमें देवी भगवतीका ध्यानकरके गुरु स्रुवेमें लगीहुई भस्मसे अपने शिष्यके और कुलीनोंके माथेमें तिलक लगादेवे ॥ १९० ॥

ततःप्रसादतत्त्वानिकौलेभ्यःपरिवेशयन् ।
चक्रानुष्ठानविधिनाविदध्यात्पानभोजनम् ॥ १९१ ॥

अर्थ-अनन्तर प्रसाद तत्व सब कुलीनोंको परसकर चक्रानुष्ठानकी विधिके अनुसार पान और भोजन करे ॥ १९१ ॥

इतितेकथितंदेवि !शुभपूर्णाभिषेचनम् ।
ब्रह्मज्ञानैकजननंशिवत्वफलसाधनम् ॥ १९२ ॥

अर्थ-हे देवि ! यह मैंने तुमसे शुभ पूर्णाभिषेक कहा, इससे ब्रह्मज्ञान और शिवतत्व प्राप्त होजाता है ॥ १९२ ॥

नवरात्रंसप्तरात्रंपञ्चरात्रंत्रिरात्रकम् ।
अथवाप्येकरात्रञ्चकुर्य्यात्पूर्णाभिषेचनम् ॥ १९३ ॥

अर्थ-नवरात्रि, सप्तरात्रि, पंचरात्रि, त्रिरात्रि, अथवा एकरात्रि पूर्णाभिषेक करे ॥ १९३ ॥

संस्कारेऽस्मिन्कुलेशानि ! पञ्चकल्पाःप्रकीर्त्तिताः ।
नवरात्रेविधातव्यंसर्वतोभद्रमण्डलम् ॥ १९४ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! इस संस्कारमें पांच कल्प हैं, यदि नवरात्रितक अभिषेक हो तो सर्वतोभद्र मंडल बनाना चाहिये ॥१९४॥

नवनाभंसप्तरात्रेपञ्चाब्जंपञ्चरात्रके ।
त्रिरात्रेचैकरात्रेचपद्ममष्टदलंप्रिये ! ॥ १९५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! सप्तरात्रिके अभिषेकमें नवनाभ मंडल पंचरात्रिके अभिषेकमें पञ्चाब्जमंडल, त्रिरात्रि और एकरात्रिके अभिषेकमें अष्टदल पद्म बनावे ॥ १९५ ॥

मण्डलेसर्वतोभद्रेनवनाभेऽपिसाधकैः ।
स्थापनीयानवघटाःपञ्चाब्जेपञ्चसङ्ख्यकाः ॥ १९६ ॥

अर्थ-साधक लोगोंको चाहिये कि सर्वतोभद्र मंडलमें और नवनाभ मंडलमें नौ घड़े और पञ्चाब्ज मंडलके पांच घड़े स्थापन करे ॥ १९६ ॥

नलिनेऽष्टदलेदेवि ! घटस्त्वेकःप्रकीर्त्तितः ।
अङ्गावरणदेवांश्चकेशवादिषुपूजयेत् ॥ १९७ ॥

अर्थ-हे देवि ! अष्टदलपद्ममें केवल एक घटस्थापन करना चाहिये, इस पद्मके केशरादिमें अंगदेवता और आवरणदेवताओंकी पूजा करे ॥ १९७ ॥

पूर्णाभिषेकसिद्धानांकौलानांनिर्म्मलात्मनाम् ।
दर्शनात्स्पर्शनाद्घ्राणाद्द्रव्यशुद्धिर्विधीयते ॥ १९८ ॥

अर्थ-जो कुलीन पूर्णाभिषेकसे अभिषिक्त हुये हैं, जिनका हृदय निर्मल है, जिनके दर्श, स्पर्श या घ्राणसे द्रव्यशुद्धि हो जाती है १९८

शाक्तैर्वावैष्णवैःशैवैःसौरैर्गाणपतैरपि ।
कौलधर्म्माश्रितःसाधुःपूजनीयोऽतियत्नतः ॥ १९९ ॥

अर्थ-जो शाक्त हो, वैष्णव हो, शैवहो, सौरहो, वा गाणपत्य हो चाहै जिसका उपासक हो, वह अवश्यही अतियत्नके साथ कुलधर्मका आश्रय रखनेवाले साधूकी पूजा करै ॥ १९९ ॥

शाक्तेशाक्तोगुरुःशस्तःशैवेशैवोगुरुर्म्मतः ।
वैष्णवेवैष्णवःसौरेसौरोगुरुरुदाहृतः ॥ २०० ॥

अर्थ-शाक्तोंके लिये शाक्त, शैवोंके लिये शैव, वैष्णवोंके लिये वैष्णव और सौरलोगोंके लिये सौर ॥ २०० ॥

गाणपेगाणपश्चैवकौलःसर्वत्रसद्गुरुः ।
अतःसर्वात्मनाधीमान्कौलाद्दीक्षांसमाचरेत् ॥ २०१ ॥

अर्थ-गाणपत्योंके लिये गाणपत्य गुरूही श्रेष्ठ है परन्तु कौल-पुरुष सबप्रकारसे सबके लिये श्रेष्ठ गुरु हो सक्ता है अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सबप्रकारसे कुलवानके निकट दीक्षित होना चाहिये ॥ २०१ ॥

पञ्चतत्त्वेनयत्नेनभक्त्याकौलान्यजन्तिये ।
उद्धृत्यपुरुषान्सर्वांस्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ २०२ ॥

अर्थ--जो लोग भक्तिपूर्वक यत्नके साथ पंचतत्वसे कुलीनोंकी पूजा करेंगे, वह अपने पूर्व पुरुषोंका उद्धार करके परमगति पावैंगे॥२०२॥

पशोर्वक्त्राल्लब्धमन्त्रःपशुरेवनसंशयः ।
वीराल्लब्धमनुर्वीरःकौलाद्भवतिब्रह्मवित् ॥ २०३ ॥

अर्थ-पशुसे मंत्र ग्रहण करनेवाला पशुही है इसमें कोई संदेह नहीं । जिसने वीरसे मंत्र ग्रहण किया है वह वीर है जिसने कौलसे मंत्र ग्रहण किया है वह निःसन्देह ब्रह्मका जाननेवाला होताहै २०३

शाक्ताभिषेकीवीरःस्यात्पञ्चतत्त्वानिशोधयेत् ॥
स्वेष्टपूजाविधावेवनतुचक्रेश्वरोभवेत् ॥ २०४ ॥

अर्थ-जिसको शाक्ताभिषेक हुआ है, वह वीरहै वह अपने इष्ट देवताकी पूजा करनेके समयही पंच तत्वको शुद्ध करसकैगा, परन्तु वह चक्रेश्वर होनेका अधिकारी नहीं है ॥ २०४ ॥

वीरघातीवृथापायीवीराणांस्त्रीगमस्तथा ।
स्तेयीमहापातकिनस्तत्संसर्गीचपञ्चमः ॥ २०५ ॥

अर्थ-जो वीरकी हत्या करता है, जो वृथा पान करताहै जो वीरकी स्त्रीसे मिलताहै, जो चोरीसे आजीविका करताहै, जो इन चार प्रकारके महापातकियोंका संग करते हैं वह सबही महापातकी हैं ॥ २०५ ॥

कुलवर्त्मकुलद्रव्यंकुलसाधकमेवच ।
येनिन्दन्तिदुरात्मानस्तेगच्छन्त्यधमाङ्गतिम् ॥२०६॥

अर्थ-जो दुरात्मा, कुलमार्ग कुलद्रव्य और कुलसाधककी निन्दा करता है उसको अधोगति होती है ॥ २०६ ॥

नृत्यन्तिरुद्रडाकिन्योनृत्यन्तिरुद्रभैरवाः ।
मांसास्थिचर्वणानन्दाःसुराःकौलद्विषांनृणाम् ॥२०७॥

अर्थ-रुद्र डाकनियें और रुद्र भैरवगण, कौलविद्वेषी मनुष्योंका मांस व हड्डी चाबनेके लिये आनंदसे नाचते रहते हैं ॥ २०७ ॥

दयालवःसत्यशीलाःसदापरहितैषिणः ।
तान्गर्हयन्तोनरकान्निष्कृतिंयान्तिनक्वचित् ॥ २०८ ॥

अर्थ-जो लोग दयालु, सत्यनिष्ठ और सदा परायाहित करनेंवाले हैं वहभी यदि कुलवानोंकी निन्दा करैं तो किसी प्रकार नरकसे छुटकारा नहीं पासक्ते ॥ २०८ ॥

उक्ताःप्रयोगाबहवःकर्म्माणिविविधानिच ।
ब्रह्मैकनिष्ठकौलस्यत्यागानुष्ठानयोःसमम् ॥ २०९ ॥

अर्थ-बहुतसे प्रयोग कहे हैं, बहुतसे कर्मानुष्ठान और विधान कहे हैं, परन्तु ब्रह्मनिष्ठ कुलवानके लिये कर्मत्याग और कर्मानुष्ठान यह दोनों समान हैं केवल परमब्रह्म जगन्मंडलमें व्यापकर विराजमान है ॥ २०९ ॥

एकमेवपरंब्रह्मजगदावृत्यातिष्ठति ।
विश्वार्चयातदर्चास्याद्यतःसर्व्वंतदन्वितम् ॥ २१० ॥

अर्थ–अतएव किसीभी संसारी वस्तुकी पूजा करनेसे उस ब्रह्म-हीकी पूजा होतीहै, कारण कि, संसारकी कोई वस्तु ब्रह्मसे अलग नहीं है ॥ २१० ॥

फलासक्ताःकामपराःकर्म्मजालरताःप्रिये! ।
पृथक्त्वेनयजन्तोपितत्प्रयान्तिविशन्तिच ॥ २११ ॥

अर्थ–हे प्रिये! जो कर्मकाण्डमें लगे हुए हैं कामपरायण और फलमें आसक्त हैं, वह पृथक्पनसे और देवताकी पूजा करकेभी यथासमयमें ब्रह्मको प्राप्त होते और ब्रह्ममें ही लय होजाते हैं ॥ २११ ॥

सर्व्वंब्रह्मणिसर्वत्रब्रह्मैवपरिपश्यति ।
ज्ञेयःसएवसत्कौलोजीवन्मुक्तोनसंशयः ॥ २१२ ॥

इति श्रीमहानिर्व्वाणतन्त्रे सर्व्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्व्वधर्म्म-
निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे
वृद्धिश्राद्धादिमृतक्रियापूर्णाभिषेक-
कथनं नाम दशमउल्लासः ॥१०॥

अर्थ–जो सब वस्तुओंमें ब्रह्मका अधिष्ठान और ब्रह्ममेंही सब वस्तुओंका अधिष्ठान अवलोकन करतेहैं, वह निःसन्देह श्रेष्ठ कौल जीवन्मुक्त हैं ॥ २१२ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे
श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादेकात्यायनगोत्रोत्पन्नपंडित-
बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां वृद्धि-
श्राद्धादिकथनंनामदशम उल्लासः ॥१०॥

एकादशउल्लासः ।

श्रुत्वाशाम्भवधर्माणिवर्णाश्रमाविभेदतः।
अपर्णापरयाप्रीत्यापप्रच्छशङ्करंप्रति ॥ १ ॥

अर्थ-वर्णाश्रमके भेदसे महादेवजीका चलाया धर्म सुन परम प्रसन्नहो भगवती अपर्णा महादेवजीसे पूछतीहुई ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

वर्णाश्रमाचारधर्माःसंस्कारालोकसिद्धये ।
कथिताःकृपयामह्यंसर्वज्ञेनत्वयाप्रभो! ॥ २ ॥

अर्थ-भगवतीने कहा हे प्रभो! आप सर्वज्ञहैं । आपने कृपा करके मुझसे लोकव्यवहारके निर्वाह करने योग्य वर्णाश्रमका आचार, धर्म, और सब संस्कार कहा ॥ २ ॥

कलौदुर्वृत्तयोलोकाःकामक्रोधान्धचेतसः ।
नास्तिकाःसंशयात्मानःसदेन्द्रियसुखैषिणः ॥ ३ ॥

अर्थ-कलिकालके मनुष्य कामक्रोधादिसे अन्धे खोटी वृत्ति-वाले नास्तिक संशययुक्त और सदा इन्द्रियोंका सुख चाहने-वाले होंगे ॥ ३ ॥

भवन्निगदितंवर्त्मनानुष्ठास्यन्तिदुर्द्धियः ।
तेषाङ्कागतिरीशान! विशेषाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

अर्थ-हे ईशान ! वह कुबुद्धिवान् मनुष्य आपके कहेहुये मार्गको वरण नहीं करेंगे उनकी क्या गति होगी सो भलीभांतिसे कहिये ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

साधुपृष्टंत्वयादेवि ! लोकानांहितकारिणि ! ।
त्वंजगज्जननीदुर्गाजन्मसंसारमोचनी ॥ ५ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहाः-हेदेवि ! तुमने उत्तम प्रश्न किया, तुम लोकहितकारिणी, जगज्जननी और संसारका बन्धन छुड़ानेवाली दुर्गा हो ॥ ५ ॥

त्वमाद्याजगतांधात्रीपालयित्रीपरात्परा ।
त्वयैवधार्य्यतेदेवि ! विश्वमेतच्चराचरम् ॥ ६ ॥

अर्थ-हेदेवि ! तुम जगद्धात्री पालन करनेवाली आद्या और परात्परा हो इस चराचर विश्वको तुह्मी धारण करती हो ॥ ६ ॥

त्वमेवपृथ्वीत्वंवारित्वंवायुस्त्वंहुताशनः ।
त्वंवियत्त्वमहङ्कारस्त्वंमहत्तत्त्वरूपिणी ॥ ७ ॥

अर्थ-तुम पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहङ्कारतत्व और महत्तत्व हो ॥ ७ ॥

त्वमेवजीवोलोकेऽस्मिस्त्वंविद्यापरदेवता ।
इन्द्रियाणिमनोबुद्धिर्विश्वेषांत्वंगतिःस्थितिः ॥ ८ ॥

अर्थ-इस लोकमें स्थित जो जीव हैं, वह भी तुह्मींहो,तुम विद्या, परम देवता, सब इन्द्रियां, मन, बुद्धि, जगत्की गति और स्थिति भी तुह्मीं हो ॥ ८ ॥

त्वमेववेदाःप्रणवःस्मृतयस्त्वंहिसंहिताः ।
निगमागमतन्त्राणिसर्व्वशास्त्रमयीशिवा ॥ ९ ॥

अर्थ-तुम्हीं वेद, प्रणव(ओंकार),सब स्मृति हो, तुम्हीं सब संहिता हो, तुम निगम, आगम, तंत्र और सर्व शास्त्रमयी भगवतीभी तुम्हीं हो ॥ ९ ॥

महाकालीमहालक्ष्मीर्म्महानीलसरस्वती ।
महोदरीमहामायामहारौद्रीमहेश्वरी ॥ १० ॥

अर्थ-तुम महाकाली,महालक्ष्मी, महानीला सरस्वती, महोदरी, माहामाया, महारौद्री और महेश्वरी हो ॥ १० ॥

सर्व्वज्ञात्वंज्ञानमयीनास्त्यवेद्यंतवान्तिके ।
तथापिपृच्छसिप्राज्ञे ! प्रीतयेकथयामिते ॥ ११ ॥

अर्थ–तुम सर्वज्ञानमयी हो, इसकारण ऐसी वार्ता कोई नहीं है जिसको तुम न जानतीहो । हे प्राज्ञे ! जब की तुम सब कुछ जानकरभी पूंछतीहो, तब तुम्हारी प्रसन्नताके लिये कहता हूं॥ ११॥

सत्यमुक्तंत्वयादेवि ! मनुजानांविचेष्टितम् ।
जानन्तोऽपिहितंमत्ताःपापैराशुसुखप्रदैः ॥ १२ ॥

अर्थ–हे देवि ! मनुष्यगण कलियुगमें जैसा आचरण करेंगे वह तुमने यथार्थही कहा है । वह लोग हितकी बातको जानकरभी शीघ्र सुखका देनेवाला अवैध स्त्रीगमन, सुरापानादि पापमें मत्त होकर ॥ १२ ॥

नाचरिष्यन्तिसद्वर्त्महिताहितबहिष्कृताः ।
तेषांनिश्रेयसार्थायकर्त्तव्यंयत्तदुच्यते ॥ १३ ॥

अर्थ–हिताहितका विचार छोड श्रेष्ठ मार्गमें नहीं चलेंगे इनकी मुक्तिके जो कर्तव्य है सो कहताहूं ॥ १३ ॥

अनुष्ठानंनिषिद्धस्यत्यागोविहितकर्म्मणः ।
नृणांजनयतःपापंक्लेशशोकामयप्रदम् ॥ १४ ॥

अर्थ–निषिद्ध कर्मका अनुष्ठान और वैध कर्मका अनुष्ठान इन दोनोंसे मनुष्यको पाप होता है। पापसे क्लेश, शोक और पीड़ा होती है ॥ १४ ॥

स्वानिष्टमात्रजननात्परानिष्टोपपादनात् ।
तदेवपापंद्विविधंजानीहिकुलनायिके ! ॥ १५ ॥

अर्थ–हे कुलनायिके ! यह पाप दोप्रकारका है, एक प्रकारके पापसे केवल अपना अनभल होता है और एक पापसे दूसरेका बुरा होता है ॥ १५ ॥

परानिष्टकरात्पापान्मुच्यतेराजशासनात्।
अन्यस्मान्मुच्यतेमर्त्यःप्रायश्चित्तात्समाधिना ॥ १६ ॥

अर्थ-जिस पापसे पराया बुरा होता है राजदंडके द्वारा वह पाप छूट जाता है प्रायश्चित्त और चित्तनिरोधसे दूसरा पाप छूट सक्ता है ॥ १६ ॥

प्रायश्चित्त्याथवादण्डैर्नपूतायेकृतांहसः।
नरकान्ननिवर्त्तन्तेइहामुत्रविगर्हिताः ॥ १७ ॥

अर्थ-जो पापात्मा राजदंडसे या प्रायश्चित्तसे पवित्र नहीं होते वह इस लोक और परलोकमें निन्दनीय होकर नरकको जातेहैं १७

तत्रादौकथयाम्याद्ये ! नृपशासननिर्णयम्।
यल्लङ्घनान्महेशानि ! राजायात्यधमाङ्गतिम् ॥ १८ ॥

अर्थ-हे आद्ये! पहले राजशासनका निर्णय कहता हूं। यदि राजा इसको लंघन करै अर्थात् दण्ड योग्य प्रजाको दण्ड नहीं दे तौ वह नरकको जाता है ॥ १८ ॥

भृत्यान्पुत्रानुदासीनान्प्रियानपितथाप्रियान्।
शासनेचतथान्यायेसमदृष्ट्यावलोकयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-विचारके समय, दंड देनेके समय, शासनके समय राजाको उचित है कि नौकरोंको, पुत्रोंको, उदासीन जनोंको, प्रिय अप्रिय पुरुषोंको समान दृष्टिसे देखै ॥ १९ ॥

स्वयंचेत्कृतपापःस्यात्पीड़येदकृतांहसः।
उपवासैश्चदानैस्तान्परितोष्यविशुद्ध्यति ॥ २० ॥

अर्थ-राजा यदि स्वयं पाप करैतो उपवास करके शुद्ध होसक्ताहै निरपराधी पुरुषोंको दण्ड देनेसे राजा दानसे उन निरपराधी पुरुषोंको संतुष्ट करके पापसे छूट सक्ता है ॥ २० ॥

वधार्हंमन्यमानःस्वंकृतपापोनराधिपः ।
त्यक्त्वाराज्यंवनंप्राप्यतपसात्मानमुद्धरेत् ॥२१॥

अर्थ-यदि राजाने ऐसा पाप कियाहो कि जिस्से वह स्वयं वध-दण्ड योग्य हो तौ वह राज्य त्याग वनमें जाय तपकरके अपना उद्धार करै ॥ २१ ॥

गुरुदण्डंनैवराजाविदध्याल्लघुपापिषु ।
नलघुंगुरुपापेषुविनाहेतुंविपर्य्यये ॥ २२ ॥

अर्थ-विना किसी विशेष कारणके थोडे पापमें बडा दण्ड या बडे पापमें लघु दंड राजाको न देना चाहिये।यदि विशेष कारण हो तौ इस विषयके विपरीत कर सक्ताहै ॥ २२ ॥

तस्मिन्यच्छासनेशास्याअनेकोन्मार्गवर्त्तिनः ।
पापेभ्योनिर्भयेशस्तोलघुपापेगुरुर्दमः ॥ २३ ॥

अर्थ-जो पुरुष पापकर्म करनेमें निर्भय है अर्थात् जिस पुरुषने वारंवार पाप किया है और उस आदमीको दण्ड देनेसे यदि बहु-तसे कुमार्गी उसको देख खोटे रस्तेको छोड़ श्रेष्ठ मार्गपर आजां-य तौ ऐसी जगह छोटे पापमें बड़ा दण्ड दैना श्रेष्ठ है ॥ २३॥

सकृत्कृतापराधेनसत्रपेबहुमानिनि ! ।
पापाद्भीरौप्रशस्तःस्याद्गुरुपापेलघुर्दमः ॥ २४ ॥

अर्थ-जिस पुरुषने केवल एकवार अपराध किया है जो पुरुष लाजयुक्त और मानी है और जो पुरुष पापचरणसे डरता है ॥ ऐसे पुरुषका यदि बड़ा अपराध हो तो भी उसको लघुदण्ड देना चाहिये ॥ २४ ॥

स्वल्पापराधीकौलश्चेद्ब्राह्मणोलघुपापकृत् ।
बहुमान्योऽपिदण्ड्यःस्याद्वचोभिरवनीभृता ॥ २५ ॥

अर्थ-यदि बहुमानास्पद कुलवान पुरुष वा तैसा ब्राह्मणभी अल्पअपराधमें अपराधी हो तो राजाको चाहिये की उसको वचन दण्डदे ॥ २५ ॥

न्यायंदण्डंप्रसादंचविचार्य्यंसचिवैःसह ।
योकुनर्य्यान्महीपालःसमहापातकीभवेत् ॥ २६ ॥

अर्थ-मंत्रियोंके साथ विचार करके जो राजा न्यायानुसार दण्ड या पारितोषिक नहीं देता वह महापातकी है ॥ २६ ॥

नत्यजेत्पितरौपुत्रोनत्यजेयुर्नृपंप्रजाः ।
नत्यजेत्स्वामिनंभार्य्याविनातानातिपापिनः ॥ २७ ॥

अर्थ-पुत्र, पिता माताको, प्रजा राजाको और विनययुक्त भार्या स्वामीको, नहीं छोड़ सकती परन्तु यदि पिता, माता, स्वामी या राजा यह अतिपातकी हो तो इनको छोड़ दिया जासक्ता है ॥ २७ ॥

राज्यंधनंजीवनंचधार्मिकस्यमहीपतेः ।
संरक्षेयुःप्रजायत्नैरन्यथायान्त्यधोगतिम् ॥ २८ ॥

अर्थ-धर्मात्मा राजाके राज्य, धन और जीवनकी रक्षा यत्नके साथ प्रजाको करनी चाहिये । इसके विपरीत करनेसे नरकगामी होना पडता है ॥ २८ ॥

मातरंभगिनींश्चापितथादुहितरंशिवे ! ।
गन्तारोज्ञानतोयेचमहागुरुनिघातकाः ॥ २९ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जो जान बूझकर मातृगमन, भगिनीगमन या कन्यागमन करते हैं, जो जान बूझकर महागुरूकी हत्या करते हैं २९

कुलधर्म्मंसमाश्रित्यपुनस्त्यक्तकुलक्रियाः ।
विश्वासघातिनोलोकाअतिपातकिनःस्मृताः ॥ ३० ॥

अर्थ–जो लोग कुलधर्म ग्रहण करके फिर कुलकी क्रियाके अनुष्ठानको छोड़ देते हैं जो लोगोंसे विश्वासघात करा करते हैं वह सबही पातकी हैं ॥ ३० ॥

मातरंभगिनींकन्यांगच्छतोनिधनंदमः ।
तासामपिसकामानांतदेवविहितंशिवे ! ॥ ३१ ॥

अर्थ–हे शिवे ! मातृगमन, भगिनीगमन वा कन्यागमन करनें वालेको और सकाम हुई उन स्त्रियोंकोभी प्राणदण्ड देना चाहिये ॥ ३१ ॥

मातापितृष्वसुस्तल्पंस्नुषांश्वश्रूंगुरुस्त्रियम् ।
पितामहस्यवनितांतथामातामहस्यच ॥ ३२ ॥

अर्थ–जो पुरुष सौतेलीमाके पास जाय, बुआके पास जाय, जो पुरुष पुत्रवधूके पास जाय, जो सासके पास जाय, जो गुरुपत्नीके पास जाय दादी पास जाय, नानीके पास जाय॥ ३२ ॥

पित्रोर्भ्रातुःसुतांजायांभ्रातुःपत्नींसुतामपि ।
भागिनेयींप्रभोःपत्नींतनयांश्चकुमारिकाम् ॥ ३३ ॥

अर्थ–जो पुरुष चचाकी बेटी, या मामाकी बेटीके पास जाय जो पुरुष चाची या मामीके पास जाय । जो पुरुष भाभीया भतीजीसे भोग करै, जो पुरुष भाजनीका संग करै, जो पुरुष स्वामीकी स्त्रिया कन्यासै संग करै जो पुरुष क्वारीसै रमण करै ॥ ३३॥

गच्छतांपापिनांलिङ्गच्छेदोदण्डोविधीयते ।
गृहान्निर्य्यापणंचैवपापादस्माद्विमुक्तये ॥ ३४॥

अर्थ–इन पापियोंके उपस्थके कटवानेका दण्ड विधिमें कहा है, यदि ये कामानियेंभी सकामा हो, तौ इनका बड़ा पाप छुटानेको नाक काटकर घरसे बाहर निकालदे ॥ ३४ ॥

सपिण्डदारतनयाःस्त्रियंविश्वासिनामपि ।
सर्वस्वहरणंकेशवपनंगच्छतोदमः ॥ ३५ ॥

अर्थ-जो पुरुष किसी सपिंडकी स्त्रीसे या कन्यासे मिलाहुआ हो जो पुरुष किसी विश्वासी पुरुषकी स्त्रीसे गमन करै, राजाको चाहिये की उसका सब मालमता छीन शिर मुँड़ाकर छोड़दे॥३५॥

स्त्रीभिरेताभिरज्ञानाद्भवेत्परिणयोयदि ।
ब्राह्मेणवापिशैवेनज्ञात्वातास्तत्क्षणंत्यजेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ-यदि अजानतासे पहले कहे हुए सम्बंधियोंकी किसी नारीसे ब्राह्म या शैव विवाह होजाय तौ जभी यह बातज्ञातहो तभी उस स्त्रीको छोड़ना चाहिये ॥ ३६ ॥

सवर्णदारान्योगच्छेदनुलोमपरास्त्रियम् ।
दमस्तस्यधनादानंमासैकंकणभोजनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-जो पुरुष अपनी जातिकी पराई स्त्रीमें गमन करै अथवा जो पुरुष अपने आपसे नीच जातिवाली पराई स्त्रीमें गमन करै। राजाको उचित है कि उसपर यथा सम्भव अर्थदण्ड (जुरमाना) करै और एक मासतक कनभोजन करावै ॥ ३७ ॥

राजन्यवैश्यशूद्राणांसामान्यानांवरानने ।
ब्राह्मणींगच्छतांज्ञानाल्लिङ्गच्छेदोदमःस्मृतः ॥ ३८ ॥

अर्थ-हे वरानने! यदि कोई, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या साधारण जाती जान बूझकर ब्राह्मणीसे संग करै तौ उसका दंड लिंगका कटवा देना है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणींविकृतांकृत्वादेशान्निर्य्यापयेन्नृपः ।
वीरस्त्रीगामिनांतासामेवमेवदमोविधिः ॥ ३९ ॥

अर्थ-राजाको उचित है कि इस नीचगामिनी ब्राह्मणीका नाक कान या और कोई अंग काटकर वा मस्तक मुँडाय कुरूप कर अपने राज्यसे बाहर निकालदे यदि पहले कहे पुरुष वीरपत्नी-गमन करे तो उनको और वीरपत्नियोंकोभी ऐसाही दण्ड देना उचित है ॥ ३९ ॥

दुरात्मायस्तुरमतेप्रतिलोमपरास्त्रिया ।
दण्डस्तस्यधनादानंत्रिमासंकणभोजनम् ॥ ४० ॥

अर्थ-जो दुरात्मा प्रतिलोम स्त्रीका संग करे अर्थात् अधम जातिका पुरुष होकर उत्तम जातीकी स्त्रीमें रत होवे,उसका सर्वस्व हरण करके तीनमासतक कणभोजन कराके रक्खे ॥ ४० ॥

सकामायाःस्त्रियाश्चापिदण्डस्तद्वद्विधीयते ।
बलात्कारगताभार्य्यात्याज्यापाल्याभवेच्छिवे !॥४१॥

अर्थ-यदि यह स्त्रियें सकामा हों तो उनको भी ऐसाही दण्ड दे. हे शिवे! यदि किसीकी भार्यापर दूसरा कोई बलात्कार करे तो उस भार्याको छोड़तो दे, परन्तु उसका भरण पोषण करना चाहिये ॥ ४१ ॥

ब्राह्मीभार्य्याथवाशैवीकामतोवाप्यकामतः ।
सर्वथाहिपरित्याज्यास्याच्चेत्परगतासकृत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-ब्राह्मी भार्याहो, या शैवी भार्याहो, इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक हो यदि एकवारभी पर पुरुषके संसर्गसे दूषित होजाय तो उसको छोड़देना योग्य है ॥ ४२॥

गच्छतांवारनारीषुगवादिपशुयोनिषु ।
शुद्धिर्भवतिदेवेशि ! त्रिरात्रंकणभोजनात् ॥ ४३ ॥

अर्थ-हे देवेशि ! जो पुरुष वेश्यागमन करे जो पुरुष गौ छागी इत्यादि पशुयोनिमें गमन करे वह त्रिरात्री कणभोजन करके पापसे छूट सक्ता है ॥ ४३ ॥

गच्छतांकामतःपुंसःस्त्रियाःपायुंदुरात्मनाम् ।
वधएवविधातव्योभूभृताशम्भुशासनात् ॥ ४४ ॥

अर्थ-महादेवजीका शासन है कि यदि कोई मनुष्य पुरुष अथवा स्त्रीके गुह्यदेशमें गमन करे राजाको चाहिये कि उसको वध दण्ड देवे ॥ ४४ ॥

बलात्कारेणयोगच्छेदपिचाण्डालयोषितम् ।
वधस्तस्याविधातव्योनक्षन्तव्यःकदापिसः ॥ ४५ ॥

अर्थ-यदि कोई पुरुष बलात्कार करके चाण्डालकन्यासेभी संसर्ग करे तो उसको भी वध दण्डदे । बलात्कारमें यह समझकर कि चाण्डालकन्यासे संसर्ग किया है, क्षमा नहीं करना चाहिये ॥४५॥

परिणीतास्तुयानार्य्योब्राह्मैर्वाशैववर्त्मभिः ।
ताएवदाराविज्ञेयाअन्याःसर्वाःपरस्त्रियः ॥ ४६ ॥

अर्थ-जो कन्या ब्राह्मविवाहसे या शैवविवाहसे व्याही गई है । वही भार्या है और सब परस्त्री हैं ॥ ४६ ॥

कामात्परस्त्रियंपश्यन्रहःसम्भाषयन्स्पृशन् ।
परिष्वज्योपवासेनविशुध्येद्विगुणक्रमात् ॥ ४७ ॥

अर्थ-जो पुरुष सकाम होकर पराई स्त्रीको देखै वह एक दिन उपवास करके शुद्धहो जायगा,जो पुरुष सकाम होकर पराई स्त्रीके साथ अकेलेमें बात चीत करै वह दोदिन उपवास करै और जो पुरुष पराई स्त्रीको छूए वह चारदिन उपवास करै, जो पुरुष पराई स्त्रीको चिपटावै वह आठदिनतक उपवास करै तब शुद्ध होगा ४७

कुर्वत्येवंसकामायापरपुंसाकुलाङ्गना ।
उक्तोपवासविधिनास्वात्मानंपरिशोधयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ-जो कुलाङ्गना सकामा होकर परपुरुषको दर्शन करै परपुरुषसे बातचीत करै, परपुरुषको छुए २ परपुरुषको आलिंगन करै

वह स्त्रीभी यथाक्रमसे एकदिन, दोदिन, चारदिन, और आठदिन उपवास करके शुद्ध होसक्ती है ॥ ४८ ॥

ब्रुवन्निन्द्यंवचःस्त्रीषुपश्यन्गुह्यंपरस्त्रियाः ।
हसन्गुरुतरंमर्त्यःशुध्येद्द्विरुपवासतः ॥ ४९ ॥

अर्थ–जो पुरुष स्त्रियोंसे अश्लीलताके वचन कहै,जो पुरुष स्त्रियोंके गुप्तस्थानको देखै,जो पुरुष स्त्रियोंको देख ठठायकर हंसै वह दोदिन उपवास करके शुद्ध हो सक्ता है ॥ ४९॥

दर्शयन्नग्नमात्मानंकुर्वन्नग्नंतथापरम् ।
त्रिरात्रमशनंत्यक्त्वाशुद्धोभवतिमानवः ॥ ५० ॥

अर्थ–जो पुरुष किसीके सामने नंगाहो अथवा जो पुरुष किसी औरको नंगा करै वह तीन दिनतक उपास करके शुद्धहो सक्ता है ॥ ५० ॥

पत्न्याःपराभिगमनंप्रमाणयतिचेत्पतिः ।
नृपस्तदातांतज्जारंशास्याच्छास्त्रानुसारतः ॥ ५१ ॥

अर्थ–यदि कोई पुरुष ऐसा प्रमाण कर सकै की उसकी स्त्रीने परपुरुषके साथ संसर्ग किया है तब राजाको उचित है कि उस स्त्रीको और उसके यारको शास्त्रानुसार पहले कहे लिंगछेदनादि दण्डदे ॥ ५१ ॥

प्रमाणेयद्यशक्तःस्याद्दयितोपपतेःपतिः ।
त्यक्त्वातांपोषयेद्ग्रासैस्तिष्ठेच्चेत्पतिशासने ॥ ५२ ॥

अर्थ–यदि अपनी स्त्रीका उपपतिसे संसर्ग करना प्रमाणित न करसके तो भी उस स्त्रीको त्याग कर सक्ता है, परन्तु यदि यह स्त्री पतिकी आज्ञामें रहे तो पतिको चाहिये की उसका भरण पोषण करे ॥ ५२ ॥

रममाणामुपपतौपश्यन्पत्नींपतिस्तदा ।
निघ्नन्वनितयाजारंवधार्हौनैवभूभृतः ॥ ५३ ॥

अर्थ-यदि स्वामी अपनी स्त्रीको उपपतिके साथ रति करता हुआ देखले और यदि वह (स्वामी) उस समयमें उस व्यभिचारिणी स्त्रीको और उसके उपपतिको मारडाले तो राजा उसका वधदंड (या और कोई दंड) न करै ॥ ५३ ॥

भर्त्तुर्निवारणंयत्रगमनेयेनभाषणे ।
प्रयाणाद्भाषणात्तत्रत्यागार्हास्यात्कुलाङ्गना ॥ ५४ ॥

अर्थ-स्वामी जहांपर जानेको निषेध करै । या जिसके साथ बात चीत करनेको मना करे यदि कुलकामिनी अपनी स्वामीकी सम्मतिके विना उस स्थानमें जाय या उस पुरुषसे बात करै तो स्वामीको चाहिये कि उसको छोड़दे ॥ ५४ ॥

मृतेपत्यौस्वधर्म्मेणपतिबन्धुवशेस्थिता ।
अभावेपितृबन्धूनांतिष्ठन्तीदायमर्हति ॥ ५५ ॥

अर्थ-स्वामीकी मृत्यु होने पर यदि विधवा भार्या पतिबंधुओंके वशमें रहकर अपने धर्ममें रहै अथवा पतिबंधुके न रहनेपर पितृकुलमें रहकर अपना धर्म पालन करै तो वह स्वामीकी स्थावर अस्थावर सब संपत्तियोंको पासक्ती है ॥ ५५ ॥

द्विर्भोजनंपरान्नंचमैथुनामिषदूषणम् ।
पर्य्यङ्कंरक्तवासश्चविधवापरिवर्जयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ-दो वार भोजन, परान्नभोजन, मैथुन, मांसभोजन, भूषण पहरना, पलंगपर लेटना, लाल वस्त्र पहरना, विधवाको इन वस्तुओंका व्यवहार छोड़ देना चाहिये ॥ ५६ ॥

नाङ्गमुद्वर्त्तयेद्ग्रासैर्ग्राम्यालापमपित्यजेत् ।
देवव्रतान्नयेत्कालंवैधव्यंधर्म्ममाश्रिता ॥ ५७ ॥

अर्थ-विधवा स्त्रीको सुगन्धित तेल नहीं लगाना चाहिये अथवा सुगन्धित द्रव्यसे शरीरको नहीं मलना चाहिये ग्राम्य आलाप छोड़ देना उचितहै, परन्तु विधवाका कर्तव्य है कि अपने वैधव्य धर्मका अवलंबन कर सदा देवपूजामें निरत रहै और व्रतपरायण होकर समय बितावै ॥ ५७ ॥

नविद्यतेपितायस्यशिशोर्मातापितामहः ।
नियतंपालनेतस्यमातृबन्धुःप्रशस्यते ॥ ५८ ॥

अर्थ-जिस बालकके माता पिता नहीं और दादाभी नहीं हो तो माताके कुलमें मातृबंधुद्वाराही उसका पालन श्रेष्ठ है ॥५८॥

मातुर्मातापिताभ्रातामातुर्भ्रातुःसुतास्तथा ।
मातुःपितुःसोदराश्चविज्ञेयामातृबान्धवाः ॥ ५९ ॥

अर्थ-नानी, नाना, मामा, मामाका बेटा और नानाका भाई इत्यादि यह मातृबंधु हैं ॥ ५९ ॥

पितुर्मातापिताभ्रातापितुर्भ्रातुःस्वसुःसुताः ।
पितुःपितुःसोदराश्चविज्ञेयाःपितृबान्धवाः ॥ ६० ॥

अर्थ-दादी: चचा, चचाकी बेटी पितृष्वस्रेय (बुआका लडका) दादाका भाई इत्यादिको पितृबंधु कहा जाता है ॥ ६० ॥

पत्युर्मातापिताभ्रातापत्युर्भ्रातुःस्वसुःसुताः ।
पत्युःपितुःसोदराश्चविज्ञेयाःपतिबान्धवाः ॥ ६१ ॥

अर्थ-स्वामीकी माता, श्वशुर, देवर, भईयेका श्वशुर, देवरका पुत्र स्वामीकी बहनका पुत्र, श्वशुरका भाई इत्यादि यह पतिके बन्धु कहलाते हैं ॥ ६१ ॥

पित्रेमात्रेपितुःपित्रेपितामह्यैतथास्त्रियै ।
अयोग्यसूनवेपुत्रहीनमातामहायच ॥ ६२ ॥

अर्थ–पिता, माता, दादा, दादी, पत्नी, अयोग्य पुत्र, पुत्रहीन मातामह ॥ ६२ ॥

मातामह्यैदरिद्रेभ्योयेभ्योवासस्तथाशनम् ।
दापयेन्नृपतिःपुंसायथाविभवमम्बिके ! ॥ ६३ ॥

अर्थ–पुत्रहीन नानी यह लोग यदि दरिद्री हों तो राजा इनको वित्तानुसार अन्न वस्त्र दिलावे ॥ ६३ ॥

दुर्वाच्यंकथयन्पत्नीमेकाहमशनंत्यजेत् ।
त्र्यहंसन्ताड़यन्रक्तंपातयन्सप्तवासरान् ॥ ६४ ॥

अर्थ–यदि कोई भार्याको कुवचन कहै तो उसे एकदिन उपवास करना चाहिये यदि कोई पत्नीको मारे तो उसै तीनराततक उपवास करना चाहिये यदि कोई प्रहार करके भार्याके रुधिर निकाले तो उसे सातदिनतक उपवास करना चाहिये ॥ ६४ ॥

क्रोधाद्वामोहतोभार्य्यांमातरंभगिनींसुताम् ।
वदन्नुपोष्यसप्ताहंविशुध्येच्छिवशासनात् ॥ ६५ ॥

अर्थ–यदि कोई क्रोधसे या मोहसे भार्याको "माता" कहै, बहन कहै " कन्या " कहै तो शिवकी आज्ञा है कि उसको सातरात उपवास करना चाहिये ॥ ६५ ॥

षण्ढेनोद्वाहितांकन्यांकालातीतेपिपार्थिवः ।
जानन्नुद्वाहयेद्भूयोविधिरेषशिवोदितः ॥ ६६ ॥

अर्थ–शिवका विधानहै कि जो कोई कन्या नपुंसकसे व्याही जाय और बहुत दिन पिछेभी यह वृत्तान्त जाना जाय तौ राजाको उचित है कि उस कन्याका विवाह फिर करावै ॥ ६६ ॥

परिणीतानरमिताकन्यकाविधवाभवेत् ।
साप्युद्वाह्यापुनःपित्राशैवधर्मेष्वयंविधिः ॥ ६७ ॥

अर्थ-यदि कन्या विवाही जाकर पतिका संग करनेसे पहले विधवा होजाय तौ मातापिताको उसका पुनर्विवाह करदेना चाहिये शैवधर्ममें ऐसीही विधान है ॥ ६७ ॥

उद्वाहाद्द्वादशेपक्षेपत्यन्ताद्रुतहायने ।
प्रसूतेतनयंयोग्यंनसापत्नीनसःसुतः ॥ ६८ ॥

अर्थ-विवाहके पीछे बारह पक्ष अथवा छैः मासमें या पति-वियोगके पीछे एक वर्षके अन्तमें जो स्त्री परिपुष्ट सन्तान उत्पन्न करे वह भार्याभी नहींहै ॥ ६८ ॥

आगर्भात्पञ्चमासान्तर्गर्भंयास्रावयेद्धिया ।
तदुपायकृतंताञ्चयातयेत्तीव्रताडनैः ॥ ६९ ॥

अर्थ-गर्भाधानसे लेकर पांच मासके बीचमें जो नारी जान बूझकर गर्भ गिरादे उस नारीको और गर्भगिरानेका उपाय करनेवाले उस पुरुषको राजा कठिन ताड़ना देकर दंडदे ॥ ६९ ॥

पञ्चमात्परतोमासाद्यास्त्रीभ्रूणंप्रपातयेत् ।
तत्प्रयोक्तुश्चतस्याश्चपातकंस्याद्वधोद्भवम्॥ ७० ॥

अर्थ-पांच मासके पिछे जो नारी गर्भ गिरावै अथवा जो पुरुष उसका उपाय करदे वह दोनों मनुष्य वध करनेके महापापसे पातकी होंगे ॥ ७० ॥

योहन्तिज्ञानतोमर्त्यंमानवःक्रूरचेष्टितः ।
वधस्तस्यविधातव्यःसर्वथाधरणीभृता ॥ ७१ ॥

अर्थ-जो कोई निठुर दुरात्मा जान बूझ कर नरहत्या करै तौ राजा उसे मरवा डाले ॥ ७१ ॥

प्रमादाद्भ्रमतोऽज्ञानाद्घ्नन्तन्नरमरिन्दमः ।
द्रविणादानतस्तीव्रताड़नैस्तंविशोधयेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ-जो कोई पुरुष प्रमाद (पागलपन) या भ्रमसे मनुष्यको मारडालै तौ राजा उसे धनदण्ड देकर कठिन मार लगवावै ॥ ७२ ॥

स्वतोवापरतोवापिवधोपायंप्रकुर्वतः ।
अज्ञानवधिनांदण्डोविहितस्तस्यपापिनः ॥ ७३ ॥

अर्थ-जो कोई पुरुष आप या दूसरेसे अपने या दूसरेके वधका उपाय करै तौ उस पापीको वह दण्ड देना चाहिये जो लोग अनजानमें नरहत्या करनेवालेको मिलता है ॥ ७३ ॥

मिथःसङ्ग्रामयोद्धारमाततायिनमागतम् ।
निहत्यपरमेशानि ! नपापार्होभवेन्नरः ॥ ७४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! जो मनुष्य आततायी होकर आया है उसका वध करनेसे मनुष्यको पाप नहीं होता ॥ ७४ ॥

अङ्गच्छेदेविधातव्यंभूभृताङ्गनिकृन्तनम् ।
प्रहारेचप्रहरणंनृषुपापंचिकीर्षुषु ॥ ७५ ॥

अर्थ-पाप करनेवाला पुरुष यदि दूसरेका अंग काट डालै तो राजाको उसका अंग कटाना चाहिये यदि कोई पापात्मा दूसरेपर प्रहार करै तो राजाभी उसपर तैसाही प्रहार करावे ॥ ७५ ॥

विप्रान्गुरूनवगुरेत्प्रहरेद्योदुरासदः ।
धनादानाद्धस्तदाहात्क्रमतस्तंविशोधयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ-ब्राह्मण या गुरूके मारनेको जो पापात्मा लाठी इत्यादि उठावे अथवा जो पुरुष इनको मारे राजाको उचित है कि उसकी धन सम्पत्ति लेकर उसके हाथ जलादे ॥ ७६ ॥

शस्त्रादिक्षतकायस्यषण्मासात्परतोमृतौ ।
प्रहर्त्तादण्डनीयःस्याद्वधार्होनहिभूभृतः ॥ ७७ ॥

अर्थ-यदि किसीका शरीर शस्त्रादिसे घायल होजाय और यह घायल छैः मासके पीछे मरे तो प्रहार करनेंवालेको दण्ड होगा, परन्तु वध दंड नहीं ॥ ७७ ॥

राष्ट्रविप्लाविनोराज्यंजिहीर्षोंर्नृपवैरिणाम् ।
रहोहितैषिणोभृत्याद्भेदकान्नृपसैन्ययोः ॥ ७८ ॥

अर्थ-जो लोग विद्रोही हैं, जो लोग राज्यको छोड़ना चाहते हैं, जो लोग छिपे हुए शत्रु राजाओंका हित चाहते हैं, जो लोग राजाके साथ सैनाका भेद करा देते हैं ॥ ७८ ॥

योद्धुमिच्छुःप्रजाराज्ञाशास्त्रिणःपान्थपीड़कान् ।
हत्वानरपातिस्त्वेतान्नैवकिल्बिषभाग्भवेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ-जो प्रजा युद्ध करना चाहती है, जो लोग शस्त्र धारण कर यात्रियों पर अत्याचार करते हैं इन सबका नाश करनेसे राजा पापका भागी नहीं होता ॥ ७९ ॥

योहन्यान्मानवंभर्त्तुराज्ञयापरिहार्य्यया ।
भर्त्तुरेववधस्तत्रप्रहर्त्तुर्नशिवाज्ञया ॥ ८० ॥

अर्थ-शिवजीकी आज्ञा है कि जो पुरुष स्वामीकी न उलंघन करने योग्य आज्ञाके अनुसार किसी मनुष्यको मारडालै तो उसे नर हत्याका पाप नहीं होगा वरन आज्ञा देनेवालेको पापका भागी होना पड़ैगा ॥ ८० ॥

अयत्नपुंसःपशुनाशस्त्रैर्वाम्रियतेनरः ।
धनदण्डेनवाकायदमेनास्यविशोधनम् ॥ ८१ ॥

अर्थ-यदि किसीकी असावधानीसे अस्त्रकरके वा पशुसे दूसरे-की मृत्यु होजाय तौ धनदंडसे उसका पाप टूटैगा ॥ ८१ ॥

बहिर्म्मुखान्नृपाज्ञासुनृपाग्रप्रौढवादिनः ।
दूषकान्कुलधर्म्माणांशास्याद्राजाविगर्हितान् ॥ ८२ ॥

अर्थ-जो लोग राजाकी आज्ञाका पालन नहीं करते जो लोग राजाके सामने ढीठता करते हैं जो कुलधर्मके दूषक हैं राजाको उचित है कि इन सबको दंड देवै ॥ ८२ ॥

स्थाप्यापहारिणंक्रूरंवञ्चकंभेदकारिणम् ।
विवादयन्तंलोकांश्चदेशान्निर्य्यापयेन्नृपः ॥ ८३ ॥

अर्थ-जो पुरुष धरोहरके धनको हरले, जो क्रूर और धोखा देनेवाला हो जो आदमियोंमें परस्पर वैमनस्यता और झगड़ा उत्पन्न करादे राजाको उचित है कि ऐसे आदमीयोंको देशसे निकाला देवै ॥ ८३ ॥

शुल्केनकन्यांदातृंश्चपुत्रंषण्ढेप्रयच्छतः ।
देशान्निर्य्यापयेद्राजापतितान्दुष्कृतात्मनः ॥ ८४ ॥

अर्थ-जो मनुष्य शुल्क ग्रहण करके कन्या या पुत्रका दान करते हैं अथवा नपुंसकको कन्याका दान करते हैं राजा उन पतित पापियोंको निकालदे ॥ ८४ ॥

मिथ्यापवादव्याजेनपरानिष्टंचिकीर्षवः ।
यथापराधंतेशास्याधर्म्मज्ञेनमहीभृता ॥ ८५ ॥

अर्थ-जो लोग झूठ तोहमत लगाकर पराया बुरा करनेकी अभिलाषा करै धर्मवान राजा अपवादके अनुसार उसको यथा-योग्य दंडदे ॥ ८५ ॥

योयत्परिमितानिष्टंकुर्य्यात्तत्सम्मितंधनम् ।
नृपतिर्दापयेत्तेनजनायानिष्टभागिने ॥ ८६ ॥

अर्थ-जो मनुष्य जितना अनिष्ट करै उतनाही धनदण्ड करके अनिष्टपद भोगनेवाले मनुष्यको वह देदे ॥ ८६ ॥

---

१ यथापवादम् इति वा पाठः ।

मणिमुक्ताहिरण्यादिधातूनांस्तेयकारिणः ।
करस्यबाह्वोश्छेदोवाकार्य्योमूल्यंविचारयन् ॥ ८७ ॥

अर्थ–जो लोग मणि, मुक्ता या सुवर्णादि धातु चुरावे राजा मोलका विचार कर उनके हाथ (पंजे) या दोनों बाहें कटवादे ॥ ८७ ॥

महिषाश्वगवादीनांरत्नादीनांतथाशिशोः ।
बलेनापहृतांनृणांस्तेयिवद्विहितोदमः ॥ ८८ ॥

अर्थ–जो लोग बलात्कारसे भैंस, घोड़ा, गाय इत्यादि पशु सुवर्णादि धातु द्रव्य या छोटे बच्चेको चुरावैं राजाको उचित है कि उनको चोरोंकी समान दंडदे ॥ ८८ ॥

अन्नानामल्पमूल्यस्यवस्तुनःस्तेयिनंनृपः ।
विशोधयेत्तंपक्षैकंसप्ताहंवाशयन्कणम् ॥ ८९ ॥

अर्थ–जो पुरुष अन्न या थोड़े मोलका पदार्थ चुरावे राजाको चाहिये कि उसको एक पक्ष वा सप्ताहतक कणभोजन कराकर शुद्ध करे ॥ ८९ ॥

विश्वासघातकेपुंसिकृतघ्नेसुरवन्दिते ! ।
यज्ञैर्व्रतैस्तपोदानैःप्रायश्चित्तैर्नेनिष्कृतिः ॥ ९० ॥

अर्थ–हे सुरपूजिते ! जो विश्वासघाती और कृतघ्नी हैं वह यज्ञ, व्रत, तप, दान, या कोईभी प्रायश्चित्त करें, उनका छुटकारा किसी प्रकारसे नहीं ॥ ९० ॥

येकूटसाक्षिणोमर्त्त्यामध्यस्थाःपक्षपातिनः ।
शास्यात्तांस्तीव्रदण्डेनदेशान्निर्य्यापयेन्नृपः ॥ ९१ ॥

अर्थ–जो मनुष्य कूटसाक्षी हैं जो बिचउये बनकर पक्षपात

करते हैं, राजाको उचित है की उन्हैं तीव्र दण्ड देकर देशसे निकालदे ॥ ९१ ॥

षट्साक्षिणःप्रमाणंस्युश्चत्वारस्त्रयएववा ।
अभावेद्वावपिशिवे ! प्रसिद्धौयदिधार्म्मिकौ ॥ ९२ ॥

अर्थ–छैःचार अथवा तीन साक्षी प्रमाणमें गिने जाते हैं.हे शिवे! जो (गवाह) न मिले तो, धर्मात्मा और प्रसिद्ध दो गवाहोंके वचनभी प्रमाण हो सक्ते हैं ॥ ९२ ॥

देशतःकालतोवापितथाविषयतःप्रिये ! ।
परस्परमयुक्तश्चेदग्राह्यंसाक्षिणांवचः ॥ ९३ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! जो वह लोग पूछे जानेपर देशकाल और किसी विशेष बातके मध्य परस्पर विरोधवचन कहैं तो उन गवाहोंके वाक्य ग्रहण नहीं किये जांयगे ॥ ९३ ॥

अन्धानांवाक्प्रमाणंस्याद्बधिराणांतथाप्रिये ! ।
मूकानामेड़मूकानांशिरसाङ्गीकृतिर्लिपिः ॥ ९४ ॥

अर्थ--साक्षीमें अंधे और बहरोंके वचन प्रमाणित गिने जांयगे । जो गूंगेहै एडमूक (कानहीन और वाचाशक्ति हीन) हैं उनका शिर हिलाना ग्रहण किया जायगा और लेख प्रमाण माना जायगा ॥ ९४ ॥

लिपिःप्रमाणंसर्वेषांसर्वत्रैवप्रशस्यते ।
विशेषाद्व्यवहारेषुनाविनश्येच्चिरंयतः ॥ ९५ ॥

अर्थ–सब स्थानोंमें सबके लियेही लेखका प्रमाण श्रेष्ठ है, विशेष करके व्यवहारमें यह सब प्रकारसे श्रेष्ठ है क्यों कि यह बहुत कालमेंभी नष्ट नहीं होता ॥ ९५ ॥

स्वीयार्थमपरार्थंश्चेत्कुर्वतःकल्पितांलिपिम् ।
दण्डस्तस्यविधातव्योद्विपाद्यंकूटसाक्षिणः ॥ ९६ ॥

अर्थ-जो पुरुष अपने लिये या पराये लिये कल्पित लिपि (जाल) बनावै, उस कूटसाक्षी (जालसाज) को दूना दण्ड होवे अर्थात् ऐसे पुरुषोंका मालमता छीन कठिन दंड देकर देशसे निकालदे ॥ ९६ ॥

अभ्रमस्याप्रमत्तस्ययदङ्गीकरणंसकृत् ।
स्वीयार्थेतत्प्रमाणंस्याद्बचसोबहुसाक्षिणाम् ॥ ९७ ॥

अर्थ-जो पुरुष भ्रम और प्रमादसे रहितहो यह यदि किसी अपनी वातको केवल एकवार अंगीकार करले तौ उसका प्रमाण बहुत साक्षीयोंके वचनोंसे भी प्रबल होगा ॥ ९७ ॥

यथातिष्ठन्तिपुण्यानिसत्यमाश्रित्यपार्वति ! ।
तथानृतंसमाश्रित्यपातकान्यखिलान्यपि ॥ ९८ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! जिस प्रकार सत्यमें सब पुण्य रहते हैं, तैसेही झूंटमें समस्त पातक रहते हैं ॥ ९८ ॥

अतःसत्यविहीनस्यसर्वपापाश्रयस्यच ।
ताडनाद्दमनाद्राजानपापार्हःशिवाज्ञया ॥ ९९ ॥

अर्थ-अतएव सत्यहीन पुरुष सब पापोंका आश्रय है । शिवकी आज्ञा है कि ऐसे पापात्माका ताड़न और दमन करनेसे राजाको पाप नहीं होता ॥ ९९ ॥

सत्यंब्रवीमिसङ्कल्प्यस्पृष्ट्वाकौलंगुरुंद्विजम् ।
गंगातोयंदेवमूर्त्तिकुलशास्त्रंकुलामृतम् ॥ १०० ॥

अर्थ-मैं जो कुछ कहूंगा " सत्यकहूंगा " ऐसा संकल्प करके कौल गुरू ब्राह्मण, गंगाजल, देवमूर्ति, कुलशास्त्र, कुलामृत ॥ १०० ॥

देवनिर्म्माल्यमथवाकथनंशपथोभवेत् ।
तत्रानृतंवदन्मर्त्यःकल्पान्तंनरकंव्रजेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ-देव, निर्माल्य इन सबको स्पर्श करके जो कहाजाय, उसको नाम शपथ है। जो पुरुष इस शपथको करके मिथ्यावचन कहैगा उसका वास एक कल्पतक नरकमें रहैगा ॥ १०१ ॥

अपापजनिकार्य्याणांत्यागेवाग्रहणेऽपिवा ।
तत्कार्य्यंसर्वथामर्त्यैःस्वीकृतंशपथेनयत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-जो कार्य शपथ करके स्वीकार कियागया है, वह कार्य यदि वैसा पापजनक न हो तो उसके करने या न करनेमें अंगीकारके अनुसार कार्य करना पड़ैगा ॥ १०२ ॥

स्वीकारोल्लङ्घनाच्छुध्येत्पक्षमेकमभोजनैः ।
भ्रमेणापितमुल्लङ्घ्यद्वादशाहंकणाशनैः ॥ १०३ ॥

अर्थ-जो पुरुष पहले अंगीकार करके फिर लंघनकर जाताहै, वह एकपक्ष अनाहार रहकर उस पापसे छूटसक्ता है। जो भ्रमसे अंगीकारको लांघ जाय वह बारह दिनतक कण खाय तब शुद्ध होसक्ताहै ॥ १०३ ॥

कुलधर्म्मोऽपिसत्येनविधिनाचेन्नसेवितः ।
मोक्षायश्रेयसेनस्यात्कौलेपापायकेवलम् ॥ १०४ ॥

अर्थ-और वात तो दूर रहै जो पुरुष सत्यका आश्रय लेकर कुलधर्मकी सेवा नहीं करता है उसका वह बल धर्म मोक्ष दायक नहीं होता केवल पापजनक होता है ॥ १०४ ॥

सुराद्रवमयीताराजीवनिस्तारकारिणी ।
जननीभोगमोक्षाणांनाशिनीविपदांरुजाम् ॥ १०५ ॥

अर्थ-सुराद्रव्यमयी स्वयं भगवती तारा है। इसकारणसे प्राणियोंका निस्तार होताहै सुरा भोग और मोक्षकी कारण है। सुरा

रोगका नाश करनेवाली और विपत्तिसे उद्धार करनेवाली होती है ॥ १०५ ॥

दाहिनीपापसङ्घानांपावनीजगतांप्रिये ! ।
सर्वसिद्धिप्रदाज्ञानबुद्धिविद्याविवर्द्धिनी ॥ १०६ ॥

अर्थ-हे प्रिये! सुरासे पापके समूह भस्महो जाते हैं सुरा संसारको पवित्र करती है, सुरासे सब कार्य सिद्धहो जाते हैं सुरासे ज्ञान, बुद्धि, विद्याकी वृद्धि होती है ॥ १०६ ॥

मुक्तैर्मुमुक्षुभिःसिद्धैःसाधकैःक्षितिपालकैः ।
सेव्यतेसर्वदादेवैराद्ये!स्वाभीष्टसिद्धये ॥१०७॥

अर्थ-हे आद्ये! मुक्त,मुमुक्षु और सिद्ध योगी गण, साधक गण, भूपालगण और देवता लोग अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये सदा इस सुराका सेवन करते हैं ॥ १०७ ॥

सम्यग्विधिविधानेनसुसमाहितचेतसा ।
पिबन्तिमदिरांमर्त्त्याअमर्त्त्याएवतेक्षितौ ॥ १०८ ॥

अर्थ-जो लोग उत्तम और सावधानहृदय हो विधिके अनुसार मदिराको पीतेहैं वह मनुष्य नहीं,बरन पृथ्वीपर रहनेवाले देवताहैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १०८ ॥

प्रत्येकतत्त्वस्वीकाराद्विधिनास्याच्छिवोनरः ।
नजानेपञ्चतत्त्वानांसेवनात्किंफलंभवेत् ॥ १०९ ॥

अर्थ-इस पंचतत्वमें यदि कोई विधिविधानसे एक तत्वकाभी सेवन करता है तो वह निःसन्देह साक्षात् शिवहै, परन्तु पंच तत्वके सेवन करनेसे जो फल होता है उसको हम नहीं कहसकते ॥ १०९ ॥

इयञ्चेद्वारुणीदेवीनिपीताविधिवर्जिता ।
नृणांविनाशयेत्सर्व्वंबुद्धिमायुर्यशोधनम् ॥ ११० ॥

अर्थ-जो विधिविधानके विना वारुणी देवीकी सेवा की जाय तौ यह मनुष्यकी बुद्धि, आयु, यश, धन सबकोही नाश कर देतीहै ॥ ११० ॥

अत्यन्तपानान्मद्यस्यचतुर्वर्गप्रसाधनी ।
बुद्धिर्विनश्यतिप्रायोलोकानांमत्तचेतसाम् ॥ १११ ॥

अर्थ-जो लोग अत्यन्त सुरापान करके हैं मतवाले हो जातेहैं, उनके हृदयमें भ्रमसा पडजाता है उनकी बुद्धि कि जिस्से चारोंवर्ग प्राप्त होजाते हैं; बहुधा कलुषित और नष्ट होती है ॥ १११ ॥

विभ्रान्तबुद्धेर्म्मनुजात्कार्य्याकार्य्यमजानतः ।
स्वानिष्टंचपरानिष्टंजायतेऽस्मात्पदेपदे ॥ ११२ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी बुद्धि बिडग गई है जो पुरुष कर्तव्याकर्तव्य और हिताहितका ज्ञान नहीं रखता उससे पग २ पर अपना और पराया बुरा हुआ करता है ॥ ११२ ॥

अतोनृपोवाचक्रेशोमद्येमादकवस्तुषु ।
अत्यासक्तजनान्कायधनदण्डेनशोधयेत् ॥ ११३ ॥

अर्थ-इस कारण जो लोग मद्य या मादक वस्तुमें अत्यन्त आसक्त हैं राजाको या चक्रेश्वरको चाहिये कि उन्हें शारीरिक दंड या अर्थ दण्डदे ॥ ११३ ॥

सुराभेदाद्व्यक्तिभेदान्न्यूनेनाप्यधिकेनवा ।
देशकालविभेदेनबुद्धिभ्रंशोभवेन्नृणाम् ॥११४॥

अर्थ-सुरा अधिक पीजाय वा थोडी पीजाय सुराके भेदसे, मनुष्यभेदसे देश और कालके भेदसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है ११४

अतएवसुरामानादतिपानंनलक्ष्यते ।
स्खलद्वाक्पाणिपादहग्भ्रमरतिपानंविचारयेत् ॥११५॥

अर्थ-इस कारण लड़खडाति हुए बोल, डोलतेहुए हाथ और स्खलित पांव वा चंचल दृष्टिसे अधिक पान विचार करें क्यों कि सुरापानके अनुसार अतिपान नहीं देखाजाता ॥ ११५ ॥

नेन्द्रियाणिवशेयस्यमदविह्वलचेतसः ।
देवतागुरुमर्य्यादोल्लंघिनोभयरूपिणः ॥ ११६ ॥

अर्थ-सब इन्द्रियां जिसके वशमें नहीं हैं जिसका चित्त मदसे विह्वल होरहा है जो पुरुष मत्तताके मारे देवता और गुरूकी मर्यादाका लांघता है, जिसकी मतवाली अवस्था देखकर भय होताहै॥ ११६॥

निखिलानर्थयोग्यस्यपापिनःशिवघातिनः ।
दहेज्जिह्वांहरेदर्थांस्ताडयेत्तंचपार्थिवः ॥ ११७ ॥

अर्थ-जो पुरुष सब अनर्थोंकी खानी है वह पुरुष पापात्मा और शिवघातीहै राजा उसका धन छीनकर जीभ जलवादे और उसकी ताडना करे ॥ ११७ ॥

विचलत्पादवाक्पाणिंभ्रान्तमुन्मत्तमुद्धतम् ।
तमुग्रंयातयेद्राजाद्रविणंचाहरेत्ततः ॥ ११८ ॥

अर्थ-जिसके पांव वाक्य और हाथ विचलते रहैं जो पुरुष भ्रमयुक्त उन्मत्त ऊधमी और अविनीतहो उस पुरुषको राजा दंड देवे और उसकी सब सम्पत्ति हरण करले ॥ ११८ ॥

अपवाग्वादिनंमत्तंलज्जाभयविवर्ज्जितम् ।
धनादानेनतंशास्यात्प्रजाप्रीतिकरोनृपः ॥ ११९ ॥

अर्थ-जो पुरुष मतवाला होकर अश्लील या अयुक्त वचन कहे अथवा लाज भयरहित हो जाय प्रजाका रंजन करनेवाला राजा उसका धन ग्रहण करके उसे दण्डदेवे ॥ ११९ ॥

शताभिषिक्तःकौलश्चेदतिपानात्कुलेश्वरि ! ।
पशुरेवसमन्तव्यःकुलधर्म्मबहिष्कृतः ॥ १२० ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! शताभिषिक्त कौलपुरुष यदि अतिपानके दोषदूषित हो तो वह कुलधर्मसे च्युत होगा और पशुमें उसकी गिनती की जायगी ॥ १२० ॥

पिबन्नतिशयंमद्यंशोधितंवाप्यशोधितम् ।
त्याज्योभवतिकौलानांदण्डनीयोऽपिभूभृतः ॥ १२१ ॥

अर्थ-शोधित या अशोधित मद्यको जो पीता है कौल पुरुषोंको चाहिये कि उसको त्याग करदें और वह राजाके निकट दंडनीय होगा ॥ १२१ ॥

ब्राह्मींभार्यांसुरांमत्ताःपाययन्तोद्विजातयः ।
शुध्येयुर्भार्ययासार्द्धंपञ्चाहंकणभोजनात् ॥ १२२ ॥

अर्थ-यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रि या वैश्य मत्त होकर ब्राह्मी भार्या अर्थात् वेदकी विधिके अनुसार व्याही हुई स्त्रीको मद्य पिलावे तो वह इस भार्याके साथ पांच दिनतक कण भोजन करके शुद्धि प्राप्त करसकेगा ॥ १२२ ॥

असंस्कृतसुरापानाच्छुध्येदुपवसंस्त्र्यहम् ।
भुक्त्वाप्यशोधितंमांसमुपवासद्वयंचरेत् ॥ १२३ ॥

अर्थ-जो कोई पुरुष विनासंस्कारकीहुई सुराको पिये तो वह तीनदिन उपवास करके शुद्ध हो सक्ता है । यदि कोई पुरुष विना शुद्ध हुआ मांस भक्षण करे तो उस पापसे छुटानेको उसे दोदिन उपवास करना चाहिये ॥ १२३ ॥

असंस्कृतेमीनमुद्रेखादन्नुपवसेदहः ।
अवैधंपञ्चमंकुर्वन्राज्ञोदण्डेनशुध्यति ॥ १२४ ॥

अर्थ-जो कोई पुरुष विना संस्कारके मत्स्य या मुद्राका भक्षण करे तो वह एकदिन उपवास करे यदि कोइ पुरुष विधिका लंघन करके पांचवे तत्वका सेवन करे तो पाप छुटानेके लिये उसको राजदंड देना चाहिये ॥ १२४ ॥

भुञ्जानोमानवंमांसंगोमांसंज्ञानतःशिवे ! ।
उपोष्यपक्षंशुद्धःस्यात्प्रायश्चित्तमिदंस्मृतम् ॥ १२५ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जो कोई पुरुष जान बूझकर मनुष्यमांस या गोमांस भक्षण करे तो उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह एकपक्ष उपवास करके शुद्धि प्राप्त करसके ॥ १२५ ॥

नराकृतिपशोर्म्मांसंमांसंमांसादनस्यच ।
अत्त्वाशुध्येन्नरःपापादुपवासैस्त्रिभिःप्रिये ! ॥ १२६ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जो मनुष्याकार पशुका मांस या मांस खानेवाले जीवका मांस भक्षण करे वह तीन दिन उपवास करके शुद्धहो सक्ता है ॥ १२६ ॥

म्लेच्छानांश्वपचानांचपशूनांकुलवैरिणाम् ।
खादन्नन्नंविशुद्धःस्यात्पक्षमेकमुपोषितः ॥ १२७ ॥

अर्थ-जो पुरुष म्लेच्छ और यवनका अन्न चाण्डालका अन्न अथवा कुलधर्मसे विद्वेष करनेवाले पशुका अन्न भोजन करे वह एकपक्षतक उपवास करके शुद्धि प्राप्त कर सक्ता है ॥ १२७ ॥

उच्छिष्टंयदिभुञ्जीतज्ञानादेषांकुलेश्वरि ! ।
शुध्येन्मासोपवासेनाज्ञानात्पक्षोपवासतः ॥ १२८ ॥

अर्थ-हे कुलेश्वरि ! जो पुरुष अजानमें उपरोक्त मनुष्योंकी जूंठ खा ले तो इस पापके छुटानेके अर्थ उसको एक पक्षतक उपवास करना चाहिये यदि कोई जानबूझकर इनकी जूंठ खायें तौ वह एकमासतक उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ १२८ ॥

अनुलोमेनवर्णानामन्नंभुक्त्वासकृत्प्रिये ! ।
दिनत्रयोपवासेनविशुद्धःस्यान्ममाज्ञया ॥ १२९ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! मेरी आज्ञा है कि यदि कोई पुरुष केवल एकवार अनुलोमजातिका भोजन करे तो वह तीनदिनतक उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ १२९ ॥

पशुश्वपचम्लेच्छानामन्नंचक्रार्पितंयदि ।
वीरहस्तार्पितंवापितदश्नन्नैवपापभाक् ॥ १३० ॥

अर्थ-यदि पशुका अन्न, श्वपचका अन्न अथवा म्लेच्छका अन्न चक्रमें अर्पण किया जावे यदि वीरपुरुष उसको हाथमें लेकर दे दे तो उसके भोजनकरनेसे कोई पापका भागी नहीं होगा॥ १३०॥

अन्नाभावेचदौर्भिक्ष्येविपदिप्राणसङ्कटे ।
निषिद्धेनादनेनापिरक्षन्प्राणान्नपातकी ॥ १३१ ॥

अर्थ-जब अन्नकी कमी हो दुर्भिक्ष होवे विपत्तीका समय हो प्राण-संकट पड रहाहो जो उस समय कोई निषिद्ध अन्न भोजन करके प्राणकी रक्षा करे तो वह पापका भागी नहीं होगा ॥ १३१ ॥

करिपृष्ठेतथानेकोद्वाह्यपाषाणदारुषु ।
अलक्षितेऽपिदूष्याणांभक्ष्यदोषोनविद्यते ॥ १३२ ॥

अर्थ-जिस पत्थरको या काठादिको एक आदमी उठाकर ले जासके तैसे काठ और पाषाणादिके ऊपर हाथीकी पीठके ऊपर और जिस स्थानमें दोषित संसर्ग दिखाईदे उस स्थानमें भोजन करलेनेसे स्पर्शदोष नहीं होता ॥ १३२ ॥

पशूनभक्ष्यमांसांश्चव्याधियुक्तानपिप्रिये ! ।
नहन्याद्देवतार्थेऽपिहत्वाचपातकीभवेत् ॥ १३३ ॥

अर्थ-जिन पशुओंका मांस अभक्ष्य है जो पशु रोगी हैं उन पशुओंका वध देवताके अर्थभी न करे यदि कोई वध करे तो पातकी होगा ॥ १३३ ॥

कृच्छ्रव्रतंनरःकुर्य्याद्गोवधेबुद्धिपूर्वके ।
अज्ञानादाचरेदर्द्धव्रतंशङ्करशासनात् ॥ १३४ ॥

अर्थ–यदि कोई पुरुष जान कर गोहत्या करे तो उसे कृच्छ्रव्रत करना चाहिये महादेवजीकी आज्ञा है कि जो कोई पुरुष अज्ञानसे गोहत्या करे तो वह अर्द्धकृच्छ्रव्रत पालन करे ॥ १३४ ॥

नकेशवपनंकुर्य्यान्ननखच्छेदनंतथा ।
नक्षारयोगंवसनेयावन्नव्रतमाचरेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ–जबतक इस व्रतका अनुष्ठान किया जाय तबतक हजामत बनवाना नख कटाना वर्जित है और वस्त्रको क्षार(साबु-नादि)से धोवे नहीं ॥ १३५ ॥

उपवासैर्नयेन्मासंमासमेकंकणाशनैः ।
मासंभैक्षान्नमश्नीयात्कृच्छ्रव्रतमिदंशिवे ! ॥ १३६ ॥

अर्थ–हे शिवे ! कृच्छ्रव्रतका नियम यह है कि एकमास उप-वास करके बितावै, एकमास कणभक्षण करके रहै, एकमास भिक्षान्न करके बितावै इसका नाम कृच्छ्रव्रत है ॥ १३६ ॥

व्रतान्तेवापितशिराःकौलाञ्ज्ञातींश्चबान्धवान् ।
भोजयित्वाविमुक्तःस्याज्ज्ञानगोवधपातकात् ॥ १३७ ॥

अर्थ–व्रत पूर्ण होनेपर मस्तक मुडवाय कुलवानोंको जाति-वालोंको और बंधु बान्धवोंको भोजन करावे तब ज्ञानकृत गोवध-जनित पातकसे छुटकारा प्राप्त कर सक्ता है ॥ १३७ ॥

अपालनवधाद्गोश्चशुध्येदष्टोपवासतः ।
बाहुजाद्याविशुध्येयुःपादन्यूनक्रमाच्छिवे ! ॥ १३८ ॥

अर्थ–हे शिवे ! अपालनकृत गोवधजनित पातकके लगनेसे आठदिन उपवास करके शुद्धहोसक्ता है, परन्तु क्षत्रीलोग छैः

दिन, वैश्य चारदिन,शूद्र दो दिनतक उपवास करके उस अपालन-कृत गोवधके उत्पन्न हुए पापसे छूट सक्ते हैं ॥ १३८ ॥

गजोष्ट्रमाहिषाश्वांश्चहत्वाकौलिनि ! कामतः ।
उपवासैस्त्रिभिःशुध्येन्मानवःकृतकिल्बिषः ॥ १३९ ॥

अर्थ-हे कुलनायिके ! इच्छानुसार हाथी, ऊंट, भैसा, घोडा इन जीवोंकी हत्या करनेसे मनुष्य पापी होगा और तीनदिनतक उपवास करके उस पापसे छूट सकेगा ॥ १३९ ॥

मृगमेषाजमार्ज्जारान्निघ्नन्नुपवसेदहः ।
मयूरशुकहंसांश्चसज्योतिरशनंत्यजेत् ॥ १४० ॥

अर्थ-जो कोई मृग, मेष, छाग और बिल्लीको मार डाले तो वह एकदिन उपवास करे. जो मोर,शुक या हंसका वध किया जाय तो सूर्यके उदयसे लेकर अस्ततक उपवास करना चाहिये ॥ १४० ॥

निहत्यसास्थिजन्तूंश्चनक्तमद्यान्निरामिषम् ।
निरस्थिजीविनोहत्वामनस्तापेनशुद्धयति ॥ १४१ ॥

अर्थ-यदि अस्थियुक्त (हड्डीदार) जीवको मारा हो तो एकरात्री निरामिष भोजन करे,यदि अस्थिहीन जीवकी हत्या करै तो केवल पछतानेसे शुद्धता प्राप्त होसक्ती है ॥ १४१ ॥

पशुमीनाण्डजान्निघ्नन्मृगयायांमहीपतिः ।
नपापाहोंभवेद्देवि ! राज्ञोधर्म्मःसनातनः ॥ १४२ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो राजा मृगयाके समय पशु, मछली या अण्डज (अंडेसे उत्पन्नहुये) जीवकी हत्या करे तो वह पापी नहीं होगा क्योंकि राजाओंका यह सनातन धर्म है ॥ १४२ ॥

देवोद्देशंविनाभद्रे ! हिंसांसर्वत्रवर्ज्जयेत् ।
कृतायांवैधहिंसायांनरःपापैर्नलिप्यते ॥ १४३ ॥

अर्थ–हे भद्रे! विना देवताके अर्थके और किसी अवसरपर हिंसा न करै,जो कोई देवतादिके लिये मृगयाके समय वा संग्राममें वैध हिंसा करे तो वह पुरुष पापी नहीं होसक्ता ॥ १४३ ॥

संकल्पितव्रतापूर्त्तौदेवनिर्म्माल्यलंघने ।
अशुचौदेवतास्पर्शेगायत्रीजपमाचरेत् ॥ १४४ ॥

अर्थ–जो कोई संकल्प कियाहुआ व्रत पूर्ण न करसकै यदि देव निर्माल्यका लंघन किया जाय जो कोई अशौचके समय देवप्रतिमाको छुवे तो उसे गायत्री जपना चाहिये ॥ १४४ ॥

मातापिताब्रह्मदातामहान्तोगुरवःस्मृताः ।
निन्दन्नेतान्वदन्क्रूरंशुद्धचेत्पञ्चोपवासतः ॥ १४५ ॥

अर्थ–माता, पिता और ब्रह्मदाता यह तीन महागुरू हैं जो पुरुष महागुरूकी निन्दा करै या महागुरूको निठुर वचन कहै वह पांच दिनतक उपवास करके शुद्ध होसक्ता है ॥ १४५ ॥

एवमन्यान्गुरून्कौलान्विप्रान्गर्हन्नपिप्रिये ! ।
सार्द्धद्वयोपवासेनमुक्तोभवतिपातकात् ॥ १४६ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! जो पुरुष इस प्रकार और गुरूकी, कुलवान् या ब्राह्मणकी निन्दा करे या उस्से घृणा करे वह अढाई दिन उपवास करके उस पातकसे छूट सक्ता है ॥ १४६ ॥

वित्तार्थीमानवोदेशानखिलान्गन्तुमर्हति ।
निषिद्धकौलिकाचारंदेशंशास्त्रमपित्यजेत् ॥ १४७ ॥

अर्थ–मनुष्यगण धन पैदा करनेके लिये चाहे जिस देशमें जा सक्ते हैं जिस देशमें वा जिस शास्त्रमें कौलाचारवर्जित हुआ है, उस देश और उस शास्त्रका त्याग कर देना चाहिये ॥ १४७ ॥

गच्छंस्तुस्वेच्छयादेशेनिषिद्धकुलवर्त्मनि।
कुलधर्म्मात्पतेद्भूयःशुध्येत्पूर्णाभिषेकतः॥ १४८॥

अर्थ-जिस देशमें कुलधर्म और कौलिकाचार वर्जित है. यदि कोई इच्छानुसार उस देशमें चलाजाय तो वह कुल-धर्मसे भ्रष्ट होगा और पूर्णाभिषेक कराय कर शुद्धि प्राप्त कर सकैगा॥ १४८॥

तपनोदयमारभ्ययामाष्टकमभोजनम्।
उपवासःसविज्ञेयःप्रायश्चित्तेविधीयते॥ १४९॥

अर्थ-प्रायश्चित्तके लिये उपवास करनेपर सूर्योदयसे लेकर आठ पहरतक अनाहार रहना चाहिये॥ १४९॥

पिबंस्तोयाञ्जलिञ्चैकंभक्षन्नपिसमीरणम्।
मानवःप्राणरक्षार्थंनभ्रश्येदुपवासतः॥ १५०॥

अर्थ-जो कोई पुरुष प्राणधारणके लिये एक अंजली जल पी लेगा अथवा वायुभक्षण करैगा वह उपवाससे भ्रष्ट नहीं होगा॥ १५०॥

उपवासासमर्थश्चेद्रुजावाजरसापिवा।
तदाप्रत्युपवासञ्चभोजयेद्द्वादशद्विजान्॥ १५१॥

अर्थ-यदि बुढ़ापे या दैहिक पीडाके मारे उपवास करनेकी समर्थ न हो तो प्रत्येक उपवासके अनुकल्प स्वरूप (बदलेमें) बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ ५१॥

परनिन्दांनिजोत्कर्षंव्यसनायुक्तभाषणम्।
अयुक्तंकर्म्मकुर्वाणोमनस्तापैर्विशुध्यति॥ १५२॥

अर्थ-जो कोई पुरुष पराई निन्दा या अपनी प्रशंसा करै अथवा जो और पराई निन्दाआदिका आन्दोलन करै या अवैध कार्य करै तो वह केवल पछताना करनेसे शुद्ध हो सक्ता है॥ १५२॥

अन्यानियानिपापानिज्ञानाज्ञानकृतान्यपि ।
नश्यन्तिजपनाद्देव्याःसावित्र्याःकौलभोजनात्॥१५३॥

अर्थ--और जो सब पाप हैं वह जानमें किये जांय या अज्ञानसे किये जांय भगवती गायत्रीका जप करके और कौल भोजन करातेही नाशको प्राप्तहो जाते हैं ॥ १५३ ॥

सामान्यनियमान्पुंसांस्त्रीषुषण्डेषुयोजयेत् ।
योषितान्तुविशेषोऽयंपतिरेकोमहागुरुः ॥ १५४ ॥

अर्थ–जो साधारण नियम पुरुषों पर प्रगट किये गये हैं वही नियम नपुंसकोंपर और स्त्रियोंपर लगेंगे । स्त्री जातिमें विशेषता यह है कि उनके लिये स्वामीही महागुरु हैं ॥ १५४ ॥

महारोगान्वितायेचयेनराश्चिररोगिणः ।
स्वर्णदानेनपूताःस्युर्दैवेपैत्र्येऽधिकारिणः ॥ १५५ ॥

अर्थ–महाव्याधीसे ग्रसित और सदाके रोगी लोग सुवर्ण दान करके पवित्रहो दैव और पैतृककर्ममें अधिकारी होंगे ॥ १५५ ॥

अपघातमृतेनापिदूषितंविद्युदग्निना ।
गृहंविशोधयेद्धोमैर्व्याहृत्याशतसंख्यकैः ॥ १५६ ॥

अर्थ–यदि किसी गृहमें सर्पाघात या उद्बंधनादि (फांसी वगैरह) से किसीकी अपमृत्यु हुई हो अथवा कोई घर बिजलीकी आगसे दूषित हुआ हो तो "भूः स्वाहा भुवः स्वाहा" इत्यादि शतव्याहृति होम करके उस गृहको शुद्ध करे ॥ १५६ ॥

वापीकूपतड़ागेषुसास्थ्यंशवनिरीक्षणात् ।
उद्धृत्यकुणपंतेभ्यस्ततस्तान्परिशोधयेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ–यदि वापी, कूप, तड़ागादिमें अस्थियुक्त शव दिखलाईदे उस वापी, कूपादिको शुद्ध करे ॥ १५७ ॥

पूर्णाभिषेकमनुभिर्म्मन्त्रितैःशुद्धवारिभिः ।
पूर्णैस्त्रिसप्तकुम्भैस्तान्प्लावयेदितिशोधनम् ॥ १५८ ॥

अर्थ-उसको शोधन करनेका विधान यह है कि इक्कीस घडे जलसे भरे हुए पूर्णाभिषेकके मंत्रसे अभिमंत्रित करकै उनको इस जलाशयमें डालदे ॥ १५८ ॥

यदिस्वल्पजलास्तेस्युःशवदुर्गन्धिदूषिताः ।
सपङ्कंसलिलंसर्वमुद्धृत्याप्लावयेत्तुतान् ॥ १५९ ॥

अर्थ-यदि इन वापी,कूपादिमें जल अल्पहो और शवकी दुर्गन्धिसे वह दूषित होगयाहो, तो उस सब जलको और कीचडको निकालकर पहले कहे हुए पूर्णाभिषेकके मंत्रसे अभिमंत्रित इक्कीस घडे शुद्धजल तिसमें डालदे ॥ १५९ ॥

सन्तिभूरीणितोयानिगजदघ्नानितेषुच ।
शतकुम्भजलोद्धारैरभिषेकेणशोधयेत् ॥ १६० ॥

अर्थ-उक्त जलाशयमें यदि गजभरके परिमाणका बहुतसा-जल हो तो उससे शतघडे जल निकालकर पहले कहेहुए मंत्रपढे इक्कीस घडे जल उसमें डालकर उसको शुद्ध करले ॥ १६० ॥

यद्येवंशोधितानस्युर्मृतस्पृष्टजलाशयाः ।
अपेयसलिलास्तेषांप्रतिष्ठामपिनाचरेत् ॥ १६१ ॥

अर्थ-सब स्पृष्टजलाशय यदि इस प्रकारसेभी शोधित नहो तो उसका जल पीना उचित नहीं और उस जलाशयकी प्रतिष्ठाभी नहीं करे ॥ १६१ ॥

स्नानमेषुजलैरेषांकुर्वन्कर्म्मवृथाभवेत् ।
दिनमेकंविनाहारःशुध्येत्पञ्चामृताशनात् ॥ १६२ ॥

अर्थ-इस जलसे स्नानकरना या किसी कर्मका करना वृथा

होजायगा जो लोग इस जलसे न्हायँगे या कोई कर्म करेंगे वह एकदिन अनाहार रहकर पंचामृत पान करनेंसे शुद्धहोगे ॥ १६२॥

याचकंधनिनंदृष्ट्वावीरंयुद्धेपराङ्मुखम् ।
दूषकंकुलधर्म्माणांमद्यपाञ्चकुलास्त्रियम् ॥ १६३ ॥

अर्थ-जो कोई धनवान होकर मांगे, जो कोई संग्राममें विमुख होजाय यदि कोई कुलधर्मपर विद्वेष दिखावे यदि कोई कुलकामिनी सुरा पिये ॥ १६३ ॥

मित्रद्रोहकरंमर्त्त्यंस्वयंपापरतंबुधम् ।
पश्यन्सूर्य्यंस्मरन्विष्णुंसचैलःस्नानमाचरेत् ॥ १६४॥

अर्थ-यदि मित्रद्रोह करे यदि कोई पंडित होकर पापका आचरण करे । ऐसे आदमियोंको जो पुरुष देखले तो वह विष्णुजीका स्मरण करे । और सूर्यका दर्शन कर तत्काल उस वस्त्रमें स्नान करके पापसे छूट सक्ता है ॥ १६४ ॥

खरकुक्कुटकोलांश्चविक्रीणन्तोद्विजातयः ।
नीचवृत्तिंचरन्तोऽपिशुध्येयुस्त्रिदिनव्रतात् ॥ १६५ ॥

अर्थ-जो द्विजातिके लोग गधे, कुक्कुट या शूकरको वेचें या और कोई नीच काम करें वह तीनादिनतक व्रत करनेसे शुद्धहोसक्ते हैं ॥ १६५ ॥

दिनमेकंनिराहारोद्वितीयंकणभोजनः ।
अपरन्तुनयेदद्भिस्त्रिदिनव्रतमाम्बिके ! ॥ १६६ ॥

अर्थ-हे अम्बिके ! तीनादिनतक व्रत करनेकी रीति यह है एक दिन अनाहार रहै एक दिन कणभोजन करे एकदिन जल पीकर रहै ॥ १६६ ॥

गृहेऽनुद्घाटितद्वारेऽनाहूतःप्रविशन्नरः ।
वारितार्थप्रवक्तापिपञ्चाहमशनंत्यजेत् ॥ १६७ ॥

अर्थ-यदि कोई विना बुलाये ऐसे गृहमें चला जाय कि जिसका द्वार बंद है अथवा उस बातको कहे कि जिसके कहनेको वर्ज दिया है तो उसे पांच दिनतक उपवास करना चाहिये ॥ १६७ ॥

आगच्छतोगुरून्दृष्ट्वानोत्तिष्ठेद्योमदान्वितः ।
तथैवकुलशास्त्राणिशुध्येदेकोपवासतः ॥ १६८ ॥

अर्थ-गुरुजनको आताहुआ देखकर जो पुरुष घमंडके मारे उठे नहीं अथवा जो पुरुष कुलशास्त्रको आताहुआ देखकर न उठै उस पापके लिये उसको एक दिन उपवास करना चाहिये ॥ १६८ ॥

एतस्मिच्छाम्भवेशास्त्रेव्यक्तार्थपदबृंहिते ।
कूटेनार्थंकल्पयन्तःपतितायान्त्यधोगतिम् ॥ १६९ ॥

अर्थ-शिवजीके बनाये हुए इस शास्त्रमें सब अर्थ भलीभांतिसे खुलेहैं जो पंडितलोग इसका कूट अर्थ करेंगे वह पतित होकर नीच गतिको प्राप्त होंगे ॥ १६९ ॥

इदंतेकथितंदेवि! सारात्सारंपरात्परम् ।
इहामुत्रार्थदंधर्म्यंपावनंहितकारकम्॥ १७० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रेसर्व्वतन्त्रोत्तमोत्तमेसर्वधर्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे स्वपरानिष्ट-
जनकपापप्रायश्चित्तकथनं नाम
एकादशउल्लासः ॥ ११ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैंनें तुमसे जो कुछभी कहा सो परसे परे सारकाभी सार धर्महै पवित्रकारक हितकारक और इसलोक व परलोकमें शुभ फलका देनेवाला है ॥ १७० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदा-
शिवसंवादे प्रायश्चित्तकथनंनाम एकादश
उल्लासः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशउल्लासः ।

श्रीसदाशिवउवाच ।

भूयस्तेकथयाम्याद्ये ! व्यवहारान्सनातनान् ।
यान्रक्षन्प्रविदन्राजास्वच्छन्दंपालयेत्प्रजाः ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहाः—हे आद्ये ! मैं फिर तुमसे सनातन व्यवहार कहताहूं ज्ञानवान् राजा इस व्यवहारके अनुसार चलकर स्वच्छन्द हो प्रजापालन करसक्ता है ॥ १ ॥

नियमेनविनाराज्ञोमानवाधनलोलुपाः ।
मिथस्तेविवदिष्यन्तिगुरुस्वजनबन्धुभिः ॥ २ ॥

अर्थ—यदि राजा नियमको स्थापन नहीं करे तो मनुष्य धनके लोभी होकर गुरुजनोंके साथ स्वजनोंके साथ और बन्धु बान्धवोंके साथ परस्पर झगड़ा करेंगे ॥ २ ॥

व्यतिघ्नन्तितदादेवि ! स्वार्थिनोवित्तहेतवे ।
पापाश्रयाभविष्यन्तिहिंसयाचजिहीर्षया ॥ ३ ॥

अर्थ—हे देवि ! राजनियमके न होनेसे मनुष्य धनके अभिलाषी होकर परस्पर एक दूसरेको मारेंगे; वध करेंगे और वह हिंसाके हेतु और धन हरण करनेकी इच्छाके हेतु अनेक पापोंमें लिप्त होंगे ॥ ३ ॥

अतस्तेषांहितार्थायनियमोधर्म्मसम्मतः ।
नियोज्यतेयमाश्रित्यनभ्रश्येयुःशुभान्नराः॥ ४ ॥
दण्डयेत्पापिनोराजायथापापापनुत्तये ।
तथैवविभजेद्दायान्नृणांसम्बन्धभेदतः ॥ ५ ॥

अर्थ—इस कारणसे मनुष्योंका हित करनेके लिये धर्मानुगत राजनियम बांधताहूं; जो मनुष्य इन नियमोंके अनुसार कार्य करेंगे

कदापि उनका अमंगल न होगा पाप दूर करनेंके लिये जिस प्रकार राजा पापियोंको दण्ड देता है, वैसेही मनुष्योंके सम्बन्धानुसार-दायविभाग करे ॥ ४ ॥ ५ ॥

सम्बधोद्विविधोज्ञेयोविवाहाज्जन्मनस्तथा ।
तत्रोद्वाहिकसम्बन्धादपरोबलवत्तरः ॥ ६ ॥

अर्थ-विवाहाधीन और जन्माधीन, यह दो प्रकारके सम्बन्ध हैं इनमें वैवाहिक सम्बन्धसे जन्माधीन सम्बन्ध अधिक बलवान् है ६

दायेतूर्ध्वतनाज्ज्यायान्सम्बन्धोऽधस्तनःशिवे ! ।
अधऊर्ध्वक्रमादत्रपुमान्मुख्यतरःस्मृतः ॥ ७ ॥

अर्थ-हे शिवे ! धनाधिकारमें ऊर्ध्वतन पुरुषोंके अधस्तन पुरुष अर्थात् दादा परदादा इत्यादिके रहते बेटे पोते इत्यादि धनके अधिकारी होंगे इस प्रकार अध ऊर्ध्वके क्रमसे स्त्री जातिकी अपेक्षा पुरुष जातिही श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

तत्रापिसन्निकर्षेणसम्बन्धीदायमर्हति ।
अनेनविधिनाधीराविभजेयुःक्रमाद्धनम् ॥ ८ ॥

अर्थ-इसमें जिस पुरुषके साथ सम्बन्ध अतिनिकट है; वह पुरुष-ही दायाधिकारी हो सक्ताहै इस प्रकार पण्डितगण क्रमके अनु-सार विधिविधानसे धनको बांटे ॥ ८ ॥

मृतस्यपुत्रेपौत्रेचकन्यासुपितरिस्थिते ।
भार्य्यायामपिदायार्हःपुत्रएवनचापरः ॥ ९ ॥

अर्थ-यदि मृतक पुरुषके बेटा, पोता, कन्या, पिता और भार्या आदि वर्तमान हो तो पुत्रही धनका अधिकारी होगा और कोई धनका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ ९ ॥

बहवस्तनयायत्रसर्व्वेतत्रसमांशिनः ।
ज्येष्ठेराज्याधिकारित्वंतत्तुवंशानुसारतः॥ १० ॥

अर्थ–बहुतसे पुत्र हो तो सबको बराबर अंश मिलै वंशक्रमके अनुसार बडा पुत्रही राज्यका अधिकारी होगा ॥ १० ॥

ऋणंयत्पैतृकंतच्चशोधयेत्पैतृकैर्धनैः ।
तस्मिन्स्थितेविभागार्हंनभवेत्पैतृकंवसु ॥ ११॥

अर्थ–जो पिताका लिया ऋण हो तो वह पिताके धनसेही निवटाया जायगा पैतृक ऋणके रहते हुए पैतृक धन नहीं वट सक्ता ॥ ११ ॥

विभज्ययदिगृह्णीयुर्विभवंपैतृकंनराः ।
तेभ्यस्तद्धनमाहृत्यपितृणांदापयेन्नृपः ॥ १२॥

अर्थ–यदि पैतृक ऋणके रहतेहुये पुत्र पिताके धनको वांटकर ग्रहण कर लें तो राजा उनसे उस धनको लेकर पैतृक ऋणको भुगतादे (ऋणको भुगता कर जो बचे उसे पुत्र ग्रहण करलें) ॥ १२ ॥

यथास्वकृतपापेननिरयंयान्तिमानवाः ।
ऋणेनापितथाबद्धःस्वयमेवनचापरः ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस प्रकार मनुष्य अपने किये पापसे वैसेही सब अपने किये ऋणसे आपही बंधते हैं उसे आपही नरकको जाते हैं और कोई नहीं बंधता ॥ १३ ॥

साधारणंधनंयच्चस्थावरंस्थावरेतरम् ।
अंशिनःप्राप्तुमर्हन्तिस्वंस्वमंशंविभागतः ॥ १४ ॥

अर्थ–स्थावर व अस्थावर जो कुछ साधारण धन हो हिस्सेदार भागके अनुसार उसमेंसे अपना २ हिस्सा लेले ॥ १४ ॥

अंशिनांसम्मतावेवविभागःपरिसिद्ध्यति ।
तेषामसम्मतौराजासमदृष्ट्यांशमाचरेत् ॥ १५ ॥

अर्थ–जहां पर सब अंशियोंकी सम्मति होवे वहांपर सम (बरा- बर) विषम (छोटा बडा) जैसे भाग किये जांय वही सिद्ध होंगे, जहां अंशियोंकी सम्मति नहो वहांपर राजाको चाहिये कि सबको बराबर भागदे ॥ १५ ॥

स्थावरस्यचरस्यापिविभागानर्हवस्तुनः ।
मूल्यंवातदुपसत्वमंशिनांविभजेन्नृपः ॥ १६ ॥

अर्थ–यदि स्थावर या अस्थावर वस्तुका भाग न किया जा सके तो राजा उसका माल या उपसत्व अंशियोंको वाटदे ॥ १६ ॥

विभक्तेऽपिधनेयस्तुस्वीयांशंप्रतिपादयेत् ।
पुनर्विभज्यतद्द्रव्यमप्राप्तांशायदापयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ–यदि धन बटनेके पीछे कोई और पुरुष प्रमाणित करे कि धनमें मेरा अंश है तो राजा उस धनको फिर बांटे और जिसने अंश नहीं पाया है और जिस २ ने उन सबका अंश पायाथा उन सबको दे ॥ १७ ॥

कृतेविभागेद्रव्याणामंशिनांसम्मतौशिवे ! ।
पुनर्विवादयंस्तत्रशास्योभवतिभूभृतः ॥ १८ ॥

अर्थ-हे शिवे ! जहांपर सब अंशियोंकी सम्मतिसे धनका विभाग होगया है वहांपर यदि कोई अंशी पहले किये हुए विभागको अस्वीकार करके फिर झगड़ा करे तो राजा उसे दंड दे ॥ १८ ॥

स्थितेप्रेतस्यपौत्रेचभार्य्यायांश्चपितर्य्यपि ।
पौत्रएवधनार्हःस्यादधस्ताज्जन्मगौरवात् ॥ १९ ॥

अर्थ–यदि मृतक पुरुषका पोता, भार्या और पिता विद्यमानहों तो यह पोताही धनका अधिकारी होगा क्यों कि जन्मके हेतु पोते- कोही गौरव अधिक है ॥ १९ ॥

अपुत्रस्यस्थितेतातेसोदरेचपितामहे ।
जन्मतःसान्निकर्षेणपितैवास्यधनंहरेत् ॥ २० ॥

अर्थ–अपुत्रक मृतक पुरुषका पिता और सहोदर यदि जीवित हो तो जन्मके अनुसार सम्बन्धके हेतु पिताही उस धनका अधिकारी होगा ॥ २० ॥

विद्यमानासुकन्यासुसन्निकृष्टास्वपिप्रिये ! ।
मृतस्यपौत्रोधनभाग्यतोमुख्यतरःपुमान् ॥ २१ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! अत्यन्त निकटकी कन्याके रहते पोता धनका अधिकारी होगा,क्योंकि स्त्रीकी अपेक्षा पुरुष जातिही श्रेष्ठ है॥२१॥

धनंमृतेनपुत्रेणपौत्रंयातिपितामहात् ।
अतोऽत्रगीयतेलोकैःपुत्ररूपःस्वयंपिता ॥ २२॥

अर्थ–यदि धनवानका पुत्र पहले मरगया हो तो वह दादेका धन पोतेकेपास चलाजायगा इस कारण संसारमें कहा करते हैं कि पिता स्वयंही पुत्रस्वरूप है ॥ २२ ॥

औद्वाहिकेऽपिसम्बन्धेब्राह्मीभार्य्यावरीयसी ।
अपुत्रस्यहरेद्वित्तंपत्युर्देहार्द्धहारिणी ॥ २३ ॥

अर्थ–विवाहके संबन्धमें ब्राह्मविधिके अनुसार विवाहिता भार्या ही श्रेष्ठ है अपुत्रककी मृत्यु होनेपर स्वामीकी अर्द्धांग स्वरूप वह ब्राह्मी भार्याही धनकी अधिकारिणी होगी ॥ २३ ॥

पतिपुत्रविहीनातुसम्प्राप्यस्वामिनोधनम् ।
नैवदातुंनविक्रेतुंसमर्थास्वधनंविना ॥ २४ ॥

अर्थ–पतिपुत्रहीननारी यदि स्वामीके धनको पावे तो वह स्त्री अपने धनके सिवाय इसस्वामीके धनको न बेचसकेगी, न दानकर सकेगी ॥ २४ ॥

पितृभिःश्वशुरैर्वापिदत्तंयद्धर्म्मसम्मतम् ।
स्वकृत्योपार्जितंयच्चस्त्रीधनंतत्प्रकीर्त्तितम् ॥ २५ ॥

अर्थ-पिताका दियाहुआ धन श्वशुरका दियाहुवा धन अथवा धर्मके अनुसार अपने परिश्रमसे पैदा किया हुआ धन स्त्रीधन कहलाता है ॥ २५ ॥

तस्यांमृतायामृक्थंतत्पुनःस्वामिपदंव्रजेत् ।
तदासन्नतरोरिक्थमधऊर्द्ध्वक्रमाद्धरेत् ॥ २६ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीने स्वामीके धनको पाया है उसके मरनेपर वह धन फिर उसके स्वामीधनका रूप होजायगा और उसके स्वामीके अधस्तन वा ऊर्ध्वतन पुरुष निकटके अधिकारी उसको पावेंगे॥२६॥

मृतपत्यौस्वधर्म्मेणपतिबन्धुवशेस्थिता ।
तदभावेपितृबन्धोस्तिष्ठन्तीदायमर्हति ॥ २७ ॥

अर्थ-स्वामीके मरे पीछे स्त्री अपने धर्ममें निरत रहकर पतिके बंधुओंके वशमें रहै जो वह न हो तो पिताके बन्धुओंके वशमें रहै, नहीं तो धनकी अधिकारिणी नहीं होगी ॥ २७ ॥

शङ्कितव्याभिचारापिनपत्युर्दायभागिनी ।
लभ्राजीवनमात्रंभर्तुर्विभवहारिणः ॥ २८ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके ऊपर व्यभिचारकी शंका होगी वह स्वामीके धनको नहीं पावेगी, परन्तु जो पुरुष उसके स्वामीके धनका अधिकारी होगा विभवके अनुसार वह इसे केवल जीविका देगा ॥ २८॥

बह्वयश्चेद्गतेनाकंस्त्रियःस्युःसाधुधर्म्मतत्पराः ।
भजेरन्स्वामिनोरिक्तंसमांशेनशुचिस्मिते ! ॥ २९ ॥

अर्थ-हे शुचिस्मिते ! यदि स्वर्ग प्राप्त हुए पुरुषके बहुतसी स्त्रियें हों और वह सब अपने धर्ममें निरत हों तो सबही समान अंश स्वामीके धनका कर लेवें ॥ २९ ॥

पत्युर्धनहरायाश्चमृतौभर्त्तृसुतास्थितौ ।
पुनःस्वामिपदंगत्वाधनंदुहितरंव्रजेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-जो स्वामीके धनको भोगनेवाली यह सब स्त्रियें मर जांय और स्वामीकी कन्या वर्तमानहो तो वह धन फिर स्वामी धनके स्थानमें होकर दुहितृगामी होगा ॥ ३० ॥

एवंस्थितायांकन्यायामृक्थंपुत्रवधूगतम् ।
तन्मृतौस्वामिनंप्राप्यश्वशुरात्तत्सुतामियात् ॥ ३१ ॥

अर्थ-यदि कन्याके रहते पुत्रवधूको धन मिले अर्थात् धनीकी मौतके पीछे पुत्र धनाधिकारीहो परलोकको चला जाय और तिसकी स्त्री वह धन पावै तो वह धन इस मृत पुत्रवधूके स्वामी का स्थानीय होकर उसकी पितृदुहिता अर्थात् मृत पुत्रवधूके स्वामीकी बहनको मिलेगा ॥ ३१ ॥

तथापितामहेसत्त्वेवित्तंमातृगतंशिवे ! ।
तस्यांमृतायांपुत्रेणभर्त्राश्वशुरगम्भवेत् ॥ ३२ ॥

अर्थ-हे शिवे ! इस प्रकार दादाके रहते यदि धन मातृगामी हो तौ माताकी मृत्युके पीछे वह धन पुत्रधनका स्थानीय होकर पितृसम्बन्धसे दादाके पास जायगा ॥ ३२ ॥

मृतस्योर्ध्वगतंवित्तंयथाप्राप्नोतितत्पिता ।
जनन्यपितथाप्नोतिपतिहीनाभवेद्यदि ॥ ३३ ॥

अर्थ-मृतकपुरुषका ऊर्ध्वगत धन जैसे पिताको प्राप्त होताहै वैसेही पतिहीन माताकोभी मिलताहै ॥ ३३ ॥

अतःसत्यांजनन्यांतुविमातानधनंहरेत् ।
मृतेजनन्यास्तंप्राप्यपित्रागच्छेद्विमातरम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-माताके रहते सौंतेली माको धन नहीं मिलता, परन्तु

यदि इस माताकी मृत्यु होवे तौ पिताके सम्बन्धसे सौतेली माताभी धनकी भागिनी होगी ॥ ३४ ॥

अधस्तनानांविरहाद्यथारिक्थंनयात्यधः ।
येनैवाधस्तनंप्राप्तंतेनैवोर्द्ध्वंतदाव्रजेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ–यदि अधस्तन न हो तो धन अधोगामी नहीं होता, परन्तु वह धन जिस नियमसे अधोगामी होसक्ताहै उस नियमसेही ऊर्ध्व-गामी होगा, अर्थात् जो जन्मसम्बन्धसे निकट है या पुरुषहै वही आगे धनका अधिकारी होगा ॥ ३५ ॥

अतःस्थितौपितृव्यस्यधनंस्वसृगतञ्चसत् ।
पत्यौस्थितेनपत्यायामृतौपितृव्यमाश्रयेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ–अतएव चचाके रहते यदि कन्या धनको पाजाय और यह कन्या विनापुत्र उत्पन्न किये पतिके जीवित रहते परलोकको चली जाय तो वह धन चचाहीको मिलेगा ॥ ३६ ॥

ऊर्द्ध्वाद्वित्तमधःप्राप्यपुमांसमवलम्बते ।
अतःसत्यांसोदरायांवैमात्रेयाधनंहरेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ–धन ऊपरको पहुंचकर जब नीचेको चलता है तब वह पुरुषहीको पहुंचाताहै, इस कारण सगी बहनके वर्तमान रहतेभी सौतेला भईया धनका भागी होता है ॥ ३७ ॥

स्थितायांसोदरायाञ्चविमातुःपुत्रसन्ततौ ।
वैमात्रेयगतंवित्तंवैमात्रेयान्वयोभजेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ–सगीबहन और विमाताके पुत्रके वर्तमान रहते भइयेके पास गया हुआ धन सौतेले भाईके वंशवालेही प्राप्त करेंगे ॥ ३८ ॥

मृतस्यसोदरोभ्रातावैमात्रेयस्तथाशिवे ! ।
धनंपितृगतत्वेनाविभजेतांसमांशिनौ ॥ ३९ ॥

अर्थ-हेशिवे ! जो मृतपुरुषका सगाभाई और सौतेलाभाई वर्तमान हो तो वह धन पितृगत होकर पितृसम्बन्धसे, सम्बन्धी, सहोदर और सौतेलाभाई यह बराबर बांटले ॥ ३९ ॥

कन्यायांजीवितायाञ्चतदपत्यंनदायभाक् ।
यत्रयद्बाधितंवित्तंतन्मृतावपरंव्रजेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-कन्याके जीवित रहतेहुए उसकी गर्भकी संतान धनाधिकारी नहीं होगी । क्योंकि यहांपर कन्याही उसकी बाधक है; उस बाधकस्वरूप कन्याकी जब मृत्यु होजाय तब यह धन उसका सन्तान पावेगा ॥ ४० ॥

विभजेयुर्दुहितरःपुत्राभावेपितुर्वसु ।
उद्वाहयन्त्योऽनूढान्तुपितुःसाधारणैर्धनैः ॥ ४१ ॥

अर्थ-यदि पुत्र न हो तो अन्याओंको चाहिये की अपने पिताके धनको बांटले, परन्तु इस साधारण पिताके धनसे पहले अनूढा कन्याका विवाहकर देना चाहिये ॥ ४१ ॥

असन्तत्यामृतायाश्चस्त्रीधनंस्वामिनंव्रजेत् ।
अन्यत्तुद्रविणंयायादात्तंतत्पदमाश्रयेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-संतानरहित स्त्रीकी मृत्यु होनेपर उसका स्वामी स्त्रीधनको प्राप्त करे । स्त्रीधनके सिवाय और धन जिस पुरुषने दियाथा वही पुरुष उसको प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥

प्रेतलब्धधनैर्नारीविदध्यादात्मपोषणम् ।
पुण्यन्तुतदुपस्वत्वैर्नशक्तादानविक्रये ॥ ४३ ॥

अर्थ-उत्तराधिकारके सम्बन्धसे जो धन स्त्रीको मिले उससे वह अपना भरण पोषण करै और उसकी आमदनीसे पुण्यकर्म करे परन्तु वह इस सम्पत्तिको न दान कर सक्ती है न वेच सक्ती है॥४३॥

पितामहस्नुषायाञ्चसत्यांतातविमातरि ।
पितामहगतंरिक्थंतत्पुत्रेणस्नुषांव्रजेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ-जहांपर चाची या सौतेली चाची विद्यमानहो वहां जो धन दादेपर पहुच कर फिर चचाके पास पहुंचे तो वह धन चाचीहीको मिलेगा ॥ ४४ ॥

पितामहेपितृव्येचतथाभ्रातरिजीवति ।
अधोभवानांमुख्यत्वाद्भ्रातेवधनभाग्भवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-यदि दादा, चचा और भ्राता जीवितहो नीचेके पुरुषोंकी प्रधानताके हेतु भइयाही धनका भागी होगा ॥ ४५ ॥

पितृव्यात्सन्निकर्षेऽत्रतुल्यौभ्रातृपितामहौ ।
धनंपितृपदंगत्वाप्रयातुर्भ्रातरंव्रजेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-चचासे सम्बन्धकी निकटताके हेतु भइया और भ्राता दोनोंही बराबर निकट आतेहैं । ऐसी जगह मृतक पुरुषका धन पितृस्थानमें पहुचकर भइयोंको पहुंचता है ॥ ४६ ॥

स्थितेऽप्यपत्येदुहितुःप्रेतस्यपितरिस्थिते ।
दुहित्रपत्यंधनभाग्धनंयस्मादधोमुखम् ॥४७॥

अर्थ-जो मृतक पुरुषका धेवता और पिता वर्तमान हो तो धेवताही धनका अधिकारी होगा, क्योंकी यह धन स्वभावसेही नीचेको पहुचता है ॥ ४७ ॥

स्वःप्रयातुःस्थितेतातेतथामातरिकालिके! ।
पुंसोमुख्यतरत्वेनधनहारीभवेत्पिता ॥ ४८ ॥

अर्थ-हे कालिके ! यदि मृतक पुरुषके माबाप जीवित हों तो पुरुषकी विप्रधानताके हेतु पिताही अधिकारी होगा ॥४८॥

स्थितःस्वपितृसापिण्डोवर्त्तमानेऽपिमातुले ।
प्रेतस्यधनहारीस्यात्पितुःसम्बन्धगौरवात् ॥ ४९ ॥

अर्थ-यदि मृतक पुरुषके पिताका सपिंडी और मामा जीवित हो तौ पिताके सम्बन्धके गौरवसे पिताका सपिंडी पुरुषही धनको पावै ॥ ४९ ॥

अधस्ताद्गमनाभावेधनमूर्द्ध्वभवंगतम् ।
तत्रापिपुंसांमुख्यत्वादितंपितृकुलंशिवे ! ।
अतोऽत्रसन्निकृष्टोऽपिमातुलोनाप्नुयाद्धनम् ॥ ५० ॥

अर्थ-हे शिवे ! जहांपर धन नीचेको नहीं चलता ऐसी जगह वह ऊपरको पहुचताहै तिसमें पुरुषकी श्रेष्ठताके हेतु पहले धन पिताकेही कुलमें जाता है इसकारणसे इस स्थानमें मामा निकटका हो करभी धनका भागी नहीं हो सक्ता ॥ ५० ॥

अजीवत्पितृकःपौत्रःपितृव्यैःसहपार्वति ! ।
पितामहस्यद्रविणात्स्वपितुर्द्दायमर्हति ॥ ५१ ॥

अर्थ-जहांपर माता पिताहीन पोता और पुत्र दोनों हैं तहां पर माता पिताहीन पोता पिताके नियत धनके अंशको पावेगा ५१

भ्रातृहीनातथापौत्रीपितृव्यैःसमभागिनी ।
पितामहधनंसाभ्याहरेच्चेन्मृतमातृका ॥ ५२ ॥

अर्थ-भाई हीन और माता पिताहीन पोती, यदि अपने धर्ममें रहै तो दादाके धनमेंसे चचाके साहित बराबर भाग धनका पावैगी ॥ ५२ ॥

सत्यांपौत्र्याःपितामह्यांपौत्र्याःपितृष्वसर्य्यपि ।
वित्तेपितृगतेदेवि ! पौत्रीतत्राधिकारिणी ॥ ५३ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो दादी और बुआ दोनों जीवित हों तो पिताको पहुचते हुए दादाके धनकी पोतीही मालिक होगी ॥ ५३ ॥

अधोगामिषुवित्तेषुपुमाञ्ज्यायानधस्तनः।
ऊर्द्धगामिधनेश्रेष्ठःपुमानूर्द्धोद्भवोभवेत् ॥ ५४॥

अर्थ-जो धन नीचेको पहुचताहो तो नीचेके पुरुषही उसमें प्रधान हैं यदि धन ऊपरको पहुँचे तो ऊपरके पुरुषोंको प्रधानताही देखी जायगी ॥ ५४ ॥

अतःस्नुषायांपौत्र्याञ्चसत्यांदुहितरिप्रिये !।
प्रेतस्यविभवंहर्त्तुंनैवशक्नोतितत्पिता ॥ ५५ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! इस कारणसे बेटेकी बहू, पोती और कन्याके जीवित रहते मृतक पुरुषका धन मृतक पुरुषका पिता ग्रहण नहीं करसक्ता ॥ ५५ ॥

यदापितृकुलेनस्यान्मृतस्यधनभाजनम्।
पूर्वोक्तविधिनारिक्थंमातामहकुलंभजेत् ॥ ५६॥

अर्थ-जो मृतक पुरुषके कुलमें कोई उत्तराधिकारी न हो तो पहली कहीहुई युक्ति और विधिके अनुसार वह धनवानके कुलमें जायगा ॥ ५६ ॥

मातामहगतंवित्तंमातुलैस्तत्सुतादिभिः।
अधऊर्द्धक्रमेणैवंपुमांसंस्त्रियमाश्रयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ-नानाके कुलमें गये हुए धनको मामा और मामाके पुत्र दिया पावेंगें यहभी पहले नीचेके पुरुष तिनके न होनेपर ऊंचे पुरुष और प्रधानताके हेतु पुरुषजाति, तत्पश्चात् निकृष्टताके हेतु नारी जातीको धनका अधिकार मिलैगा ॥ ५७ ॥

ब्राह्मयन्वयेविद्यमानेपित्रोःसापिण्डनेस्थिते।
मृतस्यशैवीतनयोनापितुर्दायभाग्भवेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ-जो ब्राह्मविवाहकी स्त्रीके संतान होवे और माताके सपिंडके रहते शैवविवाहसे व्याही हुई स्त्रीका सन्तान धनका भागी नहीं होगा ॥ ५८ ॥

शैवीपत्नीचतत्पुत्रालभेरन्धनभागिनः ।
ग्रासमाच्छादनंभद्रे ! स्वप्रयातुर्यथाधनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! जो लोग इस धनके अधिकारी होंगे उनसे शैवविवाहसे व्याही भार्या और उसके गर्भसे हुई सन्तान मृतक पुरुषके विभवानुसार उदरपूरणको कुछ पावेंगे ॥ ५९ ॥

शैवोद्वाहंप्रकुर्व्वन्तींशैवभर्त्तैवपालयेत् ।
सौम्याश्चेन्नाधिकारोऽस्याःपित्रादीनांधनेप्रिये ! ॥ ६० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! शैवविवाहसे विवाहीहुई भार्याको शैव स्वामीही पालन करे जो यह स्त्री व्यभिचारिणी हो तो उसका पालन नहीं करे; यह शैवी भार्या पिता, माता इत्यादिके धनकी अधिकारिणी नहीं होती ॥ ६० ॥

अतःसत्कुलजांकन्यांशैवैरुद्वाहयन्पिता ।
क्रोधाद्वालोभतोवापिसभवेल्लोकगर्हितः ॥ ६१ ॥

अर्थ-इसकारण क्रोध होनेसे या लोभके वश होकर अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई कन्याको पिता शैव विवाहसे व्याहदेगा तो वह संसारमें घृणित और निन्दित होगा ॥ ६१ ॥

शैवीतदन्वयाभावेसोदकोब्रह्मदोनृपः ।
हरेयुःक्रमतोवित्तंमृतस्याशिवशासनात् ॥ ६२ ॥

अर्थ-महादेवजीकी आज्ञा है कि यदि शैवी भार्या या उसके गर्भसे उत्पन्न हुआ संतान न हो तो क्रमानुसार समानोदक ब्रह्मदाता और राजा मृतक पुरुषके धनको ग्रहण करे ॥ ६२ ॥

पिण्डदात्सप्तपुरुषाःसपिण्डाःकथिताःप्रिये ! ।
सोदकादशमान्ताःस्युस्ततःकेवलगोत्रजाः ॥ ६३ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! पिंडदातासे सातवे पुरुषतकको सपिंडशब्दसे पुकारा जा सक्ता है, आठवेंसे लेकर दशमपुरुषतक समानोदक कहा जायगा जो लोग दशम पुरुषके अन्तर्गत नहीं हैं उनको केवल सगोत्र कहा जा सक्ताहै ॥ ६३ ॥

विभक्तंद्रविणंयच्चसंसृष्टंस्वेच्छयातुचेत् ।
अविभक्तविधानेनभजेरंस्तद्धनंपुनः ॥ ६४ ॥

अर्थ-जो धन एकवार विभागकर फिर अपनी इच्छाके अनुसार मिलालिया गया है वह अविभक्त धन है । विभागको विधिके अनुसार इस अविभक्त धनको फिर बांटे ॥ ६४ ॥

अविभक्तेविभक्तेवायस्ययादृग्विभागिता ।
मृतेऽपितस्यदायादास्तादृग्विभवभागिनः ॥ ६५ ॥
येयस्यधनहर्त्तारोभवेयुर्जीवनावधि ।
दद्युःपिण्डंतएवास्यशैवभार्य्यासुतंविना ॥ ६६ ॥

अर्थ-जब वटेहुए या बचे हुए धनमें जिसका जैसा अंश नियत है वह पुरुष यदि मरजाय तो उसका उत्तराधिकारी पुरुष जबतक जीवित रहै तबतक उसको पिंडदे । परन्तु शैवभार्याका पुत्र पिंड दान नहीं कर सकेगा ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

लोकेऽस्मिञ्जन्मसम्बन्धाद्यथाशौचंविधीयते ।
धनभागित्वसम्बन्धात्त्रिरात्रंविहितंतथा ॥ ६७ ॥

अर्थ-जिस प्रकार जन्मके सम्बन्धमें अशौचकी व्यवस्था है वैसेही उत्तराधिकारके सम्बन्धमें तीन रात्रितक अशौच होता है ६७

पूर्णेऽशौचेऽथवाऽपूर्णेतत्कालाभ्यन्तरेश्रुते ।
श्रवणाच्छेषदिवसैर्विशुद्ध्येयुर्द्विजादयः ॥६८॥

अर्थ–जो पूर्ण अशौच अथवा खंड अशौच होवे और जो नियत हुए अशौचकालके मध्यमें वह सुना जाय तो अशौच के जितने दिन बाकी रहे होंगे द्विजातीगण उतनेही दिनमें शुद्धि प्राप्त कर सकेंगे ॥ ६८ ॥

कालातीतेतुविज्ञातेखण्डेऽशौचंनविद्यते ।
पूर्णेत्रिरात्रंविहितंनचेत्संवत्सरात्परम् ॥ ६९ ॥

अर्थ–यदि अशौचकालके बीतजानेपर वर्षभरके बीचमें खण्ड अशौचका कारण सुना जाय तो अशौच नहीं होता । यदि अशौचकालके व्यतीत होजानेपर वर्षके भीतरेही पूर्ण अशौचका कारण सुना जाय तो तीनरात्रितक अशौच होता है । वर्षके उपरान्त कारण श्रवण करनेसे कोई अशौच नहीं होता ॥ ६९ ॥

वर्षातीतेऽपिचेन्मातुःपितुर्वामरणश्रुतौ ।
त्रिरात्रमशुचिःपुत्रस्तथाभर्त्तुःपतिव्रता ॥ ७० ॥

अर्थ–यदि एकवर्ष बीतनेपर, पुत्र, पिता या माताकी मृत्युका संवाद सुना जाय अथवा पतिव्रता स्त्री स्वामीके मरनेका समाचार सुने तो तीन रात्रितक अशौच रहेगा ॥ ७० ॥

अशौचाभ्यन्तरेयस्मिन्नशौचान्तरमापतेत् ।
गुर्वशौचेनमर्त्त्यानांशुद्धिस्तत्रविधीयते ॥ ७१॥

अर्थ–जो एक अशौचमें दूसरा अशौच हो जाय तो गुरु अशौचसे अर्थात् दीर्घकालव्यापी अशौचसे मनुष्योंको शुद्धि प्राप्त होगी ॥ ७१ ॥

अशौचानांगुरुत्वञ्चकालव्यापित्वगौरवात् ।

व्याप्यव्यापकयोर्मध्येगरीयोव्यापकंस्मृतम् ॥ ७२ ॥

अर्थ–बहुतकालतक रहनेवाले अशौचको गुरू कहा जाता है इस कारण थोडे समयतक रहनेवाले अशौचको लघु कहा जाता है । व्याप्य और व्यापक इन दो प्रकारके अशौचोंमें व्यापक अशौचकाही गुरुत्व (भारीपन) माना जाता है ॥ ७२ ॥

यद्यशौचान्तदिवसेपतेदपरसूतकम् ।
पूर्वाशौचेनशुद्धिःस्यादाद्यवृद्धयादिनद्वयम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–जो मरण अशौचके या जन्म अशौचके पिछले दिनरातके बीचमें और कोई मरणका या जन्मका खंड अशौच आ पडे तो पहले अशौचसेही उसका अशौच जायगा । अर्थात् खंड अशौचको ग्रहण नहीं किया जायगा यदि पूर्ण अशौच हो तो पहले अशौचके पीछे एकदिन बढ़ालेना चाहिये ॥ ७३ ॥

तावत्पितृकुलाशौचंयावन्नोद्वहनंस्त्रियाः ।
जातेपरिणयेपित्रोर्मृतौत्र्यहमुदाहृतम् ॥ ७४ ॥

अर्थ–विवाह न होनेतक स्त्रियोंका अशौच पितृकुलमें होता है विवाही नारीके माता पिता मरे तो तीन रात्रितक उसको अशौच होता है ॥ ७४ ॥

विवाहानन्तरंनारीपतिगोत्रेणगोत्रिणी ।
तथागृहीतगोत्रेणदत्तपुत्रस्यगोत्रिता ॥ ७५ ॥

अर्थ–विवाह हो जानेपर स्त्री पतिके गोत्रको प्राप्त करलेती है ऐसेही गोदलिया पुत्र गोदलेनेवालेके गोत्रको प्राप्त होगा ॥ ७५ ॥

सुतमादायसम्मत्याजनन्याजनकस्यच ।
स्वगोत्रनामान्युल्लिख्यसंस्कुर्य्यात्स्वजनैःसह ॥ ७६ ॥

अर्थ-माता पिता दोनोंकी सम्मतिके अनुसार दत्तकपुत्र ले लेनेपर दत्तक ग्रहण करनेवाला अपना गोत्र और नाम उच्चारण कर अपने कुटुम्बियोंके साथ इस दत्तकपुत्रका संस्कार करे ॥ ७६ ॥

औरसेऽपियथापित्रोर्धनेपिण्डेऽधिकारिता ।
आदात्रोर्दत्तकेतद्वद्यतोऽस्यपितरौहितौ ॥ ७७ ॥

अर्थ-औरस पुत्र जैसे पिता माताका धनाधिकारी और पिण्डाधिकारी होता है, वैसेही दत्तकपुत्रभी दत्तक लेनेवालेके धनका और पिंडका अधिकारी होगा । कारणकी ग्रहण करनेवाले ही इस दत्तक पुत्रके पिता माता हैं ॥ ७७ ॥

आपञ्चाब्दांशिशुंगृह्णन्सवर्णात्परिपालयेत् ।
पञ्चवर्षाधिकोबालोदत्तकोनप्रशस्यते ॥ ७८ ॥

अर्थ-सवर्णसे पांचवर्षकी उमरवाले अथवा इससे कम उमरके बालकको गोद लेकर प्रतिपालन करे । दत्तकके ग्रहण करनेमें पांचवर्षसे अधिक उमरवाला बालक श्रेष्ठ नहीं है ॥ ७८ ॥

भ्रातृपुत्रोऽपिदत्तश्चेद्गृहीतैवभवेत्पिता ।
उत्पादकःपितृव्यःस्यात्सर्वकर्मसुकालिके ! ॥ ७९ ॥

अर्थ-हे कालिके ! जो भ्राताका पुत्र (भतीजा) दत्तक हो तो दत्तकग्रहीताही इस दत्तकपुत्रका पिता होगा और उसका बाप सब कार्योंमें ही चचाकी नांई समझा जायगा ॥ ७९ ॥

योयस्यधनहर्तास्यात्सतद्धर्म्माणिपालयेत् ।
संरक्षेन्नियमांस्तस्यतद्बन्धून्परितोषयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-जो पुरुष जिसके धनका अधिकारी हो तो वही स्वामीके धर्म व नियमकी रक्षा करे और सब प्रकारसे धनीके बंधुओंको संतुष्ट करे ॥ ८० ॥

कानीनागोलकाःकुण्डाःअतिपातकिनश्चये ।
नाशौचंमरणेतेषांनैवदायाधिकारिता ॥ ८१ ॥

अर्थ-कानीन, गोलक, कुंड (१) और अतिपातकी पुत्रोंके मरणमें अशौच नहीं होगा और वह धनके अधिकारीभी नहीं होसकेंगे ॥ ८१ ॥

लिङ्गच्छेदोदमोयेषांयासांनासानिकृन्तनम् ।
महापातकिनाश्चापिमृतौनाशौचमाचरेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ-जिन पुरुषोंका लिङ्गच्छेदरूप दंड हुआ है, अथवा जिन स्त्रियोंकी नाक राजदंडसे काटी गईहै, अथवा जो ब्रह्महत्यादि करके महापातकी हुए हैं, उनके मरनेसे अशौचग्रहण नहीं किया जायगा ॥ ८२ ॥

नृणामुद्देशहीनानांपरिवारान्धनान्यपि ।
पालयेद्रक्षयेद्राजायावद्द्वादशवत्सरम् ॥ ८३ ॥

अर्थ-जो पुरुष निरुद्देश (वे पत्ते या गुम) होगयेहैं उनके परिवार और धनकी रक्षा बारहवर्षतक राजाको करनी चाहिये ॥ ८३ ॥

द्वादशाब्देगतेतेषांदर्भदेहान्विदाहयेत् ।
त्रिरात्रान्तेतत्सुताद्यैःप्रेतत्वंपरिमोचयेत् ॥८४॥

अर्थ-बारह वर्ष बीतनेपर इस निरुद्देश पुरुषके कुशसे बनेहुए देहका दाह करावै उसके पुत्रादि तीन राततक अशौच ग्रहण करके श्राद्धादिसे उसके प्रेतत्वको छुडावैं ॥ ८४ ॥

---

(१) पिताके घर क्वारी कन्याके गर्भसे छिपे २ जिस पुत्रका जन्महो उसको कानीन कहतेहैं विधवाके गर्भमें उपपतीसे गुप्तभाव करके जिस पुत्रका जन्म हुआहै उसका नाम गोलक है स्वामीके जीवित रहते यारके द्वारा जो पुरुष गूढभावसे जन्माहै तिसका नाम कुंडहै ।

ततस्तत्परिवारेभ्यःपुत्रादिक्रमतोधनम् ।
विभज्यनृपतिर्दद्यादन्यथापातकीभवेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ-फिर इस खोएहुए पुरुषका धन यथावत् बांटकर पुत्रादि क्रमसे उसके परिवारवालोंको राजा दे देवै, न देनेसे राजाको पाप होगा ॥ ८५ ॥

नकोऽपिरक्षितायस्यदीनस्यापद्गतस्यच ।
तस्यैवनृपतिःपातायतोभूपःप्रजाप्रभुः ॥ ८६ ॥

अर्थ-अनाथ, दीन और विपदमें पडे पुरुषकी राजा रक्षा करे, क्योंकी राजाही प्रजाका स्वामी है ॥ ८६ ॥

यद्यागच्छेदनुद्दिष्टोविभागान्तेऽपिकालिके ! ।
तस्यैवदाराःपुत्राश्चधनंतस्यैवनान्यथा ॥ ८७ ॥

अर्थ-हे कालिके ! यदि खोया हुआ पुरुष विभाग होनेके पीछे आजाय तौ वह अपने स्त्री, पुत्र और सब धनको पावेगा, इसमें अन्यथा नहीं होसक्ता ॥ ८७ ॥

नसमर्थःपुमान्दातुंपैतृकंस्थावरञ्चयत् ।
स्वजनायाथवान्यस्मैदायादानुमतिंविना ॥ ८८ ॥

अर्थ-विना उत्तराधिकारियोंकी सम्मतिके पुरुष जातिभी, स्थावर पैतृक धन (जमींदारीइत्यादि) स्वजनको या और किसी पुरुषको दान नहीं करसक्ता ॥ ८८ ॥

यत्तुस्वोपार्ज्जितंरिक्थंस्थावरंस्थावरेतरम् ।
अस्थावरंपैतृकंचस्वेच्छयादातुमर्हति ॥ ८९ ॥

अर्थ-अपना पैदा किया हुआ स्थावर या अस्थावर धन और पैतृक अस्थावर धन अपनी इच्छाके अनुसार दानादि किया जासक्ता है ॥ ८९ ॥

स्थितेपुत्रेऽथवापत्न्यांकन्यायांतत्सुतेऽपिवा ।

जनकेचजनन्यांवाभ्रातर्य्येवंस्वसर्य्यपि ॥ ९० ॥

अर्थ–यदि पुत्र विद्यमान हो, अथवा स्त्री हो या कन्या या धेवता विद्यमान हो अथवा माता, पिता, भ्राता वा बहन जीवितहो ॥ ९० ॥

स्वार्ज्जितंस्थावरधनमस्थावरधनञ्चयत्।
अस्थावरंपैतृकञ्चदातुंसर्व्वंक्षमोभवेत् ॥ ९१ ॥

अर्थ–तौ भी अपना पैदा किया हुआ स्थावर और अस्थावर धन और पैतृक अस्थावर(नगदी)धन दान किया जासक्ताहै ॥९१॥

धनमेवंविधानेनदत्तंवाधर्म्मसात्कृतम् ।
पुंसांतदन्यथाकर्त्तुंपुत्राद्यैर्नैवशक्यते ॥ ९२ ॥

अर्थ–जो ऐसा धन किसीको इस प्रकारसे पुरुष देदे या धर्मकर्ममें लगादे तो उसके पुत्र पौत्रादि उसके विपरीत नहीं करसक्ते ॥९२॥

धर्म्मार्थेस्थापितंरिक्थंदातारक्षितुमर्हति ।
नप्रभुःपुनरादातुंधर्म्मोह्यस्ययतःप्रभुः ॥ ९३ ॥

अर्थ–जो धन धर्मार्थ लगाया गया है धनका देनेवालाही उसकी रक्षादि करेगा, परन्तु फिर वहभी उस धनको ग्रहण नहीं कर-सक्ता कारण कि धर्महीं उस धनका अधिकारी होगया ॥ ९३ ॥

मूलंवातदुपस्वत्वंयथासङ्कल्पमम्बिके !।
स्वयंवातत्प्रतिनिधिर्धर्म्मार्थेविनियोजयेत् ॥ ९४ ॥

अर्थ–हे अम्बिके ! अपने आप प्रतिनिधि (कारिन्दा, मुनीम) के संकल्पके अनुसार मूलधन या उसकी आमदनी धर्म कार्यमें लगादे ॥ ९४ ॥

स्वोपार्ज्जितधनस्यार्द्धंदायादायापिचेद्धनी ।
दद्यात्स्नेहेनतच्चान्योनान्यथाकर्त्तुमर्हति ॥ ९५॥

अर्थ-यदि किसी उत्तराधिकारीको स्नेहके वश धनका स्वामी अपने धनका ऊर्ध्वभाग देदे, तौ और कोई उसके विपरीत बात नहीं करसक्ता ॥ ९५ ॥

यदिस्वोपार्जितस्यार्द्धमेकस्मैधनहारिणाम् ।
ददात्यन्यैश्चदायादैःप्रतिरोद्धुंनशक्यते ॥ ९६ ॥

अर्थ-उत्तराधिकारियोंमेंसे यदि कोई एक पुरुषकोही अपने पैदा किये हुए धनका आधा भाग देदे तो और उत्तराधिकारी उसके विरुद्ध आचरण नहीं करसकेंगे ॥ ९६ ॥

एकेनपितृवित्तेनयत्रवित्तमुपार्जितम् ।
पित्रेसमांशादायादानलाभार्हाविनार्जकम् ॥ ९७ ॥

अर्थ-जो बहुतसे भाइयोंमेंसे एकभाई पैतृकधनसे धनको पैदा करै, तौ इस पैतृक धनमेंही सब भाइयोंका यथायोग्य अंश रहेगा, पैदा किया हुआ धन पैदा करनेवालेके सिवाय और कोई नहीं पावेगा ॥ ९७ ॥

पैतृकाणिचवित्तानिनष्टेऽप्युद्धारयेत्तुयः ।
दायादानांतद्धनेभ्यउद्धर्त्ताद्विचंशमर्हति ॥ ९८ ॥

अर्थ-यदि पैतृक नष्ट हुए द्रव्यका उद्धार एक भ्राता करले तो उस धनसे उद्धार करनेवालेको दो भाग मिले और सब भ्राता एक२अंश पावैंगे ॥ ९८ ॥

पुण्यंवित्तंचविद्याचनाश्रयेदशरीरिणम् ।
शरीरन्तुपितुर्यस्मात्किन्नस्यात्पैतृकंवसु ॥ ९९ ॥

अर्थ-अशरीरी पुरुषको पुण्य, धन और विद्या यह आश्रय नहीं करते, जब कि यह शरीर पितासे प्राप्त हुआ, तब कोनसा धन पैतृक नहोगा ॥ ९९ ॥

पृथगन्नैःपृथग्वित्तैर्म्मनुजैर्यदुपार्जितम् ।
सर्वंतत्पितृसंक्रान्तंतदास्वोपार्जितंकुतः ॥ १०० ॥

अर्थ-मनुष्य पृथक् अन्न (अलग भोजनादि बनवाकर) और पृथक् धन (माबापसे अलग) होकरभी जो कुछ पैदा करेंगे वह सबही पितृसम्बन्धी हैं अतएव अपने पैदा किये धनका स्थल कहां है ॥ १०० ॥

अतोमहेशि ! स्वायासैर्येनयद्धनमार्जितम् ।
स्वोपार्जितंतदेवस्यात्सतत्स्वामीनचापरः ॥ १०१ ॥

अर्थ-इस कारण हे महेश्वरि ! जो पुरुष अपने आप परिश्रम करके जो धन पैदाकरे वह इसकाही पैदा किया है अर्थात् उसमें और किसीका अधिकार नहीं है ॥ १०१ ॥

मातरंपितरंदेवि ! गुरुंचैवपितामहान् ।
मातामहान्करेणापिप्रहरन्नैवदायभाक् ॥१०२॥

अर्थ-हे देवि ! जो पुरुष माता, पिता, गुरु, दादा या नानाको हाथसे भी प्रहारकरे वह धनका अधिकारी नहीं होसक्ता ॥ १०२॥

निघ्नन्नन्यानपिप्राणैर्नतेषांधनमाप्नुयात् ।
हतानामन्यदायादाभवेयुर्धनभागिनः ॥ १०३॥

अर्थ-इस प्रकार उत्तराधिकारताके संबन्धसे धन प्राप्तहोकर लोभसे या और किसी संबन्धसे संबन्धी पुरुषके प्राणोंका नाश करै तोभी वह नाशहुए पुरुषके धनको नहीं पावेगा । उस मरे हुए पुरुषके धनका अधिकारी और कोई उत्तराधिकारी होगा १०३

नपुंसकाःपङ्गवश्चग्रासाच्छादनमम्बिके ! ।
यावज्जीवनमर्हन्तिनतेस्युर्दायभागिनः ॥ १०४ ॥

अर्थ-हे अम्बिके ! लंगड़े और नपुंसक जीवनभर ग्रासाच्छादन (रोटीकपड़ा) पावेंगे धनके भागी नहीं होसक्ते ॥ १०४ ॥

सस्वामिकंप्राप्तधनंपथिवायत्रकुत्रचित् ।
नृपस्तत्स्वामिनेप्राप्त्वादापयेत्सुविचारयन् ॥ १०५ ॥

अर्थ-यदि कोई पुरुष मार्गमें वा और किसी स्थानमें दूसरेका धन पाजावे, तो राजा सूक्ष्म विचार करके वह धन उस धनके स्वामीको दिलादे ॥ १०५ ॥

अस्वामिकानांजीवानामस्वामिकधनस्यच ।
प्राप्तातत्रभवेत्स्वामीदशमांशंनृपेऽर्पयेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ-यदि कोई पुरुष अस्वामिक (अनाथ बेवारिस) धन या जीव, पावै तो पानेवाला ही उसका अधिकारी होगा, परन्तु राजा उसका दशमांश ग्रहण करै ॥ १०६ ॥

स्थावरंधनमन्यस्मैस्थितेसान्निध्यवर्त्तिनि ।
योग्येक्रेतरिविक्रेतुंनशक्तःस्थावराधिपः ॥ १०७ ॥

अर्थ-जन्मके संबन्धसे या विवाहके या संबन्धसे निकट होनेके कारण उचित क्रेता (खरीददार) जो मोललेनेका अभिलाषी हो तो स्थावर स्वामी (जिमीदार) और किसीके हाथ स्थावर सम्पत्ति (जाय दाद इत्यादि) नहीं बेच सकैगा ॥ १०७ ॥

सान्निध्यवर्त्तिनांज्ञातिःसवर्णोवाविशिष्यते ।
तयोरभावेसुहृदोविक्रेतुरिच्छागरीयसी ॥१०८॥

अर्थ-मोल लेनेवालोंमें क्रमानुसार सपिंड समानोदक, सगोत्र और सजातीय पुरुष स्थावर सम्पत्तिको मोलले सकैंगे; यदि यह लोग मोल लेनेमें असमर्थ हो तो इष्ट मित्र मोल लेवें; बहुतसे इष्ट मित्र होंतो बेचनेवाला जिसको चाहै उसके हाथ अपनी स्थावर सम्पत्ति बेच देवै ॥ १०८ ॥

निर्णीतमूल्येऽप्यन्येनस्थावरस्यक्रयोद्यमे ।
तन्मूल्यंचेत्समीपस्थोरातिक्रेतानचापरः ॥ १०९ ॥

अर्थ-जो और किसीके साथ स्थावर सम्पत्ति (जायदाद इत्यादि) की दर ठहरगई हो और क्रेता (खरीददार) यदि उस मोलपर लेनेको तयारहो, उस समयमें निकटका सम्बन्धी व कोई पुरुष जो उतनाही मूल्य देवै, तो वह उसको मोल लेगा और वह उसको मोल नहीं ले सकैगा कि जिसके साथ दर ठहराई गई थी ॥ १०९ ॥

मूल्यंदातुमशक्तश्चेत्सम्मतेविक्रयेऽपिवा ।
सान्निधिस्थस्तदान्यस्मैगृहीशक्नोतिविक्रये ॥ ११० ॥

अर्थ-यदि निकटके संबन्धका पुरुष मोल देनेमें असमर्थहो अथवा दूसरेके हाथ वेच देनेकी सम्पत्ति हो तो वह गृहस्थ दूसरे आदमीके हाथ भी वह स्थावर सम्पत्ति बेच सकैगा ॥ ११० ॥

क्रीतंचेत्स्थावरंदेवि ! परोक्षेप्रतिवासिनः ।
श्रवणादेवतन्मूल्यंदत्त्वासौप्राप्तुमर्हति ॥ १११ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो निकट सम्बंधि और पडोसीके न जानते (पसगैवतमें) और कोई स्थावर सम्पत्तिको मोलले लैवे तो यह निकटका पुरुष यह सुनतेही मोलदेकर उस स्थावर सम्पत्तिको ले सक्ता है ॥ १११ ॥

क्रेतातत्रगृहारामान्विनिर्म्मातिभनक्तिवा ।
मूल्यंदत्त्वापिनाप्नोतिस्थावरंसान्निधिस्थितः ॥ ११२ ॥

अर्थ-जो कोई पुरुष निकट पुरुषके और पडोसीके न जानते हुए स्थावर सम्पत्तिको मोल लेकर उसमें गृह उद्यानादि बनावे या तुडवावे; तो निकटका पुरुष मूल्य देनेपरभी उसको प्राप्त नहीं करसकेगा ॥ ११२ ॥

करहीनाप्रतिहतावन्यारण्यातिदुर्गमा ।
अनादिष्टोऽपितांभूमिंसम्पन्नांकर्त्तुमर्हति ॥ ११३ ॥

अर्थ-जो भूमि जलादिके अधिक होनेसे उपजाऊ नहीं है(बनेली है) जंगल है या अतिदुर्गम है । लोग विना राजाकी आज्ञाके भी ऐसे स्थानको जोतने बोनेके योग्य करसक्ते हैं ॥ ११३ ॥

बहुप्रयाससाध्यायास्तस्याभूमेर्म्महीभृते ।
दत्त्वादशांशंभुञ्जीयाद्भूमिस्वामीयतोनृपः ॥ ११४ ॥

अर्थ-यद्यपि यह भूमि बहुतसी महनत करनेसे ठीक होगी तथापि उसमें जो कुछ उत्पन्न होगा उसका दशमांश राजाको देना चाहिये कारण कि राजाही सब भूमिका स्वामी है ॥ ११४ ॥

वापीकूपतडागानांखननंवृक्षरोपणम् ।
परानिष्टकरेदेशेनगृहंकर्तुमर्हति ॥ ११५ ॥

अर्थ-जिस जगह कुछ पराया विगाड हो सक्ता है, उस जगह वापी खुदवाना, कुआ बनाना, तडाग खनन करना, वृक्ष लगाना अथवा घर बनाना नहीं हो सक्ता है ॥ ११५ ॥

देवार्थदत्तकूपादौतथास्रोतस्वतीजले ।
पानाधिकारिणःसर्वेसेचनेऽन्तिकवासिनः ॥ ११६ ॥

अर्थ-जो जलाशय और कूपादि देवताके अर्थ बने हैं उनका और नदीका जल पान करनेमें सबहीका अधिकार है और उनके तीरपर वास करके सबही कोई इस जलका व्यवहार कर सक्ते हैं ॥ ११६ ॥

यत्तोयसेचनाल्लोकाभवेयुर्जलकातराः ।
नसिञ्चेयुर्जलंतस्मादपिसन्निधिवर्त्तिनः ॥ ११७ ॥

अर्थ-जिसका जलव्यवहार करनेसे मनुष्योंको जलकष्टहोवे निकट रहनेवालेभी उसके जलको व्यवहारमें नहीं ला सकेंगे॥११७

धनानामविभक्तानामंशिनांसम्मतिंविना ।
तथानिर्णीतवित्तानामसिद्धौन्यासविक्रयौ ॥ ११८ ॥

अर्थ-जिस स्थावर या अस्थावर धनका विभाग नहीं हुआ, विना भागीदारोंकी सम्मतिके उसको कोई बन्धक (गिरवी) नहीं रख सक्ता और न बेच सक्ता है, जिस सम्पत्तिकी अधिकारिताके विषयमें संदेह है अथवा जिस सम्पत्तिका परिमाण नियत नहीं हुआहै उसका बेचना या गिरवीं रखना असिद्ध होगा॥११८॥

स्थाप्यतांबद्धवित्तानांज्ञानान्नष्टेऽप्ययत्नतः ।
तन्मूल्यंदापयेत्तेनस्वामिनेसर्वथानृपः ॥ ११९ ॥

अर्थ-जो वस्तु गिरवी रक्खी गई है, वह यदि जानबूझकर या अयत्न (लापरवाही)से नष्टकर दिया जाय तो राजाको चाहिये कि महाजनसे उसका मोल लेकर देनदारको दे देवे। अथवा जो कोई पुरुष किसीके पास अपनी कोई वस्तु धरोहर रक्खे और यह वस्तु जानकर या अयत्नसे नष्टहो जाय तो राजा उसका मोल ग्रहण करके धरोहर रखनेवालेको दिलादे ॥ ११९ ॥

अभिमत्यास्थापकस्यपश्चादन्यस्तवस्तुनाम् ।
व्यवहारेकृतेतत्रधर्त्तासम्पोषयेत्पशून् ॥ १२० ॥

अर्थ-जो कोई किसीके पास पशु आदि जीव धरोहरमें रक्खे और धरोहर रखनेवालेकी सम्मतिसे यह पशुआदि व्यवहारमें लाएजांय, तो जिसके पास पशु धरोहर रक्खे गये हैं उसेही इन पशुओंको भोजनादि देना पड़ेगा ॥ १२० ॥

लाभेनियोजयेद्यत्नस्थावरादीनिमानवः ।
नियमेनविनाकाललाभयोरन्यथाभवेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ-यदि कोई आदमी लाभकी आशासे स्थावर व अस्थावर सम्पत्ति काममें लगादे और समय व लाभका परिमाण नियत नहो तो वह असिद्धहो सक्ता है ॥ १२१ ॥

साधारणानिवस्तूनिलाभार्थंनैवयोजयेत् ।
मृतेपितरिसर्वेषामंशिनांसम्मतिंविना ॥ १२२ ॥

अर्थ-पिताके परलोकवासी होनेपर समस्त भागीदारोंकी सम्मत्तिके विना कोईभी साधारण सम्पत्ति लाभके लिये कार्यमें नहीं लगा सक्ता ॥ १२२ ॥

क्रमव्यत्ययमूल्येनद्रव्याणांविक्रयेसति ।
नृपस्तदन्यथाकर्त्तुंक्षमोभवतिपार्वति ! ॥ १२३ ॥

अर्थ-हे पार्वति ! जो बडे मोलकी चीज थोड़े मोलमें, या थोडे मोलकी चीज बडे मोलमें बिकजायतौ राजा उसको असिद्धकर सक्ता है ॥ १२३ ॥

जननञ्चापिमरणंशरीराणांयथासकृत् ।
दानंतथैवकन्यायाब्राह्मोद्वाहःसकृत्सुकृत् ॥ १२४ ॥

अर्थ-जैसे एकवारसे अधिक जन्म व मृत्यु नहीं होती वैसेही दान और कन्याका ब्राह्मविवाह एक वारसे अधिक नहीं होसक्ता ॥ १२४ ॥

नैकपुत्रःसुतंदद्यान्नैकस्त्रीकस्तथास्त्रियम् ।
नैककन्यःसुतांशैवोद्वाहेपितृहितःपुमान् ॥ १२५ ॥

अर्थ-कोई अपने इकलौते पुत्रको दान नहीं करसक्ता कोई अपनी अकेली स्त्रीको दान करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता पितृहितकारी पुरुषके यदि एकही कन्याहो तौ वह उस कन्याका शिवविवाह नहीं करसक्ता ॥ १२५ ॥

दैवेपित्र्येचवाणिज्येराजद्वारेविशेषतः।
यद्विदध्यात्प्रतिनिधिस्तन्नियन्तुःकृतिर्भवेत् ॥ १२६ ॥

अर्थ-देवताके कष्टमें वाणिज्य और विशेष करके राजद्वारमें नियुक्त प्रतिनिधि (वकील) जो कुछ करै वह करना उस नियोग कर्ताकाही करना समझा जायगा ॥ १२६ ॥

नदण्डार्हःप्रतिनिधिस्तथादूतोपिसुव्रते।
नियोक्तृकृतदोषेणविधिरेषसनातनः ॥ १२७ ॥

अर्थ-हे सुव्रते! सदासे विधि चली आईहै कि नियोग करनेवाला जो किसी दोषसे दूषितहो तौ उसके दोषसे प्रतिनिधि दंडका भागी नहीं होसक्ता ॥ १२७ ॥

ऋणेकृषौचवाणिज्येतथासर्वेषुकर्म्मसु।
यद्यदङ्गीकृतंलोकैस्तत्कार्य्यंधर्म्मसम्मतम् ॥१२८॥

अर्थ-ऋण (कर्ज), कृषि (खेती), वाणिज्यमें(वनज)व्योपार (सौदागरी) व और सब कार्योंमें जैसे अंगिकार करै और धर्मानुसार हो तौ वैसाही आचरण करना चाहिये ॥ १२८ ॥

अधीशेनाविंतंविश्वंनाशंयान्तिनिनक्षवः।
तत्पातृन्पातिविश्वेशस्तस्माल्लोकाहितोभवेत् ॥ १२९॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे सर्वतन्त्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्म-
निर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादे
सनातनव्यवहारकथनं नाम
द्वादशउल्लासः ॥ १२ ॥

अर्थ-इस संसारकी रक्षा करनेवाला जगदीश्वर है. जो लोग इस जगत्का बुरा चेतते हैं, उनका स्वयं नाश होजाता है।

ईश्वरसे पाले जाते हुए जगत्की जो लोग रक्षा करते हैं जगदीश्वर उनकीभी रक्षा करता है अतएव सदाही जगत्का हित करना चाहिये ॥ १२९ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रे सर्वतंत्रोत्तमोत्तमे सर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादेबलदेवप्रसादमिश्रकृत-भाषाटीकायां सनातनव्यवहारकथनं-नाम द्वादश उल्लासः ॥ १२ ॥

अथत्रयोदशउल्लासः ।

इतिनिगदितवन्तंदेवदेवंमहेशम् ।
निखिलनिगमसारंस्वर्गमोक्षैकबीजम् ॥
कलिमलकलितानांपावनैकान्तचित्ता
त्रिभुवनजनमातापार्वतीप्राहभक्त्या ॥ १ ॥

अर्थ-सब नियमोंका सार और स्वर्ग वा मोक्षका बीजरूप यह वाक्य जब देवदेव महादेवजी कह चुके तब कलिमलसे कलुषित हुए जीवोंकी पवित्रताका अत्यन्त अभिलाष करनेवाली त्रिलोकीके जीवोंकी माता श्रीपार्वतीजी भक्तिसहित कहती हुई ॥ १ ॥

देव्युवाच ।

महद्योनेरादिशक्तेर्म्महाकाल्यामहाद्युते ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मभूतायाःकथंरूपनिरूपणम् ॥ २ ॥

अर्थ-भगवतीजीने कहा- जो महद्योनि अर्थात् जिससे सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्नहोरहाहै जो महाद्युति अर्थात् जिससे स्थूलसूक्ष्म सारा संसार प्रकाशमान है जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अर्थात् जो बडी कठिनाईसे जानी जाती है उन महाकालीजीके रूपका निरूपण किस प्रकारसे उचित होसक्ता है ॥ २ ॥

रूपंप्रकृतिकार्य्याणांसातुसाक्षात्परात्परा ।
एतन्मेसंशयंदेव ! विशेषाच्छेत्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

अर्थ-हे देव ! प्राकृतिक कार्य अर्थात् पाञ्चभौतिक घटपटादिका ही रूप है महाकाली साक्षात् परेसे परे हैं । हमैं इस बातमें बडा संशय है, आप मेरे इस संशयको दूरकीजिये ॥ ३ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

उपासकानांकार्य्यायपुरैवकथितंप्रिये! ।
गुणक्रियानुसारेणरूपंदेव्याःप्रकल्पितम् ॥ ४ ॥

अर्थ-श्रीमहादेवजी बोले-मैंने पहलेही तुमसे कहा है कि उपासकोंके कार्यके अर्थ गुण और क्रियाके अनुसार देवीका रूप कल्पित कियागया है ॥ ४ ॥

श्वेतपीतादिकोवर्णोयथाकृष्णेविलीयते।
प्रविशन्तितथाकाल्यांसर्वभूतानिशैलजे! ॥५ ॥

अर्थ-हे शैलनंदिनि ! जैसे श्वेत पीले आदि रंग केवल एक काले रंगमें लीन होजातेहैं, वैसेही सारे पदार्थ एक कालीजीमें लीन होजातेहैं ॥ ५ ॥

अतस्तस्याःकालशक्तेर्निर्गुणायानिराकृतेः ।
हितायाःप्राप्तयोगानांवर्णःकृष्णोनिरूपितः ॥ ६ ॥

अर्थ-इस कारण उनलोगोंने जो कि योगारूढ़ हुएहैं. निर्गुण निराकारा संसारकी हित करनेवाली कालशक्तिका कृष्णवर्ण निरूपण कियाहै ॥ ६ ॥

नित्यायाःकालरूपायाअव्ययायाःशिवात्मनः ।
अमृतत्वाल्ललाटेऽस्याःशशिचिह्नंनिरूपितम् ॥ ७ ॥

अर्थ--वह नित्य कालरूप, अविनाशी और मंगलमयीहैं इस कारण अमृतस्वरूपके हेतुसे उनके ललाटमें चंद्रमाकी कला कल्पित हुई है ॥ ७ ॥

शशिसूर्य्याग्निभिर्नित्यैरखिलंकालिकंजगत् ।
सम्पश्यतियतस्तस्मात्कल्पितंनयनत्रयम् ॥ ८ ॥

अर्थ–सदा चंद्र,सूर्य और अग्नि करके कालसे उत्पन्न हुआ जगत् दिखाई देताहै, इस कारणसे योगियोंने उनके तीन नेत्र कल्पित किएहैं ॥ ८ ॥

ग्रसनात्सर्वसत्त्वानांकालदन्तेनचर्वणात् ।
तद्रक्तसंघोदेवेश्यावासोरूपेणभाषितम् ॥ ९ ॥

अर्थ–वह कालके क्रमसे सब प्राणियोंको ग्रास करती है, और कालरूपी दांतोंसे चाब जाती हैं, इस कारणसे सब प्राणियोंका रुधिर समूह उन महेश्वरीका लाल वस्त्र कल्पित हुआहै॥९॥

समयेसमयेजीवरक्षणंविपदः शिवे! ।
प्रेरणंस्वस्वकार्य्येषुवरश्चाभयमीरितम् ॥१०॥

अर्थ–हे शिवे ! वह समय २ पर जीवकी रक्षा करती हैं और विपदसे उद्धार करतीहैं इसकारण उनके दाहिने दो हाथोंमें वर और अभयकी कल्पनाकीगईहै ॥ १० ॥

रजोजनितविश्वानिविष्टभ्यपरितिष्ठति ।
अतोहिकथितंभद्रे!रक्तपद्मासनस्थिता ॥ ११ ॥

अर्थ–हे भद्रे ! वह रजोगुणसे उत्पन्न हुए संसारमें रहती हैं, इस कारणसे कहा जाता है कि वह लालकमलके आसनपर विराजमानहैं ॥ ११ ॥

क्रीड़न्तंकालिकंकालंपीत्वामोहमयींसुराम् ।
पश्यन्तीचिन्मयीदेवीसर्वसाक्षिस्वरूपिणी ॥ १२ ॥

अर्थ-मोहमयी सुराको पीकर कालोचित जगत्को खाय काल क्रीडा करता है,सबकी साक्षिरूप वह ज्ञानमयी देवी इसको देखती है ॥ १२ ॥

एवंगुणानुसारेणरूपाणिविविधानिच ।
कल्पितानिहितार्थायभक्तानामल्पमेधसाम् ॥१३॥

अर्थ-अल्प ज्ञान रखनेवाले भक्तवृन्दोंके हितार्थ इस प्रकार गुणानुसार उन भगवतीके बहुतसे रूप कल्पित हुए हैं ॥ १३ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

ध्यानंयत्कथितंकाल्याजीवनिस्तारहेतवे ।
तस्यानुरूपतोमूर्त्तिमृन्मयींवाशिलामयीम् ॥ १४ ॥

अर्थ-देवीजीने कहा-जीवोंके निस्तारको जो आपने आदि कालिका व औरदेवताओंका जो ध्यान कहाहै, यदि वह ध्यानके समान मूर्ति मृत्तिका, पत्थर ॥ १४ ॥

दारुधातुमयींवापिनिर्मायययदिसाधकः ।
विचित्रभवनंकृत्वावस्त्रालङ्कारभूषिताम् ॥ १५ ॥

अर्थ-काठ या धातुकी बनाकर साधक पुरुष इस मूर्तिको वस्त्राभूषण पहराय शृंगार करे और जो विचित्र रमणीक गृह बनाय ॥ १५ ॥

स्थापयेत्तत्रदेवेशंकिफलंतस्यजायते ।
प्रतिष्ठाकेनविधिनातस्याःप्रतिकृतेःप्रभो ।
कर्त्तव्यातदशेषेणकृपयामेप्रकाश्यताम् ॥ १६ ॥

अर्थ-तहां उस महेश्वरीकी मूर्त्तिको स्थापित करे तो उसका क्या फल होगा ? हे प्रभो ! किस विधिके अनुसार वह प्रतिमा प्रतिष्ठित करनी चाहिये,सो सम्पूर्ण आप कृपाकरके मुझसे कहें१६॥

वापीकूपगृहारामदेवप्रतिकृतेस्तथा ।
प्रतिष्ठासूचितापूर्वंगदितानविशेषतः ॥ १७ ॥

अर्थ–आपने पहले वापी, कुआ, गृह, आराम, व देवप्रतिमा इन सबका वर्णन किया है; परन्तु विशेषतासे कुछ नहीं कहा॥ १७॥

तद्विधानमपिश्रोतुमिच्छामित्वन्मुखाम्बुजात् ।
कथ्यतांपरमेशान ! कृपयायदिरोचते ॥ १८॥

अर्थ–हे महेश्वर ! मैं आपके मुखकमलसे उस सम्पूर्ण विधानको भी सुना चाहती हूं, जो आपकी रुचि हो तो कृपाकरके कहिये॥ १८॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

गुह्यमेतत्परंतत्त्वंयत्पृष्टंपरमेश्वरि ! ।
कथयामितवस्नेहात्समाहितमनाःशृणु ॥ १९ ॥

अर्थ–श्रीसदाशिवने कहाः–तुमने इन अतिगोपनीय तत्वोंको बूझा तुह्मारे स्नेहके वशसे मैं कहता हूं तुम हृदयको सावधान करके सुनो ॥ १९ ॥

सकामाश्चैवनिष्कामाद्विविधाभुविमानवाः ।
अकामानांपदंमोक्षःकामिनांफलमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ–इस पृथ्वीपर मनुष्य दो प्रकारके हैं सकाम और निष्काम, निष्काम पुरुष मोक्षपदको पाते हैं और सकाम जिस फलको पाते हैं वह मैं तुमसे वर्णन करताहूं ॥ २० ॥

योयद्देवप्रतिकृतिंप्रतिष्ठापयतिप्रिये ! ।
सतल्लोकमवाप्नोतिभोगानपितदुद्भवान् ॥ २१ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! जो पुरुष जिस देवताके प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करता है, वह पुरुष उसी देवताके लोकमें उस देवताके प्रसादसे अनेक प्रकारकी भोग्य करने योग्य वस्तुओंका भोग करता है ॥ २१ ॥

मृन्मयेप्रतिबिम्बेतुवसेत्कल्पायुतंदिवि ।
दारुपाषाणधातूनांक्रमाद्दशगुणाधिकम् ॥ २२ ॥

अर्थ-मृत्तिकाकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेवाला पुरुष दशहजार कल्पतक स्वर्गमें वास करताहै, काठकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेसे दशगुण समय अर्थात् एकलाखकल्प, पत्थरकी मूर्ति प्रतिष्ठित करनेसे तिस्से शतगुणा समय अर्थात् दशलक्ष कल्प अर्थात् करोड़ कल्पतक देवलोकमें वास होता है ॥ २२ ॥

तृणकाष्ठादिरचितंध्वजवाहनसंयुतम् ।
मन्दिरंदेवमुद्दिश्यकाममुद्दिश्यवानरः ।
संस्कुर्य्यादुत्सृजेद्वापितस्यपुण्यंनिशामय ॥ २३ ॥

अर्थ-देवताकी प्रीतिके लिये अथवा किसी कामनासे जो पुरुष ध्वज और वाहनके साथ तृणकाष्ठादिनिर्मित घरको बनायकर भेट दे उस्से क्या पुण्य होताहै सो कहताहूं सुनो ॥ २३ ॥

तृणादिनिर्मितंगेहंयोदद्यात्परमेश्वरि ! ।
वर्षकोटिसहस्राणिसवसेद्देववेश्मनि ॥ २४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! तृणादिसे बने हुए गृहको दान करनेवाला पुरुष हजार करोड़ वर्षतक देवलोकमें वास करताहै ॥ २४ ॥

इष्टकागृहदानेतुतस्माच्छतगुणंफलम् ।
ततोऽयुतगुणंपुण्यंशिलागेहप्रदानतः ॥ २५ ॥

अर्थ-ईंटसे बने हुए घरका दान करनेवाला पुरुष इससे शतगुण फल पावेगा । पत्थरका बना घर दान करनेवाला पुरुष उस्से दशगुणे फलको भोगेगा ॥ २५ ॥

सेतुसङ्क्रमदाताद्ये ! यमलोकंनपश्यति ।
सुखंसुरालयंप्राप्यमोदतेस्वर्निवासिभिः ॥ २६ ॥

अर्थ–हे आद्ये ! पुल बनवानेवाले पुरुषको यमलोकका मुख नहीं देखना पड़ता; वह परम सुख देवसदनमें जाय स्वर्गवासियोंके साथ आनंद करताहै ॥ २६ ॥

वृक्षारामप्रतिष्ठातागत्वात्रिदशमन्दिरम् ।
कल्पपादपवृन्देषुनिवसन्दिव्यवेश्मनि ।
भुङ्क्तेमनोरमान्भोगान्मनसोयानभीप्सितान् ॥ २७ ॥

अर्थ–वृक्ष और फुलवाडीकी प्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष देवलोकमें जाय, कल्पवृक्षके पौहदोंसे विराजमान हुए दिव्य गृहमें वास करके अभिलाषाके अनुसार मनकी रमानेवाली भोगने योग्य वस्तुओंके समूहको भोग करता है ॥ २७ ॥

प्रीतयेसर्वसत्वानांयेप्रदद्युर्जलाशयम् ।
विधूतपापास्तेप्राप्यब्रह्मलोकमनामयम् ।
निवसेयुःशतंवर्षानम्भसांप्रतिशीकरम् ॥ २८॥

अर्थ–सर्वप्राणियोंकी तृप्तिके लिये जलाशयका उत्सर्ग करनेवाला पुरुष पापरहित हो वा निर्दोष हो ब्रह्मलोकमें चला जाता है और उस जलाशयमें जितने जलके कण होंगे उनसे शत वत्सरतक वह ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ २८ ॥

योदद्याद्वाहनंदेवि ! देवताप्रीतिकारकम् ।
सतेनरक्षितोनित्यंतल्लोकेनिवसेच्चिरम् ॥ २९ ॥

अर्थ–हे देवि ! देवताकी प्रसन्नताके लिये किसी वाहनका दान करनेवाला पुरुष सदा उस वाहनकरके रक्षितहो बहुत कालतक देवलोकमें वास करेगा ॥ २९ ॥

मृन्मयेवाहनेदत्तेयत्फलंजायतेभुवि ।
दारुजेतद्दशगुणंशिलाजेतद्दशाधिकम् ॥ ३० ॥

अर्थ-इस पृथ्वीमें मृत्तिकाका पात्र दान करनेसे जो फल होता है, काटके पात्रको दानकरनेसे तिस्से दशगुण फल होता है और पत्थरका पात्रदान करनेसे तिस्सेभी दशगुण फल होता है ॥३० ॥

रीतिकाकांस्यताम्रादिनिर्मितेदेववाहने ।
दत्तेफलमवाप्नोतिक्रमाच्छतगुणाधिकम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-पीतल, कांसी, तांबा आदि धातुओंसे बनेहुए देववाहनके दान करनेसे क्रमानुसार शतगुण फल अधिक होता है ॥ ३१॥

देव्यगारेमहासिंहंवृषभंशङ्करालये ।
गरुडंकेशवेगेहेप्रदद्यात्साधकोत्तमः ॥ ३२ ॥

अर्थ-परम साधक पुरुष, भगवतीके गृहमें महासिंह महादेवजीके मंदिरमें बैल और विष्णुजीके मंदिरमें गरुड बनातेहैं ॥३२॥

तीक्ष्णदंष्ट्रःकरालास्यःसटाशोभितकन्धरः ।
चतुरङ्घ्रिर्वज्रनखोमहासिंहःप्रकीर्त्तितः ॥३३॥

अर्थ-जिसके दांत तीक्ष्ण हैं जिसका वदनमंडल भयंकर है, जिसकी गर्दन केशरसमूहसे शोभायमान है, जिसके नाखून वज्रकी समान काठिन हैं ऐसे चतुष्पद जन्तुओंको महासिंह कहा जाता है ॥ ३३ ॥ अर्थात् (इस प्रकार महासिंह देवीके मंदिरमें स्थापित करना चाहिये)

शृङ्गायुधःशुद्धकायःचतुष्पादःसितक्षुरः ।
बृहत्ककुत्कृष्णपुच्छःश्यामस्कन्धोवृषःस्मृतः ॥ ३४॥

अर्थ-जिसके शरीरका वर्ण श्वेत है, जिसके मस्तकपर दो सींग शोभा दे रहे हैं, जिसके खुर श्वेतवर्ण हैं, जिसकी पीठपर ककुद है, जिसका कंधा श्यामवर्ण है ऐसे चौपाए जन्तुको बैल कहा जाता है ॥ ३४ ॥

गरुडःपक्षिजंघस्तुनरास्योदीर्घनासिकः ।
पादसङ्कोचसंविष्टःपक्षयुक्तःकृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥

अर्थ–गरुडजीकी जंघा पक्षीकी समान, वदन मनुष्यकी समान और नासिका लम्बीहो दो पंख होवे, यह गरुडजी दोनों पांव सकोडे हाथ जोडे बैठे हुए हों (इस प्रकारकी गरुडमूर्ति वासुदेवजीके मंदिरमें स्थापन करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

पताकाध्वजदानेनदेवप्रीतिःशतंसमाः ।
ध्वजदण्डस्तुकर्त्तव्योद्वात्रिंशद्धस्तसाम्मितः ॥ ३६ ॥

अर्थ–देवालयमें ध्वजा पताका दान करनेसे देवतालोग शतवर्ष-तक प्रसन्न रहते हैं. ध्वजाका दंड बत्तीस हाथ लम्बा करना चाहिये ॥ ३६ ॥

सुदृढश्छिद्ररहितःसबलःशुभदर्शनः ।
वेष्टितोरक्तवस्त्रेणकोटौचक्रसमान्वितः ॥ ३७ ॥

अर्थ–ध्वजाका यह दंड मजबूत छिद्ररहित, सीधा, देखनेमें अच्छा और लालवस्त्रसे लपेटा हुआ हो । उसके अग्रभागमें विष्णु चक्र रहै ॥ ३७ ॥

पताकातत्रसंयोज्यातत्तद्वाहनचिह्निता ।
प्रशस्तमूलासूक्ष्माग्रादिव्यवस्त्रविनिर्मिता ।
शोभमानाध्वजाग्रेयापताकासाप्रकीर्त्तिता ॥ ३८ ॥

अर्थ–इस दंडके अग्रभागमें पताका लगानी चाहिये, पताकाका पिछला भाग श्रेष्ठ और अग्रभाग सूक्ष्म हो, तिसको रमणीय वस्त्रसे बनाना चाहिये । तिसमें उन २ देवताओंके वाहनोंके चिह्न हों, यह पताका ध्वजाके आगे शोभायमान होती रहै ॥ ३८ ॥

वासोभूषणपर्य्यङ्कयानसिंहासनानिच ।
पानप्राशनताम्बूलभाजनानिपतद्ग्रहम् ॥ ३९ ॥

अर्थ-जो वस्त्राभूषण, सिंहासन, गिलास, भोजनपात्र (थाली इत्यादि) ताम्बूल पात्र (खासदान) पीकदान ॥ ३९ ॥

मणिमुक्ताप्रवालादिरत्नान्यात्मप्रियञ्चयत् ।
योदद्याद्देवमुद्दिश्यश्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
सतल्लोकंसमासाद्यतत्तत्कोटिगुणंलभेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-मणि, मुक्ता, मूंग आदि रत्न और अपनी प्यारी वस्तुयें देवताके अर्थ श्रद्धाभक्तिके साथ दान करता है, वह पुरुष उसही देवताके स्थानमें जायकर उस दी हुई वस्तुका कोटिगुण फल प्राप्त कर सक्ता है ॥ ४० ॥

कामिनांफलमित्युक्तंक्षयिष्णुस्वप्नराज्यवत् ।
निष्कामानान्तुनिर्वाणंपुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-कामना करके कर्म करनेवालोंका फल स्वप्नमें प्राप्त हुए राज्यकी समान क्षयशील है, निष्काम होकर कर्म करनेवालोंको जन्म नहीं लेना पडता वह लोग निर्वाणमुक्तिपदको पाते हैं ॥४१॥

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।
देवतानांप्रतिष्ठायांवास्तुदैत्यंप्रपूजयेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-जलाशयप्रतिष्ठा, गृहप्रतिष्ठा, आरामप्रतिष्ठा, सेतुप्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा और देवप्रतिष्ठाके समय वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अनर्चयित्वायोवास्तुंकुर्य्यात्कर्माणिमानवः ।
विघ्नन्तस्याचरेद्वास्तुःपरिवारगणैःसह ॥ ४३ ॥

अर्थ-जो मनुष्य विना गृहदेवताकी पूजा किये देवप्रतिष्ठा आदि कोई कर्म करे, तो वास्तुदेवता अर्थात् गृहदेवता परिवारके साथ मिलकर उसके तिस शुभकर्ममें विघ्न करदेते हैं ॥ ४३ ॥

कपिलास्यःपिङ्गकेशोभीषणोरक्तलोचनः ।
कोटराक्षोलम्बकर्णोदीर्घजंघोमहोदरः ॥ ४४ ॥

अर्थ-कपिलास्य, पिंगकेश, भीषण, रक्तलोचन, कोटराक्ष, लम्ब-कर्ण, दीर्घजंघ, महोदर ॥ ४४ ॥

अश्वतुण्डःकाककण्ठोवज्रबाहुर्व्रतान्तकः ।
एतेपरिकरावास्तोःपूजनीयाःप्रयत्नतः ॥ ४५ ॥

अर्थ-अश्वतुण्ड, काककंठ, वज्रबाहू, वज्रान्तक यह सब वास्तुदेवताका परिवारहै यत्नसहित इनकी पूजा करै ॥ ४५ ॥

मण्डलंशृणुवक्ष्यामियत्रवास्तुंप्रपूजयेत् ॥४६॥

अर्थ-जिस मंडलमें वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये अब उसको कहताहूं सुनो ॥ ४६ ॥

वेद्यांवासमदेशेवाशस्ताद्भिरुपलेपिते ।
वाय्वीशकोणयोर्मध्येहस्तमात्रप्रमाणतः ।
सूत्रपातक्रमेणैवरेखामेकांप्रकल्पयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-वेदी या और किसी बराबर पृथ्वीको श्रेष्ठजलसे लीपना चाहिये फिर तिसमें वायुकोणसे लेकर ईशानकोणतक हाथभरकी एक सीधी रेखा खैंचे ॥ ४७ ॥

ईशानादग्निपर्य्यन्तमपरांरचयेत्तथा ।
आग्नेयान्नैर्ऋतंयावन्नैर्ऋताद्वायवावधि ॥ ४८ ॥

अर्थ-फिर ईशानकोणसे लेकर अग्निकोणतक ऐसीही और एक हाथ सीधी रेखा खैंचे । तत्पश्चात् अग्निकोणसे लेकर नैर्ऋतको णतक और नैर्ऋतकोणसे लेकर वायुकोणतक ॥ ४८ ॥

दत्वारेखेचतुष्कोणमेकंमण्डलमालिखेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-रेखा खेंचनेसे एक चौकोन मंडल बन जायगा ॥ ४९ ॥

कोणसूत्रेपातयित्वाचतुर्द्धाविभजेत्तुतत् ।
यथातत्रभवेद्देवि!मत्स्यपुच्छचतुष्टयम् ॥५०॥

अर्थ-हे देवि ! इस मंडलके एक कोणेसे लेकर दूसरे कोनेतक दो रेखा खैंचकर ऐसा करै कि जिस्से पुच्छाकार चार मत्स्य होजांय ॥ ५० ॥

ततोभित्त्वापुच्छमूलंवारुणाद्वासवावधि ।
कौबेराद्याम्यपर्य्यन्तंदद्याद्रेखाद्वयंसुधीः ॥५१॥

अर्थ-फिर ज्ञानी पुरुष इस पूंछकी मूलको भेदनकर पश्चिम दिशासे लेकर पूर्वदिशातक एक और उत्तर दिशासे लेकर दक्षिण दिशातक एक रेखा खैंचे ॥ ५१ ॥

ततश्चतुर्षुकोणेषुकोणरेखान्वितेष्वपि ।
कर्णाकर्णिप्रयोगेणन्यसेद्रेखाचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-फिर इस मंडलके भीतरे चौकोन चार मंडलोंमें कर्णाकर्णि ऐसी मिली हुई एक एक रेखा और मध्यस्थलमें पश्चिमसे लेकर पूर्वतक एक एक और उत्तरसे दक्षिणतक एक २ रेखाकी कल्पना करे ॥ ५२ ॥

एवंसङ्केतविधिनाकोष्ठानांषोडशंलिखन् ।
पञ्चवर्णेनचूर्णेनरचयेद्यन्त्रमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-इस प्रकार संकेतके अनुसार इन मंडलोंमें सोलह कोठे बन जांयगे अर्थात् मंडलमें सोलह चौकोन अथवा बत्तीस त्रिकोण वृत्त हो जांयगे फिर पांच रंगके चूर्णसे यह मंत्र भलीभांतिसे बनावे॥५३

चतुर्षुमध्यकोष्ठेषुपद्मंकुर्य्यान्मनोहरम् ।
चतुर्दलंपीतरक्तकर्णिकंरक्तकेशरम् ॥ ५४ ॥

अर्थ–फिर बीचमें स्थित हुए चार कोठोंके ऊपर एक मनोहर चार दलवाला कमल बनावै, तिसकी धंघोल पीली और लालहो ॥ ५४ ॥

दलानिशुक्लवर्णानियद्वापीतानिकल्पयेत् ।
यथेष्टंपूरयेत्पद्मसन्धिस्थानानिवर्णकैः ॥ ५५ ॥

अर्थ–फिर कमलकी सब पंखडियें श्वेत वर्ण या पीले रंगकी करे । तदुपरान्त कमलके संन्धिस्थानमें चाहै जैसा रंग भरदे५५॥

शाम्भवंकोष्टमारभ्यकोष्ठानांद्वादशंक्रमात् ।
श्वेतकृष्णपीतरक्तैश्चतुर्वर्णैःप्रपूरयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ–फिर ईशान कोणके कोठेसे आरंभ करके शेष बारह कोठे क्रमानुसार सफेद, काले, पीले, लाल इन चारों रंगसे पूर्ण करे ५६

दक्षिणावर्त्तयोगेनकोष्ठानांपूरणंप्रिये ! ।
वामावर्त्तेनदेवानांपूजनंतेषुसाधयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! दक्षिणावर्तयोगमें इन सब कोठोंको पूर्ण करना चाहिये फिर तिसमें वामावर्तके योगसे देवताओंकी पूजा करे॥५७

पद्मेसमर्चयेद्वास्तुदैत्यंविघ्नोपशान्तये ।
ईशादिद्वादशेकोष्ठेकपिलास्यादिदानवान् ॥ ५८ ॥

अर्थ–पहले तो विघ्नकी शांतिके लिये पद्ममें वास्तुदैत्यका पूजा करे । फिर ईशानकोणमें स्थित कोठेसे आरंभ करके (वामावर्त्तमें) बारह कोठोंमें कापिलास्यादि दानवोंकी पूजा करे ॥५८॥

कुशण्डिकोक्तविधिनाकुर्वन्ननलसंस्कृतिम् ।
यथाशक्त्याहुतिंदत्वावास्तुयज्ञंसमापयेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ–फिर कुशण्डिकामें कहीहुई विधिके अनुसार अग्निसंस्कार करके यथाशक्ति आहुति देकर वास्तुयज्ञको समाप्त करे॥५९॥

इतितेकथितादेवि ! वास्तुपूजाशुभप्रदा ।
यांसाधयन्नरःक्वापिवास्तुविघ्नैर्नबाध्यते ॥ ६० ॥

अर्थ-हे देवि ! यह तुमसे कल्याणकी देनेवाली वास्तु-पूजा कही । वास्तुपूजाका अनुष्ठान करनेवालेको कोई विघ्न नहीं होता ॥ ६० ॥

देव्युवाच ।

मण्डलंकथितंवास्तोर्विधानमपिपूजने ।
ध्यानंनगदितंनाथ!तदिदानींप्रकाशय ॥ ६१ ॥

अर्थ-देवीजीने कहा-हे नाथ ! आपने वास्तुदेवताका मंडल और वास्तुपूजाका विधान कहा; परन्तु वास्तुदेवताका ध्यान नहीं कहा सो अब कहिये ॥ ६१ ॥

श्रीसदाशिवउवाच ।

ध्यानंवच्मिमहेशानि! श्रूयतांवास्तुरक्षसः ।
यस्यानुशीलनात्सद्योनश्यन्तिसकलापदः ॥ ६२॥

अर्थ-श्रीमहादेवजी बोले-हे महेश्वरि ! वास्तुराक्षसका ध्यान कहताहूं सुनो । इसका वारंवार अभ्यास करनेसे सब आपत्तियें दूर होतीहैं ॥ ६२ ॥

चतुर्भुजंमहाकायंजटामण्डितमस्तकम् ।
त्रिलोचनंकरालास्यंहारकुण्डलशोभितम् ॥ ६३ ॥

अर्थ-जो चतुर्भुज और बड़े शरीरवाले हैं जिनका मस्तक जटाके समूहसे शोभायमान है, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका वदन करालहै, जो हार कुंडलसे शोभायमानहैं ॥ ६३ ॥

लम्बोदरंदीर्घकर्णंलोमशंपीतवाससम् ।
गदात्रिशूलपरशुखट्वाङ्गंदधतंकरैः ॥ ६४ ॥

अर्थ-जो लम्बोदर और दीर्घकर्ण है जिनका शरीर रुओंसे ढका हुआ है, जो पीला वस्त्र पहर रहेहैं; जो चारों भुजाओंसे गदा, त्रिशूल, परशु, खट्वाङ्ग (अस्त्रविशेष) धारण करते हैं ॥ ६४ ॥

असिचर्म्मधरैर्वीरैःकपिलास्यादिभिर्वृतम् ।
शत्रूणामन्तकंसाक्षादुद्यदादित्यसन्निभम् ॥६५॥
ध्यायेद्देवंवास्तुपतिंकूर्म्मपद्मासनस्थितम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-कपिलास्यादि वीरगण खड्ग, चर्म धारण करके जिनके चारोंओर विराजमान हैं, जो शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं, जो उदित होते हुए सूर्यकी समान अरुण वर्ण, जो कछुएके ऊपर पद्मासन पर बैठे हैं ऐसे वास्तुपति देवताका ध्यान करै॥६५॥६६॥

मारीभयेरोगभयेडाकिन्यादिभयेतथा ॥
औत्पातिकापत्यदोषेव्यालरक्षोभयेऽपिच ।
ध्यात्वैवंपूजयेद्वास्तुंपरिवारसमन्वितम् ॥ ६७ ॥

अर्थ-मारीभय, रोगभय और डाकिनीभयके पड़नेपर हिंसक जन्तु या राक्षसभयहोने या इसप्रकारसे परिवारयुक्त वास्तुदेवताकी पूजा करै ॥ ६७ ॥

तिलाज्यपायसैर्हुत्वासर्वशान्तिमवाप्नुयात् ।
यथावास्तुःपूजनीयःप्रोक्तकर्म्मसुसुव्रते ! ॥ ६८ ॥

अर्थ-फिर तिल, घी और खीरसे होम करके सब बातोंमें शान्ति प्राप्तकर सकेगा । हे सुव्रते ! पहले कहे हुए सब कार्योंमें जैसे वास्तुदेवताकी पूजा करनी होती है ॥ ६८ ॥

ग्रहाश्चापितथापूज्यादशदिक्पतिभिर्युताः ।
ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्चवाणीलक्ष्मीश्चशङ्करी ॥ ६९ ॥

अर्थ-वैसेही नवग्रह, दशदिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वतीकी ॥ ६९ ॥

मातरःसगणेशाश्चसम्पूज्यावसवस्तथा ।
पितरोयद्यतृप्ताःस्युःकर्म्मस्वेतेषुकालिके ! ॥ ७० ॥

अर्थ-मातृगणोंकी, गणेश, वसुगण और पितृगणोंकी पूजा करनी चाहिये । हे कालिके ! पहले कहे हुए सब कर्मोंसे जो यह संतुष्ट नहो ॥ ७० ॥

सर्वन्तस्यभवेद्व्यर्थंविघ्नश्चापिपदेपदे ।
अतोमहेशि ! यत्नेनप्रोक्तसंस्कारकर्म्मसु ॥ ७१ ॥

अर्थ-तो कर्मकर्ताका सब कुछ व्यर्थहोजाता है और पग २ पर उसको विघ्न होते हैं ॥ ७१ ॥

पितृणांतृप्तयेऽत्राभ्युदयिकंश्राद्धमाचरेत् ।
ग्रहयन्त्रंप्रवक्ष्यामिसर्वशान्तिविधायकम् ॥ ७२ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! इस कारण पहले कहेहुए सब कर्मोंमें पितृगणोंकी तृप्तिके लिये यत्नसहित आभ्युदयिक श्राद्ध करे अब सर्वशांतिका करनेवाला ग्रहयंत्र कहता हूं ॥ ७२ ॥

यत्रसम्पूजिताःसेन्द्राग्रहायच्छन्तिवाञ्छितम् ।
त्रित्रिकोणैर्लिखेद्यन्त्रंतद्बहिर्वृत्तमालिखेत् ॥ ७३ ॥

अर्थ-तिसमेंग्रह और इन्द्रादिक देवता पूजे जाकर अभिलाषित फल देते हैं तीन त्रिकोण यंत्र लिखकर तिसके बाहर गोल मंडल बनावै ॥ ७३ ॥

विदध्याद्वृत्तलग्नानिदलान्यष्टौचतद्बहिः ।
चतुर्द्वारान्वितंकुर्य्याद्भूपुरंसुमनोहरम् ॥ ७४ ॥

अर्थ-उस वृत्तके बाहेर तिस्से लगाहुआ आठ दलवाला पद्म लिखै तिसके बाहेर चारद्वारवाला एक मनोहर भूपुर बनावे॥७४॥

वासवेशानयोर्म्मध्येभूपुरस्यबहिःस्थले ।
वृत्तंविरचयेदेकंप्रादेशपरिमाणकम् ॥ ७५ ॥

अर्थ-भूपुरके बाहेर पूर्वदिशामें और ईशान कोण मध्यमें आधे हाथका एक वृत्त खैंचे ॥ ७५ ॥

रक्षोवारुणयोर्म्मध्येचापरंकल्पयेत्तथा ॥ ७६ ॥

अर्थ-फिर पश्चिम दिशा और नैर्ऋतकोणके बीचमेंभी ऐसा ही एक मंडल बनावै ॥ ७६ ॥

नवग्रहाणांवर्णेननवकोणानिपूरयेत् ।
मध्यत्रिकोणाद्द्वौपार्श्वौसव्यदक्षिणभेदतः ॥ ७७ ॥

अर्थ-फिर नवग्रहके वर्णसे रस यंत्रके नौ कोण भरे ॥ ७७ ॥

श्वेतपीतौविधातव्यौपृष्ठभागःसितेतरः ।
अष्टदिक्पतिवर्णेनपर्णान्यष्टौप्रपूरयेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ-बीचमें स्थित हुए त्रिकोणके दांयेबांये दोनों पार्श्व श्वेत और पीले रंगे । तिसका पिछला भाग काला हो, आठ दिक्पालोंके वर्णसे आठ दल पूर्ण करे ॥ ७८ ॥

सितरक्तासितैश्चूर्णैपुरःप्राकारमाचरेत् ।
पुरोबहिःस्थेद्वेवृत्तेदेवि ! प्रादेशसम्मिते ॥ ७९ ॥

अर्थ-श्वेत, लाल और काले चूनसे भूपुरकी प्राकार (भीत) को रंगे । हे देवि ! भूपुरके बाहिरे बने हुए आधे हाथके दोनों वृत्त ॥ ७९ ॥

उपर्य्यधःक्रमेणैवरक्तश्वेतेविधायच ।
सन्धिस्थानानियन्त्रस्यस्वेच्छयारचयेत्सुधीः ॥ ८० ॥

अर्थ-ऊपरके भाग और नीचेके भागके क्रमसे लाल और श्वेत रंग-कर ज्ञानी पुरुष संधिके सब स्थानोंको चाहै जैसे रंगसे भरदे॥८०॥

यत्कोष्ठेयोग्रहःपूज्योयत्पत्रेयश्चदिक्पतिः ।
यद्द्वारेऽवस्थितायेचतत्क्रमंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ८१ ॥

अर्थ-जिस २ कोठेमें जिस २ ग्रहकी पूजाहोनी चाहिये, जिस २ पत्रमें जिस २ दिक्पालकी पूजा होनी चाहिये और जिस द्वारमें जो देवतादि कोण सो अब इसका क्रम कहा जाताहै सुनो ॥८१॥

मध्यकोणेयजेत्सूर्य्यंपार्श्वयोररुणंशिखाम् ।
पश्चात्प्रचण्डयोर्द्दण्डौपूजयेदंशुमालिनः ॥ ८२ ॥

अर्थ-मध्यकोणमें सूर्यकी पूजा करनी चाहिये, तिसको दोनें बगलमें अरुण और शिखाकी पूजा करनी चाहिये फिर सूर्यके पिछले भागमें प्रचंड और उद्दण्डकी पूजा करना योग्य है ॥ ८२॥

भानूर्ध्वकोणेपूर्वस्यामर्चयेद्रजनीकरम् ।
आग्नेयेमङ्गलंयाम्येबुधंनैर्ऋतकोणके ॥ ८३ ॥

अर्थ-सूर्यके ऊर्ध्वकोणमें पूर्वदिशाको चंद्रमाकी पूजा करे फिर अग्निकोणमें मङ्गलकी, दक्षिण दिशामें बुधकी, नैर्ऋतकोणमें ॥८३॥

बृहस्पतिंवारुणेचदैत्याचार्य्यंप्रपूजयेत् ।
शनैश्चरन्तुवायव्येकौबेरेशानयोःक्रमात् ।
राहुंकेतुंयजेच्चन्द्रंपरितस्तारकागणान्॥ ८४ ॥

अर्थ-बृहस्पतिकी, वरुण कोणमें शुक्रकी अर्चना करे । फिर बायुकोणमें शनिकी, उत्तर दिशामें राहुकी, ईशान कोणमें केतुकी अर्चना करके चंद्रमाके चारों ओर ताराओंकी पूजा करे ॥ ८४ ॥

सूरोरक्तःशशीशुक्लोमङ्गलोऽरुणविग्रहः ।
बुधजीवौपाण्डुपीतौश्वेतःशुक्रोऽसितःशनिः ॥ ८५ ॥

अर्थ—सूर्य रक्तवर्ण, चंद्रमा शुक्लवर्ण, मंगल अरुणवर्ण, बुध पाण्डुवर्ण, बृहस्पति पीतवर्ण, शुक्र श्वेतवर्ण और शनि कृष्ण-वर्ण है ॥ ८५ ॥

राहुकेतूविचित्राभौग्रहवर्णाःप्रकीर्त्तिताः ।
चतुर्भुजंरविंध्यायेत्पद्मद्वयवराभयैः ॥ ८६ ॥

अर्थ—राहु और केतुका वर्ण विचित्र है । यह तुमसे ग्रहोंका वर्ण कहा । सूर्यका चतुर्भुज ध्यान करना चाहिये, उनके दो हाथमें पद्म हैं; वह एक हाथसे वर और एक हाथसे अभय देरहे हैं ॥ ८६ ॥

चिन्तयेच्छशिनंदानमुद्राऽमृतकराम्बुजम् ।
कुजमीषत्कुब्जतनुंहस्ताभ्यांदण्डधारिणम् ।
ध्यायेत्सोमात्मजंबालंभाललोलितकुन्तलम् ॥ ८७ ॥

अर्थ—चंद्रमाका ध्यान इस प्रकारसे करे कि उनके हाथमें अमृत और दूसरे हाथमें दान मुद्रा है; मंगलका ध्यान इस प्रकार करे कि वह कुछेक कुबड़े हैं और दोनों हाथोंसे ६ दंड धारण किये हैं, बुधका ध्यान इस प्रकारसे करे कि वह बालक है और उनके माथेमें चंचल केश शोभायमान हो रहे हैं ॥ ८७ ॥

यज्ञसूत्रान्वितंध्यायेत्पुस्तकाक्षकरंगुरुम् ।
एवंदैत्यगुरुश्चापिकाणंखञ्जंशनैश्चरम् ॥ ८८ ॥
राहुकेतूशिरःकायौविकृतौक्रूरचेष्टितौ ।
स्वैःस्वैर्ध्यानैर्ग्रहानिष्ट्वायजेदिन्द्रादिदिक्पतीन् ॥ ८९ ॥

अर्थ—बृहस्पतिका ध्यान इस भांति करे कि उनके गलेमें यज्ञो-पवीत पड़ा है, एक हाथमें पुस्तक और एक हाथमें अक्षमाला है, इस प्रकार शुक्रको एकनेत्र हीन और शनैश्चरको लंगडा ध्यान करे । यह दोनों ही क्रूरचेष्टायुक्त और विकृताकार हैं । ग्रहोंको उनके स्थानसहित पूज कर फिर इन्द्रादि दिक्पालोंकी पूजा करे ॥ ८८ ॥ ८९

दलेष्वष्टसुपूर्वादिक्रमतःसाधकोत्तमः।
सहस्राक्षंयजेदादौपीतकौशेयवाससम् ॥ ९० ॥

अर्थ-साधकश्रेष्ठको उचित है कि आठ दलवाले पद्मके पूर्वकी ओरके दलसे आरंभ करके (प्रत्येक दलमें एक २ दिक्पालकी पूजा करे) पहले पूर्व दिशाके पत्रमें इन्द्रकी पूजा करे। इन्द्रके सहस्र नेत्र हैं उनका वर्ण पीला है, वह रेशमीन वस्त्र पहरे हुए हैं ॥ ९० ॥

वज्रपाणिंपीतरुचिंस्थितमैरावतोपरि।
रक्ताभंछागवाहस्थंशक्तिहस्तंहुताशनम् ॥ ९१ ॥

अर्थ-उनके हाथमें वज्र है,शरीरका वर्ण पीत है, ऐरावत नामके हाथीके ऊपर बैठे हैं, अग्निका शरीर रक्त वर्ण है, वह अपने वाहन छागपर बैठेहैं, उनके हाथमें शक्तिनामक अस्त्र है ॥ ९१ ॥

ध्यायेत्कालंलुलायस्थंदण्डिनंकृष्णविग्रहम्।
निर्ऋतिंखड्गहस्तञ्चश्यामलंवाजिवाहनम् ॥ ९२ ॥
वरुणंमकरारूढंपाशहस्तंसितप्रभम्।
ध्यायेत्कृष्णत्विषंवायुंमृगस्थञ्चाङ्कुशायुधम् ॥ ९३ ॥

अर्थ-कालस्वरूप यमराजके शरीरका वर्ण काला है, वह दण्ड हाथमें लिये भैंसेपर सवारहैं। निर्ऋति श्यामलवर्ण हैं, उनके हाथमें खड्ग है, उनका वाहन अश्व है। वरुणजीका ध्यान इस प्रकारसे करे कि वह मकरपर सवार है, वर्ण श्वेत है, हाथमें पाश है। वायुका ध्यान इस प्रकारसे करे कि उनके हाथमें अंकुश नामक अस्त्र है, वह मृगपर बैठे हैं शरीर कृष्ण वर्ण है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

कुबेरंकनकाकारंरत्नसिंहासनस्थितम्।
स्तुतंयक्षगणैःसर्वैःपाशांकुशकराम्बुजम् ॥ ९४ ॥

अर्थ-कुबेरके शरीरका वर्ण सुवर्णकेसा है, वह रत्न सिंहासनपर बैठेहैं, उनके करकमलमें पाश और अंकुशहै, चारोंओर यक्ष लोग खडे हुए उनकी स्तुति कररहे हैं ॥ ९४ ॥

ईशानंवृषभारूढंत्रिशूलवरधारिणम् ।
व्याघ्रचर्म्माम्बरधरंपूर्णेन्दुसदृशप्रभम् ॥ ९५ ॥

अर्थ-ईशान (शिव) बैलपर सवार होकर त्रिशूल धारण किये हुए हैं, उनकी कान्ति पूर्णचंद्रमाके समान है, व्याघ्रचर्मको पहरेहुए हैं ॥ ९५ ॥

ध्यात्वाचैतान्क्रमादिष्ट्वाब्रह्मानन्तौपुराद्बहिः ।
ऊर्द्ध्वाधोवृत्तयोरर्च्यौततोऽर्च्याद्वारदेवताः ॥ ९६ ॥

अर्थ-क्रमानुसार ध्यान सहित इन आठ दिक्पालोंकी पूजा करके भूपुरके बाहिरे ऊपर जो मंडल स्थित है उसमें ब्रह्माजीकी और नीचेके मंडलमें अनन्तकी पूजा करे फिर द्वारदेवताओंकी पूजा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥

उग्रभीमौप्रचण्डेशौपूर्वद्वारस्थाःप्रकीर्त्तिताः ।
जयन्तःक्षेत्रपालश्चनकुलेशाबृहच्छिराः ।
याम्यद्वारेपाश्चिमेचवृकाश्वानन्ददुर्ज्जयाः ॥ ९७ ॥

अर्थ-उग्र, भीम, प्रचंड और ईश यह लोग पूर्वद्वारके स्वामी हैं। जयन्त, क्षेत्रपाल, नकुलेश्वर, बृहच्छिरा यह दक्षिणद्वारके अधीश्वर हैं। वृक, अश्व, आनंद और दुर्जय यह पाश्चिमद्वारके अधि-देवता हैं ॥ ९७ ॥

त्रिशिराःपुरजिच्चैवभीमनादोमहोदरः ।
उत्तरद्वारपाश्चैतेसर्वेशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ९८ ॥

अर्थ-त्रिशिरा, पुराजित्, भीमनाद, महोदर यह उत्तरद्वारके मालिक हैं इन सबकेही साथमें अस्त्र शस्त्रहैं ॥ ९८ ॥

श्रूयतांब्रह्मणोध्यानमनन्तस्यापिसुव्रते ।।
रक्तोत्पलनिभोब्रह्माचतुरास्यश्चतुर्भुजः ॥ ९९ ॥

अर्थ-हे सुव्रते ! ब्रह्मा और अनन्तके ध्यानको कहताहूं सुनो ब्रह्माजी चतुर्भुज और चतुर्मुख हैं इनका शरीर लाल कमलकी समान लालवर्ण है ॥ ९९ ॥

हंसारूढोवराभीतिमालापुस्तकपाणिकः ॥ १०० ॥

अर्थ-वह हंसपर सवार हैं उनके एक हाथमें पुस्तक और एक हाथमें माला है, वह एक हाथसे वर और दूसरे हाथसे अभय दे रहे हैं१००

हिमकुन्देन्दुधवलःसहस्राक्षःसहस्रपात् ।
सहस्रपाणिवदनोध्येयोऽनन्तःसुरासुरैः ॥ १०१ ॥

अर्थ-अनन्तका वर्ण हिम (पाला) कुन्द (बबुलेका फूल) और चंद्रमाकी समान शुभ्र है उनके हजार नेत्र और हजार चरणहैं देवता और दानव लोग इस प्रकारसे हजार हाथवाले और हजार पांववाले अनन्तजीका ध्यान करतेहैं ॥ १०१ ॥

ध्यानपूजाक्रमश्चापियन्त्रञ्चकथितंप्रिये ! ।
वास्त्वादिक्रमतोह्येषांमन्त्रानपिशृणुप्रिये ! ॥ १०२ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! वास्तु इत्यादिके देवताओंका मंत्र, ध्यान और पूजाकी विधि क्रमानुसार कही गई, अब क्रमानुसार इन वास्तु-देवादिकोंका मंत्र कहताहूं सुनो ॥ १०२ ॥

क्षकारोहव्यवाहस्थःषड्दीर्घस्वरसंयुतः ।
भूषितोनादबिंदुभ्यांवास्तुमन्त्रःषडक्षरः ॥ १०३ ॥

अर्थ-क्षकार अग्नि (रेफ) के ऊपर रहै तिसमें दीर्घ स्वर मिलें

वह नादबिन्दुसे विभूषितहो । बस इस प्रकारसे यह षड़क्षर वास्तु-मंत्र होजायगा (१) ॥ १०३ ॥

तारंमायांतिग्मरश्मेङेऽन्तमारोग्यदंवदेत् ।
वह्निजायांततोदत्वासूर्यमन्त्रंसमुद्धरेत् ॥ १०४ ॥

अर्थ-प्रणव और माया इनदो पदोंको उच्चारण करके "तिग्मर-श्मये" पद उच्चारण करे फिर "आरोग्यदाय" पदके "पीछे स्वाहा" उच्चारण करके । इस प्रकार सूर्यके मंत्रका उद्धार होगा(२)॥१०४॥

कामोमायाचवाणीचततोऽमृतकरेतिच ।
अमृतंप्लावयद्वन्द्वंस्वाहासाममनुर्मतः ॥ १०५॥

अर्थ-काम माया वाणी अमृतकर अमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा इन शब्दोंके मिलानेसे सोम (चंद्रमाका) मंत्र होजायगा (३)१०५

ऐंह्रांह्रींसर्वपदादुष्टान्नाशयनाशय ।
स्वाहावसानोमन्त्रोयंमङ्गलस्यप्रकीर्त्तितः ॥१०६॥

अर्थ-"ऐं हां ह्रीं" सर्व, पदके पीछे "दुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा" इस पदके उच्चारण करनेसे मंगलका मंत्र होगा (४)१०६

ह्रींश्रींसौम्यपदञ्चोक्त्वासर्वान्कामांस्ततोवदेत् ।
पूरयान्तेवह्निकान्तामेषसोमात्मजेमनुः ॥१०७॥

अर्थ-"ह्रीं श्रीं सौम्य" पदको उच्चारण करनेके पीछे "सर्वान् कामान्" पद उच्चारण करके "पूरय स्वाहा" इस पदके उच्चा-रण करनेसे बुधका मंत्र होजायगा (५) ॥ १०७ ॥

---

(१) मंत्रोद्धार यथाः-"क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः" यही षडक्षर वास्तुमंत्र है ।
(२) सूर्यमंत्र यथाः- ("ओं ह्रीं तिग्मरश्मये आरोग्यदाय स्वाहा")।
(३) चंद्रमाका मंत्रः-"क्लीं ह्रीं ऐं अमृतकरामृतं प्लावय प्लावय स्वाहा"।
(४) मंगलका मंत्रः-"ऐं ह्रां ह्रीं सर्वदुष्टान् नाशय नाशय स्वाहा"।
(५) बुधका मंत्रः-"ह्रीं श्रीं सौम्य सर्वान् कामान् पूरय स्वाहा"।

तारेणपुटितावाणीततःसुरगुरो!पदम् ॥
अभीष्टंयच्छयच्छेतिस्वाहामन्त्रोबृहस्पतेः ॥ १०८ ॥

अर्थ-पहले तारपुटिता वाणी फिर "सुरगुरो" तदुपरान्त "अभीष्टं यच्छ यच्छ" तदुपरान्त "स्वाहा" उच्चारण करनेसे बृहस्पतिका मंत्र होगा(१) ॥ १०८ ॥

शांशींशूंशैंततःशौंशःशुक्रमन्त्रःसमीरितः ॥ १०९ ॥

अर्थ-"शां शीं शूं शैं शौं शः" यह शुक्रका मंत्र है ॥ १०९ ॥

ह्रांह्रांह्रींह्रींसर्वशत्रून्विद्रावयपदद्वयम् ।
मार्त्तण्डसूनवेपश्चान्नमोमन्त्रःशनैश्चरे ॥ ११० ॥

अर्थ-शनैश्चरका मंत्र यहहै "ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं सर्वशत्रून् विद्रावय विद्रावय मार्तण्डसूनवेनमः" ॥ ११० ॥

रांह्रौंश्रैंह्रींसोमशत्रोशत्रून्विध्वंसयद्वयम् ।
राहवेनमइत्येषराहोर्म्मनुरुदाहृतः ॥ १११ ॥

अर्थ-राहुका मंत्र यह है कि "रां ह्रौं श्रैं ह्रीं सोमशत्रो शत्रून विध्वंसय विध्वंसय राहवेनमः" ॥ १११ ॥

क्रूंहूंक्रैंकेतवेस्वाहाकेतोर्म्मन्त्रःप्रकीर्त्तितः ॥ ११२ ॥

अर्थ-"क्रूं हूं क्रैं केतवे स्वाहा" यह केतुका मंत्र है ॥ ११२ ॥

लंरंमृंस्त्रूंवंयमितिक्षंहौंब्रींममतिक्रमात् ।
इन्द्राद्यनन्तदिक्पानांदशमन्त्राःसमीरिताः ॥ ११३ ॥

अर्थ-इन्द्रका मंत्र "लं" अग्निका मंत्र "रं" यमका मंत्र "मृं" निर्ऋतिका मंत्र "स्त्रूं" वरुणका मंत्र "वं" वायुका मंत्र "यं" कुबेरका मंत्र "क्षं" ईशानका मंत्र "हौं" ब्रह्माका मंत्र "ब्रीं" अनन्तका मंत्र "अं" यह इन्द्रादि दश दिक्पालोंके मंत्र कहे ॥ ११३ ॥

---

(१) "ओं ऐं ओं सुरगुरो ! अभीष्टं यच्छ यच्छ स्वाहा" यह बृहस्पतिका मंत्र है ।

अन्येषांपरिवाराणांनाममन्त्राःप्रकीर्त्तिताः ।
अनुक्तमन्त्रेसर्वत्राविधिरेषशिवोदितः ॥ ११४ ॥

अर्थ-और अंगदेवताओंके परिवारोंका या जिस देवताका मंत्र नहीं कहा, मंत्रकी जगह उसका नामही ले लेना चाहिये, सदाशिवने सब जगह ऐसाही विधान कहाहै ॥ ११४ ॥

नमोऽन्तमन्त्रेदेवेशि ! ननमोयोजयेद्बुधः ।
स्वाहान्तेऽपितथामन्त्रेनदद्याद्वह्निवल्लभाम् ॥ ११५ ॥

अर्थ-हे देवि ! जिस मंत्रके अंतमें " नमः " पद है, वह मंत्र पढ़कर पूजा करनेके समय पाद्यादि देनेके अवसरमें फिर " नमः " शब्द नहीं लगावै ऐसेही जिस मंत्रके अंतमें " स्वाहा " पद है अर्घादि देनेके समय फिर दुबारा " स्वाहा " पद नहीं मिलाना चाहिये ॥ ११५ ॥

ग्रहादिभ्यःप्रदातव्यंपुष्पंवासश्चभूषणम्।
तेषांवर्णानुरूपेणनान्यथाप्रीतयेभवेत् ॥ ११६ ॥

अर्थ-जिस ग्रहका जैसा वर्ण कहाहै उस ग्रहको उसी रंगके वस्त्राभूषण और फल देने चाहिये, ऐसा न करनेसे ग्रह प्रसन्न नहीं होते ॥ ११६ ॥

कुशण्डिकोक्तविधिनावह्निंसंस्थापयन्सुधीः ।
पुष्पैरुच्चावचैर्यद्वासमिद्भिर्होममाचरेत् ॥११७॥

अर्थ-ज्ञानी पुरुषको उचित है कि कुशण्डिकामें कही हुई विधिके अनुसार अग्निस्थापन करके विधिमें कहे हुए पुष्पसे अथवा समिधासे होमकरे ॥ ११७ ॥

शान्तिकर्म्मणिपुष्टौचवरदोहव्यवाहनः ।
प्रतिष्ठायांलोहिताक्षःशत्रुहाक्रूरकर्म्मणि ॥ ११८ ॥

अर्थ-शान्ति और पुष्टि कर्ममें अग्निका नाम वरदहै, प्रतिष्ठाके समय अग्निका नाम लोहिताक्ष है ओर क्रूरकर्मके समय अग्निका नाम शत्रुहा होताहै ॥ ११८ ॥

शान्तौपुष्टौमहेशानि!तथाक्रूरेऽपिकर्म्मणि ।
ग्रहयागंप्रकुर्वाणोवांछितार्थमवाप्नुयात् ॥ ११९ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! शान्ति, पुष्टि या किसी और क्रूरकर्म करनेके समय जो ग्रहयाग करता है, वह अभिलाषित फलको पाता है ॥ ११९ ॥

यथाप्रतिष्ठाकार्य्येषुदेवार्चापितृतर्पणम् ।
वास्तोर्योगेग्रहाणाञ्चतद्वदेवविधीयते ॥ १२० ॥

अर्थ-प्रतिष्ठाके समय जैसे देवताओंकी पूजा और पितृतर्पण करना आवश्यक है, ग्रहयागमेंभी वैसेही देवताओंकी पूजा और पितृतर्पणकी विधि है ॥ १२० ॥

यद्येकस्मिन्दिनेद्वित्रिःप्रतिष्ठायागकर्म्मच ।
मन्त्रेणतत्रदेवार्चापितृश्राद्धाग्निसंस्क्रियाः ॥१२१॥

अर्थ-जो एकदिनमें दो तीन प्रतिष्ठा और यागकर्म आपडें तो एक वारही देवपूजा और पितृश्राद्ध और अग्निसंस्कार होसक्ताहै ॥ १२१ ॥

जलाशयगृहाराम सेतुसंक्रमशाखिनः ।
वाहनासनयानानिवासोऽलङ्करणानिच ॥१२२॥

अर्थ-जलाशय, गृह, आराम (विश्रामालय), पुल, संक्रमवृक्ष वाहन, आसन, यान, वस्त्र, आभूषण ॥ १२२ ॥

पानाशनीयपात्राणिदेयवस्तूनियान्यपि ।
असंस्कृतानिदेवायनप्रदद्युःफलेप्सवः ॥ १२३ ॥

अर्थ—पानपात्र (गिलास लोटा आदि) भोजन पात्र (थाली इत्यादि) अथवा जो और कोई वस्तु दान की जाय, तो फलकी इच्छा करनेवाला पुरुष विना संस्कार किये इन चीजोंको नदे १२३

काम्येकर्म्मणिसर्वत्रबुधःसङ्कल्पमाचरेत् ।
विधिवाक्यानुसारेणसम्पूर्णसुकृताप्तये ॥ १२४ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकृतिका लाभ होनेके अर्थ ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि सब काम्यकर्मोंमें विधिके वाक्यके अनुसार संकल्प करे ॥ १२४ ॥

संस्कृताभ्यर्च्चितंद्रव्यंनामोच्चारणपूर्वकम् ।
सम्प्रदानाभिधाञ्चोक्त्वादत्त्वासम्यक्फलंलभेत् ॥१२५

अर्थ—जिस वस्तुका दान करना हो पहले उसका संस्कार करे और उसको पूजे । फिर उसका नाम लेवै, जिसको दान करे उसका नाम ले, ऐसे दान करनेसे संपूर्ण फल मिलता है ॥१२५॥

जलाशयगृहारामसेतुसंक्रमशाखिनाम् ।
कथ्यन्तेप्रोक्षणेमन्त्राःप्रयोज्याब्रह्मविद्यया ॥१२६॥

अर्थ—जलाशय, गृह, आराम (विश्रामालय), पुल, संक्रम के प्रोक्षित करनेका मंत्र कहताहूं गायत्री पढ़कर उन सब मंत्रोंको पढ़े ॥ १२६ ॥

जीवनाधार!जीवानांजीवनप्रद!वारुण! ।
प्रोक्षणेतवतृप्यन्तुजलभूचरखेचराः ॥ १२७ ॥

अर्थ—हे वारुण ! तुम जीवोंको जीवन देतेहो, तुम सबके जीवनके आधारहो, मैं जो तुमको प्रोक्षित करताहूं तिस्से जलचारी थलचारी और आकाशचारी सब जीव तृप्तहो । इस मंत्रको पढ़कर जलाशयको प्रोक्षित करे ॥ १२७ ॥

तृणकाष्ठादिसम्भूतवासेयब्रह्मणःप्रिय ।
त्वांप्रोक्षयामितोयेनप्रीतयेभवसर्वदा ॥ १२८ ॥

अर्थ–हे गृह ! तुम तृण और काठादिसे बनेहो, तुम उत्तम वासके योग्य स्थानमें हो, तुम ब्रह्माके प्रिय पदार्थहो, मैं तुमको जलसे प्रोक्षित करताहूं तुम सदा प्रीति दायक होवो यह मंत्र पढकर तृणादिसे बने हुए गृहको प्रोक्षित करे ॥ १२८ ॥

इष्टकादिसमुद्भूत ! वक्तव्यन्त्विष्टकामये ॥ १२९ ॥

अर्थ–ईंट आदिसे बने हुए गृहकी प्रतिष्ठाके समय तृण काष्ठादिसमुद्भव अर्थात् तुम तृण व काठादिसे बने हो, ऐसा न कहकर । इष्टकादिसमुद्भूत अर्थात् तुम ईंटआदिसे बनेहो, ऐसा मंत्र पढे । पत्थरसे बने हुए गृहकी प्रतिष्ठाके समय यहां पर प्रस्तरादिसमुद्भूत अर्थात् तुम पत्थरादिसे बने हो ऐसा वाक्य कहना चाहिये १२९

फलैःपत्रैश्चशाखाद्यैश्छायाभिश्चप्रियङ्कराः ।
यच्छन्तुमेऽखिलान्कामान्प्रोक्षितास्तीर्थवारिभिः॥१३०

अर्थ– आराम और वृक्षकी प्रतिष्ठाके समयभी ऐसाही मंत्र पढ़कर तिसको अभ्युक्षित करे कि, हे आराम ! वृक्ष ! तुम फल, पत्र और शाखाआदिसे और छायासे आराम देकर सबका प्रिय कार्य करते रहो । तुम तीर्थके जलसे अभ्युक्षित हो मेरी समस्तकामना पूर्ण करो ॥ १३० ॥

सेतुस्त्वंभवसिन्धूनांपारदः पथिकप्रियः ।
मयासंप्रोक्षितःसेतो ! यथोक्तफलदोभव ॥ १३१ ॥

अर्थ–हे सेतु ! तुह्मारे द्वारा संसारसमुद्रके पार उतराजासक्ता है । तुम पथिक लोगोंके अत्यंत प्यारेहो । मैंने तुमको अभ्युक्षित किया, तुम हमको यथोचित फल दो (यह वाक्य पढ़कर पुलको अभ्युक्षित करे) ॥ १३१ ॥

संक्रम ! त्वाप्रोक्षयामिलोकानांसंक्रमंयथा !
ददासिहितथास्वर्गेसंक्रमोमेप्रदीयताम् ॥ १३२ ॥

अर्थ–हे संक्रम ! मैं तुमको प्रोक्षित करताहूं, जिस प्रकार तुम पथिक लोगोंके संक्रम अर्थात् दूसरी पार उतरनेका मार्ग दिखाते हो, वैसेही हमें स्वर्गमें उतरनेका मार्ग दो । (यह वाक्य पढ़कर संक्रमको अभ्युक्षित करे ॥ १३२ ॥

आरामप्रोक्षणेमन्त्रोयएषकथितःप्रिये ! ।
सएवशाखिसंस्कारेप्रयोक्तव्योमनीषिभिः ॥ १३३ ॥

अर्थ–हे प्रिये! आरामप्रोक्षणमें जो मंत्र कहा, पण्डितोंको चाहिये कि, वृक्षकी प्रतिष्ठामेंभी वही मंत्र पढे ॥ १३३ ॥

प्रणवेवारुणञ्चास्त्रंबीजात्रितयमम्बिके ! ।
सर्वसाधारणद्रव्यप्रोक्षणेविनियोजयेत् ॥ १३४ ॥

अर्थ–हे अम्बिके ! सर्व साधारण वस्तु प्रोक्षित करनेके समय प्रणव वरुण बीज और अस्त्र इन तीन बीजोंका व्यवहार करे (१)॥ १३४ ॥

स्नापनार्हंवाहनंचस्नापयेद्ब्रह्मविद्यया ।
अन्यत्रैवार्घतोयेनकुशाग्रेणविशोधयेत् ॥ १३५ ॥

अर्थ–जिस वस्तुको स्नान कराया जासक्ताहै; ऐसे वाहनादिको गायत्री पढ़कर स्नान करावे, जिनको स्नान नहीं कराया जासक्ता उनको कुशकी नोकसे ग्रहण किये हुए अर्घ्यके जलसे शुद्ध करे॥ १३५

प्राणप्रतिष्ठामाचर्य्यतत्तद्वाहनसंज्ञया ।
पूजितोऽलंकृतोवाहोदेयोभवतिदैवते ॥ १३६ ॥

---

(१) तीन बीज यथाः–" ओं वं फट् " ॥

अर्थ-जब किसी देवताके वाहनकी प्रतिष्ठा करनी हो तो पहले उस वाहनका नामले प्राणप्रतिष्ठा करके उसको पूजै और अलंकार (आभूषणादि) पहरावे । फिर उस वाहनकी प्रतिष्ठा करे१३६

जलाशयेपूजनीयोवरुणोयादसाम्पतिः ।
गृहेप्रजापतिर्ब्रह्मारामसेतौचसंक्रमे ।
पूज्योविष्णुर्जगत्पातासर्व्वात्मासर्वदृग्विभुः ॥ १३७ ॥

अर्थ--जलाशयकी प्रतिष्ठा करनेके समय जलचारियोंके स्वामी वरुणजीकी पूजाकरे । गृहकी प्रतिष्ठाके समय प्रजापति ब्रह्माजीकी पूजाकरे वृक्ष, आराम,सेतु, संक्रम की प्रतिष्ठा करनेके समय जगत्पाति सर्वात्मा सबके साक्षी, विभु विष्णुजी की पूजाकरे ॥ १३७॥

श्रीदेव्युवाच ।

विविधानिविधानानिकथितान्युक्तकर्म्मसु ।
क्रमोनदर्शितोयेनमानवःकर्म्मसाधयेत् ॥ १३८ ॥

अर्थ-देवीजीने कहा, सब उत्तम कर्मोंमें अनेकप्रकारका विधान कहा, परंतु मनुष्य जिस कर्मको अवलंबन करके कर्मकरे वह आपने प्रकाशित नहीं किया ॥ १३८ ॥

क्रमव्यत्ययकर्म्माणिबह्वायासकृतान्यपि ।
नयच्छन्तिफलंसम्यङ्नृणांकर्म्मानुजीविनाम् ॥१३९॥

अर्थ-जो मनुष्य फलको चाहते हैं, वह जो कर्म करते हैं; यद्यपि वह कर्म बहुत क्लेशसे सिद्ध होतेहैं तथापि क्रम बिगडनेसे वह कर्म फलदायक नहीं होते ॥ १३९ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

यदुक्तंपरमेशानि ! मातेव हितकारिणि ! ।
निश्रेयसन्तल्लोकानांफलव्यापृतचेतसाम् ॥ १४० ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहाः-हे परमेश्वरि ! तुम माता समान जगत्की हितकारिणी हो रही हो मैंने जो कुछ तुमसे कहा सो फलमें आसक्त हुए पुरुषोंके लिये सब प्रकारसे मंगलकारी है॥ १४०॥

एतेषामुक्तकृत्यानामनुष्ठानंपृथक्पृथक् ।
वास्तुयागक्रमाद्देवि ! कथयाम्यवधीयताम् ॥ १४१ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैंने जिन कर्मोंका वर्णन किया है उनका अनुष्ठान अलग २ है । अब मैं वास्तुयागसे आरंभ करके क्रमानुसार कहताहूं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ १४१ ॥

पूर्वेऽह्नि नियताहारःस्वःप्रातःस्नानमाचरेत ।
कृत्वापौर्वाह्णिकंकर्म्मंगुरुंनारायणंयजेत् ॥ १४२ ॥

अर्थ-(वास्तुयज्ञके समय) पहले दिन आहारको संयम करके दूसरे दिन सबेरे ही स्नान करे फिर मंत्रका जाननेवाला पुरुष प्रातःकृत्य समाप्त करके गुरु और नारायणजीकी पूजा करे ॥ १४२ ॥

ततःस्वकाममुद्दिश्यविधिदर्शितवर्त्मना ।
कृतसङ्कल्पकोमन्त्रीगणेशादीन्समर्चयेत् ॥ १४३ ॥

अर्थ-इसके उपरांत कामनाके अनुसार विधिविधानसे संकल्प करके गणेशादिकी पूजाकरे ॥ १४३ ॥

बन्धूकाभंत्रिनेत्रंद्विरदवरमुखंनागयज्ञोपवीतम् ।
शंखंचक्रंकृपाणंविमलसरसिजंहस्तपद्मैर्दधानम् ॥
उद्यद्बालेन्दुमौलिंदिनकरकिरणोद्दीप्तवस्त्राङ्गशोभम् ।
नानालंकारयुक्तंभजतगणपतिंरक्तपद्मोपविष्टम्॥ १४४॥

अर्थ-(अब गणेशजीका ध्यान कहा जाता है) जिनकी आभा बंधूकके फूलकी समान है, जो त्रिनेत्र हैं, जिनका हाथीकी समान

मुख है, नागकरके जिनका यज्ञोपवीत कल्पित हुआ है, जो चार हाथोंसे शंख, चक्र, कृपाण और सुन्दर पद्म धारण किये हैं, उदय हुई चंद्रकला जिनके शिरका भूषण है, जिनके वस्त्र और अंगकी शोभा उदय हुए सूर्यनारायणकी किरणके समान है, जिनके अंगमें अनेक प्रकारके आभूषण शोभायमान होरहे हैं, जो रक्त(लाल) कमलपर बैठेहैं ऐसे गणेशजीका भजन करे ॥ १४४ ॥

एवंध्यात्वायथाशक्त्यापूजयित्वागणेश्वरम् ।
ब्रह्माणञ्चततोवाणींविष्णुंलक्ष्मींसमर्चयेत् ॥ १४५ ॥

अर्थ-इस प्रकार ध्यान करके शक्तिके अनुसार गणेशजीकी पूजा करे । फिर ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु और लक्ष्मीजीकी पूजा करे ॥ १४५ ॥

शिवंदुर्गांग्रहांश्चापितथाषोडशमातृकाः ।
घृतधारास्वपिवसूनिष्ट्वाकुर्य्यात्पितृक्रियाम् ॥ १४६ ॥

अर्थ-अनंतर शिव, दुर्गा, ग्रह व षोडश मातृकाओंकी पूजा करके घृतकी धारासे वसुगणोंकी पूजा करे फिर पितृकृत्य करे ॥ १४६ ॥

ततःप्रोक्तविधानेनमण्डलंवास्तुरक्षसः ।
निर्म्मायपूजयेत्तत्रवास्तुदैत्यंगणैःसह ॥ १४७ ॥

अर्थ-इसके उपरांत पहले कही हुई विधिके अनुसार, वास्तुराक्षसके मंडलको बनाय तिसमें परिवारसहित वास्तुदैत्यकी पूजा करे ॥ १४७ ॥

ततस्तुस्थण्डिलंकृत्वावह्निंसंस्कृत्यपूर्ववत् ।
धाराहोमान्तमाचर्य्यवास्तुहोमंसमारभेत् ॥१४८॥

अर्थ-फिर स्थंडिल (रेतेका चौंतरा) बनाय पहलेकी नाईं अग्नि-संस्कार करके धाराहोमतक सब कार्योंको करके वास्तुहोमको आरंभ करे ॥ १४८ ॥

यथाशक्त्याहुतीस्तस्मैपरिवारगणायच ।
तथापूजितदेवेभ्योदत्त्वाकर्म्मसमापयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ-फिर वास्तुराक्षस और उसके परिवारके अर्थ यथाशक्ति आहुति दे, पूजित देवताओंके लिये आहुति देकर कर्मको समाप्त करे ॥ १४९ ॥

वास्तुयागेपृथक्कार्य्यएषतेकथितःक्रमः ।
अनेनैवग्रहाणाञ्चयज्ञोऽपिविहितःप्रिये! ॥ १५० ॥
ग्रहाणामत्रमुख्यत्वान्नाङ्गत्वेनप्रपूजनम् ।
सङ्कल्पानन्तरंकार्य्यंवास्त्वर्च्चनमितिक्रमः ॥ १५१ ॥

अर्थ-यदि वास्तुयज्ञ अलग करना हो तो इस कहे हुए क्रमसे करे. हे प्रिये! इस क्रमके अनुसार ग्रहोंका यज्ञभी किया जा सक्ता है, परंतु ऐसे स्थानमें ग्रहोंकी प्रधानताके हेतु अंग-स्वरूपमें पूजा नहीं होगी तैसे स्थानमें क्रम यह है कि संकलपके पीछेही वास्तुदेवताकी पूजा करनी चाहिये ॥ १५० ॥ १५१ ॥

गणेशाद्यर्चनंसर्व्वंवास्तुयागविधानवत् ।
ग्रहाणांयन्त्रमन्त्रौचध्यानंप्रागेवकीर्तितम् ॥ १५२ ॥

अर्थ-वास्तुयज्ञके विधानकी नाईं गणेशआदि सब देव-ताओंकी पूजा करे। ग्रहोंके यंत्र, मंत्र और ध्यान पहलेही कहेहैं ॥ १५२ ॥

प्रसङ्गात्कथितौभद्रे ! ग्रहवास्तुक्रतुक्रमौ ।
अथप्रस्तुतकृत्यानामुच्यतेकूपसंस्क्रिया ॥ १५३ ॥

अर्थ-हे भद्रे ! प्रसंगानुसार ग्रहयज्ञ और वास्तुयज्ञका क्रम कहा, अब इस समयके कार्योंमें कूपसंस्कार कहताहूं ॥ १५३ ॥

संकल्पंविधिवत्कृत्वावास्तुपूजनमाचरेत् ।
मण्डलेकलशेवापिशालग्रामेयथामति ॥ १५४ ॥

अर्थ-पहले यथाविधिसे संकल्प करके अपनी इच्छाके अनुसार मंडलमें कलशमें वा शालिग्राममें वास्तुपूजा आरंभ करे ॥ १५४॥

ततःपूज्योगणपतिर्ब्रह्मावाणीहरीरमा ।
शिवोदुर्गाग्रहाश्चापिपूज्यादिक्पतयस्तथा ॥ १५५ ॥

अर्थ-इसके उपरांत गणेश, ब्रह्मा, सरस्वती, विष्णु, लक्ष्मी, शिव, दुर्गा, ग्रह, दिक्पाल इनकी पूजा करके ॥ १५५ ॥

मातरोवसवोऽष्टौचततःकार्य्यापितृक्रिया ।
प्राधान्यंवरुणस्यात्रसहिपूज्योविशेषतः ॥ १५६ ॥

अर्थ-मातृगणोंकी और आठ गणोंकी पूजा करे तदुपरांत पितृश्राद्धकरे । इस कूपसंस्कारमें वरुणदेवताकी ही प्रधानता है इस कारणसे भलीभांति उनकी पूजा करे ॥ १५६ ॥

नानोपहारैर्वरुणमर्चयित्वास्वशक्तितः ।
विधिवत्संस्कृतेवह्नौवारुणंहोममाचरेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ-फिर अनेक भांतिके उपहारोंसे यथाशक्ति वरुणजीकी पूजा करके संस्कार की हुई अग्निमें विधिपूर्वक वरुणजीका होम करे ॥ १५७ ॥

पूजितेभ्यश्चदेवेभ्योदत्त्वाप्रत्येकमाहुतिम् ।
पूर्णाहुत्यन्तकृत्येनहोमकर्मसमापयेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ-फिर पूजित देवताओंमेंसे प्रत्येकको आहुति दे, पूर्णाहुति देकर होमकर्मको समाप्त करे ॥ १५८ ॥

ततोध्वजपताकास्रग्गन्धसिन्दूरचर्च्चितम् ।
उक्तप्रोक्षणमन्त्रेणप्रोक्षयेत्कूपमुत्तमम् ॥ १५९ ॥

अर्थ-फिर कहाहुआ प्रोक्षणमंत्र पढकर, ध्वजा, पताका, स्रक् चंदन और सिन्दूरसे शोभायमान उत्तम कुएको प्रोक्षित करे॥ १५९॥

ततःस्वकाममुद्दिश्यदेवमुद्दिश्यवानरः ।
सर्वभूतप्रीणनायोत्सृजेत्कूपजलाशयम् ॥ १६० ॥

अर्थ-फिर मनुष्य अपनी कामनाके अर्थ अथवा देवताकी प्रीतिके लिये, सर्व प्राणियोंको संतोषित करनेको कुआ या जलाशय उत्सर्ग करे ॥ १६० ॥

कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्रार्थयेत्साधकाग्रणीः ।
सुप्रीयन्तांसर्वभूतानभोभूतोयवासिनः ॥ १६१ ॥

अर्थ-फिर साधकश्रेष्ठको हाथ जोड़कर प्रार्थना करनी चाहिये कि जलचारी,थलचारी व आकाशचारी समस्त प्राणी तृप्तहो॥ १६१

उत्सृष्टंसर्वभूतेभ्योमयैतज्जलमुत्तमम् ।
तृप्यन्तुसर्वभूतानिस्नानपानावगाहनैः ॥ १६२ ॥

अर्थ-मैंने सर्व प्राणियोंके तृप्तिके लिये यह उत्तम जल उत्सर्ग किया, स्नान, पान और अवगाहन करके सब प्राणी तृप्त हों॥ १६२॥

सामान्यंसर्वजीवेभ्योमयादत्तमिदंजलम् ।
येचकेचिद्विपद्यन्तेस्वस्वकर्मविपाकतः ॥ १६३ ॥

अर्थ-मैंने समान समझकर सर्व जीवोंको यह जल दिया, जो जो अपने कर्मके विपाकसे इस जलसे प्राणत्याग करेंगे ॥ १६३ ॥

तत्पापैर्नप्रलिप्येऽहंसफलास्तुममाक्रिया ।
ततस्तुदक्षिणांकृत्वाकृतशान्त्यादिकक्रियः ॥ १६४ ॥

अर्थ–मैं उनके पापमें नहीं फसूंगा । मेरी क्रिया सफल होवै । फिर शान्ति इत्यादि करके दक्षिणान्त करे ॥ १६४ ॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्कौलान्दीनानपिबुभुक्षितान् ।
जलाशयप्रतिष्ठासुसर्वत्रैषक्रमःशिवे !॥ १६५ ॥

अर्थ–अनंतर कुलवानोंको ब्राह्मणोंको और भूखे दीन लोगोंको भोजन करावे । जलाशयकी प्रतिष्ठामें सब स्थानोंपर ऐसा ही क्रम करना चाहिये ॥ १६५ ॥

तडागादौचकर्त्तव्यानागस्तम्भजलेचराः ॥ १६६ ॥

अर्थ–तड़ागादिकी प्रतिष्ठाके समय विशेषता यह है कि उसमें नाग स्तम्भ और जलचर निर्माण करना चाहिये ॥ १६६ ॥

मीनमण्डूकमकरकूर्माश्चजलजन्तवः ।
कार्य्याधातुमयाश्चैतेकर्त्तृवित्तानुसारतः ॥ १६७ ॥

अर्थ–कर्मकर्ताके विभवके अनुसार मत्स्य, मेंडक, मकर, कछुआ यह सब जलजन्तु धातुके बनवावे ॥ १६७ ॥

मत्स्यौस्वर्णमयौकुर्य्यान्मण्डूकावपिहेमजौ ।
राजतौमकरौकूर्ममिथुनंताम्ररीत्यिकम् ॥ १६८ ॥

अर्थ–दो मत्स्य और दो मेंडक सुवर्णके बनवावे, दोमकर चांदीके बनवावे, दो कछुए तांबेके और पीतलके बनवावे ॥ १६८ ॥

एतैर्जलचरैःसार्द्धंतडागमपिदीर्घिकाम् ।
सागरञ्चसमुत्सृज्यप्रार्थयन्नागमर्च्चयेत् ॥ १६९ ॥

अर्थ–इन जलचर जन्तुओंके साथ तडाग वा बावलि और सरोवरके उत्सर्ग कर प्रार्थना करके नागकी पूजा करे ॥ १६९ ॥

अनन्तोवासुकिःपद्मोमहापद्मश्चतक्षकः ।
कुलीरःकर्कटःशंखःपाथसांरक्षकाइमे ॥ १७० ॥

अर्थ–वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कट, शंख यह जलके रक्षकहैं ॥ १७० ॥

इत्यष्टौनागनामानिलिखित्वाश्वत्थपल्लवे ।
स्मृत्वाप्रणवगायत्र्यौघटमध्येविनिःक्षिपेत् ॥ १७१ ॥

अर्थ–पीपलके पत्तोंके ऊपर यह आठ नाम लिखकर प्रणव और गायत्रीका स्मरण करके घडेमें वह पत्ते डाले ॥ १७१॥

चन्द्रार्कौसाक्षिणौकृत्वाविलोड्यैकंसमुद्धरेत् ।
तत्रोत्तिष्ठतियोनागस्तंकुर्य्यात्तोयरक्षकम् ॥ १७२ ॥

अर्थ–फिर चंद्रमा सूर्यको साक्षी बनाय इन पीपलके पत्तोंको घडेहीमें घुमाय फिराय उनमेंसे एक पत्ता निकाले तिस पत्तेमें जिसका नाम निकले उसकोही जलका रक्षक करे ॥ १७२ ॥

स्तम्भमेकंसमानीयविंशहस्तमितंशुभम् ।
सरलंदारुजंतैलैरुक्षितञ्चहरिद्रया ॥ १७३ ॥

अर्थ–फिर बीस हाथ लंबा उत्तम व सीधे काठका बनाहुआ एक थंभ लाकर उसमें तेल व हलदी लगावै ॥ १७३ ॥

स्नापयेत्तीर्थतोयेनव्याहृत्याप्रणवेनच ।
ततह्रीश्रीक्षमाशान्तिसहितंनागमर्चयेत् ॥ १७४ ॥

अर्थ–फिर तीर्थके जलसे प्रणव और व्याहृति पढ़कर इस थंभको स्नान करावै फिर उसमें "ह्रीं श्रीं" क्षमा और शान्तिके साथ नागकी पूजा करे ॥ १७४ ॥

नाग!त्वंविष्णुशय्यासिमहादेवविभूषणम् ।
स्तम्भमेनमधिष्ठायजलरक्षांकुरुष्वमे ॥ १७५ ॥

अर्थ–अनंतर यह कहकर प्रार्थना करे कि हे नाग! तुम विष्णुजीकी शय्या और महादेवजीके भूषण हो तुम इस थंभमें वास करके हमारे इस जलकी रक्षा करो ॥ १७५ ॥

इतिप्रार्थ्यततोनागस्तम्भंमध्येजलाशयम् ।
समारोप्यतड़ागञ्चकर्त्ताकुर्य्यात्प्रदक्षिणम् ॥ १७६ ॥

अर्थ-इस प्रकार नागसे प्रार्थना करके कर्मकर्त्ता जलाशयमें थंभको गाढकर तडागकी प्रदक्षिणा करे ॥ १७६ ॥

यूपश्चेत्स्थापितःपूर्वंतदानागघटेऽर्चयन् ।
तज्जलंतत्रनिक्षिप्यशिष्टंकर्मसमापयेत् ॥ १७७ ॥

अर्थ-जो थंभ पहलेही गाड दिया हो तो घडेके ऊपर नागकी पूजा करे फिर इस घडेका जल इस जलाशयमें डालकर शेष कर्म समाप्त करे ॥ १७७ ॥

एवंगृहप्रतिष्ठायांकृतसंकल्पकोबुधः ।
वास्त्वादिवसुपूजान्तंपैत्र्यंकर्मचकूपवत् ॥ १७८ ॥

अर्थ-इसी प्रकार गृहकी प्रतिष्ठाके समय ज्ञाती पुरुष संकल्प करके कुएकी प्रतिष्ठाकी नांई वास्तुपूजा इत्यादि वसुपूजातक समाधान करके पित्र्यकर्म करे ॥ १७८ ॥

विधायात्रविशेषेणयजेद्देवंप्रजापतिम् ।
प्राजापत्यञ्चहवनंकुर्य्यात्साधकसत्तमः ॥ १७९ ॥

अर्थ-फिर साधकश्रेष्ठको चाहिये कि भलीभांतिसे देव प्रजापतिकी पूजा करे फिर प्राजापत्यहोमकरे ॥ १७९ ॥

गृहंपूर्वोक्तमन्त्रेणप्रोक्ष्यगन्धादिनार्चयन् ।
ईशानाभिमुखोभूत्वाप्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ १८० ॥

अर्थ-फिर पहला कहाहुआ मंत्र पढ़ गृह प्रोक्षित कर गंध पुष्पादिसे पूजा करे अनंतर ईशानकी ओर मुखकर हाथ जोड प्रार्थना करे कि ॥ १८० ॥

प्रजापतिपते ! गेहपुष्पमाल्यादिभूषितः ।
अस्माकंशुभवासायसर्वथासुखदोभव ॥ १८१ ॥

अर्थ-हे गृह ! प्रजापति तुह्मारे अधिष्ठाता हैं तुम पुष्पमालादिसे भूषित हुएहो । हमारे शुभवासके लिये तुम सब प्रकारसे सुख दायक होवो ॥ १८१ ॥

ततस्तुदक्षिणांकृत्वाशांत्याशीर्वादमाचरेत् ।
विप्रान्कुलीनान्दीनांश्चभोजयेदात्मशक्तितः ॥ १८२ ॥

अर्थ-फिर दक्षिणान्त करके शान्ति और आशिर्वाद ग्रहणकरे, तदुपरांत कुलवानोंको, ब्राह्मणोंको और दीन दरिद्रोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार भोजन कराना चाहिये ॥ १८२ ॥

अन्यार्थन्तुप्रतिष्ठाचेत्तद्वासायप्रयोजयेत् ।
देवताकृतगेहस्यविधानंशृणुशैलजे ! ॥ १८३ ॥

अर्थ-यदि दूसरेके लिये गृहकी प्रतिष्ठा की जाय तो " अस्माकं शुभवासाय " ना कहकर " अमुकस्य शुभवासाय " अथवा अन्येषां शुभवासाय " यह पद मिलावे । हे शैलतनये ! देवताके लिये गृहप्रतिष्ठाकी विधि कहताहूं तुम सुनो ॥ १८३ ॥

इत्थंसंस्कृत्यभवनंशंखतूर्य्यादिनिःस्वनैः ।
देवतासन्निधिंगत्वाप्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ १८४ ॥

अर्थ-इस प्रकार गृहसंस्कार कर शंखादि बजाय देवताके निकट जाय हाथ जोडकर प्रार्थना करे कि ॥ १८४ ॥

उत्तिष्ठदेवदेवेश!भक्तानांवाञ्छितप्रद ।
आगत्यजन्मसाफल्यंकुरुमेकरुणानिधे! ॥ १८५ ॥

अर्थ-हे देवदेवेश ! उठो तुम भक्तवृन्दके अभिलाषित फलको देनेवालेहो । हे करुणानिधे ! नये प्रतिष्ठित गृहमें आकर मेरे जन्मको सफल करो ॥ १८५ ॥

इत्यभ्यर्थ्यगृहाभ्यर्णेदेवमानीयसाधकः ।
उपस्थाप्यगृहद्वारिपुरतोवाहनंन्यसेत् ॥ १८६ ॥

अर्थ-इस प्रकार अभ्यर्थना करके साधक, देवताको गृहके समीप लाय घरके द्वारमें स्थापित करके सामने वाहनकी रक्षा करे ॥ १८६ ॥

त्रिशूलमथवाचक्रंविन्यस्यभवनोपरि ।
रोपयेन्मन्दिरेशानेसपताकंध्वजंसुधीः ॥ १८७ ॥

अर्थ-भवनके ऊपर त्रिशूल अथवा चक्र लगाकर बुद्धिमान् साधक मंदिरके ईशानकोणमें पताकाके साथ ध्वजाको लगावै॥१८७

चन्द्रातपैःकिङ्किणीभिःपुष्पस्रक्चूतपल्लवैः ।
शोभयित्वागृहंसम्यक्छादयेद्दिव्यवाससा ॥ १८८ ॥

अर्थ-फिर चन्दोवेसे, किंकिणीसे, फूलोंकी मालासे, गिरे हुए पत्तोंसे इस मंदिरको शोभायमान करके दिव्य वस्त्रोंसे ढके॥१८८॥

उत्तराभिमुखंदेवंवक्ष्यमाणविधानतः ।
स्नापयेद्विहितैर्द्रव्यैस्तत्क्रमंवच्मितेशृणु ॥ १८९॥

अर्थ-फिर देवताको उत्तरमुख स्थापित करके वक्ष्यमाण विधिके अनुसार विधिमें कहे हुए द्रव्यसे स्नान करावै।अब स्नानका क्रम कहताहूं सुनो ॥ १८९ ॥

ऐंह्रींश्रीमितिमन्त्रान्तेमूलमन्त्रंसमुच्चरन् ।
दुग्धेनस्नापयामित्वांमातेवपरिपालय ॥ १९० ॥

अर्थ-" ऐं ह्रीं श्रीं " इस मंत्रके पीछे मूलमंत्र उच्चारण करके फिर " दुग्धेन स्नापयामि त्वाम् " अर्थात् मैं तुमको दूधसे स्नान कराताहूं, तुम मुझको माताकी समान प्रतिपालन करो यह मंत्र पढे ॥ १९० ॥

प्रोक्तबीजत्रयस्यान्तेतथामूलंनियोजयन् ।
दध्नात्वांस्नापयाम्यद्यभवतापहरोभव ॥ १९१ ॥

अर्थ-"ऐं ह्रीं श्रीं" उच्चारणकर मूलमंत्र पढ " दध्नात्वां स्नापयाम्यद्य भवतापहरो भव " अर्थात् मैं तुमको दहीसे स्नान कराताहूं, तुम संसारका संताप दूर करो यह मंत्र पढे १९१॥

पुनर्बीजत्रयंमूलंसर्वानन्दकरेतिच ।
मधुनास्नापितःप्रीतोमामानन्दमयंकुरु॥ १९२॥

अर्थ-फिर " ऐं ह्रीं श्रीं " बीज पढ़कर " सर्वानंदकर " पाठ करके फिर कहै कि मैं मधुसे स्नान कराताहुं तुम प्रसन्न होकर मुझे आनंदमय करो (१)॥ १९२ ॥

प्राग्वन्मूलंसमुच्चार्य्यसावित्रींप्रणवंस्मरन् ।
देवप्रियेणहविषाआयुःशुक्रेणतेजसा ।
स्नानंतेकल्पयामीश!मामरोगंसदाकुरु ॥ १९३ ॥

अर्थ-पहलेकी समान मूलमंत्र गायत्री और प्रणव स्मरण करके पीछे आयुः, शुक्र और तेजके बढानेवाले देवताओंके प्यारे घृतसे तुमको स्नान कराताहुं । हे ईश्वर ! तुम हमको सदा रोगरहित रक्खो यह मंत्र पढकर घीसे स्नान करावै ॥ १९३ ॥

तद्वन्मूलञ्चगायत्रींव्याहृतिसमुदीरयन् ।
देवेश!शर्करातोयैःस्नातोमेयच्छवाञ्छितम् ॥ १९४ ॥

अर्थ-इस प्रकार मूलगायत्री और व्याहृतिका उच्चारण करके कहै कि, हे देवेश ! मैं तुमको शरबतसे स्नान कराताहुं तुम मुझे वांछित फलदो ॥ १९४ ॥

तथामूलंसमुचार्य्यगायत्रींवारुणंमनुम् !
विधात्रानिर्मितैर्दिव्यैःप्रियैःस्निग्धैरलौकिकैः ॥

---

(१) ऐं ह्रीं श्रीं सर्वानंदकर मधुना स्नापितः प्रीतो मामानंदमयं कुरु ॥

नारिकेलोदकैःस्नानंकल्पयामिनमोऽस्तुते ॥ १९५ ॥

अर्थ-इस प्रकार पहली कही हुई मूलगायत्री और "वं" वरुणबीज उच्चारण करके कहै कि विधाता करके बनाहुआ दिव्य, प्रिय, चिकने, अलौकिक नारियलके जलसे तुमको स्नान कराताहूं तुम्हें नमस्कार हो ॥ १९५ ॥

गायत्र्यामूलमन्त्रेणस्नापयेदिक्षुजैरसैः ॥ १९६ ॥

अर्थ-फिर गायत्री और मूलमंत्र पढ़कर गन्नेके रससे स्नान करावै ॥ १९६ ॥

कामबीजंतथातारंसावित्रींमूलमीरयन् ।
कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीचन्दनोदकैः ।
सुस्नातोभवसुप्रीतोभुक्तिमुक्तीप्रयच्छमे ॥ १९७ ॥

अर्थ-फिर "क्लीं ओं" उच्चारण करके गायत्री व मूलमंत्र पढ़कर कहे कि, कपूर, अगर, केशर, कस्तूरी और चंदनके जलसे उत्तम स्नान कर तुम प्रसन्न होवो और हमको भोग व मोक्ष दो ॥ १९७॥

इत्यष्टकलशैःस्नानंकारयित्वाजगत्पतिम् ।
गृहाभ्यन्तरमानीयस्थापयेदासनोपरि ॥ १९८ ॥

अर्थ-इस प्रकार जगन्नाथको आठ कलशोंसे स्नान कराय गृहमें लेजाय आसनके ऊपर स्थापन करे ॥ १९८ ॥

स्नापनार्हानचेदर्चातद्यन्त्रेवापितन्मनौ ।
शालिग्रामशिलायांवास्नापयित्वाप्रपूजयेत् ॥ १९९ ॥

अर्थ-जो देवताकी मूर्ति स्नान करानेके योग्य न हो तो उस देवताको यंत्रमें, मन्त्रमें अथवा शालिग्रामशिलामें स्नान कराय कर पूजा करे ॥ १९९॥

अशक्तौमूलमन्त्रेणस्नापयेच्छुद्धपाथसाम् ।
अष्टभिःकलशैर्यद्वापञ्चभिःसप्तभिर्यथा ॥ २०० ॥

अर्थ-यदि इसमें अशक्त हो तो आठ कलश सात कलस अथवा पांच पांच कलश शुद्ध जलसे स्नान करावै ॥ २०० ॥

घटप्रमाणंप्रागेवकथितंचक्रपूजने ।
सर्वत्रागमकृत्येषुसएवविहितोघटः ॥ २०१ ॥

अर्थ-पहले चक्रके पूजा स्थानमें जो घड़ेका प्रमाण कहा है, आगममें कहेहुए सब कार्योंमें वैसे ही विधि है ॥ २०१ ॥

ततोयजेन्महादेवंस्वस्वपूजाविधानतः ।
तत्रोपचारान्वक्ष्यामिशृणुदेवि!परात्परे ॥ २०२ ॥

अर्थ-फिर अपनी२पूजाविधिके अनुसार महादेवजीकी पूजा करे हे परात्परे देवि! इस देवपूजामें उपचार अर्थात् निवेदन करने योग्य वस्तुओंको कहताहूं सुनो ॥ २०२ ॥

आसनंस्वागतंपाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्कस्तथाचम्यंस्नानीयंवस्त्रभूषणे ॥ २०३ ॥

अर्थ-आसन, स्वागत, पाद्य अर्घ्य,आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, भूषण ॥ २०३ ॥

गन्धपुष्पेधूपदीपौनैवेद्यंवन्दनंतथा ।
देवार्चनासुनिर्दिष्टाउपचाराश्चषोडश ॥ २०४ ॥

अर्थ-गंध, पुष्प, धूप, दीप,नैवेद्य, नमस्कार देवताकी पूजामें यह सोलह उपचार कहे हैं ॥ २०४ ॥

पाद्यमर्घ्यञ्चाचमनंमधुपर्काचमौतथा ।
गन्धादिपञ्चकंचैतेउपचारादशस्मृताः ॥ २०५ ॥

अर्थ-पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनराचमनीय, गंध, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, इनको दशोपचार कहतेहैं ॥ २०५ ॥

गन्धपुष्पेधूपदीपौनैवेद्यञ्चापिकालिके! ।
पञ्चोपचाराःकथितादेवतायाःप्रपूजने ॥ २०६ ॥

अर्थ-हे कालिके ! देवताकी पूजामें गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य इनको पंचोपचार कहतेहैं ॥ २०६ ॥

अस्त्रेणार्घ्याम्भसाद्रव्यंप्रोक्ष्यधेनुंप्रदर्शयन् ।
सम्पूज्यगन्धपुष्पाभ्यांद्रव्याख्यानंसमुल्लिखेत् ॥२०७॥

अर्थ-फट्मंत्र पढकर अर्घ्यके जलसे देने योग्य वस्तुओंको प्रोक्षित करके धेनुमुद्रादि दिखाय गंधपुष्पसे पूजा करके द्रव्यका नामले ॥ २०७ ॥

वक्ष्यमाणंमनुंस्मृत्वामूलञ्चदेवताभिधाम् ।
सचतुर्थींसमुच्चार्य्यत्यागार्थवचनंपठेत् ॥ २०८ ॥

अर्थ-फिर वक्ष्यमाण मंत्र उच्चारण कर मूल और चतुर्थी विभक्तिके अंतका देवताका नाम ले त्यागार्थबोधक, वाक्य अर्थात् "नमः" आदि पढे ॥ २०८ ॥

निवेदनविधिःप्रोक्तोदेवदेयेषुवस्तुषु ।
अनेनविधिनाविद्वान्द्रव्यंदद्याद्दिवौकसे ॥ २०९ ॥

अर्थ-देवताको वस्तु निवेदन करनेकी विधि कही विद्वान् पुरुष इस विधिके अनुसार देवताको द्रव्यनिवेदन करे ॥ २०९ ॥

आद्यार्चनविधौपूर्वंपाद्यार्घ्यादिनिवेदनम् ।
अर्पणंकारणादीनांसर्वमेवप्रदर्शितम् ॥ २१० ॥

अर्थ-पहले आदिकालिकाकी पूजा विधिमें पाद्य, अर्घ्य-इत्यादिका निवेदन और कारणादिका अर्पण प्रकाशित कर आयाहूं ॥ २१० ॥

अनुक्तमन्त्रायेतत्रतानेवात्रशृणुप्रिये ।
आसनाद्युपचाराणांप्रदानेविनियोजयेत् ॥ २११ ॥

अर्थ–हे प्रिये ! वहांपर जो मंत्र नहीं कहे, उनको अब कहताहूं तुम सुनो। आसनादि उपचार देनेके समय इस मंत्रका प्रयोग करना चाहिये ॥ २११ ॥

सर्वभूतान्तरस्थायसर्वभूतान्तरात्मने ।
कल्पयाम्युपवेशार्थमासनन्तेनमोनमः ॥ २१२ ॥

अर्थ–तुम प्राणियोंके अन्तरमें विराजमानहो तुम्हारे बैठनेको आसन कल्पित करताहूं तुमको वारंवार नमस्कार है ॥ २१२ ॥

उक्तक्रमेणदेवेशि!प्रदायासनमुत्तमम् ।
कृताञ्जलिपुटोभूत्वास्वागतंप्रार्थयेत्ततः ॥ २१३ ॥

अर्थ–हे देवेशि!इस मंत्रसे उत्तम आसन देकर फिर हाथ जोड़कर स्वागतकी प्रार्थना करे कि ॥ २१३ ॥

देवाःस्वाभीष्टसिद्ध्यर्थंयस्यवाञ्छान्तिदर्शनम् ।
सुस्वागतंस्वागतम्मेतस्मैतेपरमात्मने ॥ २१४ ॥

अर्थ-अपनी २ अभीष्टसिद्धिके लिये देवतालोग जिसे दर्शनकी कामना करते हैं, तुम वही परमात्माहो, हमारे लिये तुह्मारा स्वागत, सुस्वागत निवेदित हुआ ॥ २१४ ॥

अद्यमेसफलंजन्मजीवनंसफलाःक्रियाः ।
स्वागतंयत्त्वयातन्मेतपसांफलमागतम् ॥ २१५ ॥

अर्थ–आज तुम्हारा शुभागमन होनेसे मेरा जन्म सफल जीवन सार्थक हुआ सब क्रियां सार्थक हुईं, आज मैं तपके फलको प्राप्त हुआ ॥ २१५ ॥

देवमामन्त्र्यसंप्रार्थ्यस्वागतप्रश्नमम्बिके ! ।
विहितंपाद्यमादायमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २१६ ॥

अर्थ—हे अम्बिके ! इस प्रकार स्वागत प्रदानसे देवताको संभाषण कर प्रार्थना करे और विधिसे पाद्यग्रहण करके यह मंत्र पढ़े कि ॥ २१६ ॥

यत्पादजलसंस्पर्शाच्छुद्धिमापजगत्त्रयम् ।
तत्पादाब्जप्रोक्षणार्थंपाद्यन्तेकल्पयाम्यहम् ॥ २१७ ॥

अर्थ—जिसके चरणामृतको स्पर्श करनेसे त्रिलोकी पवित्र हुई है उसके चरणकमल धोनेके लिये यह पाद्य देताहूं ॥ २१७ ॥

परमानन्दसन्दोहोजायतेयत्प्रसादतः ।
तस्मैसर्वात्मभूतायआनन्दार्घ्यंसमर्पये ॥ २१८ ॥

अर्थ—जिसके प्रसादसे परमानंदके समूह उत्पन्न होते हैं उस सर्वात्माके लिये यह आनन्दार्घ्य समर्पण करताहूं ॥ २१८ ॥

जातीलवङ्गकक्कोलैर्जलंकेवलमेववा ।
प्रोक्षितार्चितमादायमन्त्रेणानेनचार्पयेत् ॥ २१९ ॥

अर्थ—जायफल, लोंग, कक्कोल, आदि द्वारा सुगंधित जल अथवा केवल जल अर्घ्यके जलसे प्रोक्षित और पूजित करके उक्त मंत्र पढ़कर अर्पण करे ॥ २१९ ॥

यदुच्छिष्टमपस्पृष्टंशुद्धिमेत्यखिलंजगत् ।
तस्मैसुखारविन्दायआचमंकल्पयामिते ॥ २२० ॥

अर्थ—अपवित्रमय समस्त जगत् जिसकी जूठनसे पवित्र होता है तुह्मारे उस मुखारविंदमें आचमनीय कल्पना करताहूं ॥ २२० ॥

मधुपर्कंसमादायभक्त्यानेनसमर्पयेत् ॥ २२१ ॥

अर्थ—फिर मधुपर्क ग्रहण करके इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक समर्पण करे ॥ २२१ ॥

तापत्रयविनाशार्थमखण्डानन्दहेतवे ।
मधुपर्कंददाम्यद्यप्रसीदपरमेश्वर ! ॥ २२२ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! तुम अखंड आनंदके कारण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन तापोंके नाशके लिये मैं तुमको मधुपर्क देताहूं, तुम प्रसन्न होवो ॥ २२२ ॥

अशुचिःशुचितामेतियत्स्पृष्टस्पर्शमात्रतः ।
अस्मिंस्तेवदनाम्भोजेपुनराचमनीयकम् ॥ २२३ ॥

अर्थ-जिसकी छुई हुई वस्तुका स्पर्श करनेसे अपवित्र वस्तुभी तत्काल पवित्र होजाती है, तुह्मारे उस वदनकमलमें पुनराचमनी देताहूं ॥ २२३ ॥

स्नानार्थंजलमादायप्राग्वत्प्रोक्षितमर्चितम् ।
निधायदेवपुरतोमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २२४ ॥

अर्थ-फिर स्नानके लिये जल लेकर पहलेकी समान प्रोक्षित और पूजकर देवताके सामने रखके यह मंत्र पढ़े कि ॥ २२४ ॥

यत्तेजसाजगद्व्याप्तंयतोजातमिदंजगत् ।
तस्मैतेजगदाधार ! स्नानार्थंतोयमर्पये ॥ २२५ ॥

अर्थ-तुम जगत्के आधार हो तुह्मारा तेज जगत्में व्याप रहा है तुमसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, मैं तुह्मारे स्नानके निमित्त यह जल अर्पण करताहूं ॥ २२५ ॥

स्नानेवस्त्रेचनैवेद्ये ! दद्यादाचमनीयकम् ।
अन्यद्रव्यप्रदानान्तेदद्यात्तोयंसकृत्सकृत् ॥ २२६ ॥

अर्थ-स्नान, वस्त्र और नैवेद्य उत्सर्ग करनेके पीछे आचमनीय देना चाहिये । और द्रव्य देनेके पीछे एक २ वार जल देवे ॥२२६॥

वस्त्रमानीयदेवाग्रेशोधितंपूर्ववर्त्मना ।
धृत्वाकराभ्यामुत्तोल्यपठेदेतंमनुंसुधीः ॥ २२७ ॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि देवताके सन्मुख पहली कही हुई विधिके अनुसार शुद्ध वस्त्र लाकर दोनों हाथोंसे पकड़कर उठाय यह मंत्र पढ़े ॥ २२७ ॥

सर्वावरणहीनायमायाप्रच्छन्नतेजसे ।
वाससीपरिधानायकल्पयामिनमोऽस्तुते ॥ २२८ ॥

अर्थ—तुह्मारा कोई आवरण नहीं है, मायाकरके तुह्मारा तेज ढकाहुआ है, तुह्मारे पहरनेके लिये वस्त्र कल्पित करताहूं, तुमको नमस्कारहो ॥ २२८ ॥

नानाभरणमादायस्वर्णरौप्यादिनिर्मितम् ।
प्रोक्ष्यार्चयित्वादेवायदद्यादेतंसमुच्चरन् ॥ २२९ ॥

अर्थ—इसके उपरांत सुवर्ण, चांदी आदिके बनेहुए अनेक प्रकारके आभूषण ले प्रोक्षण करके पूजा कर यह मंत्र पढ़ते २ देवताको देवै ॥ २२९ ॥

विश्वाभरणभूतायविश्वशोभैकयोनये ।
मायाविग्रहभूषार्थंभूषणानिसमर्पये ॥ २३० ॥

अर्थ—जो जगत्के भूषणस्वरूप हैं, जो जगत्की शोभाके-खानि हैं, उनके मायासे बनेहुए शरीरके अर्थ यह सब गहने समर्पण करताहूं ॥ २३० ॥

गन्धतन्मात्रयासृष्टायेनगन्धधराधरा ।
तस्मैपरात्मनेतुभ्यंपरमंगन्धमर्पये ॥ २३१ ॥

अर्थ—जिस्से गंध तन्मात्रद्वारा गंधकी आधार यह पृथ्वी उत्पन्न हुई है, वह परमात्मा तुह्मीं हो मैं तुमको दिव्य गंध देता हूं॥२३१॥

पुष्पंमनोहरंरम्यंसुगन्धंदेवनिर्मितम् ।
मयानिवेदितंभक्त्यापुष्पमेतत्प्रगृह्यताम् ॥ २३२ ॥

अर्थ-यह फूल देवता करके बने हुए मनोहर, दिव्य और सुगंधित हैं। मैं भक्तिके साथ तुमको यह पुष्प चढ़ाताहूं तुम ग्रहण करो ॥ २३२ ॥

वनस्पतिरसोदिव्योगन्धाढ्यःसुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्वभूत नांधूपोघ्राणायतेऽर्प्यते ॥ २३३ ॥

अर्थ-यह वनस्पतिके रस करके बनाहुआ मनोहर दिव्य और सुगंधसंपन्न है। यह धूप सबके सूंघने योग्य है, मैं तुम्हारे सूंघनेके लिये यह धूप समर्पण करताहूं ॥ २३३ ॥

सुप्रकाशोमहादीप्तःसर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयंप्रतिगृह्यताम् ॥ २३४ ॥

अर्थ-यह महादीप उत्तम प्रकाश करनेवाली और महादीप्त है यह चारों ओरके अंधकारका नाश करती है इसके बाहेर और भीतर ज्योति है तुम इस दीपको ग्रहण करो ॥ २३४ ॥

नैवेद्यंस्वादुसंयुक्तंनानाभक्ष्यसमन्वितम् ।
निवेदयामिभक्त्येदंजुषाणपरमेश्वर ! ॥ २३५ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर! इस नैवेद्यमें अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ हैं। यह उत्तम और स्वादिष्ठ है मैं भक्तिपूर्वक इसे निवेदन करताहूं तुम आहार करो ॥ २३५ ॥

पानार्थंसलिलंदेव ! कर्पूरादिसुवासितम् ।
सर्वतृप्तिकरंस्वच्छमर्पयामिनमोऽस्तुते ॥ २३६ ॥

अर्थ-हे देव ! कर्पूरादिसे सुवासित यह पीनेका जल सबको तृप्त करनेवाला और अत्यंत निर्मल है। मैं यह पानार्थ जल तुमको अर्पण करताहूं आपको नमस्कार है ॥ २३६ ॥

ततःकर्पूरखदिरलवङ्गैलादिभिर्युतम्।
ताम्बूलंपुनराचम्यंदत्त्वावन्दनमाचरेत् ॥ २३७ ॥

अर्थ-फिर कपूर, खैर, इलायची, लवणादिके साथ ताम्बूल और पुनराचमनीय देकर नमस्कार करे ॥ २३७ ॥

उपचाराधारदानेसाधारद्रव्यमुल्लिखेत्।
दद्याद्वापृथगाधारंतत्तन्नामसमुच्चरन् ॥ २३८ ॥

अर्थ-जो उपचारके साथ आधार दिया जाय तो आधारके साथ द्रव्यका नामले । अथवा सब आधारोंका नाम लेकर पृथक् आधारदे ॥ २३८ ॥

इत्थमर्चितदेवायदत्त्वापुष्पाञ्जलित्रयम्।
साच्छादनंगृहंप्रोक्ष्यपठेदेतंकृताञ्जलिः ॥ २३९ ॥

अर्थ-इस प्रकार पूजित देवताको तीन वार पुष्पांजालि दे,आच्छादनके साथ गृह प्रोक्षित करके हाथ जोडकर यह मंत्र पढ़े ॥२३९॥

गेह !त्वंसर्वलोकानांपूज्यःपुण्ययशप्रदः।
देवतास्थितिदानेनसुमेरुसदृशोभव ॥ २४० ॥

अर्थ-हे गृह ! तुम सब लोगोंके पूज्य और पवित्र यश देनेवाले हो तुम देवताओंको स्थान देकर सुमेरुकी समानहो ॥ २४० ॥

त्वंकैलासश्चवैकुण्ठस्त्वंब्रह्मभवनंगृह !।
यत्त्वयाविधृतोदेवस्तस्मात्त्वंसुरवन्दितः ॥ २४१ ॥

अर्थ-हे गृह ! तुम कैलास, तुम वैकुंठ और तुम ब्रह्मभवनहो तुमने देवताको धारण किया है, अतएव तुम देवताओंके भी पूजनीयहो ॥ २४१ ॥

यस्यकुक्षौजगत्सर्ववर्त्तिचराचरम्।
मायाविधूतदेहस्यतस्यमूर्त्तेर्विधारणात् ॥ २४२ ॥

अर्थ—जो अपनी कुक्षीमें सब संस्कारको धारण करते हैं तिनके मायामें व देह धारण करनेसे तुम उनकी मूर्ति धारण करते हो२४२

देवमातृमयस्त्वंहिसर्वतीर्थमयस्तथा ।
सर्वकामप्रदोभूत्वाशान्तिमेकुरुतेनमः ॥ २४३ ॥

अर्थ—अतएव तुम देवताकी माके समान और तीर्थमय हो। तुम हमारी सब अभिलाषायें पूर्ण करो, तुम हमको शांतिदो तुमको नमस्कार करताहूं ॥ २४३ ॥

इत्यभ्यर्थ्यत्रिरभ्यर्च्यगृहंचक्रादिसंयुतम् ।
आत्मनःकाममुद्दिश्यदद्याद्देवायसाधकः ॥ २४४ ॥

अर्थ—इस प्रकार चक्रादिके सहित गृहकी प्रार्थना करके साधक तीनवार पूजे - फिर अपनी कामनादिको कहकर देवताके लिये उस गृहको उत्सर्ग करे ॥ २४४ ॥

विश्वावासायवासायगृहंतेविनिवेदितम् ।
अङ्गीकुरुमहेशान ! कृपयासन्निधीयताम् ॥ २४५ ॥

अर्थ—और इस मंत्रको पढे कि हे महेश्वर! यद्यपि तुम संसारके रहनेके स्थानहो तथापि तुह्मारे वासके लिये यह घर उत्सर्ग किया तुम कृपाकरके ग्रहण करो और इस घरमें स्थिति करके विराजो ॥२४५

इत्युक्त्वार्पितगेहायदेवायदत्तदक्षिणः ।
शंखतूर्य्यादिघोषैस्तंस्थापयेद्वेदिकोपरि ॥ २४६ ॥

अर्थ—यह मंत्र पढ़ देवताके लिये गृहको भेंट दे दक्षिणा देकर शंख तुरही आदिके शब्दसे उस देवताको वेदिके ऊपर स्थापित करे ॥ २४६ ॥

स्पृष्ट्वादेवपदद्वन्द्वंमूलमन्त्रंसमुच्चरन् ।
स्थांस्थींस्थिरोभवेत्युक्त्वावासस्तेकल्पितोमया ।

इतिदेवंस्थिरीकृत्यभवनंप्रार्थयेत्पुनः ॥ २४७ ॥

अर्थ–फिर देवताके दोनों चरण पकड़ मूलमंत्र उच्चारण करके "स्थां स्थीं स्थिरो भव" मैंने इस गृहमें तुह्मारा वास कल्पित किया, यह मंत्र कह देवताको स्थिरकर फिर गृहसे प्रार्थना करे कि २४७॥

गृह ! देवनिवासायसर्वथाप्रीतिदोभव ।
उत्सृष्टेत्त्वयिमेलोकाःस्थिराःसन्तुनिरामयाः ॥ २४८ ॥

अर्थ–हे घर ! तुम देवताके निवासमें सर्व प्रकारसे प्रीतिदायक होवो । मैंने तुमको उत्सर्ग किया, मेरे लिये स्वर्गलोक निरुपद्रवहो ॥ २४८ ॥

द्विसप्तातीतपुरुषान्द्विसप्तानागतानपि ।
मांचमेपरिवारांश्चदेवधाम्निनिवासय ॥ २४९ ॥

अर्थ–मेरे बहत्तर पूर्व और बहत्तर पीछेके पुरुषोंको मेरे परिवार वा लोगोंको देवलोकमें वास कराओ ॥ २४९ ॥

यजनात्सर्वयज्ञानांसर्वतीर्थनिषेवणात् ।
यत्फलंतत्फलंमेऽद्यजायतांत्वत्प्रसादतः ॥ २५० ॥

अर्थ–सब यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो फल होताहै,सब तीर्थोंमें गमन करनेसे जो फल होताहै आज तुम्हारे प्रसादसे मुझे वह समस्त फल होवे ॥ २५० ॥

यावद्वसुन्धरातिष्ठेद्यावदेतेधराधराः ।
यावद्दिवानिशानाथौतावन्मेवर्त्ततांकुलम् ॥ २५१ ॥

अर्थ–जबतक पृथ्वी रहै जबतक सर्व पर्वत रहैं जबतक चंद्र सूर्य रहैं तबतक मेरा वंश स्थिर रहै ॥ २५१ ॥

इतिप्रार्थ्यगृहंप्राज्ञःपुनर्देवंसमर्चयन् ।
दर्पणाद्यन्यवस्तूनिध्वजंचापिनिवेदयेत् ॥ २५२ ॥

अर्थ-इस प्रकार गृहसे प्रार्थना करके फिर ज्ञानी पुरुष दुबारा देवताको पूजे । और ध्वजा दर्पणादि और सब वस्तुयें निवेदन करे ॥ २५२ ॥

ततस्तुवाहनंदद्याद्यास्मिन्देवेयथोदितम् ।
शिवायवृषभंदत्त्वाप्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ २५३ ॥

अर्थ-फिर जिस देवताके लिये जो वाहन कहाहै,वह उसको देवै यदि शिवकी प्रतिष्ठा होवै तो शिवको वृषभ दानदे हाथ जोडकर प्रार्थना करे कि ॥ २५३ ॥

वृषभ!त्वंमहाकायस्तीक्ष्णशृङ्गोऽरिघातकः ।
पृष्ठेवहसिदेवेशंपूज्योऽसित्रिदशैरपि ॥ २५४ ॥

अर्थ-हे वृषभ ! तुम बडे शरीरवाले, तेज सींगवाले और शत्रुसंहारकारी हो तुम देवदेव महादेवजीको पीठपर चढ़ाओ-हो इसकारण देवता लोगभी तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ २५४ ॥

क्षुरेषुसर्वतीर्थानिरोम्निवेदाःसनातनाः ।
निगमागमतन्त्राणिदशनाग्रेवसन्तिते ॥२५५॥

अर्थ-तुम्हारे चारों खुरोंमें सब तीर्थ, रुओंमें सब वेद और तुम्हारे दांतोंकी नोंकोंमें सब निगम आगम और तंत्र विराजमान हैं ॥ २५५ ॥

त्वयिदत्तेमहाभाग!सुप्रीतःपार्वतीपतिः ।
वासंददातुकैलासेत्वंमांपालयसर्वदा ॥ २५६ ॥

अर्थ-हे महाभाग ! मैंने तुमको दान किया । इस कारण भगवान पार्वतीके पति प्रसन्न होकर कैलासमें मुझे स्थानदें । तुम सदा हमारी रक्षा करो ॥ २५६ ॥

सिंहंदत्त्वामहादेव्यैगरुडंविष्णवेतथा ।
यथास्तूयान्महेशानि!तन्मेनिगदतःशृणु ॥ २५७ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! इस प्रकार महादेवीको सिंह विष्णु-जीको गरुड देकर जैसी स्तुति की जाती है सो मैं तुमसे कहताहूं श्रवण करो ॥ २५७ ॥

सुरासुरनियुद्धेषुमहाबलपराक्रमः ।
देवानांजयदोभीमोदनुजानांविनाशकृत् ॥ २५८ ॥

अर्थ-हे सिंह! देवासुरसंग्राम होनेके समय तुमने महाबल और पराक्रम प्रगट कियाथा, तुमसेही देवताओंकी जीत हुईथी तुम दैत्योंके संहारकारी और अत्यंत भयंकरहो ॥ २५८ ॥

सदादेवीप्रियोसित्वंब्रह्मविष्णुशिवप्रियः ।
देव्यैसमर्पितोभक्त्याजहिशत्रून्नमोस्तुते ॥ २५९ ॥

अर्थ-तुम सदा देवीजीके प्यारे और ब्रह्मा, विष्णु व सदाशिव-केभी प्यारेहो, मैं भक्तिके साथ देवीजीके निकट तुमको समर्पण करताहूं, तुम मेरे शत्रुओंका नाश करो, तुम्हें नमस्कार है ॥२५९॥

गरुत्मन्!पतगश्रेष्ठ!श्रीपतिप्रीतिदायक! ।
वज्रचञ्चो!तीक्ष्णनख!तवपक्षाहिरण्मयाः ।
नमस्तेऽस्तुखगेन्द्रायपक्षिराज!नमोस्तुते ॥ २६० ॥

अर्थ-हे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड ! तुम श्रीपति विष्णुजीको प्रसन्न करतेहो । तुम्हारी चोंच वज्रकी समान दृढहै । पंख सुवर्णमय हैं । नख तीक्ष्ण हैं । हे पक्षिराज ! तुमको नमस्कार करताहूं ॥ २६० ॥

यथाकरपुटेनत्वंसंस्थितोविष्णुसन्निधौ ।
तथामामरिदर्पघ्न!विष्णोरग्रेनिवासय ॥ २६१॥

अर्थ-तुम शत्रुओंके गर्वको चुराकर देतेहो, जैसे तुम विष्णुजीके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहेहो. मुझेभी विष्णुजीके सन्मुख वैसे ही कर रक्खो ॥ २६१ ॥

त्वयिप्रीते जगन्नाथःप्रीतःसिद्धिंप्रयच्छति ।
देवायदत्तद्रव्याणांदद्याद्देवायदक्षिणाम् ॥ २६२ ॥

अर्थ–तुम्हारे प्रसन्न होनेसे जगन्नाथ प्रसन्न होकर सिद्धि देतेहैं जिस देवताको द्रव्य दियाजाय उसहीकी प्रीतिके लिये दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २६२ ॥

तथाकर्म्मफलञ्चापिभक्त्यातस्मैसमर्पयेत् ॥ २६३ ॥

अर्थ–फिर भक्तिके साथ उस देवतामें कर्मफल समर्पण करे२६३

नृत्यैर्गीतैश्चवादित्रैःसामात्यःसहबान्धवः ।
वेश्मप्रदक्षिणंकृत्वादेवंनत्वाशयेद्द्विजान् ॥ २६४ ॥

अर्थ–फिर नाचना, गाना और बाजे आदिके साथ मंत्रियोंके सहित और बांधवोंके साथ गृहकी प्रदक्षिणा कर देवताको नमस्कार करनेके उपरांत ब्राह्मणभोजन करावै ॥ २६४ ॥

देवागारप्रतिष्ठायांयएषकथितःक्रमः ।
आरामसेतुसंक्रामशाखिनामीरितोऽपिसः ॥ २६५ ॥

अर्थ–देवताके गृहकी प्रतिष्ठामें जो विधि कही आरामप्रतिष्ठा और वृक्षप्रतिष्ठामें भी वही विधि लगेगी ॥ २६५ ॥

विशेषेणात्रकृत्येषुपूज्योविष्णुःसनातनः ।
पूजाहोमस्तथासर्वंगृहदानविधानवत् ॥ २६६ ॥

अर्थ–परंतु इन स्थानोंमें सनातन विष्णुजीकी पूजा भली भांतिसे करनी होगी इसके सिवाय पूजा होमादि समस्त कार्य गृहप्रतिष्ठाके समान होंगे ॥ २६६ ॥

अप्रतिष्ठितदेवायनैवदद्याद्गृहादिकम् ।
प्रतिष्ठितेऽर्चितेदेवपूजादानंविधीयते ॥ २६७ ॥

अर्थ-अप्रतिष्ठित देवताके लिये गृहादि भेंट नहीं देना चाहिये प्रतिष्ठित और पूजित देवताके अर्थही भेंट और पूजाकी विधि है ॥ २६७ ॥

अथतत्रश्रीमदाद्याप्रतिष्ठाक्रमउच्यते ।
येनप्रतिष्ठितादेवीतूर्णंयच्छतिवांछितम् ॥ २६८ ॥

अर्थ-अब श्रीमती आदिकालीकी प्रतिष्ठाका क्रम कहताहूं। इसप्रकार देवीजी प्रतिष्ठित होनेपर शीघ्रतासे अभिलाषित फल देती हैं ॥ २६८ ॥

तद्दिनेसाधकःप्रातःस्नातःशुचिरुदङ्मुखः ।
संकल्पंविधिवत्कृत्वायजेद्वास्त्वीश्वरंततः ॥ २६९ ॥

अर्थ-उस दिन प्रभातकोही स्नान कर विशुद्धाचारहो साधक उत्तरकी ओर मुख करके विधिविधानसे संकल्प करे और वास्तु-देवताकी पूजाकरे ॥ २६९ ॥

ग्रहदिक्पतिहेरम्बाद्यर्चनंपितृकर्म्मच ।
विधायसाधकैर्विप्रैःप्रतिमासन्निधिंव्रजेत् ॥ २७० ॥

अर्थ-फिर ग्रहोंकी,दश दिक्पालोंकी और गणेशजीकी पूजा कर पितृकृत्य करे।फिर साधकको चाहिये कि ब्राह्मणोंके साथ प्रतिमाके निकट जावै ॥ २७० ॥

प्रतिष्ठितगृहेयद्वाकुत्नचिच्छोभनस्थले ।
आनीयार्चामर्चयित्वास्नापयेत्साधकोत्तमः ॥ २७१ ॥

अर्थ-प्रतिष्ठित गृहमें अथवा किसी मनोहर स्थानमें साधकश्रेष्ठ प्रतिमाकी पूजा करके स्नान करावै ॥ २७१ ॥

भस्मनाप्रथमंस्नानंततोवल्मीकमृत्स्नया ।
वराहदन्तिदन्तोत्थमृत्तिकाभिस्ततःपरम् ।

वैश्याद्वारमृदाचापिप्रद्युम्नह्रदजातया ॥ २७२ ॥

अर्थ-पहले भस्मसे स्नान कराय फिर बमईकी मिट्टीसे, तदुपरांत शूकरके दांतोंकी उखेडी मिट्टीसे, फिर हाथीके दांतोंसे उखाडी मिट्टीसे फिर वेश्याके द्वार पर पडी हुई मिट्टीसे, तिसके पीछे कामकूपसम्भूत द्रव्यविशेषसे ॥ २७२ ॥

ततःपञ्चकषायेणपञ्चपुष्पैस्त्रिपत्रकैः ।
कारयित्वागन्धतैलैःस्नापयेत्प्रतिमांसुधीः ॥ २७३ ॥

अर्थ-फिर आगे कहे हुए पंच कषायसे फिर आगे कहे हुए पंच पुष्पसे, तदुपरांत आगे कहे हुए त्रिपत्रसे प्रतिमाको स्नान करावै फिर साधक सुगंधित तेलसे स्नान करावै ॥ २७३ ॥

वाट्यालबदरीजम्बुबकुलाःशाल्मलिस्तथा ।
एतेनिगदिताःस्नानेकषायाःपञ्चभूरुहाः ॥ २७४ ॥

अर्थ-वाट्याल, बेर, जामन, मौलसिरी, शाल इन पांच वृक्षोंके काढ़ोंको पंच कषाय कहतेहैं। इनसे देवीको स्नान करावै ॥२७४॥

करवीरंतथाजातीचम्पकंसरसीरुहम् ।
पाटलीकुसुमञ्चापिपञ्चपुष्पंप्रकीर्त्तितम् ॥ २७५ ॥

अर्थ-कनेर, आंमला, चंपा, कमल, गुलाब इनको पंचपुष्प कहा जाता है ॥ २७५ ॥

बर्बुरातुलसीबिल्वंपत्रत्रयमुदाहृतम् ॥ २७६ ॥

अर्थ-बर्बुरापत्र, (बबूरके पत्ते) तुलसीपत्र, बेलपत्र इनको त्रिपत्र कहा जाता है ॥ २७६ ॥

एतेषुप्रोक्तद्रव्येषुजलयोगोविधीयते ।
पञ्चामृतेगन्धतैलेतोययोगंविवर्जयेत् ॥ २७७ ॥

अर्थ-इन सबके साथ जलको मिलावै, परंतु पंचामृत और सुगंधित तेलके साथ जल मिलाकर न दे ॥ २७७ ॥

सव्याहृतिंसप्रणवांगायत्रींमूलमुच्चरन् ।
एतद्द्रव्यस्यतोयेनस्नापयामिनमोवदेत् ॥ २७८ ॥

अर्थ-प्रणवके साथ व्याहृति पढ गायत्री और मूलमंत्र उच्चारण कर " एतद्द्रव्यस्य तोयेन स्नापयामि नमः " अर्थात् भस्मके या वल्मीकके, मिट्टीके या पहले कहे हुए और किसी द्रव्यके जलसे तुमको स्नान कराताहूं यह स्नान अर्पित होवे। यह वाक्य पढ़ै२७८

ततःप्रागुक्तविधिनादुग्धाद्यैरष्टभिर्घटैः ।
कवोष्णसलिलैश्चापिस्नापयेत्प्रतिमांबुधः ॥ २७९ ॥

अर्थ-फिर ज्ञानीपुरुषको चाहिये कि पहली कही हुई विधिके अनुसार पहले दुग्धादिके आठ घडोंसे और कुछ गरम जलसे प्रतिमाको स्नान करावै ॥ २७९ ॥

सितगोधूमचूर्णेनतिलकल्केनवाशिवाम् ।
शालितण्डुलचूर्णेनमार्जयित्वाविरूक्षयेत् ॥ २८० ॥

अर्थ-फिर सित गोधूमचूर्णसे अर्थात् दूधमें मडी हुई गेहूंकी मयदासे, तिल कल्कसे आमन धान्यके तण्डुलचुर्णसे प्रतिमाको मांजकर रूखी करे ॥ २८० ॥

तीर्थाम्भसामष्टघटैःस्नापयित्वासुवाससा ।
सम्मार्जिताङ्गींप्रतिमांपूजास्थानंसमानयेत् ॥ २८१ ॥

अर्थ-फिर आठकलश तीर्थके जलसे देवताको स्नान कराय उत्तम वस्त्रोंसे पोंछकर इस प्रतिमाको पूजाके स्थानमें लेजावै२८१

अशक्तौशुद्धतोयानांपञ्चविंशतिसंख्यकैः ।
कलशैःस्नापयेदर्चांभक्त्यासाधकसत्तमः ॥ २८२ ॥

अर्थ-जो ऐसा अनुष्ठान नहोसके तो साधकश्रेष्ठको चाहिये कि भक्तिपूर्वक २५ घड़े विशुद्ध जलसे प्रतिमाको स्नान करावै॥२८२॥

स्नानेस्नानेमहादेव्याःशक्त्याःपूजनमाचरेत् ॥२८३॥

अर्थ-प्रत्येक स्नानके पीछे यथाशक्ति उपचारसे महादेवजीकी पूजा करे ॥ २८३ ॥

ततोनिवेश्यप्रतिमामासनेसुपरिष्कृते ।
पाद्यार्घ्याद्यैरर्चयित्वाप्रार्थयेद्विहिताञ्जलिः ॥ २८४ ॥

अर्थ-फिर स्वच्छ आसनपर प्रतिमाको विराजमान कराय पाद्य अर्घ्यादिसे पूजा कर हाथ जोड प्रार्थना करे कि ॥ २८४ ॥

नमस्तेप्रतिमे ! तुभ्यंविश्वकर्म्मविनिर्मिते !
नमस्तेदेवतावासे ! भक्ताभीष्टप्रदे ! नमः ॥ २८५ ॥

अर्थ-हे प्रतिमे ! तुमको विश्वकर्माने बनायाथा तुमको नमस्कार है । तुम देवताकी आवासहो, तुमको नमस्कार है, तुम भक्तवृन्दोंको अभीष्ट फल देती हो, तुमको नमस्कारहै ॥ २८५ ॥

त्वयिसंपूजयाम्याद्यांपरमेशींपरात्पराम् ।
शिल्पदोषावशिष्टाङ्गंसम्पन्नंकुरुतेनमः ॥ २८६ ॥

अर्थ-तुह्मारे ऊपर मैं परात्परा परमेश्वरी आदिकालिकाकी पूजा करताहूं, शिल्पके दोषसे यदि किसी अंगकी विकलता हुई हो, तो उसे सम्पूर्ण करो । तुह्मैं नमस्कार करताहूं ॥ २८६ ॥

ततस्तत्प्रतिमामूर्ध्निपाणिंविन्यस्यवाग्यतः ।
अष्टोत्तरशतंमूलंजप्त्वागात्राणिसंस्पृशेत् ॥ २८७॥

अर्थ-फिर प्रतिमाके मस्तकपर हाथ रख, वाक्यको संयतकर १०८ वार मूल मंत्र जपै, फिर प्रतिमाके गात्रको छुए ॥ २८७ ॥

षडङ्गमातृकान्यासंप्रतिमाङ्गेप्रविन्यसन् ।
षड्दीर्घभाजामूलेनषडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ २८८॥

अर्थ-फिर प्रतिमाके अंगमें षडङ्गन्यास और मातृकान्यास करे षडङ्गन्यास करनेके समय मूलमंत्रमें "आ ई ऊ औ अः" यह छैः दीर्घ स्वर मिलाने चाहिये। यथा "ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रैं कवचाय हूं। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ह्रः करतलपृष्ठाभ्यां फट्" ॥ २८८ ॥

तारमायारमाद्यैश्चनमोऽन्तैर्बिन्दुसंयुतैः।
अष्टवर्गैर्देवताङ्गेवर्णन्यासंप्रकल्पयेत् ॥ २८९ ॥

अर्थ-प्रणव, माया और रमाका उच्चारण करके बिन्दुयुक्त आठ-वर्गके अक्षरोंको पढे फिर "नमः" पद उच्चारणकर देवताके अंगमें वर्णन्यास करे। (१) ॥ २८९ ॥

मुखेस्वरान्कवर्गञ्चकण्ठदेशेन्यसेद्बुधः।
चवर्गमुदरेदक्षबाहौटाद्यक्षराणिच ॥ २९० ॥

अर्थ-देवताके अंगमें वर्णन्यास करनेके समय ज्ञानी पुरुष देवताके मुखमें स्वरवर्ण, कण्ठमें कवर्ग, उदरमें चवर्ग, दहिने हाथमें टवर्ग ॥ २९० ॥

तवर्गञ्चवामबाहौदक्षवामोरुयुग्मयोः।
पवर्गञ्चयवर्गञ्चशवर्गंमस्तकेन्यसेत् ॥ २९१ ॥

अर्थ-बांये हाथमें तवर्ग, दाहिनी ऊरूमें पवर्ग, बांई ऊरूमें यवर्ग अर्थात् य र ल व मस्तकमें शवर्ग अर्थात् श ष ह ळ क्ष न्यास करे ॥ २९१ ॥

वर्णन्यासंविधायेत्थंतत्त्वन्यासंसमाचरेत् ॥ २९२ ॥

अर्थ-इस प्रकार देवताओंके अंगमें वर्णन्यास करके तत्व-न्यास करे ॥ २९२ ॥

---

(१) "ओं ह्रीं श्रीं अं नमः। ओं ह्रीं श्रीं आं नमः। ओं ह्रीं श्रीं इं नमः।" इत्यादि।

पादयोःपृथिवीतत्त्वंतोयतत्त्वञ्चलिङ्गके ।
तेजस्तत्त्वंनाभिदेशेवायुतत्त्वंहृदम्बुजे ॥ २९३ ॥

अर्थ-देवताके दोनों चरणोंमें पृथ्वीतत्व, योनिमें जलतत्व, नाभिमें तेजस्तत्व, हृदयकमलमें वायुतत्व ॥ २९३ ॥

आस्येगगनतत्त्वञ्चचक्षुषोरूपतत्त्वकम् ।
घ्राणयोर्गन्धतत्त्वञ्चशब्दतत्त्वंश्रुतिद्वये ॥ २९४ ॥

अर्थ-मुखमें आकाशतत्व, दोनों नेत्रोंमें रूपतत्व, नासिकाके दो स्वरोंमें गंधतत्व, कानोंमें शब्दतत्व ॥ २९४ ॥

जिह्वायांरसतत्त्वञ्चस्पर्शतत्त्वंचविन्यसेत् ।
मनस्तत्त्वंभ्रुवोर्म्मध्येसहस्रदलपङ्कजे ॥ २९५ ॥

अर्थ-जीभमें रसतत्व और स्पर्शतत्व, भ्रुवोंमें मनस्तत्व ललाटमें स्थित हुए सहस्रदलकमलमें ॥ २९५ ॥

शिवतत्त्वंज्ञानतत्त्वंपरतत्त्वंतथोरसि ।
जीवप्रकृतितत्त्वेचविन्यसेत्साधकाग्रणीः ।
महत्तत्त्वमहङ्कारतत्त्वंसर्वाङ्गकेक्रमात् ॥ २९६ ॥

अर्थ-शिवतत्व, विद्यातत्व और परतत्व, हृदयमें जीवतत्व और प्रकृतितत्वका न्यास करे, फिर साधकश्रेष्ठ सर्वाङ्गमें महत्तत्व और अहंकारतत्वका न्यास करे ॥ २९६ ॥

तारमायारमाद्येनङेनमोऽन्तेनाविन्यसेत् ॥ २९७ ॥

अर्थ-यह न्यास करनेके समय प्रणव, माया और रमा उच्चारण करके चतुर्थ्यन्त तत्वपद पढ़कर फिर "नमः" यह मंत्र पढ़े। (१)॥ २९७ ॥

---

(१) "ओं ह्रीं श्रीं पृथ्वीतत्वाय नमः । ओंह्रींश्रीं तोयतत्वाय नमः ।" इत्यादि ।

सबिन्दुमातृकावर्णपुटितंमूलमुच्चरन् ।
नमोऽन्तंमातृकास्थानेमन्त्रन्यासंप्रयोजयेत् ॥ २९८ ॥

अर्थ–फिर बिन्दुयुक्त मातृकावर्णपुटित मूलमंत्र उच्चारण करके " नमः " यह मंत्र उच्चारणके और मातृकास्थानमें मंत्र-न्यास करे (१) ॥ २९८ ॥

सर्वयज्ञमयंतेजःसर्वभूतमयंवपुः ।
इयंतेकल्पितामूर्त्तिरत्रत्वांस्थापयाम्यहम् ॥ २९९ ॥

अर्थ–(फिर देवीजीसे प्रार्थना करे कि,) यद्यपि तुह्मारा सर्व यज्ञमय तेज और सर्वभूतमय शरीरहै तथापि मैंने तुह्मारी यह मूर्ति कल्पितकी तुह्मै इस मूर्तिमें स्थापन करताहूं ॥ २९९ ॥

ततःपूजाविधानेनध्यानमावाहनादिकम् !
प्राणप्रतिष्ठांसम्पाद्यपूजयेत्परदेवताम् ॥ ३०० ॥

अर्थ–फिर पूजाकी विधिके अनुसार ध्यान, आवाहन, प्राण-प्रतिष्ठादि करके उस परमदेवताकी पूजा करे ॥ ३०० ॥

देवगेहप्रदानेतुयेयेमन्त्राःसमीरिताः ।
तएवात्रप्रयोक्तव्यामन्त्रालिङ्गेनपूजने ॥ ३०१ ॥

अर्थ–देवमंदिरकी प्रतिष्ठाके समय जो २ मंत्र कहेगयेहैं, यहां पर उनमंत्रोंका प्रयोग करना चाहिये; परंतु पूजाके समय मंत्र और लिंगका भेद करे ॥ ३०१ ॥

---

(१) 'अं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा अं नमो ललाटे' । 'आं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरिस्वाहा आं नमोमुखे' । 'इं ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा इं नमः दक्षिणचक्षुषि' इस प्रकार ५१ वर्ण पुटित करके न्यासकरे, किस स्थानमें किस वर्णका न्यास होगा, उसकी मुद्रा कैसीहै । किस उंगलीके साथ किस उंगलीको मिलाकर वा किस उंगलीसे कोनसा स्थान स्पर्श होगा।सो इस पुस्तकके पंचमउल्लासकी टिप्पणीमें मातृकान्याससेके प्रयोगमें दिखायाहै तिसको पढ़कर सरलतासे न्यास किया जासकेगा ॥

विधिवत्संस्कृतेवह्नावर्चितेभ्योऽर्चिताहुतिः ।
आवाह्यदेवींसम्पूज्यजातकर्माणिसाधयेत् ॥ ३०२ ॥

अर्थ–फिर यथाविधिसे अग्निसंस्कार करके उसमें पूजित देवताओंके लिये पूजित आहुति देकर विधिविधानसे आवाहन करे और देवीजीकी पूजा करके जातकर्म करे ॥ ३०२ ॥

जातनाम्नीनिष्क्रमणमन्नप्राशनमेवच ।
चूडोपनयनंचैतेषट्संस्काराःशिवोदिताः ॥ ३०३ ॥

अर्थ–जातकर्मादि छै प्रकारके संस्कार महादेवजीने कहेहैं । इन षट् संस्कारोंके नाम यहहैं–जातकर्म, नामकरण, बाहर निकलना, अन्नप्राशन, मुण्डन और उपनयन ॥ ३०३ ॥

प्रणवंव्याहृतिंचैवगायत्रींमूलमन्त्रकम् ।
सामन्त्रणाभिधानंतेजातकर्मादिनामच ॥ ३०४ ॥

अर्थ–(किस मंत्रसे यह छै संस्कार किये जातेहैं सो कहेतेहैं) प्रणव, व्याहृति, गायत्री, मूलमंत्र, संबोधनान्तनाम उच्चारण करके "ते" अर्थात्–तुम्हारा यह पद उच्चारण करे, फिर जातकर्मादिका नामकीर्तन करे ॥ ३०४ ॥

सम्पादयाम्यग्निकान्तांसमुच्चार्यविधानवित् ।
पञ्चपञ्चाहुतीर्दद्यात्प्रतिसंस्कारकर्म्मणि ॥ ३०५ ॥

अर्थ–फिर विधानका जाननेवाला पुरुष, "संपादयामि स्वाहा" यह पद उच्चारण करके प्रत्येक संस्कारमें पांच वार आहुति देवै (१) ॥ ३०५ ॥

---

(१) 'ओंभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नःप्रचोदयात् । ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा । श्रीमदाद्ये कालिके "ते"जातकर्म संपादयामि स्वाहा' ॥ इस मंत्रको पढ़ पांच वार आहुति देकर "जातकर्म" पदके बदले "नामकरणम्" पद लगावे । इस प्रकार षट् कर्म में केवल नाम बदल देना चाहिये ।

दत्तनाम्नाहुतिशतंमूलोच्चारणपूर्वकम् ।
देव्यैदत्ताहुतेरंशंप्रतिमामूर्धिनिःक्षिपेत् ॥ ३०६ ॥

अर्थ-फिर मूल उच्चारण कर दत्त नामपढ़े । और देवीको एकशत आहुति देवै, परंतु आहुति देनेके पीछे बचा हुआ साकल्य देवीके मस्तकपर डालदे ॥ ३०६ ॥

प्रायश्चित्तादिभिःशेषंकर्म्मसम्पादयन्सुधीः ।
भोजयेत्साधकान्विप्रान्दीनानाथांश्चतोषयेत् ॥३०७॥

अर्थ-फिर ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि प्रायश्चित्तादिसे शेष कर्म करके साधक ब्राह्मण दीन, दरिद्र और अनाथोंको भोजनादि देकर संतुष्ट करे ॥ ३०७ ॥

उक्तकर्म्मस्वशक्तश्चेत्पाथसांसप्तभिर्घटैः ।
स्नापयित्वार्च्चयञ्छक्त्याश्रावयेन्नामदेवताम् ॥३०८॥

अर्थ-जो इन कार्योंके करनेमें असमर्थ हो तो केवल सात कलश जलसे देवताको स्नान कराय यथाशक्ति पूजाकर नामश्रवण करावै ॥ ३०८ ॥

इतितेश्रीमदाद्यायाःप्रतिष्ठाकथिताप्रिये ! ।
एवंदुर्गादिविद्यानांमहेशादिदिवौकसाम् ॥ ३०९ ॥

अर्थ-हेप्रिये ! मैंने तुमसे आदिकालिकाकी प्रतिष्ठाका प्रयोग कहा। ऐसेही दुर्गाआदि विद्याओंकी, महेश्वरादि देवताओंका ॥ ३०९ ॥

चलतःशिवलिंगस्यप्रतिष्ठायामयंविधिः ।
प्रयोक्तव्योविधानज्ञैर्म्मन्त्रेणामोहपूर्वकम् ॥ ३१० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रेसर्व्वतन्त्रोत्तमोत्तमेसर्वधर्मनिर्णय-
सारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादेआद्याकालीप्र-
तिष्ठानुष्ठानेवास्तुगृहयागजलाशयादिप्र-
तिष्ठादेवगृहदानाद्यादिसर्वदेव-
दिप्रतिष्ठाकथनंनामत्र-
योदशउल्लासः ॥ १३ ॥

अर्थ–एक स्थानसे दूसरे स्थान में रख दिया जाय, ऐसे शिवलिं-गकी प्रतिष्ठामें विधान जाननेवाला पुरुष मोहरहित हो मंत्र पढ़के इस विधिके अनुसार प्रयोग करे ॥ ३१० ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रेसर्वतंत्रोत्तमोत्तमेसर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदा-
द्यासदाशिवसंवादेआद्याकालीप्रतिष्ठानुष्ठाने नलदेवप्रसाद-
मिश्रकृतभाषाटीकायांवास्तु, ग्रहयाग, जलाशया-
दिप्रतिष्ठाकथनंनामत्रयोदशउल्लासः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशउल्लासः ।

श्रीदेव्युवाच ।

आद्यशक्तेरनुष्ठानात्कृपयाभूरिसाधनम् ।
कथितंमेकृपानाथ ! तृप्तास्मितवभावतः ॥ १ ॥

अर्थ–श्रीभगवतीजीने कहाः–हे कृपानाथ ! आदिकालिकाके प्रसं-गमें आपने कृपा करके बहुत साधन कहे, मैं आपका भाव देखक-र अत्यंत प्रसन्न हुईहूं ॥ १ ॥

सचलस्येशलिङ्गस्यप्रतिष्ठाविधिरीरितः ।
अचलस्यप्रतिष्ठायांकिंफलंविधिरेवकः ॥ २ ॥

अर्थ–आपने सचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठाका विधान कहा, परंतु अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा कैसे होतीहै और उस अचल शिव-लिंगकी प्रतिष्ठाका फल क्या है ॥ २ ॥

कथ्यतांजगतांनाथ ! सविशेषेणसाम्प्रतम् ।
इदंहिपरमंतत्त्वंप्रष्टुंवदवृणोमिकम् ॥ ३ ॥

त्वत्तःकोवास्तिसर्व्वज्ञोदयालुःसर्व्वविद्विभुः ।
आशुतोषोदीननाथोममानन्दविवर्द्धनः ॥ ४ ॥

अर्थ-सो अब भलीभांतिसे कहिये । हे जगन्नाथ ! आपके सिवाय यह परमतत्व किससे पूंछू सो कहो आपकी अपेक्षा कोन पुरुष सर्वज्ञ है । आप दयालु, विभु सर्ववित्, आशुतोष, दीननाथ और मेरे आनंदके बढ़ानेवाले हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

शिवलिङ्गस्थापनस्यमाहात्म्यंकिंब्रवीमिते ।
यत्स्थापनान्महापापैर्मुक्तोयातिपरंपदम् ॥ ५ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा, शिवलिंगके स्थापन करनेका माहात्म्य तुमसे क्या वर्णन करूं ! इस शिवलिंगके स्थापन करनेसे मनुष्य महापातकसे छूटकर परम पदको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

स्वर्णपूर्णमहीदानाद्वाजिमेधायुतार्ज्जनात् ।
निस्तोयेतोयकरणाद्दीनार्त्तपरितोषणात् ॥ ६ ॥

अर्थ-सुवर्णके ढेरसे पूर्ण हुई पृथ्वीके दान करनेसे, दशहजार अश्वमेधयज्ञ करनेसे, निर्जल देशमें जलाशय खुदानेसे, दीन व आतुर पुरुषोंको संतुष्टकरनेसे ॥ ६ ॥

यत्फलंलभतेमर्त्त्यस्तस्मात्कोटिगुणंफलम् ।
शिवलिङ्गप्रतिष्ठायांलभतेनात्रसंशयः ॥ ७ ॥

अर्थ-मनुष्योंको जो फल होताहै सो इस फलसे करोड़ गुणा फल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करनेसे मिलताहै, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ७ ॥

लिङ्गरूपीमहादेवोयत्रतिष्ठतिकालिके ! ।
तत्रब्रह्माचविष्णुश्चसेन्द्रास्तिष्ठन्तिदेवताः ॥ ८ ॥

अर्थ-हे कालिके; जिस स्थानमें लिंगरूपी शिव विराजते हैं, वहांपर ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और देवताभी वास करतेहैं इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ८ ॥

सार्द्धत्रिकोटितीर्थानिदृष्टादृष्टानियानिच ।
पुण्यक्षेत्राणिसर्व्वाणिवर्त्तन्तेशिवसन्निधौ ॥ ९ ॥

अर्थ-साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ और प्रकाशित व अप्रकाशित पुण्यक्षेत्र शिवजीके निकट वास करते हैं ॥ ९ ॥

लिङ्गरूपधरंशम्भुंपरितोदिग्विदिक्षुच ।
शतहस्तप्रमाणेनाशिवक्षेत्रंप्रकीर्त्तितम् ॥ १० ॥

अर्थ-लिंगरूपी शिवजीकी सब दिशाओंमें शतहाथतक शिवक्षेत्र कहलाता है ॥ १० ॥

ईशक्षेत्रंमहापुण्यंसर्व्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
यत्रामराविराजन्तेसर्व्वतीर्थानिसर्व्वदा ॥ ११ ॥

अर्थ-यह शिवक्षेत्र अत्यंत पवित्र और सब तीर्थोंसे श्रेष्ठहै । इस शिवक्षेत्रमें सब देवता और सब तीर्थ सदा विराजमान रहतेहैं॥ ११॥

क्षणमात्रंशिवक्षेत्रेयोवसेद्भावतत्परः ।
ससर्व्वपापनिर्मुक्तोयात्यन्तेशङ्करालयम् ॥ १२ ॥

अर्थ-जो पुरुष एक क्षणभरतकभी शिवभावपरायणहो शिवक्षेत्रमें वास करता है, वह सब पापोंसे छूटकर अंतसमय शिवलोकको चलाजाता है ॥ १२ ॥

अत्रयत्क्रियतेकर्म्मस्वल्पंवाबहुलंतथा ।
प्रभावाद्धूर्ज्जटेस्तस्यतत्तत्कोटिगुणंभवेत् ॥ १३ ॥

अर्थ-इस शिवक्षेत्रमें जो थोडा बहुत पापपुण्यका कर्म किया जाताहै, महादेवजीके प्रभावसे वह करोड़ गुण हो जाता है ॥ १३ ॥

यत्रतत्रकृतात्पापान्मुच्यतेशिवसन्निधौ ।
शैवक्षेत्रेकृतंपापंवज्रलेपसमंप्रिये ॥१४ ॥

अर्थ-हे प्रिये ! मनुष्यगण चाहें जिस स्थानमें पाप करे शिवके निकट आतेही वह पाप छूट जाते हैं, परंतु शिवजीके निकट जो पाप किया जाताहै वह वज्रलेपकी समान कठोर हो जाता है ॥ १४ ॥

पुरश्चर्य्याजपंदानंश्राद्धंतर्पणमेवच ।
यत्करोतिशिवक्षेत्रेतदानन्त्यायकल्पते ॥ १५ ॥

अर्थ-पुरश्चरण, जप, दान, श्राद्ध, तर्पणादि जो कर्म शिवक्षेत्रमें कियेजातेहैं । उनका फल अनंत होताहै ॥ १५ ॥

पुरश्चर्य्याशतंकृत्वाग्रहेशशिदिनेशयोः ।
यत्फलंतदवाप्नोतिसकृज्जप्त्वाशिवान्तिके ॥ १६ ॥

अर्थ-सूर्यग्रहणके समय या चंद्रग्रहणके समय शत पुरश्चरण करनेसे जो फल प्राप्त होताहै, शिवजीके पास केवल एकवार करनेसे वह फल मिल जाता है ॥ १६ ॥

गयागङ्गाप्रयागेषुकोटिपिण्डप्रदोनरः ।
यत्प्राप्नोतितदत्रैवसकृत्पिण्डप्रदानतः ॥ १७ ॥

अर्थ-गयाक्षेत्रमें, गंगाक्षेत्रमें और प्रयागमें करोड पिंडदान करनेसे जो फल प्राप्त होताहै, इस शिवक्षेत्रमें केवल एकवार पिंड देनेसे वह फल मिल जाता है ॥ १७ ॥

अतिपातकिनोयेचमहापातकिनश्चये ।
शैवतीर्थेकृतश्राद्धास्तेऽपियान्तिपरांगतिम् ॥ १८ ॥

अर्थ-जो लोग महापातकी और अतिपातकी हैं वहभी इस शिवक्षेत्रमें केवल एकवार श्राद्ध करनेसे परम गतिको पाते हैं ॥ १८ ॥

लिङ्गरूपीजगन्नाथोदेव्याश्रीदुर्गयासह ।
यत्रास्तितत्रतिष्ठन्तिभुवनानिचतुर्दश ॥ १९ ॥

अर्थ–लिंगरूपी जगन्नाथ महेश्वर श्रीदुर्गाजीके साथ जिस स्थानमें विराजमान रहतेहैं, वहांपर चौदह भुवनका रहवास होता है ॥ १९ ॥

स्थापितेशस्यमाहात्म्यंकिञ्चिदेतत्प्रकाशितम् ।
अनादिभूतभूतेशमहिमावागगोचरः ॥ २० ॥

अर्थ–यह तुमसे स्थापित महादेवजीका कुछ थोडासा माहात्म्य वर्णन किया। जो महादेवजी अनादि लिंग हैं उनकी महिमा वचनकेभी अगोचर है ॥ २० ॥

महापीठेतवार्च्चायामस्पृश्यस्पर्शदूषणम् ।
विद्यतेसुव्रते ! नैताल्लिङ्गरूपधरेहरे ॥ २१ ॥

अर्थ–हे सुव्रते ! तुह्मारी प्रतिमाके महापीठस्थानमें अस्पृश्यके स्पर्शका दोष होता है, परंतु लिंगरूपी महेश्वरमें अस्पृश्यके स्पर्शका दोष नहीं होता ॥ २१ ॥

यथाचक्रार्च्चनेदेवि ! कोऽपिदोषोनंविद्यते ।
शिवक्षेत्रेमहातीर्थेतथाजानीहिकालिके ! ॥ २२ ॥

अर्थ–हे देवि ! हे कालिके ! चक्रकी पूजाके समय जिस प्रकार स्पर्शदोष नहीं होता, वैसेही महातीर्थस्वरूप शिवक्षेत्रमें स्पर्शका दोष नहीं है ॥ २२ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनतवाग्रेसत्यमुच्यते ।
प्रभावःशिवलिङ्गस्यमयावक्तुंनशक्यते ॥ २३ ॥

अर्थ–मैं अधिक और क्या कहूं तुमसे सत्य कहताहूं कि भलीभांतिसे मैं शिवलिंगके प्रभावको वर्णन नहीं करसक्ता ॥ २३ ॥

अयुक्तवेदिकंलिङ्गंयुक्तंवेदिकयापिवा।
साधकःपूजयेद्भक्त्यास्वाभीष्टफलसिद्धये ॥ २४॥

अर्थ-शिवलिंगमें गौरीपट मिला रहै या न रहै, साधकको अपना अभीष्टसिद्धि करनेके लिये भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ २४ ॥

प्रतिष्ठापूर्वसायाह्नेदेवतांयोऽधिवासयेत्।
सोऽश्वमेधायुतफलंलभतेसाधकोत्तमः ॥ २५ ॥

अर्थ-देवताकी प्रतिष्ठाके एकदिन पहले साधकश्रेष्ठ देवताका अधिवास (शुभ कर्मकी पूर्व क्रिया) करते हैं, वह दश हजार अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करसक्ते हैं ॥ २५ ॥

महीगन्धःशिलाधान्यंदूर्वापुष्पंफलंदधि।
घृतंस्वस्तिकसिन्दूरंशंखकज्जलरोचनाः ॥ २६ ॥

अर्थ-मही, गंध, शिला, धान्य, दूब, फूल, फल, घृत, स्वस्तिक (चावलके आटेका बनाहुआ त्रिकोणाकार एक अधिवास-द्रव्य) सिन्दूर, शंख, काजल, रोचन ॥ २६ ॥

सिद्धार्थकाञ्चनंरौप्यंताम्रंदीपश्चदर्पणम्।
अधिवासविधौविंशद्द्रव्याण्येतानियोजयेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-सफेद सरसों, सुवर्ण, चांदी, तांबा, दीप, दर्पण यह वीस प्रकारके द्रव्य अधिवासके विधानमें लगावे ॥ २७ ॥

प्रत्येकंद्रव्यमादायमाययाब्रह्मविद्यया।
अनेनामुष्यपदतःशुभमस्त्वधिवासनम् ॥२८॥

अर्थ-इन वीस द्रव्यमेंसे एक २ द्रव्यको ग्रहण करके माया और गायत्रीको पढ फिर कहे कि इस द्रव्यसे इस देवताका शुभाधिवासनहो ॥ २८ ॥

इतिस्पृशेत्साध्यभालंमह्याद्यैःसर्ववस्तुभिः ।
ततःप्रशस्तिपात्रेणत्रिधैवमधिवासयेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-यह मंत्र पढकर मही आदि प्रत्येक वस्तुसे देवताका माथा छूए । फिर प्रशस्तिपात्रसे तीनवार अधिवास करे ॥ २९ ॥

अनेनविधिनादेवमधिवास्यविधानवित् ।
गृहदानविधानेनदुग्धाद्यैःस्नापयेत्ततः ॥ ३० ॥
सम्मार्ज्यवाससालिंगंस्थापयित्वासनोपरि ।
पूजानुष्ठानविधिनागणेशादीन्समर्च्चयेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ-विज्ञानके जाननेवाले साधकको चाहिये कि इस विधिके अनुसार देवताका अधिवास करके गृहप्रतिष्ठाकी विधिके अनुसार दुग्धादिसे उस देवताका स्नान करावै, फिर वस्त्रसे लिंगको मार्जित कर (पोछकर) आसनके ऊपर स्थापनकर पूजा अनुष्ठानकी विधिके अनुसार गणेशादि देवताओंकी पूजा करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

प्रणवेनकरन्यासौप्राणायामंविधायच ।
ध्यायेत्सदाशिवंशान्तंचन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-प्रणवके द्वारा करांगन्यास और प्राणायाम करके सदाशिवका ध्यान करे।वह शांत और चंद्रमाकी कलाके समान कान्तिमान हैं ॥ ३२ ॥

व्याघ्रचर्मपरीधानंनागयज्ञोपवीतिनम् ।
विभूतिलिप्तसर्व्वांगंनागालङ्कारभूषितम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-वह व्याघ्रचर्म पहिरे और नागका यज्ञोपवीत पहरे हुए हैं, उनके सब अंग विभूतिकरके शोभायमानहैं, उनके शरीरमें नागोंके गहने शोभायमान हैं ॥ ३३ ॥

धूम्रपीतारुणश्वेतरक्तैः पञ्चभिराननैः ।
युक्तंत्रिनयनंबिभ्रज्जटाजूटधरंविभुम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-वह धूम्रवर्ण, पीतवर्ण, अरुण, श्वेतवर्ण और रक्तवर्णके पांच मुखों करके शोभायमान हैं त्रिनेत्र और जटाजूट-धारी और विभु हैं ॥ ३४ ॥

गङ्गाधरंदशभुजंशशिशोभितमस्तकम् ।
कपालंपावकंपाशंपिनाकंपरशुंकरैः ॥ ३५ ॥

अर्थ-उनके मस्तकपर गंगाजी विराज रहीहैं । उनके दश हाथ हैं । उनके माथेपर चंद्रमाकी कला शोभायमानहै । वह बांयें हाथसे कपाल, पावक, पाश, पिनाक और परशु धारण किये हुए हैं ॥ ३५ ॥

वामैर्दधानंदक्षैश्चशूलंवज्राङ्कुशंशरम् ।
वरञ्चबिभ्रतंसर्वैर्देवैर्मुनिवरैस्स्तुतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ-वह दाहें हाथसे शूल, वज्र, अंकुश, बाण और वर धारण करते हैं । सब देवता और सब महर्षियों करके चारों ओरसे वह स्तुति किये जातेहैं ॥ ३६ ॥

परमानन्दसन्दोहोल्लसत्कुटिललोचनम् ।
हिमकुन्देन्दुसङ्काशंवृषासनविराजितम् ॥ ३७ ॥

अर्थ- उनके कुटिल नेत्र परम आनंदके समूहमें हर्षित हैं।उनकी कान्ति हिम, कुन्द और चंद्रमाकी समान श्वेत है। वह बैलके ऊपर विराजमान हैं ॥ ३७ ॥

परितःसिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिरहर्निशम् ।
गीयमानमुमाकान्तमेकान्तशरणप्रियम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-उनके चारोंओर सिद्ध गंधर्व अप्सराओंके साथ दिन-रात स्तुति गाते हैं । वह उमाके पति शरणागतजनोंके बहुत प्यारे हैं ॥ ३८ ॥

इतिध्यात्वामहेशानंमानसैरुपचारकैः ।
संपूज्यावाह्यतल्लिङ्गेयजेच्छक्त्याविधानवित् ॥ ३९ ॥

अर्थ-विधानका जाननेवाला पुरुष इस प्रकार महादेवजीका ध्यान करके मानसिक उपचारके साथ पूजकर उस लिंगके ऊपर आवाहन करे और यथाशक्ति उसकी पूजा करे ॥ ३९ ॥

आसनाद्युपचाराणांदानेमन्त्राःपुरोदिताः ।
मूलमन्त्रमनुंवक्ष्येमहेशस्यमहात्मनः ॥ ४० ॥

अर्थ-आसनादि उपचार देनेके मंत्र पीछे कह आयाहूं, अब महात्मा महेश्वरजीका मूलमंत्र कहताहूं ॥ ४० ॥

मायातारःशब्दबीजंसन्ध्यर्णान्ताक्षरान्वितम् ।
अर्द्धेन्दुबिन्दुभूषाढ्यंशिवबीजंप्रकीर्त्तितम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-माया " प्रणव " शब्दबीज " र " और चंद्रबिन्दु अर्थात् "ह्रीं ओं ह्रौं " यह शिवबीजहै ॥ ४१ ॥

सुगन्धिपुष्पमाल्येनवाससाच्छाद्यशङ्करम् ।
निवेश्यंदिव्यशय्यायांवेदीमेवंविशोधयेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ-फिर सुगंधित पुष्प गंध मालासे और वस्त्रसे शिवजीको ढककर दिव्यसेजपर स्थापित करके गौरीपट्ट शोधन करे ॥ ४२ ॥

वेद्यांप्रपूजयेद्देवीमेवमेवविधानतः ।
माययात्रकरन्यासौप्राणायामंसमाचरेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-इस गौरीपट्टके ऊपर ऐसी विधिके अनुसार देवीकी पूजा करे यथाः-पहले "ह्रीं" बीज पढ़के करन्यास और प्राणायाम करे ४३

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिममलांवह्न्यर्कचन्द्रेक्षणाम् ।
मुक्तायन्त्रितहेमकुण्डलल्लसत्स्मेराननाम्भोरुहाम् ॥
हस्ताब्जैरभयंवरञ्चदधतींचक्रंतथाऽब्जंदधत् ।
पीनोत्तुङ्गपयोधरांभयहरांपीताम्बरांचिन्तये ॥ ४४ ॥

अर्थ-फिर इस प्रकार देवीजीका ध्यान करे कि जिनकी कांति उदय होते हुए हजार सूर्यके समान निर्मल है, अग्नि, सूर्य, चंद्रमा यही हैं तीन नेत्र जिसके, जिसके वदनकमलपर मुस्कान है और वह मोतियोंकी राशिसे विराजते सुवर्णके कुंडलसे शोभित हो रहा है, जो करकमलसे चक्र, पद्म, वर और अभय धारण किये हुए हैं, जिनके दोनों पयोधर पीन और ऊंचे हैं, जो पीतवस्त्र पहरती हैं, ऐसी भयहारिणी भगवतीका ध्यान करताहूं ॥ ४४ ॥

इतिध्यात्वामहादेवींपूजयेन्निजशक्तितः ।
ततस्तुदशदिक्पालान्वृषभञ्चसमर्च्चयेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-इस प्रकार ध्यान करके अपनी शक्तिके अनुसार महादेवीकी पूजा करे। फिर दशदिक्पाल और वृषभ की पूजा करे॥४५॥

भगवत्यामनुंवक्ष्येयेनाराध्याजगन्मयी ॥४६॥

अर्थ-अब जगन्मयी भगवती के आराधना करनेके मंत्रको कहताहूं ॥ ४६ ॥

मायांलक्ष्मींसमुच्चार्य्यसान्तंषष्ठस्वरान्वितम् ।
बिन्दुयुक्तंतदन्तेचयोजयेद्वह्निवल्लभाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-माया, लक्ष्मी, षष्ठ स्वरयुक्त हकारमें चन्द्रबिन्दु उच्चारण कर अन्तमें "स्वाहा" मिलावै,इससे यह मंत्र सिद्ध होगाकि "ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा" ॥४७॥

पूर्ववत्स्थापयन्देवींसर्व्वदेवबलिंहरेत् ।
दधियुक्तमाषभक्तंशर्करादिसमन्वितम् ॥४८॥

अर्थ-पहलेकी समान देवीको स्थापित कर सब देवताओंके लिये शर्करादियुक्त दहीयुक्त उरदयुक्त भक्तबलि दे ॥ ४८ ॥

ऐशान्यांबलिमादायवारुणेनंविशोधयेत् ।
संपूज्यगन्धपुष्पाभ्यांमन्त्रेणानेनचार्पयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-यह बलि, अर्थात् पूजाकी सामग्री, ईशानकोणमें रखकर वरुणबीज (वं) से शुद्धकरे फिर सुगंधित पुष्पोंसे पूजकर यह मंत्र पढ़कर उत्सर्ग करे कि ॥ ४९ ॥

सर्वेदेवाःसिद्धगणागन्धर्वोरगराक्षसाः ।
पिशाचामातरोयक्षाभूताश्वपितरस्तथा ॥५०॥

अर्थ-समस्तदेव, सिद्ध, गंधर्व, नाग, राक्षस, पिशाच और मातृगण, यक्ष, भूत, पितर ॥ ५० ॥

ऋषयोयेऽन्यदेवाश्चबलिंगृह्णन्तुसंयताः ।
परिवार्य्यमहादेवंतिष्ठन्तुगिरिजामपि ॥ ५१ ॥

अर्थ-ऋषि और सब देवता सावधान होकर बलिको ग्रहण करें और सबही इन महादेव व महादेवीके साथ रहैं ॥ ५१ ॥

ततोजपेन्महादेव्यामन्त्रमेतंयथेप्सितम् ।
गीतवाद्यादिभिःसद्भिर्विदध्यान्मङ्गलक्रियाम्॥५२॥

अर्थ-फिर "ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा" इच्छानुसार इस महादेवीके मंत्रको जपै । अनंतर उत्तम गति बाजे गाजे इत्यादिसे मांगलिकक्रिया करे ॥ ५२ ॥

अधिवासंविधायेत्थंपरेऽह्निविहितक्रियः ।
संकल्पंविधिवत्कृत्वापञ्चदेवान्प्रपूजयेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ-इस प्रकार अधिवास करके दूसरे दिन नित्यक्रिया करके यथाविधि संकल्प कर पांच देवताओंकी पूजा करे ॥ ५३ ॥

मातृपूजांवसोर्द्धारांवृद्धिश्राद्धंसमाचरन्।
महेशद्वारपालांश्चयजेद्भक्त्यासमाहितः॥ ५४ ॥

अर्थ-फिर मातृकापूजा, वसुधारा और वृद्धिश्राद्ध करके भक्तिपूर्वक महादेवजीके नंदीआदि द्वारपालोंकी पूजाकरे ॥ ५४ ॥

नन्दीमहाबलःकीशवदनोगणनायकः।
द्वारपालाःशिवस्यैतेसर्वेशस्त्रास्त्रपाणयः॥५५॥

अर्थ-नन्दी, महाबल, कीशवदन, गणनायक यह शिवजीके द्वारपालहैं । इन सबके हाथमें अस्त्र शस्त्रहैं ॥ ५५ ॥

ततोलिङ्गंसमानीयवेदीरूपांचतारिणीम्।
मण्डलेसर्वतोभद्रेस्थापयेद्वाशुभासने॥ ५६ ॥

अर्थ-फिर वेदीरूप तारिणी और शिवलिंगको लाय सर्वतोभद्र मंडलमें वा उत्तम आसनपर स्थापित करे ॥ ५६ ॥

अष्टभिःकलशैःशम्भुंमनुनात्र्यम्बकेनच ।
स्नापयित्वार्चयेद्भक्त्याषोड़शैरुपचारकैः॥ ५७ ॥

अथ-फिर"ह्रीं ओं ह्रौं"मंत्र और "त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्द्धनम्" इस मंत्रको पढ़के अष्टकलश जलसे महादेवजीको स्नान कराय भक्तिसहित षोडशोपचारसे पूजा करे ॥ ५७ ॥

वेदींचमूलमन्त्रेणतद्वत्संस्थाप्यपूजयन्।
कृताञ्जलिपुटःसाधुःप्रार्थयेच्छङ्करंशिवम्॥ ५८ ॥

अर्थ-फिर "ह्रीं श्रीं हूं स्वाहा"इस मंत्रसे वेदीको स्थापनकर उसमें लिंगको स्थापकर पूजा करे, फिर साधु पुरुष हाथ जोड़कर महादेवजीसे प्रार्थना करे कि ॥ ५८ ॥

आगच्छभगवञ्छम्भो ! सर्वदेवनमस्कृत !॥
पिनाकपाणे ! सर्वेश ! महादेव ! नमोऽस्तुते॥ ५९ ॥

अर्थ-हे भगवन् ! हे शम्भो ! आगमन करो । तुम सब देवताओंके नमस्कार करने योग्यहो।हे पिनाकपाणे! तुम सबके ईश्वरहो । हे महादेव! तुमको नमस्कार है ॥ ५९ ॥

आगच्छमन्दिरेदेव ! भक्तानुग्रहकारक ! ।
भगवत्यासहागच्छकृपांकुरुनमोनमः ॥ ६० ॥

अर्थ-हेदेव!तुम कृपा करो;तुम भक्तोंपर अनुग्रह करके भगवती के साथ इस मंदिरमें आगमन करो । तुमको वारंवार नमस्कार है॥ ६०॥

मातर्देवि ! महामाये ! सर्वकल्याणकारिणि ! ।
प्रसीदशम्भुनासार्द्धंनमस्तेऽस्तुहरप्रिये ! ॥ ६१ ॥

अर्थ-हे महामाये ! सर्वकल्याणकारिणी ! हरप्रिये ! मातः ! देवि ! महादेवजीके साथ तुम प्रसन्न होवो ! तुमको नमस्कार है ॥ ६१ ॥

आयाहिवरदे ! देवि ! भवनेऽस्मिन्वरप्रदे ! ।
प्रीताभवमहेशानि ! सर्वसम्पत्करीभव ॥ ६२ ॥

अर्थ-हे वरदे ! हे देवि ! इस भवनमें आगमन करो, हेवरदायिनि ! प्रसन्न होवो । हे महेश्वरि ! हमें सर्व संपत्तिकी देनेवाली होवो ॥ ६२ ॥

उत्तिष्ठदेवदेवेशि ! स्वैःस्वैः परिकरैःसह ।
सुखंनिवसतांगेहेप्रीयेतांभक्तवत्सलौ ॥ ६३ ॥

अर्थ-हे महेश्वर! हे महेश्वरि ! अपने २ परिवारके साथ उठो तुम भक्तवत्सल हो । तुम इस गृहमें रहकर प्रसन्न होवो ॥ ६३ ॥

इतिप्रार्थ्यशिवंदेवींमङ्गलध्वानिपूर्वकम् ।
प्रदक्षिणंत्रिधावेश्मकारयित्वाप्रवेशयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ-महेश्वर और महेश्वरीसे ऐसी प्रार्थना करके मंगलध्वनि कर तीनवार गृहकी परिक्रमा कराय गृहमें प्रवेश करावै ॥ ६४ ॥

पाषाणखनितेगर्त्तेइष्टकारचितेऽपिवा ।
अधस्त्रिभागलिङ्गस्यरोपयेन्मूलमुच्चरन् ॥ ६५ ॥

अर्थ-फिर मूलमंत्र पढ़कर पत्थरके खुदेहुए थांवलेमें अथवा ईंटोंके बने हुये थांवलेमें लिंगके नीचेका भाग तीनहिस्से गाड़दे६५

यावच्चन्द्रश्चसूर्य्यश्चयावत्पृथ्वीचसागराः ।
तावदत्रमहादेवस्थिरोभवनमोऽस्तुते ॥ ६६ ॥

अर्थ-जबतक चंद्रमा और सूर्य स्थिर रहैं जबतक समुद्र रहै हे महादेव!तब तक तुम इस स्थानमें स्थिर होवो । तुमको नमस्कारहै ॥ ६६ ॥

मन्त्रेणानेनसुदृढंकारयित्वासदाशिवम् ।
उत्तराग्रांतत्रवेदिंमूलेनैवप्रवेशयेत् ॥ ६७ ॥

अर्थ-यह मंत्र पढ़ सदाशिवको दृढ़तासे स्थापन करे और मूलमंत्र पढ़ उत्तरमुख किया हुआ गौरीपट्ट रखके उनको प्रवेशितकरावै ॥ ६७ ॥

स्थिराभवजगद्धात्रि!सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
यावद्दिवानिशानाथौतावदत्रस्थिराभव ॥ ६८॥
अनेनसुदृढीकृत्यलिंगंस्पृष्ट्वापठेदिमम् ॥ ६९ ॥

अर्थ-फिर यह मंत्र पढ़े की, हे सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी जगद्धात्री ! स्थिर होवो, जबतक चंद्र, सूर्य रहैं तबतक तुम इस स्थानमें स्थिर होवो ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

व्याघ्रभूताःपिशाचाश्चगन्धर्वाःसिद्धचारणाः ।
यक्षानागाश्चवेतालालोकपालामहर्षयः ॥ ७० ॥

अर्थ-व्याघ्र, भूत, पिशाच, गंधर्व, सिद्ध, चारण, यक्ष, नाग, बेताल, लोकपाल, महर्षिगण ॥ ७० ॥

मातरोगणनाथाश्चविष्णुर्ब्रह्माबृहस्पतिः ।
यस्यसिंहासनेयुक्ताभूचराःखेचरास्तथा ॥ ७१ ॥

अर्थ–और मातृकाएं, गणपतिगण, भूचरगण, खेचरगण, ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति जिनके सिंहासनको उठातेहैं ॥ ७१ ॥

आवाहयामितंदेवंत्र्यक्षमीशानमव्ययम् ।
आगच्छभगवन्नत्रब्रह्मानिर्मितयन्त्रके ॥ ७२ ॥

अर्थ–उन त्रिनयन अविनाशी देव महादेवजीका आवाहन करताहूं हे भगवन्! तुम इस ब्रह्मनिर्मितयंत्रमें रहो ॥ ७२॥

ध्रुवायभवसर्वेषांशुभायचसुखायच ।
ततोदेवप्रतिष्ठोक्तविधिनास्नापयाच्छिवम् ॥ ७३ ॥

अर्थ–तुम सबको स्थिर करो । तुम सबके लिये मंगल और सुखका विधान करो। फिर देवप्रतिष्ठामें कहीहुई विधिके अनुसार शिवजीको स्नान करावै ॥ ७३ ॥

प्राग्वद्ध्यात्वामानसोपचारैःसम्पूजयेत्प्रिये! ।
विशेषमर्घ्यसंस्थाप्यसमर्च्यगणदेवताः।
पुनर्ध्यात्वामहेशानंपुष्पंलिंगोपरिन्यसेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ–हे प्रिये! पहलेकी समान ध्यान करके मानसिक उपचारसे पूजा करे ! फिर विशेष अर्घ्य स्थापित करके गणदेवताओंकी पूजा करे। और फिर ध्यान करके लिंगके ऊपर पुष्प स्थापित करे ॥ ७४ ॥

पाशांकुशपुटाशक्तिर्यादिसान्ताःसबिन्दुकाः ।
ह्रींहंसइतिमन्त्रेणतत्रप्राणान्निवेशयेत् ।
चन्दनागुरुकाश्मीरैर्विलिप्यगिरिजापतिम् ॥ ७५ ॥

अर्थ-पाश और अंकुश पुटित माया उच्चारण करके 'य' से लेकर 'स' तक सात अक्षरमें अनुस्वार मिलाय पढ़कर फिर "हौं हंसः" यह मंत्र (१) पढ़कर उस लिंगकी प्राणप्रतिष्ठा करे। फिर चंदन, अगर, और केशरसे गिरिजापतिके अंग पूजितकर ॥ ७५ ॥

यजेत्प्रागुक्तविधिनाषोड़शैरुपचारकैः ।
जातनामादिसंस्कारान्कृत्वापूर्वविधानवत् ॥ ७६ ॥

अर्थ-पहले कहीहुई विधिके अनुसार सोलह उपचारसे पूजा करे। फिर पहले कहे विधानकी नाईं जातकर्म, नामकरणआदि संस्कार करके ॥ ७६ ॥

समाप्यसर्वविधिवद्वेद्यांदेवींमहेश्वरीम् ।
अभ्यर्च्यतत्रदेवस्यमूर्त्तीरष्टौप्रपूजयेत् ॥ ७७ ॥

अर्थ-विधिविधानसे सब कर्मोंको करे । फिर वेदीमें महेश्वरीकी पूजा करके तिसमें देवदेवीकी अष्टमूर्तिकी पूजा करे ॥ ७७ ॥

शर्वःक्षितिःसमुद्दिष्टाभवाजलमुदाहृता ।
रुद्रोऽग्निरुग्रोवायुःस्याद्भीमआकाशशब्दितः ॥७८॥

अर्थ-अष्टमूर्तिकी पूजाके समय इस प्रकार कहना चाहिये कि (शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः १ । भवाय जलमूर्तये नमः २ । रुद्राय अग्निमूर्तयेनमः ३ । उग्राय वायुमूर्तये नमः ४ । भीमाय आकाशमूर्तये नमः ५ ॥ ७८ ॥

पशोःपतिर्यजमानोमहादेवःसुधाकरः ।
ईशानःसूर्य्यइत्येतेमूर्त्तयोष्टौप्रकीर्त्तिताः ॥ ७९ ॥

---

(१) "ओं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हं सः"॥

अर्थ–पशुपतये यजमानमूर्तये नमः ६ । महादेवाय सोम-मूर्तये नमः ७ । ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः ८) इसप्रकार आठ मूर्ति कहीहैं ॥ ७९ ॥

प्रणवादिनमोऽन्तेनप्रत्येकाह्वानपूर्वकम् ।
पूर्व्वादीशानपर्य्यन्तमष्टमूर्त्तीःक्रमाद्यजेत् ॥ ८० ॥

अर्थ–पहले "प्रणव" अन्तमें "नमः" पद लगाय प्रत्येक मूर्त्तिका आवाहन करके पूर्वदिशासे लेकर ईशान कोणतक क्रमसे उक्त आठ मूर्तिकी पूजा करे (१) ॥ ८० ॥

इन्द्रादिदिक्पतीनिष्ट्वाब्राह्म्याद्याश्चाष्टमातृकाः ।
वृषंवितानंगेहादिदद्यादीशायसाधकः ॥ ८१ ॥

अर्थ–फिर साधकको चाहिये कि इन्द्रादि सब दिक्पालोंकी और ब्राह्मीआदि आठ मातृकाओंकी पूजा करके, वृष, वितान गृहादि सब महादेवजीको भेंट करे ॥ ८१ ॥

ततःकृताञ्जलिर्भक्त्याप्रार्थयेत्पार्वतीपतिम् ॥ ८२ ॥

अर्थ–फिर हाथ जोड भक्तिके सहित पार्वतीके नाथ महादेवजीसे प्रार्थना करे कि ॥ ८२ ॥

गृहेऽस्मिन्करुणासिन्धो ! स्थापितोऽसिमयाप्रभो ! ।
प्रसीदभगवञ्छम्भो ! सर्वकारणकारण ! ॥ ८३ ॥

---

(१) आठ मूर्तियोंका आवाहन और पूजा इस प्रकार है । "हे शर्व! हे क्षिति-मूर्ते इहागच्छ इहागच्छ१। इह तिष्ठ इह तिष्ठ २ । इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि ३ । इह सम्मुखो भव इह सम्मुखो भव ४ । इह सन्निरुद्धो भव इह सन्निरुद्धोभव ५ । मम पूजां गृहाण" । ऐसे मंत्रसे आवाहन करके पूर्वदिशामें इस मंत्रसे पूजा करे कि " ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः" आठ दिशामें अष्टमूर्तिकी पूजामें ही नाम बदलकर इस प्रकार आवाहन और पूजा करे ।

अर्थ-हे करुणासागर ! मैंने तुमको इस गृहमें स्थापन किया । हे प्रभो ! तुम सब कारणोंके कारण हो । हे भगवन् शम्भो ! प्रसन्न होवो ॥ ८३ ॥

यावत्ससागरापृथ्वीयावच्छशिदिवाकरौ ।
तावदस्मिन्गृहेतिष्ठनमस्तेपरमेश्वर ! ॥ ८४ ॥

अर्थ-हे परमेश्वर ! जबतक समुद्रसहित पृथ्वी रहैगी, जबतक चन्द्रमा, सूर्य रहैंगे । तबतक इस गृहमें विराजो । तुमको नमस्कार है ॥ ८४ ॥

गृहेऽस्मिन्यस्यकस्यापिजीवस्यमरणंभवेत् ।
नतत्पापैःप्रलिप्येऽहंप्रसादात्तवधूर्जटे ! ॥ ८५ ॥

अर्थ-हे धूर्जटे ! इस गृहमें यदि किसी जीवकी अपमृत्यु होवे तो, तुह्मारे प्रसादसे मैं उसके पापमें न फसूं ॥ ८५ ॥

ततःप्रदाक्षिणीकृत्यनमस्कृत्यगृहंव्रजेत् ।
प्रभातेपुनरागत्यस्नापयेच्चन्द्रशेखरम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-फिर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके गृहमें गमन करे, दूसरे दिन प्रभातको उस स्थानमें आय उन चंद्रशेखर (महादेवजी) को स्नान करावे ॥ ८६ ॥

शुद्धैःपञ्चामृतैःस्नानंप्रथमंप्रतिपादयेत् ।
ततःसुगन्धितोयानांकलशैःशतसंख्यकैः ॥ ८७ ॥

अर्थ-पहले शुद्ध पंचामृतसे स्नान करावे । फिर सुगंधित एक शत कलशजलसे स्नान करावे ॥ ८७ ॥

संपूज्यतंयथाशक्त्याप्रार्थयेद्भक्तिभावतः ॥ ८८ ॥

अर्थ-अनंतर भक्तिभावसे यथाशक्ति पूजाकर प्रार्थना करे कि ॥ ८८ ॥

विधिहीनंक्रियाहीनंभक्तिहीनंयदर्चितम् ।
सम्पूर्णमस्तुतत्सर्वंत्वत्प्रसादादुमापते ! ॥ ८९ ॥

अर्थ–हे उमापते ! जो इस पूजामें कुछ विधिहीन क्रियाहीन, या भक्तिहीन हुआ हो तो आपके प्रसादसे वह सब सम्पूर्ण हो ॥ ८९ ॥

यावच्चन्द्रश्चसूर्य्यश्चयावत्पृथ्वीचसागराः ।
तावन्मेकीर्त्तिरतुलालोकेतिष्ठतुसर्वदा ॥ ९० ॥

अर्थ–जबतक चंद्रमा, सूर्य, पृथ्वी और सागर हैं तबतक इस लोकमें मेरी अतुल कीर्ति स्थाई रहै ॥ ९० ॥

नमस्त्र्यक्षायरुद्रायपिनाकवरधारिणे ।
विष्णुब्रह्मेन्द्रसूर्य्याद्यैरार्चितायनमोनमः ॥ ९१ ॥

अर्थ–जो श्रेष्ठ पिनाकधारी त्रिनेत्र रुद्र हैं, तिनको नमस्कार है। जो ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र सूर्यादि देवताओं करके पूजित हैं उन परमेश्वरको वारंवार नमस्कार करताहूं ॥ ९१ ॥

ततस्तुदक्षिणांदत्त्वाभोजयेत्कौलिकान्द्विजान् ।
भक्ष्यैःपेयैश्ववासोभिर्दरिद्रान्परितोषयेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ–इसके उपरांत दक्षिणा देकर कुलवानोंको और ब्राह्मणोंको भोजन करावै । फिर दरिद्रोंको खान, पान और वस्त्र देकर संतुष्ट करे ॥ ९२ ॥

प्रत्यहंपूजयेद्देवंयथाविभवमात्मनः ।
स्थावरंशिवलिंगन्तुनकदापिविचालयेत् ॥ ९३ ॥

अर्थ–अनंतर अपने विभवके अनुसार प्रतिदिन महादेवजीकी पूजाकरें, परंतु स्थापित शिवलिंगको कभी दूसरे स्थानपर नहीं लेजाना चाहिये ॥ ९३ ॥

अचलस्येशलिङ्गस्यप्रतिष्ठाकथितेतिते ।

सङ्क्षेपात्परमेशानि ! सर्वागमसमुद्धृता ॥ ९४ ॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! मैं सब आगमोंमेंसे निकालकर संक्षेपसे, अचल शिवलिंगकी प्रतिष्ठा तुमसे कही ॥ ९४ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

यद्यकस्माद्देवतानांपूजाबाधोभवेद्विभो ! ।
विधेयंतत्रकिंभक्तैस्तन्मेकथयतत्त्वतः ॥ ९५ ॥

अर्थ-भगवतीने पूछा, हे विभो ! यदि अचानक किसी दिन शिवकी पूजा न हो तो वहांपर भक्तोंको क्या करना चाहिये, सो मुझसे कहो ॥ ९५ ॥

अपूजनीयाःकैर्दोषैर्भवेयुर्देवमूर्त्तयः ।
त्याज्यावाकेनदोषेणतदुपायश्चभण्यताम् ॥ ९६ ॥

अर्थ-किस दोषके होनेसे देवमूर्ति अपूज्य और त्याग देने योग्य होतीहै सोभी मुझसे कहो ॥ ९६ ॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

एकाहमर्चनाबाधेद्विगुणंदेवमर्चयेत् ।
दिनद्वयेतद्द्विगुणंतद्द्वैगुण्यंदिनत्रये ॥ ९७ ॥

अर्थ-श्रीसदाशिवने कहा-जो एकदिन पूजा नहो तो दूसरे दिन दुगनी पूजा करे। दोदिन पूजा न हों तो चौगुनी पूजाकरे, तीन दिन पूजा नहोनेसे उस्से दुगुनी अर्थात् आठगुनी पूजा करनी चाहिये॥९७॥

ततःषण्मासपर्य्यन्तंयदिपूजानसम्भवेत् ।
तदाष्टकलशैर्देवंस्नापयित्वायजेत्सुधीः ॥ ९८ ॥

अर्थ-यदि छैः मासतक पूजामें बाधा पड़े तो ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि आठकलश जलसे देवमूर्तिको स्नान कराय पूजा करे॥९८॥

षण्मासात्परतोदेवंप्राक्संस्कारविधानतः ।
पुनःसुसंस्कृतंकृत्वापूजयेत्साधकाग्रणीः ॥ ९९ ॥

अर्थ–यदि छैः माससे अधिक समयतक पूजा न होंतो पहले कहे संस्कारकी विधिके अनुसार फिर देवमूर्तिका संस्कार करके साधकश्रेष्ठको पूजा करनी चाहिये ॥ ९९ ॥

खण्डितंस्फुटितंव्यङ्गंसंस्पृष्टंकुष्ठरोगिणा ।
पतितंदुष्टभूम्यादौनदेवंपूजयेद्बुधः ॥ १०० ॥

अर्थ–जो देवमूर्ति टूटगईहै, जिस मूर्तिमें छेद होगयाहै, अंग हीन होगई है, कोढ़ीसे छुईगई है, अथवा दूषित भूमिमें गिरी है, ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि ऐसी प्रतिमाको न पूजै ॥ १०० ॥

हीनाङ्गंस्फुटितंभग्नंदेवंतोयेविसर्जयेत् ।
स्पर्शादिदोषदुष्टन्तुसंस्कृत्यपुनरर्चयेत् ॥ १०१ ॥

अर्थ–जो मूर्ति अंगहीन होगईहै अथवा जो टूटगई है, उसको जलमें मिलादेवै । परंतु जो मूर्ति स्पर्शादिदोषसे दूषित हुईहै उसको फिर संस्कार करके पूजै ॥ १०१ ॥

महापीठेऽनादिलिङ्गेसर्वदोषविवर्जिते ।
सर्वदापूजयेत्तत्रस्वंस्वामिष्टंसुखाप्तये ॥ १०२ ॥

अर्थ–जो महापीठ और अनादि लिंगहैं, तिसमें छुआ छूतका दोष नहीं लगता । इस कारण उसमें सुखप्राप्तिके लिये सदा अपने अपने अभीष्टदेवताकी पूजाकरे ॥ १०२ ॥

यद्यत्पृष्टंमहामाये ! नृणांकर्मानुजीविनाम् ।
निःश्रेयसायतत्सर्वंसविशेषंप्रकीर्त्तितम् ॥ १०३ ॥

अर्थ–हे महाभागे ! कर्मानुजीवी मनुष्योंके मंगलार्थ जो२ तुमने पूछा वह मैंने भलीभांतिसे कहा ॥ १०३ ॥

विनाकर्म्मनतिष्ठन्तिक्षणार्द्धमपिदेहिनः ।
अनिच्छन्तोऽपिविवशाःकृष्यन्तेकर्म्मवायुना ॥ १०४ ॥

अर्थ-मनुष्यगण विनाकर्म करे क्षणभरभी नहीं रहसक्ते, यदि वह कर्म करनेकी इच्छा नभी करे तौ भी कर्म करनेकी पवनसे खिंच जाते हैं ॥ १०४ ॥

कर्म्मणासुखमश्नन्तिदुःखमश्नन्तिकर्म्मणा ।
जायन्तेचप्रलीयन्तेवर्त्तन्तेकर्म्मणोवशात् ॥ १०५ ॥

अर्थ-मनुष्य कर्मसे सुख भोगते हैं,कर्मसे दुःख भोगते हैं,कर्मसे जन्मते और मरते हैं ॥ १०५ ॥

अतोबहुविधंकर्म्मकथितंसाधनान्वितम् ।
प्रवृत्तयेऽल्पबोधानांदुश्चेष्टितनिवृत्तये ॥ १०६ ॥

अर्थ-इस कारण मैं अल्पज्ञानी पुरुषोंकी प्रवृत्तिके लिये और दुष्ट-प्रवृत्तिके अलग करनेको साधन समेत अनेक प्रकारके कर्म कहे १०६

यतोहिकर्म्मद्विविधंशुभञ्चाशुभमेवच ।
अशुभात्कर्म्मणोयान्तिप्राणिनस्तीव्रयातनाम् ॥ १०७ ॥

अर्थ-कर्म दो प्रकारके हैं शुभ और अशुभ, अशुभ कर्म करनेसे प्राणियोंको तीव्र पीडा होती है ॥ १०७ ॥

कर्म्मणोऽपिशुभाद्देवि ! फलेष्वासक्तचेतसः ।
प्रयान्त्यायान्त्यमुत्रेहकर्म्मशृंखलयन्त्रिताः ॥ १०८ ॥

अर्थ-हे देवि ! जो फलमें चित्तको आसक्त करके शुभ कर्म करते हैं वहभी इस कर्मकी जंजीरमें बंधकर इस लोक और पर-लोकमें गमनागमन करते हैं ॥ १०८ ॥

यावन्नक्षीयतेकर्म्मशुभंवाशुभमेववा ।
तावन्नजायतेमोक्षोनृणांकल्पशतैरपि ॥ १०९ ॥

अर्थ-जबतक शुभ या अशुभ कर्मोंका क्षय नहीं होता तबतक शत कल्पसेभी मनुष्यकी मुक्ति नहीं होसक्ती ॥ १०९ ॥

यथालोहमयैःपाशैःपाशैःस्वर्णमयैरपि ।
तथाबद्धोभवेज्जीवःकर्म्मभिश्चाशुभैःशुभैः ॥ ११० ॥

अर्थ–जैसे पशु लोहेकी या सुवर्णकी जंजीरसे बंधारहता है तैसे ही मनुष्य शुभ या अशुभ कर्मोंसे बंधा रहता है ॥ ११० ॥

कुर्वाणःसततंकर्म्मकृत्वाकष्टशतान्यपि ।
तावन्नलभतेमोक्षंयावज्ज्ञानंनविन्दति ॥ १११ ॥

अर्थ–जबतक ज्ञान प्राप्त नहीं होता तबतक, सदा कर्मका अनुष्ठान करके और शत २ कष्ट करके भी मुक्ति नहीं प्राप्त होसक्ती ॥ १११ ॥

ज्ञानंतत्त्वविचारेणनिष्कामेनापिकर्म्मणा ।
जायतेक्षीणतमसांविदुषांनिर्म्मलात्मनाम् ॥ ११२ ॥

अर्थ–जिनका स्वभाव निर्मल है और जो लोग विज्ञानी हैं उनको तत्वोंके विचारसे अथवा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ११२ ॥

ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तंमाययाकल्पितंजगत् ।
सत्यमेकंपरंब्रह्मविदित्वैवंसुखीभवेत् ॥ ११३ ॥

अर्थ–ब्रह्मासे लेकर तृण गुल्मतक सब जगत् मायासे कल्पित हुआ है। एक परम ब्रह्मको सत्य जानकर नित्य सुख भोग किया जासक्ता है ॥ ११३ ॥

विहायनामरूपाणिनित्येब्रह्मणिनिश्चले ।
परिनिश्चिततत्त्वोयःसमुक्तःकर्म्मबन्धनात् ॥ ११४ ॥

अर्थ–जो नामरूपको छोडकर नित्य निश्चल ब्रह्मके तत्वका निरूपण करताहै, वह कर्मबंधनसे छूट जाता है ॥ ११४ ॥

नमुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि ।
ब्रह्मैवाहमितिज्ञात्वामुक्तोभवतिदेहभृत् ॥ ११५ ॥

अर्थ–जप,होम और शत२उपवास करनेसे मुक्ति नहीं होतीहै।मैं ही ब्रह्म हूं ऐसा ज्ञान होनेसे शरीरधारीकी मुक्ति होजाती है॥११५॥

आत्मासाक्षीविभुःपूर्णःसत्योऽद्वैतःपरात्परः ।
देहस्थोऽपिनदेहस्थोज्ञात्वैवंमुक्तिभाग्भवेत् ॥ ११६ ॥

अर्थ–आत्मा साक्षिस्वरूपहै अर्थात् शुभाशुभको देखनेवाला है । वह विभु अर्थात् सर्वव्यापक है । वह पूर्ण अर्थात् अखंडस्वरूपहै । वह अद्वितीय अर्थात् परेसे परेहै । ऐसा ज्ञान होनेसे जीबकी मुक्ति होसक्तीहै ॥ ११६ ॥

बालक्रीडनवत्सर्वंरूपनामादिकल्पनम् ।
विहायब्रह्मनिष्ठोयःसमुक्तोनात्रसंशयः ॥ ११७ ॥

अर्थ–ब्रह्मका नाम स्वरूपादि कल्पना करना बालकोंके खेलकी समान है जो इस बालखेलको छोड़कर केवल ब्रह्मनिष्ठ होताहै, वह निःसंदेह मुक्ति प्राप्त करलेताहै ॥ ११७ ॥

मनसाकल्पितामूर्त्तिर्नृणांचेन्मोक्षसाधनी ।
स्वप्नलब्धेनराज्येनराजानोमानवास्तथा ॥ ११८ ॥

अर्थ–मनःकल्पित देवमूर्ति यदि मनुष्योंको मोक्ष देसके तो मनुष्य स्वप्नमें पाये राज्यसे राजा होनेको भी समर्थ होवैं॥११८॥

मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तावीश्वरबुद्धयः।
क्लिश्यन्तस्तपसाज्ञानंविनामोक्षंनयान्तिते ॥ ११९ ॥

अर्थ–जो मिट्टीकी, काठकी, पत्थरकी मूर्त्तिको ईश्वर समझ कर तपस्यादि करतेहैं,वोह वृथा कष्ट पातेहैं । क्यों कि विना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती ॥ ११९ ॥

आहारसंयमक्लिष्टायथेष्टाहारतुन्दिलाः ।
ब्रह्मज्ञानविहीनाश्चेन्निष्कृतिंतेव्रजन्तिकिम् ॥ १२० ॥

अर्थ-मनुष्य आहारको वशमें रखकर क्लेश भोग करें, इच्छानुसार आहार करके तोन्दवलिहों, परंतु ब्रह्मज्ञानके न होनेसे किसी प्रकार उनकी मुक्ति नहीं होसक्ती ॥ १२० ॥

वायुपर्णकणातोयव्रतिनोमोक्षभागिनः ।
सन्तिचेत्पन्नगामुक्ताःपशुपक्षिजलेचराः ॥ १२१ ॥

अर्थ-जो लोग केवल वायु, पत्ते, कणा भक्षणकर या जलही पीकर व्रत धारण करतेहैं यदि इनलोगोंकी मुक्ति होजाय तो सर्प,पशु, पंक्षी और जलचरभी मोक्षके भागी होसक्ते हैं ॥ १२१॥

उत्तमोब्रह्मसद्भावोध्यानभावस्तुमध्यमः ।
स्तुतिर्जपोऽधमोभावोबहिःपूजाऽधमाधमा ॥ १२२ ॥

अर्थ-सिवाय ब्रह्मके और सबही मिथ्याहै, ऐसा भाव करना उत्तम कल्पहै । ध्यानभाव मध्यम कल्पहै । बाह्यपूजा अधमसे भी अधम कल्पहै ॥ १२२ ॥

योगोजीवात्मनोरैक्यंपूजनंसेवकेशयोः ।
सर्वब्रह्मेतिविदुषोनयोगोनचपूजनम् ॥ १२३ ॥

अर्थ-जीव और आत्माकी एकताका नामं योगहै; सेवक और ईश्वरकी एकताका नाम पूजाहै जिसको ऐसा ज्ञान हो गयाहै कि सब ब्रह्महै । उसके लिये योग वा पूजा कुछभी नहींहै ॥ १२३ ॥

ब्रह्मज्ञानंपरंज्ञानंयस्यचित्तेविराजते ।
किन्तस्यजपयज्ञाद्यैस्तपोभिर्नियमव्रतैः ॥ १२४ ॥

अर्थ-जिसके हृदयमें परमज्ञान ब्रह्मज्ञान विराजित हुआहै।उसको जप, यज्ञ,तप, नियम, व्रतादिकी कुछ आवश्यकता नहींहै ॥१२४॥

सत्यंविज्ञानमानन्दमेकंब्रह्मेतिपश्यतः ।
स्वभावाद्ब्रह्मभूतस्यकिंपूजाध्यानधारणा ॥ १२५ ॥

अर्थ-जो सर्वत्र सत्यस्वरूप, विज्ञानस्वरूप, आनंदस्वरूप, अद्वितीय ब्रह्म अवलोकन करता है, वह स्वभावसेही ब्रह्मस्वरूप होगया, उसके लिये पूजा और ध्यान धारण कुछभी नहीं है ॥ १२५ ॥

नपापंनैवसुकृतंनस्वर्गोनपुनर्भवः ।
नापिध्येयोनवाध्यातासर्वंब्रह्मेतिजानतः ॥ १२६ ॥

अर्थ-जिसने सबको ब्रह्ममय जान लियाहै, उसके लिये पाप, पुण्य, स्वर्ग, पुनर्जन्म, नहीं है, न उसके लिये ध्येय है न ध्याता है ॥ १२६ ॥

अयमात्मासदामुक्तोनिर्लिप्तःसर्ववस्तुषु ।
किंतस्यबन्धनंकस्मान्मुक्तिमिच्छन्तिदुर्धियः ॥१२७॥

अर्थ-यह आत्मा सदाही मुक्त है, किसी वस्तुमें लिप्त नहींहै । उसका बंधन कहां फिर किस कारणसे कुबुद्धि लोग मुक्तिकी कामना करतेहैं ॥ १२७ ॥

स्वमायारचितंविश्वमवितर्क्यंसुरैरपि ।
स्वयंविराजतेतत्रह्यप्रविष्टःप्रविष्टवत् ॥ १२८ ॥

अर्थ-यह जगत् ब्रह्मकी मायासे बनाहै, देवता लोगभी इसके भेदको नहीं पासक्ते । परम ब्रह्म इस जगत्में प्रवेशित न होकरभी प्रवेशितकी समान विराजमानहै ॥ १२८ ॥

बहिरन्तर्यथाकाशंसर्वेषामेववस्तुनाम् ।
तथैवभातिसद्रूपोह्यात्मासाक्षीस्वरूपतः ॥ १२९ ॥

अर्थ-जैसे सब वस्तुओंके भीतर और बाहर आकाश रहताहै तैसेही सत्स्वरूप और साक्षीस्वरूप आत्मास्वरूप करके सबमें विराजमानहै ॥ १२९ ॥

नबाल्यमस्तिवृद्धत्वंनात्मनोयौवनंजरा ।
सदैकरूपश्चिन्मात्रोविकारपरिवर्जितः ॥ १३० ॥

अर्थ–आत्माका जन्म, बालकपन और वृद्धावस्था नहींहै, वह सदाही एकरूप, चिन्मय और विकारसे रहितहै ॥ १३० ॥

जन्मयौवनवार्द्धक्यंदेहस्यैवनचात्मनः ।
पश्यन्तोऽपिनपश्यन्तिमायाप्रावृतबुद्धयः ॥ १३१ ॥

अर्थ–जन्म, जवानी और बुढ़ापा देहकोही होताहै । आत्मामें नहीं होता । मनुष्योंकी बुद्धि मायासे ढ़कीरहतीहै । इस कारण वे इसे देखकरभी नहींसे देखते हैं ॥ १३१ ॥

यथाशरावतोयस्थंरविंपश्यत्यनेकधा ।
तथैवमाययादेहेबहुधात्मानमीक्षते ॥ १३२ ॥

अर्थ–जैसे बहुतसी रक्खी हुई सरईयोंके जलमें बहुतसे सूर्य दिखाईदेतेहैं तैसेही मायाके प्रभावसे बहुतसे शरीरमें बहुतसे आत्मा दिखाई देतेहैं ॥ १३२ ॥

यथासलिलचाञ्चल्यंमन्यन्तेतद्गतेविधौ ।
तथैवबुद्धेश्चाञ्चल्यंपश्यन्त्यात्मन्यकोविदाः ॥ १३३ ॥

अर्थ–जैसे जलके चंचल होनेसे उसमें पड़ीहुई चंद्रमाकी परछाईंभी चंचल मालूम होतीहै, वैसेही अज्ञानी लोग बुद्धिकी चंचलता आत्माहीमें देखतेहैं ॥ १३३ ॥

घटस्थंयादृशंव्योमघटेभग्नेऽपितादृशम् ।
नष्टेदेहेतथैवात्मासमरूपोविराजते ॥ १३४ ॥

अर्थ–जैसे घडे टूट जानेपरभी घड़ेका आकाश पहलेकी समान विकाररहित रहता है, तैसेही देह नष्ट होनेपरभी आत्मा सब समय समभावसे विराजमान रहता है ॥ १३४ ॥

आत्मज्ञानमिदंदेवि ! परंमोक्षैकसाधनम् ।
जानन्निहैवमुक्तःस्यात्सत्यंसत्यंनसंशयः ॥ १३५ ॥

अर्थ-हे देवि! यह ब्रह्मज्ञान मोक्षका परम कारण है, जो इसको जानते हैं, वह निःसंदेह इस लोकमें ही जीवन्मुक्त होते हैं ॥१३५॥

नकर्म्मणाविमुक्तःस्यान्नसन्तत्याधनेनवा ।
आत्मनात्मानमाज्ञायमुक्तोभवतिमानवः ॥ १३६ ॥

अर्थ-कर्मसे मनुष्यकी मुक्ति नहीं होती, संतान उत्पन्न करनेसे या धनसे मुक्ति नहीं, परंतु अपने आप अपनेको जानतेही मुक्ति प्राप्त होजाती है ॥ १३६ ॥

प्रियोह्यात्मैवसर्वेषांनात्मनोऽस्त्यपरंप्रियम् ।
लोकेऽस्मिन्नात्मसम्बन्धाद्भवन्त्यन्येप्रियाःशिवे! ॥१३७

अर्थ-सब जीवोंको आत्माही परम प्यारी है और कोई वस्तु आत्मासे प्यारी नहीं है। हे शिवे ! इसलोकमें और पुरुष अपने संबंधके अनुसार ही प्रेमपात्र होता है ॥ १३७ ॥

ज्ञानंज्ञेयंतथाज्ञातात्रितयंभातिमायया ।
विचार्यमाणेत्रितयेआत्मैवैकोऽवशिष्यते ॥ १३८ ॥

अर्थ-ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता यह तीनों मायासे ही प्रतिभाता होते हैं इन तीनोंका तत्वविचार करनेसे केवल एक आत्माही बचती हैं ॥ १३८ ॥

ज्ञानमात्मैवचिद्रूपोज्ञेयमात्मैवचिन्मयः ।
विज्ञातास्वयमेवात्मायोजानातिसआत्मवित् ॥१३९॥

अर्थ-चिन्मय आत्माही ज्ञान, चिन्मय आत्माही जानने योग्य वस्तु है, स्वयं आत्माही ज्ञाता है इसको जाननेवाला आत्मवित् है ॥ १३९ ॥

एतत्तेकथितंज्ञानंसाक्षान्निर्वाणकारणम् ।
चतुर्विधावधूतानामेतदेवंपरंधनम् ॥ १४० ॥

अर्थ—यह मैंने तुमसे साक्षात् निर्वाणका कारण ज्ञान उपदेश कहा। यही चार प्रकारके अवधूतोंका परम धन है ॥ १४० ॥

श्रीदेव्युवाच ।

द्विविधावाश्रमौप्रोक्तौगार्हस्थोभैक्षुकस्तथा ।
किमिदंश्रूयतेचित्रमवधूताश्चतुर्विधाः ॥ १४१ ॥

अर्थ—श्रीभगवतीने कहा—आपने पहले गृह और भिक्षुक इन दो आश्रमोंका वर्णन किया, अब आप अवधूत आश्रम चार प्रकारके बतलातेहो, इस्से मुझको अचरज होताहै, यह क्या बातहै॥१४१॥

श्रुत्वावेदितुमिच्छामितत्त्वतःकथयप्रभो ! ।
चतुर्विधावधूतानांलक्षणंसविशेषतः ॥ १४२ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! चारप्रकार अवधूतोंके लक्षण यथार्थ २ भलीभांतिसे कहिये, मैं श्रवणकर उसके जाननेका अभिलाष करतीहूं॥१४२॥

श्रीसदाशिव उवाच ।

ब्रह्ममन्त्रोपासकायेब्राह्मणक्षत्रियादयः ।
गृहाश्रमेवसन्तोऽपिज्ञेयास्तेयतयःप्रिये ! ॥ १४३ ॥

अर्थ—श्रीसदाशिवने कहा—हे प्रिये ! जो ब्राह्मण, क्षत्री, आदि ब्रह्ममंत्रके उपासक है वह गृहस्थाश्रममें बास करकेभी(ब्राह्मावधूत) और यति (१) होंगे ॥ १४३ ॥

पूर्णाभिषेकविधिनासंस्कृतायेचमानवाः ।
शैवावधूतास्तेज्ञेयाःपूजनीयाःकुलार्चिते ! ॥ १४४ ॥

---

(१)"ब्रह्मचारिसहस्रंतु वानप्रस्थशतानिच । ब्राह्मणानान्तु कोटयस्तु यतिरेको विशिष्यते" । एक सहस्र ब्रह्मचारी शत वानप्रस्थ और एक एक करोड ब्राह्मणसेभी सद्यति श्रेष्ठ है ।

अर्थ-हे कुलाचिते ! जो मनुष्य पूर्ण अभिषेककी विधिके अनुसार संस्कृत हुए हैं, वह शैवावधूत हैं सबही पूजनीय हैं ॥ १४४ ॥

ब्राह्मावधूताःशैवाश्चस्वाश्रमाचारवर्त्तिनः ।
विदध्युःसर्वकर्माणिमदुदीरितवर्त्मना ॥ १४५ ॥

अर्थ-ब्राह्मावधूत और शैवावधूतोंको चाहियेकि अपने आश्रम और अपने आचारोंमें रहकर मेरे कहेहुए मार्गका आश्रय लेकर सब कर्म करे ॥ १४५ ॥

विनाब्रह्मार्पितंचैतेतथाचक्रार्पितंविना ।
निषिद्धमन्नंतोयञ्चनगृह्णीयुःकदाचन ॥ १४६ ॥

अर्थ-ब्राह्मावधूत, ब्रह्ममें अर्पित द्रव्यके सिवाय और शैवावधूत चक्रमें अर्पितद्रव्यके सिवाय कभी निषिद्ध अन्न और निषिद्ध जल ग्रहण नहीं करें ॥ १४६ ॥

ब्राह्मावधूतकौलानांकौलानामभिषेकिणाम् ।
प्रागेवकथितोधर्म्मआचारश्चवरानने ! ॥ १४७ ॥

अर्थ-हे वरानने ! ब्राह्मावधूत कौललोगोंके और अभिषिक्त कौललोगोंके (१) आचार व धर्म पहलेही प्रगट कर चुकाहूं ॥ १४७॥

स्नानंसन्ध्याशनंपानंदानंचदाररक्षणम् ।
सर्वमागममार्गेणशैवब्राह्मावधूतयोः ॥ १४८ ॥

अर्थ-स्नान, संध्या, भोजन, पान, दान, दाररक्षा, इन कर्मोंका अनुष्ठान शैवावधूत और ब्राह्मावधूतोंको आगमके अनुसार करना चाहिये ॥ १४८ ॥

उक्तावधूतोद्विविधःपूर्णापूर्णविभेदतः ।
पूर्णःपरमहंसाख्यःपरिव्राडपरःप्रिये ! ॥ १४९ ॥

---

(१) "सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं महत् । वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम् । दक्षिणादुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् । सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् परतरोनहि" ॥

इतियोनितंत्रम् ॥

अर्थ–यह शैवावधूत और ब्राह्मावधूत दो प्रकारके हैं । पूर्ण और अपूर्ण । हेप्रिये ! पूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूतका नाम परमहंस-है। अपूर्ण शैवावधूत और ब्राह्मावधूतको परिव्राट् कहा जाताहै १४९॥

कृतावधूतसंस्कारोयदिस्याज्ज्ञानदुर्बलः ।
तदालोकालयेतिष्ठन्नात्मानंसतुशोधयेत् ॥ १५० ॥

अर्थ–जो मनुष्य अवधूतसंस्कारके द्वारा संस्कृत हुआ है, वह यदि ज्ञानके विषयमें दुर्बलहो अर्थात् जो उसको पूर्ण अद्वैतभाव न उत्पन्न हुआ हो तो वह वस्तीमें या गृहस्थाश्रममें रहकर आत्माको शुद्ध करे और जिस्से " एकमेवाद्वितीयम् " यह ज्ञान जन्मे इस विषयमें यत्न करता रहै ॥ १५० ॥

रक्षन्स्वजातिचिह्नञ्चकुर्वन्कर्माणिकौलवत् ।
सदाब्रह्मपरोभूत्वासाधयेज्ज्ञानमुत्तमम् ॥ १५१ ॥

अर्थ–वह अपनी जातिके चिह्न शिखा व सूत्रादिकी रक्षा करे । वह कौलकी समान सब कर्मोंका अनुष्ठान करता रहै । वह सदा ब्रह्मनिष्ठ होकर निरंतर ज्ञान साधन करे ॥ १५१ ॥

ओंतत्सन्मन्त्रमुच्चार्य्यसोऽहमस्मीतिचिन्तयन् ।
कुर्य्यादात्मोचितंकर्म्मसदावैराग्यमाश्रितः ॥ १५२ ॥

अर्थ–वोह सदा रागरहित होकर "ओं तत् सत्" मंत्र उच्चारण करके " सोहमस्मि " इस प्रकार चिन्ता करके योग्य कर्मका अनुष्ठान करे ॥ १५२ ॥

कुर्वन्कर्माण्यनासक्तोनलिनीदलनीरवत् ।
यतेतात्मानमुद्धर्त्तुंतत्त्वज्ञानविवेकतः ॥ १५३ ॥

अर्थ–वह पद्मपत्र पर स्थित हुए जलकी समान आसक्तिरहित होकर सब कर्मोंका अनुष्ठान करके तत्वज्ञानके विचारद्वारा अपनेको (संसारसागरसे) उद्धार करनेका यत्न करे ॥ १५३ ॥

ओंतत्सदितिमन्त्रेणयोयत्कर्म्मसमाचरेत् ।
गृहस्थोवाप्युदासीनस्तस्याभीष्टायतद्भवेत् ॥ १५४ ॥

अर्थ–गृहस्थ हो या उदासी हो "ओं तत्सत्" इस मंत्रसे जो जिस कार्यका अनुष्ठान करे, वही अपना अभीष्ट फल पावेगा १५४

जपोहोमःप्रतिष्ठाचसंस्काराद्यखिलाःक्रियाः ।
ओंतत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाःसम्पूर्णाःस्युर्नसंशयः ॥ १५५ ॥

अर्थ–जप, होम, प्रतिष्ठा, संस्कारादि सब काम "ओंतत्सत्" मंत्रसे किये जानेपर निःसंदेह पूर्ण होजायंगे ॥ १५५ ॥

किमन्यैर्बहुभिर्म्मन्त्रैःकिमन्यैर्भूरिसाधनैः ।
ब्राह्मेणानेनमन्त्रेणसर्वकर्माणिसाधयेत् ॥१५६॥

अर्थ–और बहुतसे मंत्रोंकी या बहुतसे साधनोंकी क्या आवश्यकता है केवल "ओं तत्सत्" मंत्रसे सब कर्मोंको साधन करे ॥ १५६ ॥

सुखसाध्यमबाहुल्यंसम्पूर्णफलदायकम् ।
नास्त्येतस्मान्महामन्त्रादुपायान्तरमंबिके! ॥ १५७ ॥

अर्थ–यह मंत्र सुखसे सिद्ध होजाता है, इसमें कोई बहुतायत नहींहै, परंतु यह सम्पूर्ण फलदायक है । हे अम्बिके ! इस महामंत्रके विना जीवके निस्तार होनेका दूसरा उपाय नहीं है ॥ १५७ ॥

पुरःप्रदेशेदेहेवालिखित्वाधारयेदिमम् ।
गेहस्तस्यमहातीर्थंदेहःपुण्यमयोभवेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ–जो गृहके किसी अंशमें अथवा शरीरके किसी अंशमें "ओं तत्सत्" मंत्र लिखकर धारण करेंगे, उसका गृह महातीर्थस्वरूप और देह पुण्यमय होगा ॥ १५८ ॥

निगमागमतन्त्राणांसारात्सारतरोमनुः ।
ओंतत्सदितिदेवेशि!तवाग्रेसत्यमीरितम् ॥ १५९ ॥

अर्थ-हे देवि ! मैं तुम्हारे सन्मुख सत्यही सत्य कहताहूं कि "ओं तत्सत्" मंत्र निगम, आगम और सब तंत्रोंमें सारका सार है ॥ १५९ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानांभित्त्वाताळुशिरःशिखाः ।
प्रादुर्भूतोऽयमोंतत्सत्सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ १६० ॥

अर्थ-सब तंत्रोंसे अतिश्रेष्ठ " ओं तत्सत् " मंत्र ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके ब्रह्मरंध्रको भेदकर उत्पन्न हुआहै॥१६०॥

चतुर्विधानामन्नानामन्येषामपिवस्तुनाम् ।
मन्त्रान्यैःशोधनेनालंस्याच्चेदेतेनशोधितम् ॥ १६१ ॥

अर्थ-जो " ओं तत्सत् " मंत्रसे चर्व्य, चोष्य, भक्ष्य, लेह्य यह चार प्रकारके अन्न या और किसी वस्तुका शोधन किया जाय तो और किसी वैदिक या तांत्रिक मंत्रसे शोधन करनेकी आवश्यकता नहीं होती ॥ १६१ ॥

पश्यन्सर्वत्रसद्रूपंजपंस्तत्सन्महामनुम् ।
स्वेच्छाचारःशुद्धचित्तस्सएवभुविकौलराट् ॥ १६२ ॥

अर्थ-जो सदा सत्स्वरूप ब्रह्मको प्रत्यक्ष करताहै, जो "ओंतत्सत्" इस महामंत्रका जप करताहै, जिसका अंतःकरण शुद्ध होगया है और जो स्वेच्छाचारी है, वही पृथ्वीमें श्रेष्ठ कौल है ॥१६२॥

जपादस्यभवेत्सिद्धोमुक्तःस्यादर्थचिन्तनात् ।
साक्षाद्ब्रह्मसमोदेहीसार्थमेनंजपन्मनुम् ॥ १६३ ॥
त्रिपदोऽयंमहामन्त्रःसर्वकारणकारणम् ।
साधनादस्यमन्त्रस्यभवेन्मृत्युञ्जयःस्वयम् ॥ १६४ ॥

अर्थ-"ओं तत्सत्" मंत्रका जप करनेसे मनुष्य सिद्ध होजाताहै। इसके अर्थ (१) को विचारनेसे मुक्ति होजातीहै । जो अर्थ विचार कर इस महामंत्रका जप करता है,वह मनुष्य शरीरी होकर-भी साक्षात् ब्रह्म होजाता है ॥ यह त्रिपदयुक्त महामंत्र सब कारणोंका कारणहै । इस मंत्रके सिद्ध करलेनेसे स्वयं मृत्युञ्जय हो जासक्ताहै ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

युग्मंयुग्मपदंवापिप्रत्येकपदमेववा ।
जप्त्वैतस्यमहेशानि ! साधकःसिद्धिभाग्भवेत् ॥१६५॥

अर्थ-हे महेश्वरि ! इस त्रिपदमंत्रके दोदो पद अथवा एक २ पदका जप (२) करनेसे साधक सिद्ध होसक्ताहै ॥ १६५ ॥

शैवावधूतसंस्कारविधूताखिलकर्म्मणः ।
नापिदैवेनवापित्र्येणार्षकृत्येऽधिकारिता ॥ १६६ ॥

अर्थ-जो लोग शैवावधूतके संस्कारसे संस्कृत हुएहैं उनको और कोई काम्यकर्म नहीं रहता, इस कारण वह दैव कर्ममें, आर्ष-कर्ममें या पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है ॥१६६ ॥

चतुर्णामवधूतानांतुरीयोहंसउच्यते ।
त्रयोन्येयोगभोगाढ्यामुक्ताःसर्वेशिवोपमाः ॥ १६७ ॥

अर्थ-चार प्रकारके अवधूतोंमें चतुर्थ अर्थात् पूर्ण ब्रह्माव-धूतको हंस कहाजाता है और तीन प्रकारके अवधूत योग और भोग करतेहैं, परंतु सबही अर्थात् चार प्रकारके अवधूतही मुक्त और शिवकी समान हैं ॥ १६७ ॥

हंसोनकुर्य्यात्स्त्रीसङ्गंनवाधातुपरिग्रहम् ।
प्रारब्धमश्नन्विहरेन्निषेधाविधिवर्जितः ॥ १६८ ॥

---

(१) ओंतत्सत्" मंत्रका अर्थः- जिसमें सृष्टि स्थिति प्रलय होतीहै, वह परब्रह्महो नित्यहै ॥

(२) "ओंतत्सत् । ओंतत् । ओंसत् । तत्सत् । ओं । तत् । सत्" ॥ यह सात प्रकारके मंत्र होतेहैं ।

अर्थ-हंस अर्थात् पूर्ण ब्राह्मावधूत स्त्रीसंसर्ग या धातु (रुपया पैसा) ग्रहण नहीं करसक्ता वह विधिनिषेधरहित हो प्रारब्ध भोग करके विहार करैगा ॥ १६८ ॥

त्यजेत्स्वजातिचिह्नानिकर्माणिगृहमेधिनाम् ।
तुरीयोविचरेत्क्षोणींनिःसङ्कल्पोनिरुद्यमः ॥ १६९ ॥

अर्थ-यह तुरीय परमहंस अपनी जातिके चिन्ह, शिखा, सूत्र, तिलक आदि त्याग करदे,वह गृहस्थके कर्मभी न करे । वोह संकल्प रहित और उद्यम रहित होकर पृथ्वीपर विचरणकरे ॥ १६९ ॥

सदात्मभावसन्तुष्टःशोकमोहविवर्जितः ।
निर्न्निकेतास्तितिक्षुःस्यान्निःशङ्कोनिरुपद्रवः ॥ १७० ॥

अर्थ-वह सदा आत्माके विचारमें संतुष्टरहै । वह शोक और मोहसे न घिरे, वह किसी नियत स्थानमें नरहै । वह सहनशील, शंकारहित निरुपद्रव होवै ॥ १७० ॥

नार्पणंभक्ष्यपेयानांनतस्यध्यानधारणाः ।
मुक्तोविरक्तोनिर्द्वन्द्वोहंसाचारपरोयतिः ॥ १७१ ॥

अर्थ-वह खाने पीनेका पदार्थ किसीमें अर्पण नकरे । उसका न ध्यानहै न धारणहै । वह मुक्त विरागयुक्त । निर्द्वन्द्व । हंसाचार-परायण और यति होवै ॥ १७१ ॥

इतितेकथितंदेवि ! चतुर्णांकुलयोगिनाम् ।
लक्षणंसविशेषेणसाधूनांमत्स्वरूपिणाम् ॥ १७२ ॥

अर्थ-हेदेवि ! यह तुमसे चारप्रकारके कुलयोगियोंके लक्षण भलीभांतिसे वर्णन किये । यह सबही साधु और मत्स्वरूपहैं ॥१७२॥

एतेषांदर्शनस्पर्शादालापात्परितोषणात् ।
सर्वतीर्थफलावाप्तिर्जायतेमनुजन्मनाम् ॥ १७३ ॥

अर्थ-इन कुलयोगियोंका दर्शन करनेसे, स्पर्श करनेसे, इनके

साथ बात चीत करनेसे वा इनको संतुष्ट करनेसे मनुष्योंको सर्वतीर्थोंके दर्शनका फल मिलताहै ॥ १७३ ॥

पृथिव्यांयानितीर्थानिपुण्यक्षेत्राणियानिच ।
कुलसंन्यासिनांदेहेसन्तितानिसदाप्रिये ॥ १७४ ॥

अर्थ-हेप्रिये ! पृथ्वीमें जितने तीर्थ और पुण्यक्षेत्रहैं, कुलसंन्यासियोंकी देहमें वह सब विद्यमानहैं ॥ १७४ ॥

तेधन्यास्तेकृतार्थाश्चतेपुण्यास्तेकृताध्वराः ।
यैरर्चिताःकुलद्रव्यैर्मानवैःकुलसाधवः ॥ १७५ ॥

अर्थ-जो मनुष्य कुलसाधकोंको कुलद्रव्यसे पूजतेहैं, वही धन्य, वही कृतार्थ, वही पवित्र और वही सर्वयज्ञोंके फलके भागी होतेहैं ॥ १७५ ॥

अशुचिर्यातिशुचितामस्पृश्यःस्पृश्यतामियात् ।
अभक्ष्यमपिभक्ष्यंस्याद्येषांसंस्पर्शमात्रतः ॥१७६॥

अर्थ-कुलयोगियोंके स्पर्श करनेसे अपवित्र पुरुषभी पवित्र होताहै न छूने योग्यभी छूने योग्य होताहै, नखाने योग्य वस्तुभी खाने योग्य होतीहै ॥ १७६ ॥

किराताःपापिनःक्रूराःपुलिन्दायवनाःखसाः ।
शुद्ध्यन्तियेषांसंस्पर्शात्तान्विनाकोऽन्यमर्चयेत् १७७॥

अर्थ-जिस कुलयोगीके स्पर्शसे किरात, पापी, क्रूर, पुलिन्द (एक प्रकारका चांडाल) यवन, खसभी शुद्धहोजातेहैं, उसको छोड़कर और किसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये ॥ १७७ ॥

कुलतत्त्वैःकुलद्रव्यैःकौलिकान्कुलयोगिनः ।
येऽर्चयन्तिसकृद्भक्त्यातेऽपिपूज्यामहीतले ॥ १७८ ॥

अर्थ-जो मनुष्य कुलयोगियोंको और कौल लोगोंको कुलतत्वसे और कुलद्रव्यसे केवल एकवारभी भक्तिपूर्वक पूजेंगे वहभी पृथ्वीमें पूज्य होंगे ॥ १७८ ॥

कौलधर्मात्परोधर्मोनास्त्येवकमलानने ! ।
अन्त्यजोऽपियमाश्रित्यपूतःकौलपदंव्रजेत् ॥ १७९ ॥

अर्थ-हे कमलानने ! कौलधर्मसे परम श्रेष्ठ दूसरा और कोई धर्म नहींहै क्योंकि अन्त्यज पुरुष इस धर्मके आश्रयसे पवित्र होकर कौलपदको प्राप्त होताहै ॥ १७९ ॥

करिपादेविलीयन्तेसर्वप्राणिपदायथा ।
कुलधर्मेनिमज्जन्तिसर्वेधर्मास्तथाप्रिये ! ॥ १८० ॥

अर्थ-हे प्रिये ! जैसे समस्त प्राणियोंके चरणचिन्ह हाथीके चरणचिन्हमें लीन होजातेहैं, वैसेही सब धर्म कुलधर्ममें लीनहो-जातेहैं ॥ १८० ॥

अहोपुण्यतमाःकौलास्तीर्थरूपाःस्वयंप्रिये ! ।
येपुनन्त्यात्मसम्बन्धान्म्लेच्छश्वपचपामरान् ॥ १८१॥

अर्थ-हे प्रिये ! स्वयं तीर्थस्वरूप कौलगण कैसे अतिपवित्रहैं । वह अपने संबंधसे म्लेच्छ, श्वपच और पामरोंकोभी पवित्र करतेहैं ॥ १८१ ॥

गङ्गायांपतिताम्भांसियान्तिगांगेयतांयथा ।
कुलाचारेविशन्तोऽपिसर्वेगच्छान्तिकौलताम् ॥ १८२॥

अर्थ-जैसे गंगामें गिरकर कुएका जलभी गंगाजल रूप होजा-ता है, वैसेही कुलाचारोंमें प्रवेश किये हुए सब जातिके मनुष्यभी कौल होजाते हैं ॥ १८२ ॥

यथार्णवगतंवारिनपृथग्भावमाप्नुयात् ।
तथाकुलाम्बुधौमग्नानभवेयुर्जनाःपृथक् ॥ १८३ ॥

अर्थ-जैसे समुद्रमें गया हुआ जल पृथक्भावको नहीं प्राप्त होता तैसे ही कुलसागरमें मग्न हुआ कोई पुरुषभी पृथक् नहीं होसक्ता ॥ १८३ ॥

विप्राद्यन्त्यजपर्य्यन्ताद्द्विपदायेऽत्रभूतले ।
तेसर्वेऽस्मिन्कुलाचारेभवेयुरधिकारिणः ॥ १८४ ॥

अर्थ-इस पृथ्वीमें ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यजतक जितने प्रकारके दोपाये जन्तु हैं, वह सबही इस कुलाचारमें अधिकारी होसक्ते हैं ॥ १८४ ॥

आहूताःकुलधर्मेऽस्मिन्येभवन्तिपराङ्मुखाः ।
सर्वधर्म्मपरिभ्रष्टास्तेगच्छन्त्यधमांगतिम् ॥ १८५ ॥

अर्थ-जो कुलधर्ममें आहुति देकर विमुख होजाते हैं, वह सब धर्मसे भ्रष्ट होकर अधम गतिको प्राप्त होतेहैं ॥ १८५ ॥

प्रार्थयन्तिकुलाचारंयेकेचिदपिमानवाः ।
तान्वञ्चयन्कुलीनोऽपिरौरवंनरकंव्रजेत् ॥ १८६ ॥

अर्थ-जो मनुष्य कुलाचारकी प्रार्थना करे और उनको कोई कौल वंचना करे तो वह कौल रौरव नरकमें जायगा ॥ १८६ ॥

चाण्डालंयवनंनीचंमत्वास्त्रियमवज्ञया ।
कौलंनकुर्य्याद्यःकौलःसोऽधमोयात्यधोगतिम् ॥ १८७ ॥

अर्थ-जो कोई कौल पुरुष किसी कौलधर्मके चाहनेवालेको स्त्री, नीच, चाण्डाल वा यवन समझ निरादर करके कौल नहीं करेगा वह कौल लोगोंमें अधम है और अंतकालमें उसको नीच गति प्राप्त होती है ॥ १८७ ॥

शताभिषेकाद्यत्पुण्यंपुरश्चर्य्याशतैरपि ।
तस्मात्कोटिगुणंपुण्यमेकस्मिन्कौलिकेकृते ॥ १८८ ॥

अर्थ-शत अभिषेकसे जो पुण्य मिलता है शत पुरश्चरण करनेसे जो पुण्य होता है एक कौलके करनेसे उससे कोटिगुण पुण्य होताहै ॥ १८८ ॥

येयेवर्णाःक्षितौसन्तियद्यद्धर्म्ममुपाश्रिताः ।
कौलाभवन्तस्तेपाशैर्मुक्तायान्तिपरंपदम् ॥ १८९ ॥

अर्थ-पृथ्वीमें जितने वर्ण हैं और जितने प्रकारके धर्मावलंबी पुरुष हैं, उनमें जो कौल होगा वह कर्मकी फांसीसे छूट कर परम पदको प्राप्त कर सकेगा ॥ १८९ ॥

शैवधर्माश्रिताःकौलास्तीर्थरूपाःशिवात्मकाः ।
स्नेहेनश्रद्धयाप्रेम्णापूज्यामान्याःपरस्परम् ॥१९०॥

अर्थ-शिवके धर्मका अवलंबन करनेवाले कौल साक्षात् शिव-स्वरूप और तीर्थस्वरूपहैं । स्नेह, श्रद्धा और प्रेमसे वोह परस्पर एक दूसरेकी पूजा और सन्मान करे ॥ १९० ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनतवाग्रेसत्यमुच्यते ।
भवाब्धितरणेसेतुःकुलधर्मोहिनापरः ॥ १९१ ॥

अर्थ-मैं अब अधिक क्या कहूं, तुमसे सत्य कहताहूं कि इस संसारसागरसे पार होनेके लिये एक धर्म ही पुल है।इसके सिवाय और कोई संसारसागरसे पार होनेका उपाय नहींहै ॥ १९१ ॥

छिद्यन्तेसंशयाःसर्वेक्षीयन्तेपापसञ्चयाः ।
दह्यन्तेकर्म्मजालानिकुलधर्म्मनिषेवणात् ॥ १९२ ॥

अर्थ-कुलधर्मका सेवन करनेसे सब संशय नाशको प्राप्त होजाते हैं सारे पापपुंज क्षय होकर कर्मसमूहभी नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ १९२ ॥

सत्यव्रताब्रह्मनिष्ठाःकृपयाहूयमानवान् ।
पावयन्तिकुलाचारैस्तेज्ञेयाःकौलिकोत्तमाः ॥ १९३ ॥

अर्थ-सत्यव्रत और ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि कृपाके वश हो कुलाचारसे मनुष्योंको बुलाकर पवित्र करें, इन सब महात्माओंको कौलिकश्रेष्ठ कहा जाता है ॥ १९३ ॥

इतितेकथितंदेवि !सर्वकर्म्मविनिर्णयम् ।
महानिर्वाणतन्त्रस्यपूर्वार्द्धंलोकपावनम् ॥ १९४ ॥

अर्थ-हे देवि ! यह मैंने तुमसे लोकपावन सर्व धर्मको निर्णय करनेवाले महानिर्वाणतंत्रका पूर्वार्द्ध कहा ॥ १९४ ॥

यइदंशृणुयान्नित्यंश्रावयेद्वापिमानवान् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तःसोऽन्तेनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ १९५ ॥

अर्थ-जो सदा इसको श्रवण करेगा अथवा मनुष्योंको सुनावैगा, वह सब पापोंसे छूटकर अंतमें मोक्षको प्राप्त करेगा ॥१९५॥

सर्वागमानांतन्त्राणांसारात्सारंपरात्परम् ।
तन्त्रराजमिदंज्ञात्वाजायतेसर्वशास्त्रवित् ॥ १९६ ॥

अर्थ-समस्त आगम और समस्त तंत्रोंमें परात्पर और सारा सार इस तंत्रराजके जाननेसे सब शास्त्रज्ञ हुआ जासक्ता है॥१९६॥

किन्तस्यतीर्थभ्रमणैःकिंयज्ञैर्जपसाधनैः ।
जानन्नेतन्महातन्त्रंकर्मपाशैर्विमुच्यते ॥ १९७ ॥

अर्थ-महानिर्वाणतंत्रके जाननेवालेको तीर्थमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है वह केवल महानिर्वाणतंत्रके ज्ञान करके कर्मकी फांसीसे छूट सक्ताहै ॥ १९७ ॥

सविज्ञःसर्वशास्त्रेषुसर्वधर्मविदांवरः ।
सज्ञानीब्रह्मवित्साधुर्यन्तत्वेत्तिकालिके ॥ १९८ ॥

अर्थ-हे कालिके ! महानिर्वाण तंत्रका जाननेवाला, सर्व शास्त्रमें विज्ञानी औ सब धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, वही साधू वही ज्ञानी और वही ब्रह्मज्ञानी है ॥ १९८ ॥

अलंवेदैःपुराणैश्चस्मृतिभिःसंहितादिभिः ।
किमन्यैर्बहुभिस्तन्त्रैर्ज्ञात्वेदंसर्वविद्भवेत् ॥ १९९ ॥

अर्थ-वेद, पुराण, स्मृति, संहिता और बहुतसे तंत्र जाननेकी क्या आवश्यकता है केवल इस महानिर्वाण तंत्रकेही जान लेनेसे सर्वज्ञ हुआ जा सक्ता है ॥ १९९ ॥

आसीद्गुह्यतमंयन्मेसाधनंज्ञानमुत्तमम् ।
तवप्रश्नेनतन्त्रेऽस्मिंस्तत्सर्वंसुप्रकाशितम् ॥ २०० ॥

अर्थ–जो कि साधन और उत्तम ज्ञान अत्यंत गुप्तथे, तुम्हारे प्रश्नके अनुसार उन सबको इस महानिर्वाणतंत्रमें प्रकाश किया ॥ २०० ॥

यथात्वंब्रह्मणःशक्तिर्ममप्राणाधिकापरा ।
महानिर्वाणतंत्रंमेतथाजानीहिसुव्रते ! ॥ २०१ ॥

अर्थ–हे सुव्रते ! तुम जैसे ब्रह्मशक्ति और हमारी परम प्यारी हो, वैसेही इस महानिर्वाण तंत्रकोभी जानो ॥ २०१ ॥

यथानगेषुहिमवांस्तारकासुयथाशशी ।
भास्वांस्तेजःसुतन्त्रेषुतन्त्रराजमिदंतथा ॥ २०२ ॥

अर्थ–जैसे पर्वतोंमें हिमालय, नक्षत्रोंमें चंद्रमा, तेज पदार्थोंमें सूर्य श्रेष्ठ है, वैसेही सब तंत्रोंमें यह तंत्रराज श्रेष्ठ है ॥ २०२ ॥

सर्वधर्म्ममयंतन्त्रंब्रह्मज्ञानैकसाधनम् ।
पठित्वापाठयित्वापिब्रह्मज्ञानीभवेन्नरः ॥ २०३ ॥

अर्थ–यह तंत्र सर्वधर्ममय और ब्रह्मज्ञानका एकही साधन है इसको पढ़ने पढ़ानेवाला ब्रह्मज्ञानी हो जायगा ॥ २०३ ॥

विद्यतेयस्यभवनेसर्वतन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
नतस्यवंशेदेवेशि! पशुर्भवतिकर्हिचित् ॥ २०४ ॥

अर्थ–हे देवि! सब तंत्रोंमें श्रेष्ठ यह तंत्र जिसके घरमें रक्खा होगा उसके वंशमें कभी कोई पशु न होगा ॥ २०४ ॥

अज्ञानतिमिरान्धोऽपिमूर्खःकर्म्मजड़ोपिवा ।
शृण्वन्नेतन्महातन्त्रंकर्म्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ २०५ ॥

अर्थ-अज्ञानके अंधकारसे अंधाहुआ मूर्ख और कर्म सिद्ध करनेमें जड़ पुरुषभी जो इस महानिर्वाण नामक महातंत्रको श्रवण करे तो वह कर्मकी फांसीसे छूट जाता है ॥ २०५ ॥

एतत्तन्त्रस्यपठनंश्रवणंपूजनंतथा ।
वन्दनंपरमेशानि!नृणांकैवल्यदायकम् ॥ २०६ ॥

अर्थ-हे परमेश्वरि ! इस महातंत्रके पाठ करने या श्रवण करनेसे पूजा या वंदन करनेसे मनुष्यको कैवल्यकी प्राप्ति होतीहै ॥ २०६ ॥

उक्तंबहुविधंतंत्रमेकैकाख्यानसंयुतम् ।
सर्वधर्मान्वितंतंत्रंनातःपरतरंक्वचित् ॥ २०७ ॥

अर्थ-एक २ आख्यानके साथ बहुतसे तंत्र कहे हैं तिन सबमें सब धर्मोंका वर्णन है परंतु इस्से श्रेष्ठ और तंत्र नहींहै ॥ २०७ ॥

पातालचक्रभूचक्रज्योतिश्चक्रसमन्वितम् ।
परार्द्धमस्ययोवेत्तिससर्वज्ञोनसंशयः ॥ २०८ ॥

अर्थ-इस महानिर्वाणतंत्रके उत्तरार्द्धमें पातालचक्र, भूचक्र और ज्योतिश्चक्र है, जो उस उत्तरार्द्धको जान्ता है, वह निःसन्देह सर्वज्ञ होजाता है ॥ २०८ ॥

परार्द्धसहितंग्रन्थमेनंजानन्नरोभवेत् ।
त्रिकालवार्त्तात्रैलोक्यवृत्तान्तंकथितुंक्षमः ॥ २०९ ॥

अर्थ-जो परार्द्धके साथ इस महानिर्वाणतंत्रको जानते हैं वह त्रिकालवार्त्ता और त्रिलोकीका वृतान्त वर्णन करनेमें समर्थ होतेहैं २०९

सन्तितन्त्राणिबहुधाशास्त्राणिविविधान्यपि ।
महानिर्वाणतन्त्रस्यकलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ २१० ॥

अर्थ-अनेक प्रकारके तंत्र हैं बहुत शास्त्रभी हैं, परंतु कोई शास्त्र या कोई तंत्र इस महानिर्वाणतंत्रके सोलहवें अंशके एकांशकीभी बराबर नहीं होसक्ता ॥ २१० ॥

महानिर्वाणतन्त्रस्यमाहात्म्यंकिंब्रवीमिते ।
विदित्वैतन्महातन्त्रंब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ २११ ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतन्त्रेसर्व्वतन्त्रोत्तमोत्तमेसर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादेपूर्वकाण्डेशिवलिङ्गस्थापनचतुर्विधावधूतविवरणकथनं नाम चतुर्दशउल्लासः॥ १४॥

अर्थ-मैं इस महानिर्वाणतंत्रका माहात्म्य तुमसे क्या वर्णन करूं इस महानिर्वाणतंत्रके जान लेनेसे ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त होता है॥ २११॥

दोहा-ब्रह्ममिलावनहारयह, अनुपमतंत्रमहान ॥
पढ़त, सुनत, समुझत, गुनत, देतसुभगनिर्वान ॥
इक२अक्षरब्रह्मसम, पढ़ैजोचित्तलगाय ॥
साक्षात्हरिरूपबन, सोसुरलोकसिधाय ॥
जगहितकारणउमासों, वरणोंतंत्रमहेश ॥
याकीमहिमाकहनको, शक्तिनराखेशेष ॥
सोमैंप्राकृतबिचकियो, सबतंत्रनकोसार ॥
याहूकेपढ़िवेसुनै, ह्वैहैजगउपकार ॥

इति श्रीमहानिर्वाणतंत्रेसर्वतंत्रोत्तमोत्तमेसर्वधर्मनिर्णयसारे श्रीमदाद्यासदाशिवसंवादेपूर्वकांडेपण्डितबलदेवप्रसाद-मिश्रकृत-भाषाटीकायांशिवलिंगस्थापनचतुर्विधावधूतविवरणकथनंनामचतुर्दशउल्लासः ॥ १४ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना-मुंबई.